Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MANORANJAN

NOV-MAR 1947-48 G.K.U.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

111080

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

RT-0884

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

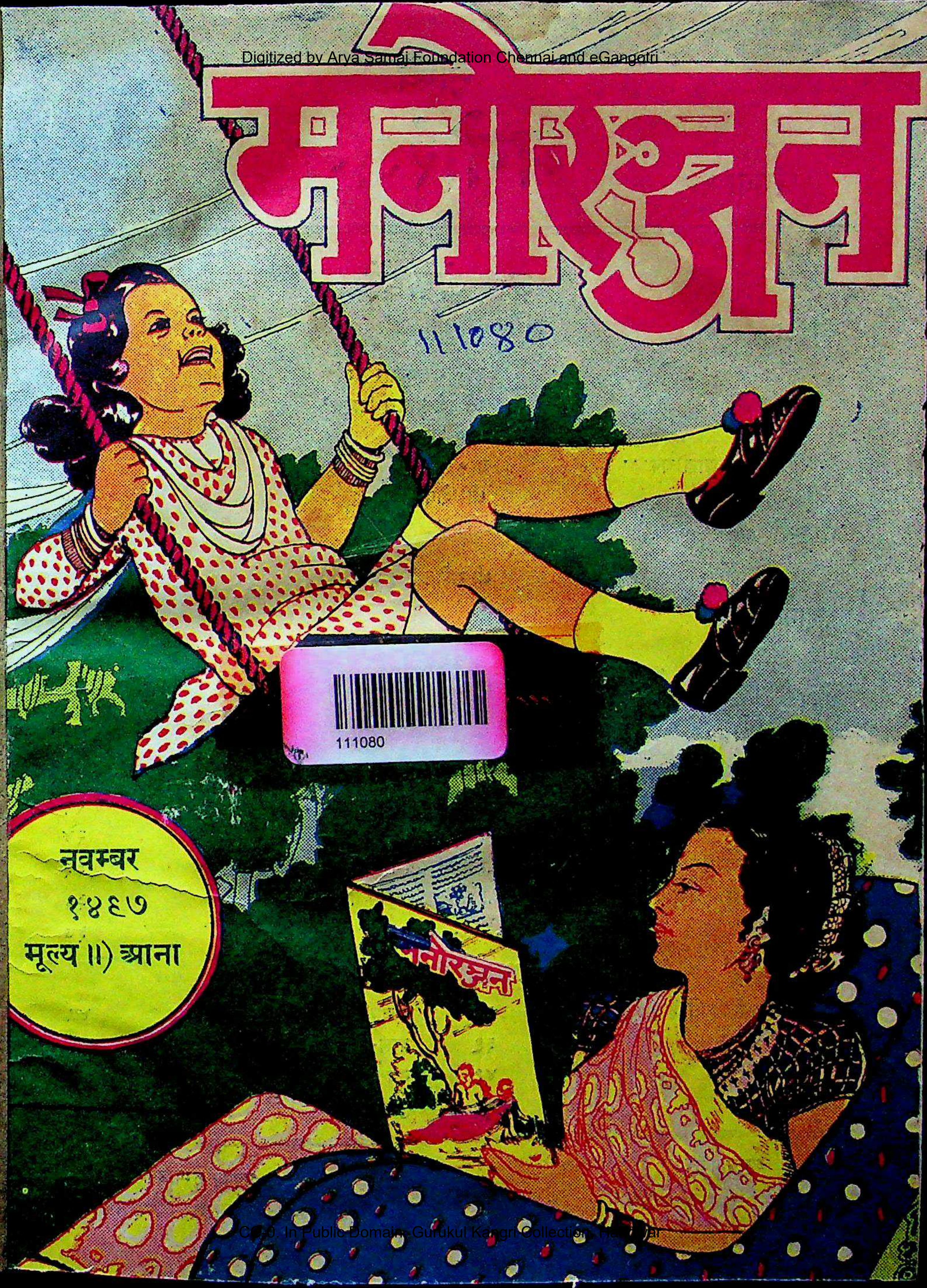

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सचित्र

वर्ष १ संख्या २

मनोरंजन

नवम्बर १९४७

इस अंक में

कविता

संकेत	डा० रामकुमार वर्मा	१
धुंधलका	श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'	९
छलना	प्रो० 'अचल'	१०
प्रेयसि ! ये आलोचक···	डा० नगेन्द्र	१५
गजल	श्री 'शेष'	२०

नाटक

पांव की मोच	श्री राजेन्द्रसिंह बेदी	२

कहानी

अभिभाविका	श्री रामचन्द्र तिवारी	१८

लेख

विश्व-रंगमंच के अभिनेता—स्टालिन	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	६
श्री सुदर्शन	श्री पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'	११
अखबारी कागज	श्री आनन्द विद्यालंकार	२१
गाली	श्री प्रभाकर माचवे	२४
आदित्य ब्रह्मचारियों का देश	श्री कृष्णचन्द्र विद्यालंकार	३३
बौनों का चमत्कारी जीवन	श्री गो० व० उपाध्याय	३६
'दुखोबोर'	... .	३७

विशेष स्तम्भ

क्या आप जानते हैं ?	३८	सलोनी दुनिया	४५
हास-परिहास	३९	बाल-मनोरंजन	५१
खेलें	४१	नव-प्रकाशन	५७
चित्रलोक	४३	फुलझड़ियां	६३

47–48.

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

प्रबन्ध सम्पादक
श्री विद्यासागर विद्यालंकार

सम्पादक
श्री चिरंजीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्र विद्यावाचस्पति
चन्द्रलोक, जवाहर नगर
दिल्ली द्वारा
गुरुकुल कांगड़ी पुस्तकालय को
भेंट

संकेत

डा० रामकुमार वर्मा

अपने में जब तुम को पाया,
आशा और निराशा का धन हँस-हँस कर सौ बार लुटाया।

फूलों के मुरझाने में देखी कांटों के उर की पीड़ा,
मैंने इस करुणा से उर के कांटे ही को फूल बनाया।

गीतों की भिक्षा मांगी मैं ने तारों के तट पर जाकर,
जब लौटा तो मेरे स्वर ने तारों का ही गीत बनाया।

जीवन की मधु छाया में थीं ये आंखें प्यासी की प्यासी,
तुम्हें आज देखा तो आंखों ने बुझने का लोभ मिटाया।

वर्षा बीती, शरद चन्द्रिका में खिच कर आया अम्बर पर,
मैं ने करुणा के आंसू में एक पुनीत प्रकाश बसाया।

जब बिजली भी चौंक उठी मेरे निराश जीवन के क्षण पर,
तब पल भर की छवि से मैंने जीवन का छवि-रूप जगाया।

यह संसार नींद में है, आओ, हम तुम मिल इसे जगावें,
देखो, उस कोकिल ने भी अपने तरु के अंतर में गाया।

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाँव की मोच

(एकांकी)

श्री राजेन्द्रसिंह बेदी

नाटक के पात्र

हृदयनाथ तिवारी—एक लेखक
वसंती—तिवारी की पत्नी
मदन—तिवारी का मित्र
प्रोफैसर मिसेज गुप्ता— स्थानीय गर्ल्ज़ कालिज की एक प्रोफैसर और तिवारी की प्रशंसक

(हृदयनाथ तिवारी के मकान का बैठने का कमरा जिसका एक दरवाजा अध्ययन-कक्ष और दूसरा रसोई में खुलता है। कमरे में एक बड़ा-सा सोफा पड़ा है जिसके बाईं ओर एक बढ़िया सिंगार-मेज रखी है। सिंगार-मेज पर शीशे के समीप क्रीम, 'ऐशिज आफ रोजेज हेयर क्रीम' की नीली शीशी, क्यूटेक्स नेल पालिश और दूसरी प्रसाधन-सामग्री पड़ी हुई है। पास ही एक खूंटी पर दो मैली-सी धोतियां और एक बढ़िया साड़ी टंगी हुई हैं। सोफे के समीप एक छोटी-सी गोल मेज पर कुछ पुस्तकें बेतरतीबी से बिखरी पड़ी हैं।

जब पर्दा उठता है तो तिवारी सोफे पर बैठा आसपास अध्ययन का वातावरण उत्पन्न किये हुए है। करीब ही उसका मित्र मदन एक पुस्तक लिये सोफे में धंसा हुआ दिखाई देता है। तिवारी कोई गीत गुनगुना रहा है, जो धीरे-धीरे मद्धिम होकर सीटी में परिवर्तित हो जाता है और फिर मदन और तिवारी के पांव की थाप गीत के सुर-ताल पर उतरती हुई एकाएक 'सम' पर आ जाती है।)

तिवारी — आज सचमुच जीवन कितना मधुर जान पड़ता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मदन — एक सफल नाटक लिख लेने के बाद ?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हां, जीवन क्यों न मधुर जान पड़े !

तिवारी — सचमुच मदन, मुझे अपने हां नन्हें भाषी के पैदा होने पर इतना हर्ष न हुआ था जितना आज हो रहा है।

मदन — (तिवारी के जरा निकट खिसक कर) बताओ तो भला क्या लिखा है ?

तिवारी — नाटक का नाम बहुत सुन्दर है — "स्त्री की ना"।

मदन — स्त्री की 'ना' ? क्या अभिप्राय है तुम्हारा ? — वैसे नाम तो बहुत अच्छा है।

तिवारी — अभिप्राय यह है कि एक स्त्री की 'ना', 'हां' के बराबर होती है।

मदन — (हसता है) परन्तु, सदा ऐसे नहीं होता।

तिवारी — आम तौर पर ऐसे ही होता है। तुम्हें बायरन की वह पंक्ति याद है ? — And whispering–"I shall never consent", consented–कहती थी न मानूंगी और मान गई। नाटक में थाय का चरित्र बहुत अच्छा रहा है। दर-असल मैं अपनी कृतियों में बहुत गहरा व्यग्यं लाना चाहता हूं। (उपदेशात्मक ढंग से) मैं मनुष्य को देवता के रूप में नहीं देखता, उसकी प्रकृति में बसी हुई बर्बरता और पाशविकता को देखता हूं और नारी को सिर से पांव तक एक छलना—मृग-तृष्णा - माया — (भेद बताने के लहजे में) और एक बात कहूं तुम से, मदन ? "स्त्री की ना" नाटक मैंने मिसेज गुप्ता से प्रभावित होकर लिखा है।

मदन — (मुंह खुले का खुला रह जाता है और आंखें फैल जाती हैं) मिसेज गुप्ता ? मिसेज गुप्ता पर ? वह तो बड़ी प्रशंसक है तुम्हारी। उस बेचारी को खा–म–खा क्यों अपने व्यंग्य का लक्ष्य बनाते हो तिवारी ? ··· और यदि उसे पता चल गया तो तुम्हारे विरुद्ध हो जायेगी और फिर तुम्हारे नाटक और कहानियां भी रत्न और प्रभाकर की परीक्षाओं के लिये लगने से रहीं। जानते हो कितनी आर्थिक हानि होगी तुम्हारी !

तिवारी — हवा से ! पहले कौन से गगन-चुम्बी महल खड़े कर लिये हैं जो ढह जायेंगे। बीसवीं सदी की प्रत्येक शिक्षित स्त्री की भांति मिसेज गुप्ता भी तो बच्चों के नाम से कोसों दूर भागती है। मैं सोचता हूं, आखिर इस दुनिया का होगा क्या ?

(रसोई में वसंती एक ओर से दूसरी ओर जाती हुई दिखाई देती है। उसने एक बढ़िया साड़ी पहन रखी है।)

मदन — (धीरे से) कौन है ?

तिवारी — न जाने कौन ? कोई दूसरी बार इधर से उधर गया है। मेरे ख्याल में तो वसंती है; नहीं तो दाया होगी।

मदन — हां, हां, यह शायद भाभी ही हैं। बड़ी व्यस्त दिखाई देती हैं आज !

तिवारी — ओह ! अब मैं समझा। वह भीतर आना चाहती है इस कमरे में — अकेले बैठे-बैठे उकता गई होगी बेचारी ! सच पूछो तो वह तुम्हारे चुटकले बहुत पसन्द करती है, मदन। तुम्हारे चले जाने के बाद तुम्हारे चुटकलों और वाक्यों को बड़े चटखारे लेकर दोहराती है। तुम्हारी तारीफ के पुल बांधा करती है। कहती है, जो स्त्री इस आदमी से ब्याही जायेगी, वह बहुत सुखी रहेगी। और यह केवल वसंती

श्री राजेन्द्रसिंह बेदी उर्दू के ख्यातनामा अग्रणी कहानीकार हैं। आधुनिक उर्दू साहित्यमें इनका स्थान बहुत ऊंचा है। इन की कहानियों के कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। एक संग्रह 'तुलादान' के नाम से हिन्दी में भी प्रकाशित हो चुका है। इन्होंने कई एक एकांकी नाटक भी लिखे हैं जिनमें इनकी व्यग्यांतमक तथा प्रतीकात्मक शैली विशेष रूप से उभर कर सामने आई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की ही बात नहीं, प्रत्येक स्त्री को दूसरे पुरुष की बातें रुचिकर होती हैं।

मदन —(कहकहा लगाते हुए) आश्चर्य है तिवारी, तुम भाभी के सम्बन्ध में भी ऐसा कहने से नहीं चूकते। बहुत बढ़ गये तुम और कितने जालिम हो! अभी-अभी तुमने स्वयं ही कहा था कि मनुष्य में बर्बरता और पाशविकता बहुत होती है, सो ठीक कहा था तुमने।

तिवारी—(पूर्ववत गंभीर स्वर में) परन्तु नारी को भी तो छलना कहा था।

मदन—(हंसते हुए) वह भी बहुत हद तक ठीक होगा, परन्तु पुरुष के लिये भी दूसरी स्त्री का स्वर कोयल की कूक से कम नहीं होता।

तिवारी—इसीलिये तो मैं कहता हूं, वसन्ती भी सामान्य मानव की दुर्बलताओं से रहित नहीं; यद्यपि मैं यह अवश्य स्वीकार करता हूं कि अक्सर स्त्रियों का अपनी नई साड़ी दिखाने, नई सैंडल का प्रदर्शन करने और कुछ प्रशंसक निगाहें प्राप्त करने के सिवा और कुछ मतलब नहीं होता—

(वसन्ती फिर दरवाजे के समीप आती हुई दिखाई देती है।)

लो, वह अब आना ही चाहती है। वह तुम्हारे समीप आ बैठेगी। तुम चाहे किसी ढब की बातें करो, वह दिलचस्पी प्रकट करेगी। तुम चाहे किसी भाषा में बात-चीत करो, वह ऐसा प्रकट करेगी मानो सब कुछ समझ रही है और समय-असमय एकाध कहकहा भी लगायेगी।

(वसंती अंत में चली ही आती है और भीतर आते हुए अत्यन्त मधुर स्वर में तिवारी को सम्बोधित करती है—)

वसन्ती—देखिये न, आपका बटुआ चारपाई के नीचे गिर पड़ा था; लीजिए संभालिये, फिर खा-म-खा हिन्दुस्तानी पत्नियों को कोसते फिरेंगे कि वे सदा पतियों की जेबों की तलाशी लेती हैं और उन्हें पति द्वारा ईमानदारी से दिये हुए रुपयों पर संतोष नहीं है। (कुछ देर बाद, यों प्रकट करते हुए मानो उसने सचमुच अभी मदन को देखा है) ओः! आप हैं मदन जी? नमस्ते। क्षमा कीजियेगा, मैंने आप को देखा ही नहीं। कब से आये हैं आप?

मदन — नमस्ते भाभी। अभी आया हूं मैं तो—कहिये क्या हाल है नन्हे भाषी का? और आप की छोटी बहिन का? बीमार थीं न उस दिन जब हम सब उनकी मिज़ाजपुर्सी के लिये गये थे।

वसंती—जी, अब तो अच्छी है। आप की बहुत कृपा......

तिवारी—वसंती, आगे आ जाओ ना। बैठो, लो कुर्सी...... मदन जी से काहे की शर्म जो अपने ही भाई तो हैं। (कुर्सी बढ़ाते हुए) लो बैठो—बैठो।

मदन—जी हां, बैठिये। बैठिये न......

वसंती—(क्षमा याचना करती-सी) नहीं चलती हूं। बहुत से काम करने हैं। धोबी आने वाला है। कपड़ों के लिए पानी उबल रहा है। आप एकाध प्याली चाय की तो अवश्य......

मदन—जी नहीं। जी नहीं... ..

वसंती—और नन्हा गली में खेल रहा है। डरती हूं किसी गंदे हौज में न गिर जाये। हमारे पड़ोसियों ने गंदे हौज के लिये ढकना भी तो नहीं बनवा रखा और घर के सामने कीचड़ ही कीचड़ पड़ी रहती है। (कुछ रुककर) लेकिन खैर, बैठ जाती हूं कुछ देर के लिये......

(कुर्सी सरका कर बैठ जाती है)

मदन—(आवेग से) तिवारी जी, आप अपने पड़ोसियों को नोटिस क्यों नहीं देते भला? ईश्वर न करे, अगर भाषी खेलता-खेलता हौज में गिर जाय तो?

वसन्ती — यह भला घर के काम-काज क्यों करने लगे? हर कोई आप ऐसा थोड़ा ही है। इनकी बला से कोई हौज में गिरकर मर जाये या आग में जलकर भस्म हो जाये। कुछ दिनों से दाया को ज्वर आ रहा है। मैं कितने ही दिनों से चिल्ला रही हूं—कोई नौकर लाओ, कोई नौकर लाओ, लेकिन इनके कान पर जूं तक नहीं रेंगती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिवारी — ओहो, बसंती तुम्हारे गिले तो अब हद से गुजर गये। अब तो कुछ किये बिना चारा नहीं। अच्छा, देवी जी! आप मुझे केवल आज की मोहलत दे दें। हां, मदन, हो जाय कोई चुटकला— चटपटा-सा।

मदन — अंग्रेजी चुटकले याद हैं मुझे तो, उनसे भला भाभी को क्या दिलचस्पी हो सकती है?

तिवारी — फिर वही बात! समझते नहीं हो। मैं कहता हूं, चाहे तुम अंग्रेजी में सुनाओ, चाहे फ्रेंच में···

वसन्ती — जी हां, मदन जी आप कुछ सुनाइये। मेरे सामने जब भी कोई विदेशी भाषा बोलता है तो मुझे बहुत ही आनन्द आता है। (कृत्रिम हंसी हंसते हुए) अजीब-अजीब शक्लें बनती हैं और उन्हें देख देखकर मारे हंसी के मेरे पेट में बल पड़ जाते हैं। इसके सिवा मेरे भाई·····

तिवारी — देखो वसंती, मदन की बातें सुन लो, बहुत मनोरंजक होती हैं इनकी बातें — (तीनों मिल कर हंसते हैं) बात पीछे हो रही है और तुम्हारे पीहर वाले पहले आ धमके। यह तुम स्त्रियों की बहुत बुरी आदत है कि··

वसन्ती — (रुष्ट होकर) मेरी बातें तो आपको अच्छी नहीं लगतीं। यहां मिसेज गुप्ता हो तो·····

तिवारी — मिसेज गुप्ता सुशिक्षित व सुसंस्कृत स्त्री है। वह प्रत्येक विषय पर सरलता से बातचीत कर सकती है। आम उजड्ड स्त्रियों की भांति हर वक्त पीहर–पीहर···

मदन — अरे भाई, जाने भी दो तिवारी—

(बाहर कोई दरवाजा खटखटाता है)

तिवारी — कौन है? ठहरो मैं जाता हूं देखने के लिये।

(बाईं ओर से बाहर जाता है। बाहर से बातचीत सुनाई देती है)

नवागंतुक का स्वर — मदन जी यहीं हैं क्या?

तिवारी का स्वर — यहीं हैं भाई। कोई जरूरी काम है क्या?

नवागंतुक का स्वर — बहुत जरूरी काम है घर पर; मुझे माता जी ने भेजा है।

(वापस जाता है। मदन जाने के लिये उठ खड़ा होता है)

वसन्ती — ऐसा भी क्या जरूरी काम है, मदन जी?

मदन — नहीं भाभी, बस चलता हूं। माता जी का स्वास्थ्य कुछ अच्छा नहीं; मैं उन्हें अकेला नहीं छोड़ सकता।

वसन्ती — क्यों नहीं बसा लेते अपना घर? दरवाजा खुला रहेगा और माता जी की देख-भाल भी हो जायेगी—

मदन — (ठंडी सांस भर कर) अब बसाना ही पड़ेगा अपना घर!

तिवारी—(कमरे में आते हुए) चल दिये, मदन?

मदन — जी हां! भाभी क्षमा कीजियेगा, मैं आपको चुटकले फिर कभी सुनाऊंगा।

वसन्ती — कोई बात नहीं। मैं भी अब चलती हूं। भाषी कहीं हौज में न गिर जाये। चावल चूल्हे पर रखे हैं, कहीं गल न जायें।

मदन — (जाते हुए) यह आपकी साड़ी तो बड़ी सुन्दर है। इस रङ्ग पर सुनहरा बाडर बहुत अच्छा दिखाई देता है। अलीभाई से खरीद की होगी, है न? मैं भी अपनी पत्नी को खरीद दूंगा ऐसी ही साड़ी।

वसन्ती — दाम भी तो बहुत सुन्दर हैं – अस्सी रुपये। मुहल्ले की हर औरत ने पसन्द की है···

तिवारी — और मुहल्ले के मर्दों ने भी पसन्द की है।

(सब हंसते हैं। मदन जाता है।)

वसन्ती — (अपने आप) वह घर के काम-काज वाली धोती पहन लूं!

(भीतर जाकर मैली-कुचैली धोती बांध लेती है। इतना समय तिवारी गुनगुनाता और पुस्तकों को उलटता-पलटता रहता है। मैली धोती पहन कर वसन्ती फिर उसी कमरे में आ जाती है।)

(शेष पृष्ठ २७ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व-रंगमंच के अभिनेता

स्टालिन

१

रूस के तानाशाह स्टालिन का असली नाम जोजफ विजिग्रारिग्रोनोविच जूगाश्विलि है। कहा जाता है कि लैनिन ने उसका उपनाम स्टालिन रक्खा था। स्टालिन रूसी भाषा में फौलाद को कहते हैं। फौलादी गुणों के कारण लैनिन ने उसका जो नामकरण किया, वह इतना अन्वर्थ और उपयुक्त था कि सारे संसार ने उसे स्वीकार कर लिया।

मसल मशहूर है कि 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'। यह मसल प्रायः सभी महापुरुषों के जीवन-चरित्र के पहिले अध्याय में नियमरूप से लिखी रहती हैं; परन्तु स्टालिन के सम्बन्ध में यह अपवाद रूप से लिखी जानी चाहिए। बचपन को तो छोड़िये, जवानी तक भी लोगों को यह आशा नहीं थी कि इस पौदे के पत्ते चिकने हैं। प्रायः हरेक मां अपने बच्चे को बहुत होनहार समझती है। वह उसे भावी हीरो के ही रूप में देखती है। स्टालिन की मां के पास रूस के सर्वेसर्वा स्टालिन के बचपन के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिये एक पत्र-प्रतिनिधि पहुंचा। स्टालिन की मां रूसी भाषा नहीं समझती थी। पत्र-प्रतिनिधि ने उससे जौर्जियन भाषा में पूछा — "स्टालिन बचपन में कैसा था?" मां ने उत्तर दिया — "सो-सो (स्टालिन का बचपन का नाम) खासा अच्छा लड़का था"। बेचारी मां यह बिल्कुल नहीं समझ सकी कि सो-सो इतना बड़ा कैसे बन गया। स्टालिन एक बार उसे मास्को ले आया। उस बेचारी ने मुसीबत का एक महीना किसी तरह राजधानी में काटा। उसके पश्चात वह यह कह कर जौर्जिया में अपने गांव को वापिस चली गयी कि तू पेट भरने के लिये कोई रोजगार तो करता ही नहीं, मैं यहां रह कर क्या करूंगी?

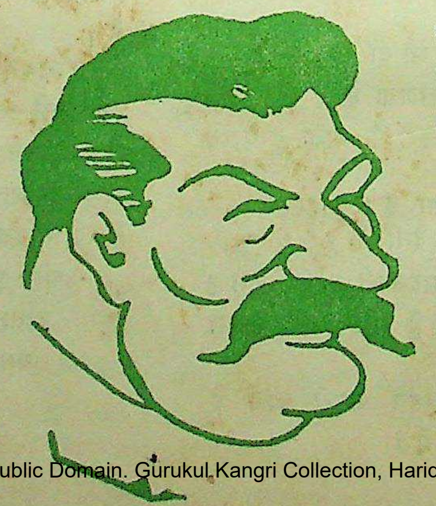

यह तो हुई बचपन की बात। बौल्शविक क्रान्ति के सफल हो जाने के बाद लैनिन के सामने यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि बौल्शविक पार्टी के प्रधान-मन्त्री के पद पर स्टालिन को ही रक्खा जाय या किसी दूसरे को नियुक्त किया जाय। लैनिन ने इस पर निम्नलिखित सम्मति दी थी—

"कामरेड स्टालिन बहुत अक्खड़ है। मैं साथियों से कहूंगा कि वे उसे सैक्रेटरी-जनरल के पद पर से हटा दें और उसके स्थान पर किसी ऐसे व्यक्ति को चुनें जिसमें अधिक धैर्य्य हो, अधिक वफादारी हो, अधिक नम्रता हो और जो साथियों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक —
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

बातें अधिक ध्यान से सुने।"

यह थी स्टालिन के गुरु लैनिन की राय अपने पट्टशिष्य के बारे में! वही पट्टशिष्य आज रूस का चक्रवर्ती शासक होने के साथ ही साथ संसार में सबसे अधिक शक्तिसम्पन्न राजनैतिक नेता है। दूसरा व्यक्ति जो शक्ति के मैदान में स्टालिन के मुकाबले में खड़ा किया जा सकता है, वह अमरीका का राष्ट्रपति ट्रूमैन है। परंतु कौन नहीं जानता कि ट्रूमैन के सिर पर आगामी चुनाव की लम्बी तलवार लटकी हुई है, जबकि कामरेड स्टालिन का सिंहासन, कम-से-कम साधारण दृष्टि से, बिल्कुल सुरक्षित दिखाई देता है।

२

स्वाभाविक रीति से यह प्रश्न उठता है कि वे कौनसी विशेषतायें हैं जिनके कारण स्टालिन इतने ऊंचे पद पर पहुंच गया और अपने देश की इतनी सेवा कर सका?

सामान्य रूप से आज कल के सार्वजनिक जीवन में नेता बनने के लिये जिन विशेषताओं की आवश्यकता होती है, उनका स्टालिन में अभाव है वह कोई बड़ा वक्ता नहीं है। वह बोलने के लिये बहुत कम खड़ा होता है और जब खड़ा भी हो जाय तो वक्तृता लम्बी होती है। उसमें भाषा का विशेष सौंदर्य नहीं होता और न आवाज के उतार-चढ़ाव होते हैं। इस दृष्टि से वह हिटलर से सर्वथा उलटा है। हिटलर मुख्यरूप से भावुकतापूर्ण शब्दों के विमान में बैठ कर आकाश में ऊंचा चढ़ गया था। स्टालिन में भावुकतापूर्ण वक्तृत्व-कला का सर्वथा अभाव है। उसके व्याख्यान सीधे-सादे और अर्थपूर्ण होते हैं।

वह कोई बड़ा ऊंचे दर्जे का लेखक नहीं। स्टालिन ने पुस्तकें तो बहुत-सी लिखी हैं, उनमें से कई पांच पांच सौ पन्नों की भी हैं; परन्तु यह प्रायः सर्वसम्मत बात है कि उन ग्रन्थों में भाषा का कोई सौन्दर्य नहीं। कहा जाता है कि मुसोलिनी कलम की नाव पर चढ़कर रोम की अधिकारपूर्ण गद्दी तक पहुंच गया था। स्टालिन की लेखनी में ऐसा कोई जादू नहीं है।

कुछ व्यक्ति प्रभावशाली शब्दों में ऊंचे ऊंचे आदर्शों और हवाई किलों का बखान करके ही नेतृत्व की सीढ़ी पर चढ़ जाते हैं। एक समय अमरीका के राष्ट्रपति वुड्रो विलसन का सितारा इसी तरह चमक उठा था। उसने संसार के सामने बड़े ऊंचे-ऊंचे आदर्श रक्खे, जिससे पहिले यूरोपियन महायुद्ध की समाप्ति पर एक समय ऐसा आया जब विलसन संसार का सबसे बड़ा व्यक्ति समझा जाता था। स्टालिन आदर्शों की बात कम करता है, उनके पूरा करने के उपायों की अधिक।

जिन विशेषताओं से आजकल लोग महान् नेताओं की पदवी को झटपट प्राप्त कर लेते हैं, उनका स्टालिन में अभाव है; तो भी वह महान् बन गया। इसका क्या कारण है?

३

हमने देख लिया कि स्टालिन में क्या नहीं है; अब हम देखेंगे कि उसमें क्या है।

उसकी सबसे बड़ी विशेषता वही है जो नाम से सूचित होती है—स्टालिन के शरीर और मन में फौलाद की-सी दृढ़ता है। उसका शरीर दृढ़ और काम करने में अनथक है। देखने वाले कहते हैं कि उसके चेहरे पर कहीं भी निर्बलता के चिन्ह दिखायी नहीं देते। चेहरा बहुत सुन्दर नहीं है माथा खूब चौड़ा और ऊंचा नहीं दिखाई देता। लम्बी लम्बी मूंछों से चेहरे पर कुछ भद्दापन भी झलकता है। परन्तु जिन चीजों की कोई कमी दृष्टिकोगोचर नहीं होती वे हैं—समझ, दृढ़ता, गम्भीरता और चतुराई। बात-चीत में, देरतक काम करने में और शारीरिक परिश्रम में स्टालिन अनथक है। एक बार अमरीका के कुछ पत्र प्रतिनिधि स्टालिन से मुलाकात करने गये। उन्होंने चार घण्टों तक प्रश्नोत्तर किये। स्टालिन के सब उत्तर सुलझे हुए और निश्चित थे। जब अमेरिकन पत्रकारों के सब प्रश्न समाप्त हो गये और वे मुलाकात बन्द करने लगे, तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्टालिन ने स्वयं कुछ प्रश्न करने की इच्छा प्रकट की और दो घण्टों तक अमरीका-सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण प्रश्न पूछे। इससे यह बात स्पष्ट हो जाता है कि लैनिन के मन में अपने योग्य शिष्य के सम्बन्ध में जो आशङ्काएं थी वे निर्मूल सिद्ध हुई हैं। दूसरे संसार-व्यापी महायुद्ध में स्टालिन ने जो अद्भुत शारीरिक क्षमता दिखलायी, उसने कड़े-से-कड़े समालोचकों को चकित कर दिया। महायुद्ध से पहिले योरोप में तीन तानाशाह थे। पहला हिटलर, दूसरा मुसोलिनी, तीसरा स्टालिन। हिटलर शब्दों के जिस गुब्बारे से लटककर आकाश में चढ़ा था, वह गुब्बारा ऊंचाई पर जाकर फट गया और हिटलर पृथ्वी पर गिर कर चकनाचूर हो गया। मुसोलिनी को कलम की जो नाव रोम तक ले गयी थी उसकी पैंदी में भी सुराख हो गये और मुसोलिनी डूब गया। तीसरा तानाशाह फौलाद की चट्टान पर खड़ा था, इस कारण बड़-से-बड़े तूफानों का मुकाबला करते हुए स्थिरता से खड़ा रहा। शारीरिक और मानसिक दृढ़ता स्टालिन की सबसे बड़ी विशेषता है।

४

स्टालिन सोलहों आने व्यावहारिक आदमी है। जब उसके विरोधी आदर्शों के हवाई किले बनाते हैं और शब्दों के जाल बुनते हैं तब वह चुपचाप गर्दन नीची किये सफलता के साधनों को जुटा रहा होता है। पहली बौल्शविक क्रांति के बाद जब क्रान्त के विरोधियों ने फिर से सिर उठाया तब क्रान्ति की रक्षा के उपायों पर विचार करने के लिए एक कान्फ्रेंस की गयी। उसमें प्रभावशाली वक्ताओं ने बहुत लंबे-लंबे प्रस्ताव पेश किये। उन प्रस्तावों में दुनिया भर की अच्छी बातें आ गयीं। जब बहुत से प्रस्ताव हो चुके, तब भी सदस्यों ने स्टालिन को चुप देखकर उसकी सम्मति जाननी चाही वास्तविकतावादी स्टालिन ने खड़े होकर निम्न लिखित शब्द कहे —

"साथियो, मैं शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिए केवल तीन चीजें आवश्यक समझता हूं।"

इस पर अनेक सदस्यों ने इकट्ठा ही पूछा—'वह तीन चीजें कौन-सी हैं?"

स्टालिन ने उत्तर दिया—

"पहली चीज, हथियार
दूसरी चीज, हथियार
और तीसरी चीज भी हथियार।"

सभा-भवन तालियों से गूंज उठा और कामरेड स्टालिन का प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया।

स्टालिन का कहना है कि कोई भी क्रान्ति हाथों में दस्ताने पहिन कर नहीं की जा सकती।

लैनिन की मृत्यु के बाद बौल्शविक लोग दो दलों में बंट गये थे। एक का नेता स्टालिन था और दूसरे का ट्राट्स्की। ट्राट्स्की बहुत प्रभावशाली वक्ता और लेखक था। उसकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। यदि व्याख्यानों या लेखों के गोलों से शत्रु के किले फतह किये जा सकते तो स्टालिन की धज्जियां उड़ जातीं। परन्तु जिस समय ट्राट्स्की और उसके साथी व्याख्यानों और लेखों की झड़ी लगा रहे थे, उस समय स्टालिन युद्ध की तैयारी में लगा हुआ था, अपने दल को मजबूत बना रहा था, जिन विरोधियों का नाश करना अभीष्ट था उनकी सूचियें तैयार कर रहा था और उन साथियों को खोज रहा था जो अन्ततक साथ दें। जब सारी तैयारी हो गयी तब स्टालिन ने वार किया। वार ऐसा अचूक हुआ कि ट्राट्स्की और उसकी पार्टी का नाम भी शेष न रहा। जब विरोधियों पर स्टालिन का कुल्हाड़ा चल रहा था तब लेडी ऐस्टर ने उससे पूछा—"तुम आखिर कब तक लोगों को मारते रहोगे?" स्टालिन ने उत्तर दिया —"जब तक मारने की जरूरत रहेगी"

स्टालिन शब्दों की अपेक्षा कार्य को अधिक पसन्द करता है।

प्रातःकाल जब वह कार्य के लिये बैठता है तब उसके मन्त्री देशभर के मुख्य-मुख्य समाचार और समाचार पत्रों के आवश्यक कटिंग उसके सामने उपस्थित कर देते हैं। उसके साथ काम करने वालों में से कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं जिसके सम्बन्ध में उसे पूरी जानकारी न हो।

स्टालिन की व्यावहारिकता का सबसे बड़ा नमूना यह है कि जब बौल्शविक पार्टी का अंतर्युद्ध स्टालिन की जीत के साथ समाप्त हो गया, तब रूस के पुनर्निर्माण की वह पंचवर्षीय योजना तैयार हुई जिसे हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्त्तमान युग का चमत्कार कह सकते हैं। वह योजना पढ़ने में ही चमत्कारपूर्ण नहीं थी, उसे प्रयोग में जो सफलता मिली वह भी चमत्कारपूर्ण थी। यह पंचवर्षीय योजना का ही परिणाम था कि रूस जर्मनी की प्रचण्ड समरशक्ति का मुंहतोड़ जवाब दे सका।

स्टालिन की शासन-कला का रहस्य ठोस व्यावहारिकता में है। उसका गुप्त दूत-विभाग बहुत विस्तृत और गहरा है। लैनिन के जीवन काल में कहा जाता था कि लैनिन केवल स्टालिन पर विश्वास रखता है और स्टालिन किसी पर विश्वास नहीं रखता। चाणक्य की तरह वह केवल अपनी बुद्धि पर भरोसा रखता है।

५

मैंने जो कुछ स्टालिन के बारे में लिखा है, उससे सहज ही में यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वह बहुत ही उद्धत और अहंमानी व्यक्ति होगा; परन्तु सचाई इसके बिलकुल विपरीत है। स्टालिन लैनिन के शिष्य के रूप में सार्वजनिक जीवन में प्रविष्ट हुआ था। जब तक लैनिन जीवित रहा तब तक स्टालिन उसका शिष्य बना रहा और आज भी, जब कि उसकी अपनी मान-मर्यादा की बराबरी करने की हिम्मत रूस भर में किसी में नहीं है, वह लैनिन का शिष्य बना हुआ है। वह जो कुछ करता है लैनिन के नाम पर। लैनिन ने जिस प्रकार कार्ल मार्क्स को अमर बना दिया, स्टालिन उसी प्रकार लैनिन को अमर बनाने का यत्न कर रहा है। वह रूस का गुरु बनकर भी लैनिन का शिष्य बने रहने में अपनी प्रतिष्ठा समझता है। कहते हैं कि आजकल के रूसी ईश्वर को नहीं मानते। मेरा विचार दूसरा ही है। मेरा विचार है कि वे कट्टर से कट्टर मौलवी, पादरी या पण्डित से कम ईश्वरभक्त नहीं हैं; भेद केवल इतना है कि उनके ईश्वर का नाम लैनिन है। स्टालिन जो कुछ करता है लैनिन के नाम पर। यह बात जहां उसकी नम्रता और गुरुभक्ति को सूचित करती है, वहां उसकी व्यवहार-निपुणता की भी सूचना देती है।

६

ये हैं कुछ विशेषतायें जिनसे स्टालिन 'स्टालिन' बना है। योरोप की अपनी वस्तु—निर्दयता को छोड़कर स्टालिन की अन्य सब विशेषताओं का यदि भारतवर्ष में कहीं आभास देखना हो तो सरदार वल्लभभाई पटेल में देखा जा सकता है। स्वतन्त्र भारत को प्रारम्भ के इस संकटकाल में ऐसे फौलादी व्यावहारिक नेता की बहुत आवश्यकता है।

धुंधलका

[श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क']

क्या छिपा है आज मन में ?

रात के पिछले प्रहर-सा छा रहा है कुछ अंधेरा,
चाहता हूं—खिल उठे नभ और हो जाए सवेरा !

यह अनोखा-सा धुंधलका, दृष्टि इसके पार तो हो,
जो छिपी अभिलाष इसमें वह तनिक साकार तो हो !

यह सुलगती-सी चिंगारी जल उठे बन एक ज्वाला
और हो जाए हृदय के गुह्य कोनों में उजाला !

तनिक इस आलोक में भर आंख देखूं, चल पड़ूं फिर,
लाख सब आए घटाएं हृदय के आकाश में घिर !

मैं न डोलूं, मैं न कांपूं, मैं न निज उद्देश्य छोड़ूं,
ध्येय से अपने कभी मैं एक पल भी मुंह न मोड़ूं !
जान भी पाऊं कि आखिर क्या छिपा है आज मन में !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छलना

'अंचल'

नींद में भीगा हुआ वह स्वर तुम्हारा — "द्वार खोलो !
तिमिर-स्नाता रात, मैं पथ पर खड़ा हूं, द्वार खोलो !"

कौन हो तुम, कौन मैं अब तक नहीं पहचान पाई,
गंध शीतल कामिनी की ले सजल बातास आई,
चौंक कर जागी, खड़ी हूं खोल वातायन उनींदी,
सोचती — किस पूर्व-परिचित की हृदय-ध्वनि दी सुनाई;

कह रही थी मूक मानस की प्रणति — सौ बार बोलो !
नींद में डूबा हुआ वह स्वर तुम्हारा — "द्वार खोलो !"

कह रहे थे बात यौवन की तृषातुर अंग मेरे,
—पीत-केशर-सरसिजों से सुरभिवाही अंग मेरे—
जल रहा था कक्ष का नवदीप मेरे पुण्य फल-सा,
थी जिसे उन्मत्त शलभों की पिपासित पांत घेरे;
याद आया — मैं किसी की बाहुओं पर गाल रख कर
मुग्ध सोई थी कभी जब उल्लसित थे मेघ झर झर !

एक जाग्रत स्वप्न-सी पथ पर खड़ी हूं द्वार खोले,
आज इन्द्रियातीत वह सुख, तुम न आये — तुम न बोले;
काल के तूणीर से आया प्रखर यह तीर सुधि का,
बन गई मेरी तृषा ही क्या तुम्हारे बोल भोले ?

मुक्त नील अनन्त के यात्री सितारो, आज रोलो !
नींद में भीगा हुआ वह स्वर तुम्हारा — "द्वार खोलो !"

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक साहित्यिक 'इण्टरव्यू'

श्री सुदर्शन

(श्री पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश')

★ हमारे देश में केवल राजनैतिक नेताओं के 'इण्टरव्यू' ही छापने की परिपाटी है; परन्तु हम समझते हैं कि देश के लेखक और कवि राजनैतिक नेताओं से किसी प्रकार भी कम महत्वशाली नहीं हैं, अतः पत्र-पत्रिकाओं में "इण्टरव्यू" के रूप में उनके जीवन पर भी प्रकाश पड़ता रहना चाहिये।

★ श्री सुदर्शन जी हिंदी और उर्दू के भारत-विख्यात आदर्शवादी कहानीकार हैं। आजकल वे बम्बई में फिल्मों के लिये कहानी, सवाद और गीत लिखने का कार्य कर रहे हैं और इस दिशा में अच्छी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। प्रस्तुत 'इण्टरव्यू' में श्री 'कमलेश' जी ने उनके जीवन के उतार-चढ़ावों, विचारों और आदर्शों का अंतरंग परिचय उन्हीं के मुंह से, उन्हीं के लबो-लहजे और भाषा में दिया है।

बम्बई में जीवन अत्यंत व्यस्त है। आप किसी आदमी से मिलना चाहें और जो समय निश्चित हुआ है, उस पर न पहुंचें तो समझ लीजिए कि आपका काम नहीं बन सकता। एक भी ट्रेन छूट गई तो कम से कम आध घण्टे का फर्क पड़ जाता है। मेरी घड़ी ने जब मुझे धोखा दे दिया और मैं ८ बजे चरनी रोड स्टेशन पर पहुंचा तो मन में सोचा कि अब सुदर्शन जी से भेंट न होगी; क्योंकि मैंने ८ बजे उनके घर पहुंचने का निश्चय किया था। लेकिन घर से निकल पड़ा था, इसलिए गाड़ी पकड़ कर पौने नौ बजे माहीम में सुदर्शन जी के निवास-स्थान 'सिलबरटन' जा पहुंचा।

तीन चार मिनट तक मैं चुपचाप बैठा रहा। मन में देर से आने के कारण लज्जित था। घड़ी का कारण बता कर जब मैं सफाई देने लगा तो वे बोले—"आप का इन्तजार कर रहा था। सुबह जाना तो कहीं न था, फिर भी दिए हुए समय पर मुलाकात न होने से मुझे भी बेचैनी थी। लेकिन अब आप आ ही गए हैं; कोई बात नहीं है। बम्बई में ऐसा होना असंभव भी नहीं है।"

यह कहकर उन्होंने अन्य साहित्यिकों से हुई मेरी मुलाकातों के सम्बन्ध में पूछा। मैंने सब के नाम बताये। एक तो वैसे ही मुझे देर हो गई थी, दूसरे इधर-उधर की बातों में हम बहे जा रहे थे। यह देखकर मैंने विचार किया कि अब अपना काम शुरू करना चाहिए इस विचार का आना था कि मैंने उनसे पूछा—"आपका बाल्यकाल किन परिस्थितियों में बीता और उन्होंने आपके कलाकार के निर्माण में कहां तक सहायता पहुंचाई?"

सुदर्शन जी बिना झिझक और संकोच के कहने लगे—"बचपन मेरा गरीबी में बीता है। पिता जी मामूली आदमी थे। पढ़ाई के दौरान में मैं ट्यूशनें करके काम चलाता था।" इतना कहकर वे कुछ रुककर बोले—"मैं एक घटना अपने जीवन के सम्बन्ध में सुनाता हूं; उससे आप को मेरी परिस्थिति का ज्ञान हो जायगा।"

मेरी जिज्ञासा-सूचक मुद्रा देखकर उन्होंने कहना आरम्भ किया—"मैं छटे दर्जे में था। उस समय आर्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमार सभा का सेक्रेटरी था। उत्साह की कमी न थी। खूब काम करता था। बड़ी आर्य समाज में भी जाता था। उसके सेक्रेटरी एक मुन्शी थे। मैं अदालती आदमिओं को बेईमान समझता था। एक दिन उनकी बैठक में मैंने उनके सम्बन्ध में ऐसी बातें कह दीं जो ठीक तो थीं; पर कहनी न चाहिए थीं। उस आदमी को मेरी बात से बड़ा दुःख हुआ और वह मेरे घर आकर बोला, 'तुम कहते हो मैं बेईमान हूं। आखिर कोई न कोई काम करना ही होता है। अपने बीवी-बच्चों का पेट तो भरना है; फिर अदालत की नौकरी क्यों बुरी है?' उसकी इस बात को सुन कर मैंने कहा, 'धर्म के मामले में तो बीवी-बच्चों का खयाल नहीं किया जा सकता, उस समय तो सब कुछ कुर्बान कर देना पड़ता है।' मेरा यह उत्तर सुनकर वह चला गया। उस समय मैं यह भूल गया कि मुझसे उम्र में बड़ा एक आदमी मेरे घर आया है और मुझे उसका सत्कार करना है। यहां तक कि मैंने उसे बैठने तक के लिए भी नहीं कहा।

"उसी समय की बात है। उर्दू का एक अखबार था—'मार्त्तण्ड'। सम्पादक थे शिवरत्तलाल वर्मन। वह अखबार उस सेक्रेटरी के पास आता था। डाकखाने में उस के भीतर मैंने उसका नाम देखा तो मुझे भी लगा कि मेरा भी नाम छपना चाहिए। मैंने बड़ी मुश्किल से उसके लिए आठ आने जुटा कर भेजे। अखबार तो आया, पर उसमें नाम न था। यह तब न जानता था कि ग्राहकों की लिस्ट जब तैयार होती है तभी नाम छपता है। बड़ा क्रोध आया। और वह तब तक आता रहा जब तक मेरा नाम भी उसका ग्राहक सूची में न आ गया। जब अपना नाम छपा हुआ देखा तो मैं गर्व से फूल गया और मैं उसको दिखाने गया। उसने कहा—'अरे, यह क्या तारीफ की बात है। इसमें तो कोई भी आठ आने वाला अपना नाम छपा सकता है। कोई अपनी चीज लिखो तब तो कुछ बात भी हो।'

"मैं चुपचाप चला आया। आकर 'केसर की क्यारी' के नाम से कुछ चुटकले संग्रह करके 'मार्त्तण्ड' को भेज दिये। वे छप भी गए और उनके साथ मेरा नाम भी था। इसे जब मैंने उस सेक्रेटरी को दिखाया तो वह बोला—'इसमें तुम्हारा क्या है? दूसरों की चीज तुमने संग्रह कर दी है। अपनी अक्ल तो इसमें है ही नहीं।' इसके बाद मैंने 'कुछ दिलचस्प कहानियां और उनसे सबक' शीर्षक से एक लेख लिखा। इसको भी उसने पसंद न किया। तब आखिरी बार मैंने 'कुछ करलो' नामक लेख लिखा। इस लेख में जीवन में कुछ काम कर जाने की प्रेरणा थी। इस लेख को 'इन्तिखाब लाजवाब' में छपाया था तब मैं दस या साढ़े दस वर्ष का था। इसका मुझे १॥) पारिश्रमिक भी मिला। यह लेख इतना अच्छा था कि मेरे हेडमास्टर ने मैट्रिक के लड़कों के बीच मुझे बुलाकर इसे पढ़ा था और पढ़ते-पढ़ते बुरी तरह रोये थे। उस समय मुझे लगा कि मेरे भीतर वह शक्ति है कि मैं किसी को रुला दूं और किसी को हंसा दूं। मुझे अपनी कलम पर भरोसा हो गया। इस लेख को जब मैंने उसे दिखाया तो वह मान गया और उसने कहा—'अब मैं तुमको लेखक मान सकता हूं'।"

"तब तो आप की साहित्य-सृजन की प्रेरणा का मूल स्रोत इन्हीं सज्जन को कहा जा सकता है," मैंने कहा।

"अवश्य" उन्होंने कहा, "उसके कारण ही मैं लेखक बना। लेकिन आरम्भ से ही मैंने इस बात का ध्यान रखा है कि मैं ऐसी कोई चीज न लिखूं, जिससे कि लोगों की रुचि विकृत हो। उच्च विचार जागृत हों और लोगों को प्रेरणा मिले, यही मेरा लक्ष्य है। बुरी चीज का वर्णन कभी नहीं करना चाहिए, क्योंकि बुराई अपनी ओर खींचती है।'

जब वे यह कह रहे थे तब मैंने उनसे पूछा, "ऐसे विश्वास के साथ तो आप को आरम्भ में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा होगा; क्योंकि एक गरीब स्वावलम्बी लेखक के लिए ऐसा आदर्श बड़ा कष्टकर होता है।"

इस प्रश्न को सुनकर उनकी आंखें गर्व से चमक उठीं और वे बोले, "मैंने गरीबी को कभी लानत नहीं समझा। उसके ऊपर अपने आदर्श को महत्ता दी है। इसके लिए अपनी नौकरी छोड़ने में भी कभी आनाकानी नहीं की। जब मैं आर्यसमाज के उपदेशक के पद पर काम करता था, तब एक वकील के यहां खाना खाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया था। उसने मुझे लक्ष्य कर उपदेशकों की बुराई की। मैंने तुर्की बतुर्की वकीलों की बुराई की। उसने नौकरी के सम्बन्ध में धमकी दी। मैंने फौरन इस्तीफा पेश कर दिया। महात्मा हंसराज ने जब सुना तो मुझे बुलाया। उन दिनों मेरे व्याख्यानों की बड़ी धाक रहती थी। उन्होंने १००) मासिक पर मुझे 'आर्य गजट' का सम्पादक बना दिया। तब में १८ वर्ष का था। मैं सबसे छोटी उम्र में सम्पादक बन गया था। मुझे तो अपने आदर्श के लिए भूखों भी मरना पड़ा है। एक बार मैंने तीन दिन का फाका किया और चौथे दिन स्टेशन से एक आदमी का ट्रंक उठाकर पहुंचाया, तब दो आने कमाए और उनसे पेट भरा। यह तब की बात है, जब मैं काफी नाम कमा चुका था और प्रतिष्ठा भी पा चुका था।"

सुदर्शन जी के ये अनुभव सुनकर और उनका स्वाभिमान देखकर मुझे बड़ा आनंद हुआ। पर मैं चाहता न था कि वे अधिक दर्द की बात कहें, इसलिए मैंने उनसे कहा, "कृपाकर यह बताइये कि किन-किन देशी-विदेशी लेखकों का आप के ऊपर विशेष प्रभाव पड़ा है?"

उन्होंने कहा, "मेरे ऊपर सबसे अधिक प्रभाव मोपांसा का पड़ा है। इब्सन के ड्रामे भी मुझे प्रिय रहे हैं और मैटरलिंक को भी मैंने पढ़ा है। एक और लेखक है जिसका मैं भक्त हूं। वह है सेनकाई विस। यह पोलिश है। इसकी Quad Vadis मास्टर पीस है। रूसी लेखक टाल्स्टाय की कला भी मुझे अच्छी लगती है।

"देशी लेखकों में प्रेमचन्द्र का प्रभाव सबसे अधिक मुझ पर पड़ा है। उनकी कहानियां पढ़ कर मुझे कहानी लिखने का शौक हुआ। उनसे कोई सबक नहीं लिया; पर हमेशा उन्हें गुरु माना। रामायण और महाभारत को भी मैंने पढ़ा है। भाषा की दृष्टि से तुलसीदास का महत्व मानता हूं और उपनिषदों को इसलिए पढ़ता हूं कि उनमें साहित्यिक खूबियां दिखाई देती हैं। यही हाल बाइबिल का भी है। उसका मैंने गहरा अध्ययन किया है। उसमें भी साहित्यिक खूबियां बहुत हैं। मैंने १९१४ में बाइबिल का एक इम्तहान भी पास किया था, जिसमें मैं भारत भर में सैकिण्ड रहा था। अपनी 'झरोखे' नामक पुस्तक में बाइबिल की भाषा (Biblical Language) में ही लिख रहा हूं।"

मैंने आगे उनसे प्रश्न किया कि आपको किस कृति को लिखकर सर्वाधिक सन्तोष हुआ है?

उनका उत्तर था—"किसी कृति से मुझे संतोष नहीं हुआ। मेरी सर्वश्रेष्ठ कृति अभी आने को है।"

"सृजन के पूर्व, सृजन के बाद आपकी मनःस्थिति क्या रहती है?" मैंने पूछा।

"Urge आती है," उन्होंने बताया, "और परेशानी बढ़ती है। कुछ खटपट सी मचती है। क्या चीज है, इसे जानने की बेचैनी होती है। कुछ अच्छा नहीं लगता। लिखते समय प्रसन्नता होती है। लिखने के आठ-दस दिन बाद असन्तोष होता है।

"मेरा लिखने का समय दो-ढाई बजे दिन का होता है। अकसर घर से बाहर चला जाता हूं। Urge आते ही एक दम लिख डालता हूं। एक बार मैं बनारस में होटल में ठहरा था। सुबह के आठ बजे थे। नहाने जा रहा था। सामने सड़क पर एक तांगे और साइकिल में टक्कर हो गई। एक दम प्लाट सूझा। मैं नहाने न गया। बीच से लौट आया। कमरा बन्द कर लिया। तब ९-९॥ बजे थे। लिखना शुरू किया और शाम के ५ बजे तक लिखता रहा। यह कहानी 'घोर पाप' थी। सन् १९२५ की बात है।

"कहानी का शुरू करना मुश्किल होता है; मुश्किल क्या एक समस्या होती है, कैसे शुरू किया जाय? शुरू होने पर कहानी अपने आप चलती रहती है। खत्म होना उसका काम है। प्लाट जो सोचता हूं, बीच में ही बदल जाता है। कई प्लाट वर्षों से दिमाग में हैं, पर उनके लिए Urge नहीं आई। फिल्मस्टोरी छोड़कर मैंने कोई कहानी preplanned (पूर्व-संयोजित) नहीं लिखी। कहानी में थीम शुरू की रहती है, केवल उसका रूप बदल जाता है।"

उसके बाद मैंने एक ऐसा प्रश्न उनसे किया, जिसे एक प्रकार से नहीं करना चाहिए था, परन्तु मैंने कई व्यक्तियों से उस सम्बन्ध में सुना था और मैं चाहता था कि उसका औचित्य-अनौचित्य मुझे मालूम हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाय। इसलिये साहस करके वह प्रश्न मैंने पूछ ही लिया। प्रश्न था—"कहते हैं कि आप को बनाने में आप की पत्नी का बड़ा हाथ है। यह कहां तक ठीक है?"

"यह सही है," उन्होंने कहा, "मेरे बनने में उसका ही पूरा-पूरा हाथ है। वह उस जमाने की पढ़ी-लिखी औरत है, जब पंजाब में तालीम कम थी। वह अत्यन्त कष्ट-सहिष्णु है। अपनी जरूरतों के लिए उसने कभी मुझसे नहीं कहा। मैंने शादी होने के बारह साल तक उसको कोई साड़ी खरीद कर नहीं दी। तेरहवें वर्ष मैं उसे साड़ी दे पाया। परदे के सवाल पर जब मैं घर से निकाला गया, तब मैंने एक भी पैसा घर से नहीं लिया। उस समय उसने मुझसे कभी कोई ऐसी मांग न की जो मुझे तकलीफ पहुंचती। एक हजार के जेवर की अपेक्षा सदा उसकी मांग यही रहती थी कि मेरी कोई किताब छपकर आए। उसने मुझे सब प्रकार की सुविधा दी। घर के कामकाज से तो बिल्कुल मुक्ति दे दी। हाट-बाजार का काम, दर्जी से कपड़े सिलाने का काम, घर के अन्य काम—गरज यह कि सभी कामों से उसने मुझे मुक्त कर दिया। मैं अक्सर सवेरे जाकर लिखता था तो वह स्वयं भी जाग जाती थी और चरखा ले कर बैठ जाती थी। सर्दी में अंगीठी जला देती थी। मेरी हर चीज की प्रथम श्रोता भी वही होती थी। 'ई' और 'ष' की गलती मुझ से बराबर होती थी। इसे उसने ही ठीक किया और सत्य तो यह है कि मैंने हिन्दी इसलिए सीखी कि मैं पत्नी को चिट्ठी लिख सकूं। उसने बराबर मुझे प्रोत्साहन दिया। यदि मेरी चीजों की कटु आलोचना हुई, तो उसने मुझसे यही कहा—तुम अपनी पसन्द की चीज लिखो, लोग यदि उसे नहीं समझते तो चिन्ता नहीं है।"

जब वे ये सब बातें कह रहे थे तब मैं उस तपस्विनी के लिए मन ही-मन श्रद्धा भाव से प्रणाम कर रहा था, जिसने हिन्दी के इस यशस्वी कहानीकार का निर्माण किया। मैं सब से अधिक आश्चर्याभिभूत हुआ उसकी उस उत्साहप्रद वाणी से जिसमें उसने कलाकार को अपनी पसन्द की चीज लिखने के लिए प्रोत्साहित किया।

"क्या साहित्य-साधना से आपका जी भी कभी ऊबा है? यदि हां, तो उसके कारण क्या रहे हैं?" मैंने अगला प्रश्न पूछा।

उन्होंने बताया, "मेरा जी दूसरे कामों से तो ऊबा है, पर साहित्य-साधना से कभी नहीं ऊबा। यहां तक कि यदि कहानी लिखने की urge हुई है, तो मैंने ऐसी-ऐसी आवश्यक फिल्म की कहानियें छोड़ कर उस कहानी को पूरा किया है, जिनसे मुझे १०-१० हजार रुपये मिलने की उम्मीद थी।"

"तो क्या आपकी दृष्टि से साहित्योपजीवी होकर जिया जा सकता है?"

"यदि लेखक जरूरियात ज्यादा न बढ़ाये तो जी सकता है और वैसे भी अब तो वक्त आगया है जब हिन्दी के लेखक की जीविका लेखन से चल सकती है।"

सुदर्शन जी भी प्रेमचन्द जी की भांति उर्दू से हिन्दी में आये हैं, यह सोचकर मैंने जानना चाहा कि वे क्यों उर्दू से हिन्दी में आये और पूछा—"आप उर्दू के लेखक थे। वहां आपका नाम भी था; फिर क्या कारण है कि आप हिन्दी में आ गए?"

उन्होंने कहा, "बात यह है कि हिन्दी के मासिक अच्छे थे। यह सोचकर मन ललचाया कि इनमें लिखो। पहले अनुवाद कराया और शुद्ध करके उसे हिन्दी-पत्रों में छपवाया। उसके बाद मैंने ही हिन्दी में लिखना शुरू कर दिया। विश्वास यह था कि आगे चलकर उर्दू लिपि न रहेगी, क्योंकि वह अवैज्ञानिक लिपि है। आर्य समाज के प्रभाव ने भी हिन्दी की ओर मेरा ध्यान मोड़ा, क्योंकि स्वामी दयानन्द ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार किया था। इस प्रकार मैं उर्दू से हिन्दी में आगया और फिर यहीं का हो रहा।"

सिनेमा में सुदर्शन जी ने गीत-संवाद लेखक के रूप में अच्छी ख्याति पाई है। 'सिकन्दर' 'पृथ्वीवल्लभ' आदि फिल्म जिन्होंने देखे हैं वे इस बात को अच्छी तरह जानते हैं। वे बहुत दिन से सिनेमा में हैं। एक बार प्रेमचन्द जी भी सिनेमा में गए थे, परन्तु वहां अधिक दिन न ठहर कर लौट आये थे। मैंने सुदर्शन जी से पूछा—"क्या कारण है कि प्रेमचन्द जी सिनेमा में न ठहर सके?"

(शेष पृष्ठ ६० पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेयसि ! ये आलोचक कहते मेरी कविता मृत हुई आज !

(डा० नगेन्द्र)

ये आलोचक चिर-अकर्मण्य,
करना छीछालेदार दूसरों की जिनका व्यवसाय !
निपट वातुलाचार्य्य !
सदा रचते विचित्र सिद्धान्त—
चिरन्तन मूल्य, सामयिक मूल्य, शास्त्रगत मूल्य,
सामाजिक, सामन्तयुगी, पूंजीवादी इत्यादि !
घसीटा गया मनोविज्ञान, मनोविश्लेषण-शास्त्र—
अपस्मार-पीड़ित लोगों का जो केवल उपचार !
झांकते कवि के चेतन-अवचेतन गह्वर गर्तों के बीच,
जहां उसकी जानी अनजानी भूलें पड़ीं हुईं अवसुप्त !
नहीं कृति का करते हैं मनन,
न करते किंचित अर्थ-विचार,
न करते उसके रस का पान !
देखते कवि के वस्त्र उतार, देखते मन की जेब टटोल,
खोलते सीमन सभी उधेड़ बिचारे कवि की, उसके पितृवंश की,
देश जाति की !
किन्तु यदि इतने पर भी
फ्रॉयड के सिद्धान्त नहीं निभ पाते,
तो झट आलोचक महाराज स्वयं अपने ही मन के रोग
रोप देते उसके अवचेतन मन पर,
जहां पर केवल उनकी पहुंच !
और वह कवि भीतर-बाहर से बिल्कुल ठीक,
सभ्य, व्यवहार-कुशल,
नहीं करता जो रंचक चूक चुका लेने में पूरी फीस
कलात्मक रंग-ढंग से !
उसे सुन हो अत्यन्त गंभीर सोचता—
क्या सचमुच ही मेरा मन है रुग्ण ?
सत्य ही क्या कुण्ठित इच्छाएं मेरी मुझे हुईं वरदान ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इधर द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद—
वर्ग-गत राजनीति का तर्क !
बिना-पैसे-वालों का पैसे-वालों से भिड़ने का शस्त्र
कूद आया कर के घन-नाद
'दास कैपीटल' की ले ढाल,
नुकीले अर्थ-शास्त्र के वाक्य-बाण !
और हिन्दी के लेखक दीन
बने सब डर कर शोषित-वर्ग—
ताकते मजदूरिन के अंग अप्सरा को दे कर के बाद;
उलझते अर्थ-शास्त्र से, राजनीति से—
अहितकर यू० ऐस० ए० की नीति
और मार्शल के हैं घातक विचार।
अरे जनता के कवि ! तुम करो प्राप्त आदर्श
रूस की राजनीति से, अर्थ-नीति से;
नहीं तो श्रीयुत रामविलास
अखाड़े में लेंगे ललकार !

शास्त्र के पण्डित और विचित्र !
खोज लाते अद्भुत सौन्दर्य्य-बोध,
वक्रोक्ति, रीति, ध्वनि, चमत्कार अर्थ के, उक्ति के शत-सहस्र !
अलङ्कारों के उलझे जाल खोल कर फैलाते प्रस्तार !
बिचारा कवि होकर हत-बुद्धि
चकित-मति, विस्मित आंखें फाड़
दुबारा पढ़ता अपना काव्य,
और कहता ये सारी बात कल्पना में भी आई नहीं।
किन्तु आलोचक जी तत्काल
डाल वात्सल्य-पूर्ण मुस्कान—
पीठ पर रख कर उसकी हाथ
बताते साधिकार — "भोले कवि,
तुम अनजान अभी अपनी गुरुता से, क्षमता से।"
नम्र कवि बरबस दांत निकाल
निरुत्तर होकर जाता बैठ—
बिचारा 'हां' कर सकता नहीं, किन्तु 'ना' भी कर सकता नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूछता मैं तुम से साह्वान,
शक्र के अनुज समीक्षक-वर्य्य !
कभी क्या तुमने कविता लिखी—
कहानी, एकांकी, नॉविल का कोई परिच्छेद,
नाटक का कोई दृश्य,
या कि अनुवाद-मात्र,
मूल-लेखक का देकर नाम, न हो अपना ही देकर सही ?
कभी क्या किया किसी से प्यार ?
मदिर नयनों में भर कर चाह भूल से कभी निहारा तुम्हें किसी तरुणी ने ?
हृदय में सहा कभी क्या दर्द ?
जवानी की आहुतियां डाल
पुण्य देश के यज्ञ में, गये कभी क्या जेल ?
मजूरों की बस्ती में घूमे हो दुपहर में नंगे पांव ?
नहीं !
फिर क्या जानो तुम क्या होती है
तीव्र प्रेरणा काव्य-सृजन की,
मधुर वेदना काव्य-प्रसव की ?—
जिसे कह नित्य 'क्रिएटिव अर्ज'
दूसरों को बहकाते रहे, समीक्षाचार्य्य !

*　　*　　*　　*

न प्रिय, तुम होना तनिक उदास,
पड़ेगा मुझ पर नहीं प्रभाव !
जानता हूं इनके सारे रहस्य,
हूं सीख गया सारे हथकण्ठे,
आखिर आठ बरस से मेरा भी न अन्य व्यवसाय !

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब के रक्त-प्रलय सम्बन्धी
एक करुण मनोवैज्ञानिक कहानी

अभिभाविका

(श्री रामचन्द्र तिवारी)

नन्दलाल के दिल की धड़कन कम हो गई। उसका हृदय डगमगाने लगा। तन पर पसीना आ गया। घिग्घी बंध गई। वह थर्राया; उसकी आंख खुल गई। भय से त्रस्त उसने सिर अपने हाथ पर से तनिक-सा उठा कर अन्धकार में देखने की चेष्टा की।

पर दूसरे ही क्षण उसके हृदय की गति तीव्र हो गई। उसके कान में गूंज रही थी वह भीषण फुंकार, मानव का वह दानवी चीत्कार, जिसका अर्थ होता था मौत! मौत! मौत!!! उसके कानों के पर्दे से टकराया 'अल्लाहो अकबर!' उसके प्राण तड़फड़ा उठे। 'अल्लाहो अकबर!' मौत चारों ओर से फुंकारती हुई, दावानल की भांति निश्चित-निर्मम गति से उसकी ओर बढ़ी आ रही है; वह निरीह हिरण शावक-सा उसके घेरे में फंस गया है। मौत! भयकारी डरावनी मौत! अब वह रोग की नली से रक्त चूसती नहीं है, हथियारों से उसे बिखेर कर चाटती है। मौत! 'अल्लाहो अकबर!'

उसने हाथ फैलाया। निकट के वृक्ष के तने से उसका कर स्पर्श कर गया। हे भगवान्! उसने संतोष की सांस ली। कुछ तो सहारा है!

पर उसके घर में यह वृक्ष कहां से आया! वह अपने घर में नहीं है। उसने आंखें फाड़ कर चारों ओर देखा। निकट कुछ श्यामल पिण्डों की उपस्थिति जान पड़ी। ये पिण्ड अस्पष्ट मानव शरीर थे जो वहां, उस बाग में आड़े तिरछे पड़े हुये थे। एक ओर से स्वर आ रहा था—खर्रर्र्र! दूसरी ओर से खर र र रड़!

उसने सांस लिया। हरी हरी घास की आप मस्तिष्क में भर गई। निकट से ही बनस्पति सड़ने की बू आ रही थी। वह स्वप्न देख रहा था। नहीं, यहां आक्रमण का भय नहीं है, फिर भी!

थर थर कांपता नन्दलाल आश्वस्त हुआ। उसने अपने हृदय पर हाथ रखा। भय था कि वह कहीं थक कर विश्राम न लेने लगे। पिछले पन्द्रह दिनों में उसे पन्द्रह वर्ष के बराबर कार्य करना पड़ा था।

वह सरका संत्रस्त — इस प्रकार कि आहट न हो। उसे अपने कानों पर विश्वास न हुआ। क्या वह मौत की आवाज सचमुच भ्रम मात्र है? क्या वह मौत का नारा उसके भीतर से उठ रहा है? उसके पीछे जामुन का तना है। उस ओर से आक्रमण का भय नहीं है। उसने फिर डरते डरते नयन विस्फारित कर अपने को निश्चिन्त कर लेना चाहा। उसके पास कोई हथियार भी तो नहीं है। वह अपनी रक्षा कैसे करेगा? मौत के वाहनों से कैसे लड़ेगा? वह अपनी रक्षा भले ही न कर पाये, पर वह उन्हें यह अवश्य जता देना चाहता है कि मिट्टी जब परम शक्ति के एक कण को भी अपने में फंसा पाती है तो वह उसे सरलता से तजती नहीं; शरीर प्राणों को त्यागने के लिये सहज ही उद्यत नहीं होता। वह लड़ेगा, युद्ध करेगा। तभी तरु-पात वायु के झोंकों से मरमरा उठे। खुले घाव के स्पर्श से जिस प्रकार की बेधक पीड़ा होती है, उसी प्रकार प्राणों को थर्राने वाली वेदना उसे अनुभव हुई। पुनः हृदय की गति बढ़ी, रक्त हड़बड़ा कर जमने को उद्यत हुआ। उसके हाथों ने जामुन को पकड़ने का प्रयत्न किया।

यदि वह इस वृक्ष के ऊपर चढ़ जाता है तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"...वह नर-पिशाचों के हाथों अपने पुत्र और पत्नी की हत्या होती देख चुका था। वह चिल्लाया — 'वे' आगये ! वे आगये ! बचाओ मुझे !"
"कौन ?" और उस नारी ने अन्धकार में उस भयभीत मनुष्य को अपने अंक में छिपा लिया..."

उसे कोई भय नहीं है। उसने कानों को तेज करके सुना। लगा कि दूर से, बहुत दूर से वह सांघातिक स्वर सुनाई दे रहा है। वे आ रहे हैं, वे आ रहे हैं। मौत की लम्बी भुजायें अपनी प्रज्ज्वालक उंगलियां पसार कर उसकी ओर बढ़ रही हैं !

नहीं ! और वह घबरा गया। पेड़ पर चढ़ने का समय नहीं है। निकट किसी जंतु ने भूमि कुरेदी। किसी व्यक्ति ने करवट ली।

उसके रोम खड़े हो गये। वे आ गये, वे आ गये। उसे लगा कि वे उसके भीतर से निकले आ रहे हैं। वे उसे छोड़ेंगे नहीं। उसे स्मरण नहीं कि अभी छः घण्टे पहिले उसने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा कर पूरे काफिले के साथ घोष किया था — 'आजाद हिन्दुस्तान ज़िन्दाबाद ! भारतमाता की जय ! भारतमाता की जय !'

वह अब स्वतन्त्र भूमि पर हैं; अपनी भूमि पर है जहां उसकी अपनी अस्थिमज्जा के, अपनी संस्कृति के सैनिक उसकी रक्षा के लिये अपनी निद्रा का बलिदान कर रहे हैं। वह भूल गया कि वह शरणार्थी-शिविर में है जहां उसे हानि पहुंचाने का स्वप्न भी कोई आततायी नहीं देख सकता। उसे ध्यान नहीं रहा कि उसके चारों ओर नर-नारी बालक आज पन्द्रह दिन की पैदल यात्रा के पश्चात् प्रथम बार निश्चिंतता से सो रहे हैं, और उनकी निद्रा की सांस से वह बाग गूंज रहा है। वह भूल गया कि आज प्रथम बार मार्ग में उसके नीचे एक टाट का टुकड़ा बिछा हुआ है।

वह अपनी रक्षा अवश्य करेगा। वह उठा। जी में आया कि तेजी से भागे। पर उसे लगा कि भूमि धमकती है। घास खरखराती है। वे लोग सुन लेंगे। वे उसके पीछे हैं। उन्होंने उसकी पत्नी को मार डाला है, उसके पुत्र के रक्त से अपने हाथ रंग लिये है। दीवार के पीछे से पत्नी की हृदयविदारक चीखें उसने सुनी हैं, अपने पुत्र को—पंचवर्षीय पुत्र को—काठखण्ड की भांति ठेले में लादा जाता देखा है। उसका करुण-क्रन्दन उसने सुना है। उसकी सहायतार्थ पुकारा पर उसने नयन मूंद लिये हैं, कानों में उंगली दे ली है और वह छत पर भाग कर मकान के पीछे से नल के मार्ग से नीचे उतर आया है। वह भाग रहा था, अपने प्राणों की रक्षार्थ। मौत के चंगुल से दूर, उसके फंदे से परे। आज वह सुरक्षित है, पर इस सुरक्षा का ध्यान इस समय उसे नहीं है।

उसके चलने से आहट होती है। वे उसका पीछा करेंगे। उसके मास्तिष्क में रक्त तेजी से धमक रहा था। उसे दौड़ना चाहिये ! नहीं !

उसने संभाल संभाल कर डग रखना प्रारम्भ किया। वह अत्यन्त भयभीत था। उसके प्राण वायु में पत्ते की भांति कांप रहे थे। तृण उसके चरणों के नीचे चरमराते थे तो लगता था कि बन्दूक दगी हो और वह पैर से सिर तक थर्रा उठता था। वह भाग रहा था।

यकायक निकट ही किसी शरणार्थी का सामान खिसका। नन्दलाल को लगा कि सैंकड़ों चरण उसकी ओर अग्रसर हो रहे हैं, वे भी उसी की भांति संभल संभल कर आ रहे हैं। उन्हें उसे पकड़ना जो है। उसे लगा— अब लिया, अब लिया। उसने अपने शरीर को सिकोड़ कर लघुतम कर लेने का प्रयत्न किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृक्ष से एक पत्ता उसकी नंगी भुजा को स्पर्श करता हुआ नीचे गिरा। उसे अनुभव हुआ कि मौत की उंगली का नख उसकी बांह को खरोंच गया है। बस, समाप्त हो गया खेल। वह उसकी पकड़ में आ गया। अब वह बचेगा नहीं; फिर भी एक बार, एक अंतिम प्रयत्न!

वह तेजी से आगे बढ़ा। उसका पैर नीचे किसी कोमल वस्तु से अटका। वह चीखा, पीछे हटा, कांपा और फिर सामने गिर पड़ा।

नीचे से चीख की आवाज आई। कोई घबरा कर उठ बैठा। "कौन?" एक-नारी-कण्ठ ने पूछा।

"वे आगये, वे आगये, बचाओ मुझे!"

"कौन?" और उस नारी ने तब अन्धकार में उस भयभीत मनुष्य को अपने अंक में छिपा लिया; पाया कि वह थर थर कांप रहा है। वह स्वयं भी कांप रही थी।

"क्या है?"

"वे······।"

"डरो मत।" नारी समझी कि कोई किशोर है जो बुरी भांति स्वप्न में भयभीत होकर भाग आया है।

"डरो नहीं, यहां भय नहीं है, बच्चे!" उसने उसे और भी अपनी गोद में समेट लिया। करुणा उमड़ पड़ी। बोली, "अब भय नहीं है, हम लोग सुरक्षित हैं, हां, हम—।"

उसने प्रेमपूर्वक सांत्वना प्रदान करने के लिये उसके तन पर हाथ फेरना प्रारम्भ किया। उसके मुख का स्पर्श किया। उसके ललाट का स्पर्श किया। पाया कि वह पुरुष है, पूर्ण व्यस्क है। उसके जी में आई कि वह उसे एक ओर धक्का दे दे। वह कोई मक्कार और अनाचारी है! पर उसने पाया कि उसका शरीर स्वस्थ नहीं हुआ है। उस पर पसीना है। वह शिशु की भांति उसकी गोद में छिपता जा रहा है, जैसे कि वह रक्षा का दुर्ग हो। यह वयस्क इतना भयभीत!

वह विचार में पड़ गई। निस्सन्देह इसकी विपत्ति बहुत गहरी होगी, तभी तो इस सुरक्षा के भीतर भी यह स्मृतिमात्र से इस प्रकार आतंकित है। उसकी करुणा और भी प्रबल हो गई। वह नन्दलाल पर झुक गई। उसके मस्तक पर हाथ फेरते हुए कहा—"डरो मत, हम लोग सुरक्षित हैं। अब हमें कुछ भय नहीं है।"

"उन्होंने मुझे पकड़ ही लिया था, हे राम!"

"वे लोग यहां नहीं हैं। डरो मत।"

नन्दलाल के मुखसे एक गहरी सांस निकली। नारी ने उसके ललाट पर हाथ फेरा।

शरणार्थी-शिविर का वातावरण निद्रा के स्वर से कांप रहा था। कभी कभी कुत्तों के भौंकने का स्वर सुनाई दे जाता था। कोई बालक चीख उठता था। कोई वृद्ध खांस उठता था। और इस अव्यवस्थित शरणार्थी शिविर से बाहिर वन में सियारों का शब्द अपनी चिरपद्धति के अनुसार उठ रहा था।

"तुम सो जाओ।"

"गोरा की मां!"

नारी चुप रही। कौन है गोरा? कौन है उसकी मां? इसकी पत्नी है, भाभी है, पड़ोसिन है, कौन है?"

(शेष पृष्ठ ५९ पर)

गजल

(श्री 'शेष')

रूप हृदय से देखते—आत्म-विभोर देखते!
काश, गगन के चांद को हम भी चकोर देखते!

मन को हैं जगमगा रही इच्छा की ऊष्म-रश्मियां,
तुम भी कभी उदार हो प्राण की ओर देखते!

सान्ध्य-क्षितिज की लालिमा स्वप्न को रँग सकी कहां?
बीत गये हैं युग यहां पृथ्वी का छोर देखते!

सिन्धु में जल-तरंग है, एक सरस उमंग है,
तुम भी हृदय में पैठ कर मन की हिलोर देखते!

रूप तुम्हें निहारता, रूप तुम्हें पुकारता;
प्रेम के रंग में कभी 'अहं' को बोर देखते!

जलता है स्नेह किस तरह, छलता है स्वप्न किस तरह—
प्राण, किसी की राह में दीप अंजोर देखते!

गान विरह के हैं मधुर, किन्तु मिलन की आस में—
काश, विरह-निशीथ की स्वर्ण-सी भोर देखते!

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अखबारी कागज़

(श्री आनन्द विद्यालङ्कार)

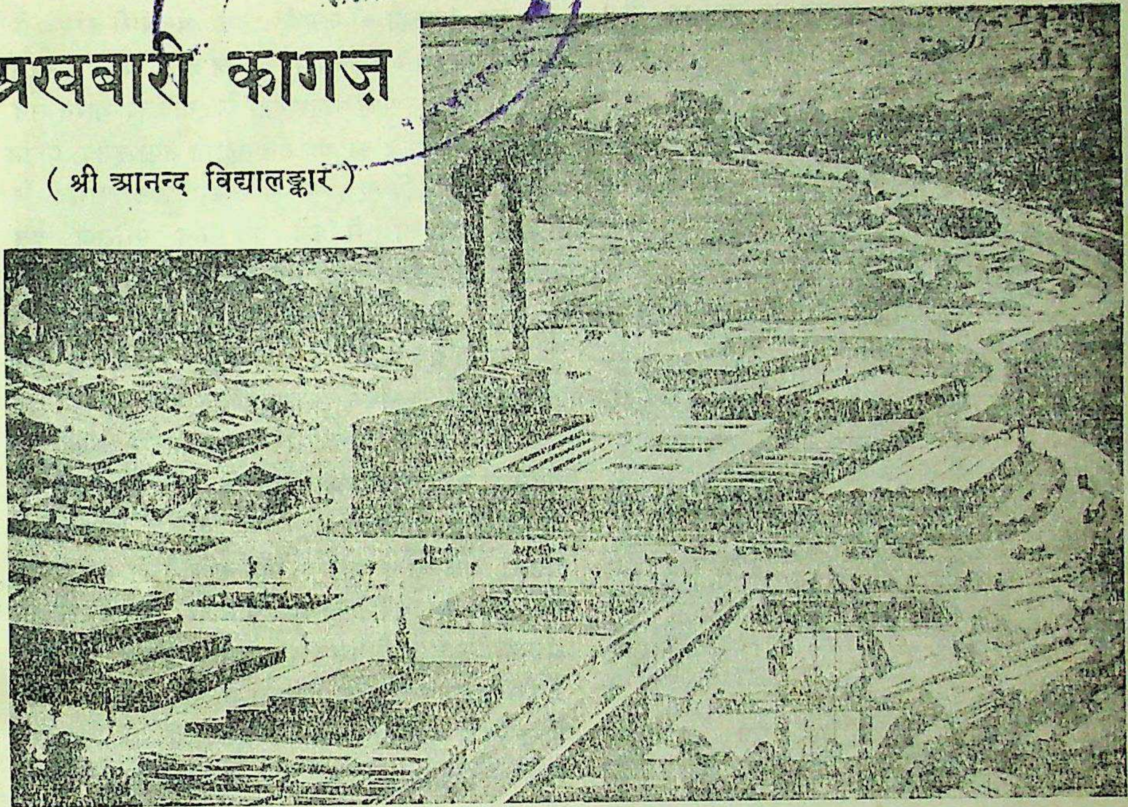

आज के युग का पढ़ा-लिखा मनुष्य बिना भोजन के तो रह सकता है, परन्तु बिना अखबार के नहीं — इतना महत्वपूर्ण स्थान ले लिया है अखबार ने हमारे जीवन में! क्या आपने कभी एक क्षण के लिये भी यह सोचा कि जिसकी पीठ पर चढ़ कर दुनिया भर के सुख दुःख के समाचार आप तक पहुंच जाते हैं — जिसको आप तक समाचार पहुंचाने से पूर्व न जाने कितनी कुटाई-पिटाई और दैत्याकार रौटरी के मुंह में से निकलना पड़ता है, उस विचारे कागज की — अखबारी कागज की क्या कहानी है?

बहुत कम लोग यह जानते हैं कि सामान्य कागज से अखबारी कागज सर्वथा भिन्न है। जिनका शुद्ध रूप से अखबारी दुनिया और प्रेसों से सम्बन्ध है वे इसके महत्व को बखूबी समझते हैं। यह कागज कितना अधिक मूल्यवान व उपयोगी है, इसका अनुमान आप इससे लगा सकते हैं कि संसार में प्रति वर्ष लाखों टन अखबारी कागज तैयार किया जाता है और उसके निर्माण में करोड़ों रुपया व्यय किया गया और किया जा रहा है। सामान्य कागज की अपेक्षा यह कागज अधिक मजबूत, टिकाऊ तथा इस प्रकार की विशिष्ट रचना वाला होता है कि वह भीमकाय रौटरी के दबाव को अत्यन्त सरलता से सहन कर लेता है। सामान्य कागज में वह शक्ति नहीं है! इसके अतिरिक्त इसके निर्माण में जो खर्चा बैठता है वह सामान्य कागज के निर्माण में बैठने वाले खर्चे से कहीं कम है। यदि दुनिया भर के अखबार, पत्र-पत्रिकाएं सामान्य कागज पर छपने लगें तो आपको एक बार यह सोचना होगा कि क्या उन पर उतना खर्च करना उचित होगा!

भारत में राजनैतिक चैतन्य में वृद्धि के साथ-साथ कागज का उपयोग दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है; पर यह एक दुर्भाग्य की बात है कि हमारा देश अब तक अखबारी कागज बनाने में समर्थ नहीं हो सका है। देश में जितने पत्र प्रकाशित होते हैं वे सब विदेशों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से मंगाये गये अखबारी कागज पर आश्रित हैं। देश में कागज की कुल खपत प्रति वर्ष २,१५००० टन है। इसमें से १ लाख टन कागज प्रति वर्ष भारत की कागज-फैक्टरियां तैयार करती हैं और ४५००० टन अखबारी तथा शेष कागज विदेशों से — विशेषकर

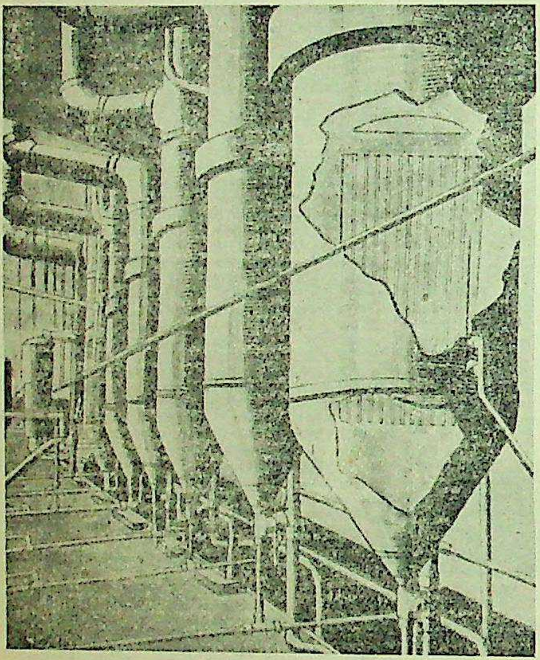

इस मशीन द्वारा यांत्रिक और रासायनिक दोनों लुगदियों को कूट-पीट कर मिलाया जाता है और इसी मिश्रण से कागज बनता है।

यह 'लकड़ी की लुगदी' इस अखबारी कागज के निर्माण में सबसे आधारभूत चीज है। अपने मनोरम और मीलों तक फैले वनखण्डों के बावजूद भारत उस 'आधार भूत चीज'को अब तक नहीं पा सका,इसका प्रधान कारण यह था कि १९०८ से लेकर उक्त कागज के निर्माण की दिशा में किये गये सब परीक्षण इस भ्रमपूर्ण आधार पर किये गये कि वह विशिष्ट 'लकड़ी की लुगदी' केवल 'फिर' या 'स्प्रूस' के वृक्षों से ही उपलब्ध हो सकती है। इस भ्रम का कारण यह रहा कि अमेरिका, कनाडा, स्कैण्डेनेविया और रूस उक्त वृक्षों से ही अपना अखबारी कागज तैयार करते हैं। भारत में वह वृक्ष केवल हिमालय की उपत्यकाओं में प्राप्त होते हैं। उनको वहां से काटना और फिर फैक्टरी तक लाना इतना व्यय-साध्य है कि इस प्रकार बना हुआ अखबारी कागज सामान्य कागज से भी मंहगा बैठता है। परन्तु यह एक प्रसन्नता की बात हैं कि अब मध्यप्रांत के जंगलों में ऐसे वृक्षों का पता लगा लिया गया है जिनकी लुगदी से उसे सरलता से तैयार किया जा सकता है। दुर्भाग्य तो देखिये कि अब तक इस प्रकार के वृक्षों की लकड़ी को ईंधन के रूप में प्रयुक्त किया जाता रहा है!

यह अखबारी कागज दो विभिन्न प्रकार की लुगदियों से तैयार किया जाता है — यांत्रिक

कनाडा और स्कैण्डेनेविया से मंगाया जाता है। इस तरह प्रतिवर्ष भारत को विदेशों से इसके आयात पर लगभग ८० लाख रुपया व्यय करना पड़ता है।

यह एक प्रसन्नता की बात है कि अब भारत में कागज निर्माण की दिशा में विपुल उद्योग किया जा रहा है और इस सब का श्रेय श्री पी० एन० नायर को प्राप्त है जिन्होंने एक वैज्ञानिक न होते हुए भी अपने अविश्रांत अध्ययन एवं परिश्रम द्वारा विशिष्ट प्रकार के उन वृक्षों का पता लगा लिया है जिनकी लुगदी से यह 'बहुमूल्य कागज' तैयार किया सकता है।

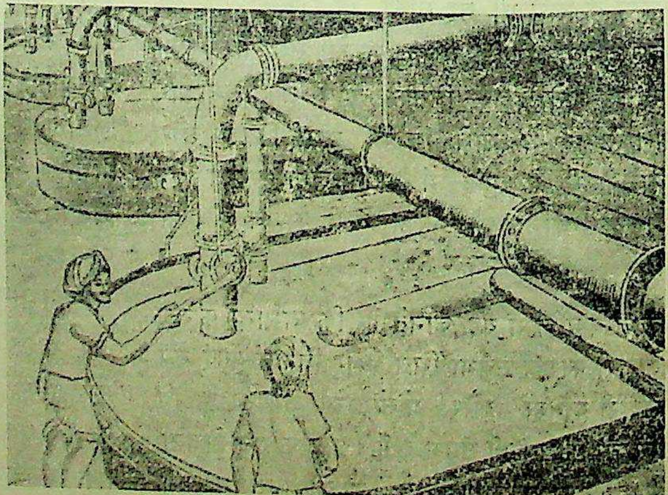

रासायनिक लुगदी को पकाने वाली मशीन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

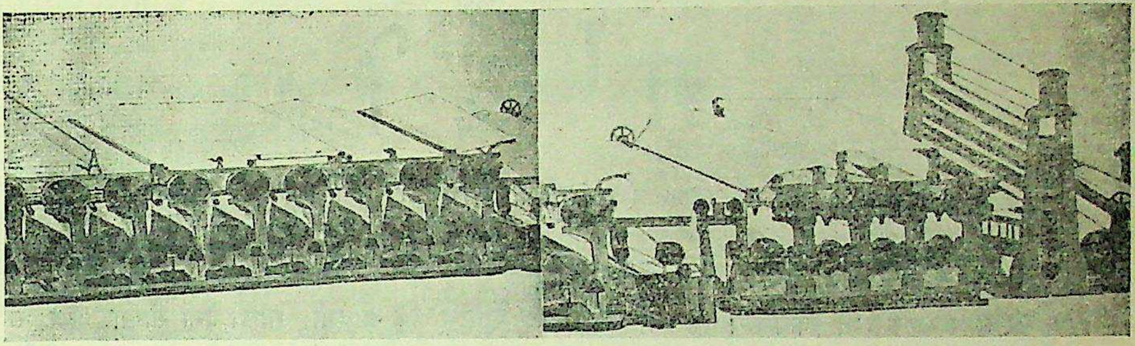

इन मशीनों में लुगदी कागज का रूप धारण करती है। कागज मशीन के भीतर से पूर्णतया सूखकर बाहर निकलता है।

और रासायनिक। यांत्रिक लुगदी बनाने के लिये उपर्युक्त वृक्षों की लकड़ी के टुकड़ों को एक पिसाई की मशीन में डाल दिया जाता है और वहां उनकी लुगदी बन जाती है। अखबारी कागज में अधिकांश भाग उसी लुगदी का होता है। रासायनिक लुगदी बनाना जरा महंगा काम है। बड़े-बड़े लोहे के कड़ाहों में बांस या विशिष्ट लकड़ी के टुकड़े डाल कर उनको वफाने में मंहगे रासायनिक द्रव्य प्रयुक्त किये जाते हैं। वफाने से रेशा अलग हो जाता है और शेष वनस्पति उन रासायनिक द्रव्यों में घुल जाती है। इस रेशे को धोकर नीरंग कर लिया जाता है और इस प्रकार रासायनिक लुगदी तैयार हो जाती है। बाद में दोनों प्रकार की लुगदियां को मिला कर कूटा-पीटा जाता है और फिर उसमें अति मात्रा में पानी मिला कर कागज बनाने की अत्यन्त वेगवान मशीन पर फैला दिया जाता है। मशीन उस फैले हुए घोल को दबाती है और भाप से गरम बड़े-बड़े सिलिन्डर उसे सुखा देते हैं। इस प्रकार यह मशीन एक मिनट में १००० फीट कागज निकाल कर फेंक देती हैं।

भारत में इस विशाल उद्योग को जन्म देने के लिये मध्यप्रांत में विंध्य पर्वतों के समीप ३७५००० एकड़ का एक वृहत् भूखण्ड चुन लिया गया है। मध्यप्रांत की सरकार देशहित के इस कार्य में जमीन, जंगल, पानी, सड़कें, बिजली तथा पैसे आदि की सब सम्भव सहायता दे रही है। इस उद्योग का प्रमुख केन्द्र 'चांदनी' होगा। आजकल यह जी० आई० पी० की बम्बई–दिल्ली लाइन पर वन-प्रदेश से आवृत एक छोटा-सा गांव है, पर वह दिन दूर नहीं जब कि आधुनिक साधनों से विहीन, वन-पशुओं से आवासित नितान्त नीरव यह प्रदेश बिजली, पानी, रेडियो, प्रशस्त भागों से शोभामय एवं हजारों मजदूरों स्त्री-पुरुषों के कोलाहल से मुखरित हो उठेगा। यह भी विचार है कि वहां संकट-काल के लिये बेतार की तार तथा कागज-निर्माण सम्बन्धी विविध परीक्षणों के लिये एक विशाल अनुसंधानशाला स्थापित की जाय। कोई आश्चर्य नहीं कि इतने विपुल साधन स्रोतों और उद्योग के साथ यह छोटा-सा 'चांदनी' गांव भारत का स्कैण्डेनेविया बन जाय।

★

मनोरंजन

वार्षिक मूल्य

५॥) रु०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाली

(श्री प्रभाकर माचवे)

...फिर भेड़िये ने मेमने से कहा—'तूने नहीं तो तेरे बाप ने गाली दी होगी।' (ईसप)

मेरे साथ एक बड़ी कमजोरी है। मैं गाली नहीं दे सकता। बचपन से ऐसे धार्मिक और सुसंस्कृत संस्कार मन पर जमे हैं कि मैं एक बारगी एकदम गुस्से से भर कर नंगई पर नहीं उतर आ सकता, और न एकदम आदिम भाषा में अपने क्रोध को व्यक्त कर सकता हूं। इसका मतलब यह समझा जाता है कि मैं दब्बू हूं; मैं कायर हूं; मैं मुंह-तोड़ जवाब नहीं दे पाता—मुझ में क्रोध जैसे दमित-शमित हो गया है। संक्षेप में मैं सभ्य हो गया हूं। सभ्यता का एक लक्षण यह माना गया है कि 'जो गाली न दें वह सभ्य मनुष्य है।'

मगर दुनिया ऐसी उलटी देखता हूं कि जो जितनी ही बड़ी गाली, जितने ही अधिक मधुर आवरण में छिपा कर चस्पां कर देता है वह उतना ही चलता पुर्जा, सफल कामयाब, सुसभ्य और सुसंस्कृत माना जाता है। आप मेरी बात का यकीन न करते हों तो कोई भी अखबार उठा कर देख लीजिए। बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ क्या करते हैं? अपनी सभ्यता पर गर्व करने वाले इंगलैंड-अमेरिका आदि देश ले लीजिये: वे सदा ही अन्य देशों की बात करते समय इसी मधु-लिपटी गाली का उपयोग करते रहते हैं। चर्चिल ने जब गांधी को याद किया, या जब कभी फासिस्ट गुंडे-लुटेरों आदि की चर्चा होती है, या आजकल सोवियत् रूस और तत्संबंधी राजनैतिक मतावली की जब याद की जाती है तब किन शब्दों में? मास्को से छपने वाला राजनैतिक पाक्षिक 'न्यू टाइम्स' तो एक अपना स्तम्भ ही चलाता है—'गालियों पर प्रकाश' ('स्पाट् लाइट आन स्लैंडर')।

यह प्रश्न मैं मानव-वंश-शास्त्रियों के लिये छोड़ देता हूं कि आदमी गाली देना सीखा कब से? मैं समझता हूं, जबसे वह 'सभ्य' बना, तभी से वह गाली भी देने लगा। अखबार में आज कल हम देखते हैं कि गाली देना एक कला बन गई है। इस गाली-दानकला के कुछ पेटेन्ट शिकार भी हैं: राष्ट्रवादी पत्रों में 'जिन्ना' और उनकी कम्पनी, वामपक्षी कहलाने वाले पत्रों में पूंजीपति और फिर कोई भी गाली देने के लिये न मिले तो हिंदी कवि तो सब से अच्छा, सीधा और सरस विषय है ही। मतलब यह है कि क्या राजनीति में, क्या साहित्य में, क्या धर्म और दर्शन में, यदि आपके पास वह खोजने की दृष्टि हो तो गालियां देने वाले और गालियां खाने वाले आपको समूचे इतिहास में मिल जायंगे। बहुत कुछ साहित्य जो 'वीर-रस' के नाम से प्रख्यात है, वह इसी प्रकार की प्रच्छन्न गाली-दान-क्रिया से भरा है। बाबा तुलसीदास ने भी जहां 'जानकी-मंगल' और 'पार्वती-परिणय' में विवाह की दावतों की 'ज्योनार' वाली मधुर गालियां लिखी हैं, वहां क्रोध में भर कर 'गारी देत नीच हरिचंद हू दधीच हू को' कह कर कलियुग की महिमा उत्तरकांड में गाई है। धर्म-क्षेत्र में तो गाली देने का जैसे मौरूसी हक धर्म प्रचारकों को प्राप्त है। मेरा जितना सो अच्छा; औरों का सो बुरा। इसलिये हिंदू के लिये अहिंदू म्लेच्छ है, असुर है; मुस्लिम को अ-मुस्लिम काफिर; ईसाई को अ—ईसाई हीदन या पैगेन; और इसी प्रकार 'मामेकं शरणं व्रज' की भावना सब धर्मों में है।

आप यदि समझते हों कि मनुष्य ज्यों-ज्यों सभ्य होता गया, त्यों-त्यों वह गाली बकना ज्यादा सीखता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया, तो यह गलत है। शांतिब्रह्म कहलाने वाले ऋषि-मुनि तक क्या करते थे? आज कल समाचार पत्र वाले एक दिन एक को गाली देते हैं; दूसरे दिन बदनामी के लिए बिलाशर्त मुआफी मांग लेते हैं। वैसे ही ऋषि लोग क्रोध में आकर शाप दे देते थे; बाद में उःशाप देकर उससे छुट्टी पा लेते थे। शाकुंतल का दुर्वासा ऋषि भीख मांगने आया भी तो कण्व ऋषि के आश्रम में और बस आव देखा न ताव देने लगा चुन-चुनकर शाप! ऋषि लोग बरसों संयम से जंगलों में रहते थे—क्रोधादि सर्प उनके अवचेतन मन में छिपे रहते थे, उन्हें बाहर निकालने के लिये कभी मौका तो चाहिये। बस किसी न-किसी दिन बिगड़ पड़ते थे, और काट बैठते थे।

मध्ययुग में कुछ तहजीबदारी बढ़ गई थी। गाली इतनी आमफहम नहीं थी। सामन्ती काल में गाली भी बड़ी लाग-लपेट से दी जाती थी। बीरबल-बादशाह के किस्सों में 'हुजूर गधे आते हैं!' और 'गधे भी तमाकू नहीं खाते' इत्यादि किस्से सु-परिचित हैं। पता नहीं गाली की गधे और उल्लू जैसे निरीह और संयमी जानवरों से क्यों इतनी दुश्मनी है। जेरूसलम में तो गधे पूजनीय वस्तु हैं और अंग्रेजी कविता में उल्लू ज्ञान का प्रतीक! और फिर कुछ गालियों का अर्थ तो केवल व्युत्पत्ति-शास्त्रज्ञ ही बता सकेंगे? काठ ने क्या अपराध किया, जो उसका उलूक से सम्पर्क कर देने से एकदम वह भयानक अपशब्द बन गया! जानवरों के समान ही गाली का कुछ शहरों से भी संपर्क हो गया है। 'शिकारपुरी' 'बलियाटिक', 'बल्लो-चपुरी,' 'रांची से आये हैं,' 'थाना से आये हुए' आदि प्रसिद्ध वचन हैं जो कि लखनौआ, भोपाली और सैलानी से भी अधिक प्रचलित हैं। परन्तु मैं बतलाऊं कि ये जो पागलों की बस्तियां समझी जाने वाली पिछड़ी हुई जगहें हैं, वे ही कभी-कभी कमाल का करतब कर दिखाती हैं। '४२ का बलियावासी से बीजिये। क्या आपको '४२ का बलियाटिक कहने से आप बुरा मानेंगे या आपकी छाती फूल उठेगी? थाना के पास ही वारलो किसानों ने कम बहादुरी नहीं दिखाई। मतलब यह कि नगर

को बदनाम करने से कुछ नहीं होता। वैसे तो क्या काबुल में भी गधे नहीं होते? और 'रांड, सांड, सीढ़ी सन्यासी। इन से बचै तो सेवै कासी!'

कुछ जानवर और शहरों की तरह कुछ रिश्ते भी खामखा गाली के अन्दर मान लिये गये हैं। भला बताइये कि पत्नी के भाई या बहिन क्या सभी बुरे होते हैं। (और क्या आप पाठकों में से जो पति हैं उनकी हिम्मत है कि आप पत्नी के सामने इस बात को कह सकें?) मगर सारे साले बुरे न होने पर भी सारे के सारे 'सारे' उस कोटि में शुमार हैं। वैसे ही यह बेसुर 'स-सुर' शब्द ले लीजिये। ससुराल वैसे जेल को चाहे कहें, ससुर जेलर को आप चाहे सुर या असुर कह लें 'ससुर' नहीं कह सकते। और वैसे ही बेचारी विधवा ने किसका क्या बिगाड़ा है? मगर 'सिंदूर' फिल्म चाहे होमवती की 'गोटे की टोपी' की नकल टीप कर बना हो या न बना हो और लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'सिंदूर की होली' कर डाली हो, 'रांड' उसी अर्थ में मौजूद है, जबकि संस्कृत 'रंडा' के अर्थ केवल 'स्त्री' है, उसका स्त्रिलिंगी हिंदी में गाली बन जाता है। कहिये 'देवदासी'—जो प्रिय छायावादी शब्द है, आपके मन में 'प्रसाद' की कहानियां नाचने लगेंगी—देवस्थ और सदावीरा। कहिये 'उर्वशी,' 'अप्सरा' तो रवींद्र ठाकुर-पन्त की कविता के लजीज चटखारे आप लेने लगेंगे और कह दीजिये उसी को पतुरिया, बेसवा, रंडी, छिनाल तो आप मारे जुगुप्सा से भरे उठेंगे और मुझ जैसे शब्द शास्त्री लेखक को डंडा लेकर मारने दौड़ेंगे—अश्लील-अश्लील कहकर; यद्यपि सांप के बजाय बांबी पीटने से कुछ होता नहीं है! सौभाग्य है कि 'भाभी' और 'बहिन जी' अभी उस प्रत्यक्ष 'गाली' की कोटि में नहीं आ पड़ा है। परन्तु कुछ साहित्यकारों ने उन दो रिश्तों का जैसा ढीला-ढाला उपयोग किया है, उससे वे रिश्ते भी बहुत कुछ उसी श्रेणी के निकट आ पड़ते हैं—यद्यपि पाण्डवों में यह प्रश्न रहा होगा कि द्रौपदी भाभी किसकी है और पत्नी किसकी!

[illegible] की शुरुआत गाली-गलौज से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती है—जिसका पर्यवसान जाकर हाथापाई, मारापीटी, खूनखराबे तक में हो सकता है, अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार। एक दिन मैं देख रहा था कि दो बनिये लड़ रहे थे। यह ध्यान में रखिये कि दोनों जैनी थे और अहिंसा धर्मपालक थे। अतः गालीगुफ्ते से आगे बढ़ने की दोनों की मानसिक सामर्थ्य न थी। प्रश्न कुछ पैसे-टके को लेकर था। वे एक दूसरे को एक दूसरे की माता तथा भगिनियों के निकट संबन्धवर्ती स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे थे, तथा यह भी उद्घोषित कर रहे थे कि दोनों में पुरुषत्व का अभाव है तथा दोनों ही शूकरादि प्राणियों की संतानें हैं। उनके उस सस्वर संभाषण ने काफी मजमा इकट्ठा कर लिया था। तब उन गाली देने वालों के बारे में जो 'समूह' सोचता था, वह भी आप नोट कर लें; क्योंकि सुनता हूं कि आजकल जनता का युग है, अतः जनता की शब्दावलि भी जानना अत्यन्त आवश्यक है। उस जनता से मैंने तीन नयी गालियां सुनी—

एक बोला—'मक्खीचूस' है! वो क्या कोरट में जायगा लड़ने।

दूसरा—चोर बजार करने वाला है। अच्छा है पिटे तो!

तीसरा—'बनिये' हैं जी—ये क्या लड़ेंगे!

यह है नये युग की नयी गालियां! एक जमाने में 'टोडी बच्चा' गाली थी; नौकरशाह — तानाशाह भी गाली थी; गद्दार साम्राज्यवादियों के एजएट, यह भी गाली चली। अब नयी गाली है —'काला बाजार करने वाला!' 'मुनाफाखोर', 'अन्नचोर', 'कपड़ाचोर', 'थैलीशाह' इत्यादि इत्यादि।

इस प्रकार प्रत्येक युग में गाली का रिवाज बदलता जाता हैं। पहिले सती न होने वाली स्त्री कुलटा, कुलच्छनी मानी जाती थी। आजकल सती न होने वाली स्त्री तो दूर, विधवा होकर विवाह करने वाली स्त्री गौरवास्पद मानी जाती है। पहिले 'शिखा-नष्ट' गाली थी, आजकल चुटैयाधारी बौड़म को स्कूल के छोकरे भी मजाक का विषय समझते हैं। पहिले 'मुछमुंड़ा' बड़ी शर्म की बात मानी जाती थी, आजकल 'मुच्छल' व्यक्ति हास्य का विषय है। पहिले हैट-टाई न पहिनने वाला व्यक्ति असभ्य माना जाता था। आजकल वह 'बाबू' भी हास्य का विषय बन गया है। मान बदलते हैं—सभ्यता असभ्यता बन जाती है, असभ्यता सभ्यता, तब 'गाली' का रूप भी बदल जाता है। मुमकिन है हमारे पड़पोते के जमाने में, जैसे आज हम 'पंडिताऊ' कह कर पुरानी बातों को हंसते हैं, हमारे आगामी वंशज 'गांधीवादी' या 'हिन्दूसभाई' कह कर हमारी पीढ़ी के लोगों पर हंसें......

गाली का एक बड़ा भारी उपयोग है; उसमें हमारे व्यक्तिमन की सामाजिक मान्यताओं के विरुद्ध, वर्जनाओं के विरुद्ध घोर विद्रोह की चिनगारी छिपी रहती है। वे हमारे मानसिक 'सेफ्टी वाल्व' हैं। यदि गालियां न होतीं तो फिर 'भारत दुर्दशा' के पात्र कैसे बोल पाते, और आज का 'अगियाबैताल' कैसे तीखी व्यंग की चुटकियां लेता! इस प्रकार सामाजिक बुराइयों पर विदारक प्रकाश डालने का काम ये गालियें अवश्य करती हैं। गाली जिस चीज या संस्था या रिवाज को दी जाती है उसके प्रति तीव्र निषेध या तिरस्कार व्यक्त किया जाता है। परन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि उस वस्तु या चलन के लिये आपके मन में कोई जगह ही नहीं रह जाती। मनोवैज्ञानिक बतलाते हैं कि घृणा या तिरस्कार एक प्रकार से नकारात्मक आकर्षण ही है और नफरत में प्यार छिपा रहता है, अतः जब एक व्यक्ति किसी प्रिया या प्रियतम के विषय में तीव्र निंदा या तीव्र आलोचना व्यक्त करता है, तब एक प्रकार से वह विरोधी भक्ति है और उसमें यह निहित है कि आकर्षण इसके पीछे कहीं है या था, जो ठीक ठीक सफलीभूत नहीं हुआ।

गाली दे देने से एक दूसरा फायदा यह भी होता है कि क्रोध जो मन में जमा रहता है, निकल जाता है। वह एक तरह से मन के मैल को, घुमड़न को, घुटन को साफ कर देता है। जैसे बादल आये, छाये, रीत गये—फिर आसमान निरभ्र हो गया। पारिवारिक कलहों में अक्सर ऐसा ही होता है। गाली से जहां एक ओर लड़ाई बढ़ती है, दूसरी ओर चुक भी जाती है। धोबी की गाली ने ही राम की सीता-परित्याग तक परीक्षा ली; और इतिहास में कई कहानियां हैं कि इस प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातचीत ने कई वीरों के सुप्त स्वाभिमान को जगाया और उकसाया है। यदि दक्षिण अफरीका के गोरे वकील मोहन से गालीगलौज से पेश नहीं आते, तो असहकार और सत्याग्रह जैसे शस्त्रों की शोध कहां तक होती, यह विचारणीय है। यों कभी-कभी बुरे में से भी अच्छा फल निकलता है। खाद से अनाज बनता ही जो है!

यह सब लिख कर मैं साहित्य के शिष्ट संकेतों की बात करने वाला था कि उसमें कुछ गालियां लिखना कैसे निषिद्ध माना गया है; परन्तु कई निषिद्ध बातें अब शास्त्र सम्मत हो गई हैं। कल ही लुई मैकनीस का एक नाटक रेडियो पर सुन रहा था। उसका आरंभ ही गालियों से होता है। एक सेना से लौटा हुआ रूसी सिपाही है। वह अपना क्रोध उतार रहा है—'डैम दी आर्मी! डैम दी कमांडर! डैम दी ....' सभ्य अंग्रेजी समाज या साहित्य में 'डैम' बहुत बड़ा अपशब्द माना जाता है। परन्तु शायद सिपाही के लिए सब कुछ क्षम्य है। मुल्कराज ने तो अंग्रेजी उपन्यासों में भारतीयता लाने के लिये पंजाबी गालियों तक का शब्दशः अनुवाद कर दिया है! मैंने एक सज्जन से सुना था कि एक खब्तुलहवास विद्वान 'गालियों का कोश' तैयार कर रहे हैं। बहुत शुभ समाचार हैं, उन्हें यदि सहायता लेनी हो तो हिंदी के दैनिक साप्ताहिकादि पर्याप्त मसाला दे सकेंगे। इस दिशा में उन पत्रों के दिमाग उर्वर हैं। एक तरफ साहित्य सम्मेलनों के मंच पर अश्लीलता-विरोधी प्रस्ताव बड़े ताव से उपस्थित करने वाले विद्वानों को मैंने खानगी तौर पर भयानक अश्लील बातें करते हुए पाया। अतः मंच पर मानव चाहे जो मुखौटा पहिने, आखिर कपड़ों के नीचे सब आदमी एक से नंगे हैं और नंगे को नंगा कहने में कोई गाली तो नहीं हो जाती?

एक कहानी से यह बातचीत खत्म करूं। एक बंगाली टोले में 'दे' साहब प्रसिद्ध थे। उनके नाम से उस मुहल्ले का नाम 'दे गली' पड़ गया। एक परिहास-प्रिय व्यक्ति ने गली के 'ग' को एक मात्रा से विभूषित कर दिया और वह 'दे गाली' पढ़ा जाने लगा। शायद फकीर उधर से गुजर रहा था, बोला — 'सौ गाली दूंगा, एक पैसा लूंगा।'

पांव की मोच

(पृष्ठ ५ का शेष)

तिवारी — तुमने साड़ी तो खूब पहनी।

वसन्ती — शुक्र है ईश्वर का, आपको भी कुछ पसन्द आया।

तिवारी — गोया मेरी ही पसन्द का ध्यान रहता है तुम्हें; मेरे लिये ही पहनी थी तुमने साड़ी! तभी तो मदन के जाने के बाद तुरन्त उतार कर फेंक दी और बांध ली है यह मैली-कुचैली धोती, जिसे तेलन भी न बांधे कोई!

वसन्ती — और क्या करूं? काम-काज में भी साड़ी ही पहने रहूं? नौकर ला दीजिये तो मैं अब भी पहन लेती हूं वही साड़ी।

तिवारी — और तुमने बहाना भी तो खूब बनाया—

वसन्ती — बहाना किस बात का?

तिवारी — भीतर आने का, बटुए का बहाना···

वसन्ती — मैं यहां आना ही कब चाहती थी?

तिवारी — और आ भी गईं!

वसन्ती — मैं यहां बैठना कब चाहती थी?

तिवारी — और बैठ भी गईं!

वसन्ती — मैं कहती हूं आप बड़े खराब आदमी हैं।

तिवारी — जी हां, हूं तो खराब ही!

वसन्ती — (बिगड़ कर) अच्छा, यों ही सही; मान लीजिये मैं खुद ही आना चाहती थी—

तिवारी — तो बटुए-वटुए का बहाना तराशे बिना भी तो आ सकती थीं। स्पष्ट कह देतीं, भई मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हारी बातों से बहुत ही दिलचस्पी है।

वसन्ती — किसकी बातों से दिलचस्पी है मुझे?

तिवारी — मदन की बातों से, और किसकी बातों से?

वसन्ती — छिः छिः, आग लगाओ उसकी बातों को। मैं तो आपके कहने से बैठ गई थी। मैं न कहती थी कि भाषी हौज में गिर जायेगा और चावल गल जायेंगे, वर्ना मैं तो·····

तिवारी — 'हां' को 'ना' के पर्दे में लिपेटना तो तुम्हारा स्वभाव है। खुद आप ही बैठ जाती तो तुम शायद अपने आपको अनादृत समझती। तुम स्त्रियों को मोड़-तोड़ कर बातें करने, उलझे-उलझे वाक्य कहने में बहुत आनन्द आता है न। स्त्रियां स्वभावतः सांठ-गांठ पसन्द करती हैं —

वसन्ती — यह आप क्या कह रहे हैं?

तिवारी — जी आं, क्या कह रहा हूं मैं? अब यह बातें क्या समझोगी तुम? उस समय यों हंस रही थी मानो सब कुछ समझ रही हो। उस समय तो फ्रेंच और इटालियन तक समझने लगी थीं।

वसन्ती — (कानों को हाथ लगा कर) हाय राम! बड़े वहमी हैं आप तो!

तिवारी — जानता था, कहने पर यही दोष लगाओगी; बल्कि अभी तक तुमने मुझे ईर्षालु नहीं कहा!

वसन्ती — (झल्ला कर) मैं जाती हूं, मेरे चावल—

तिवारी — हां हां, गल गये होंगे तुम्हारे चावल!

वसन्ती — नन्हा भाषी—

तिवारी — हां हां, हौज में गिर पड़ा होगा नन्हा भाषी!

वसन्ती — मैं कहती हूं आप बात भी करने देंगे मुझे?

तिवारी — भाग तो तुम रही हो। अब काहे को बैठोगी मेरे पास। दरअसल अब यहां है ही कौन? मदन तो·····

वसन्ती — (सटपटाकर बैठ जाती है) लो बैठ जाती हूं बाबा! मेरा क्या है, चावल गल जाते हैं तो गल जायें। फिर न कहना यह कैसे चावल हैं, गोबर से — और वह हर वक्त के ताने कि तुम्हें खाने पकाने का जरा भी सलीका नहीं; और भाषी? — हां, भाषी हौज में डूबता है तो डूब जाय। वह मेरा भी उतना ही बेटा है जितना आपका·····

(स्वर भर्रा जाता है। फिर वसन्ती अंचल से अपनी आंखें पोंछती है और मुंह छिपा लेती है)

तिवारी — देखो वसन्ती, ओछे वार मत करो मुझ पर और मैं रोज-रोज नहीं मनाने का तुम्हें।

वसन्ती — (रोनी आवाज में) कहता कौन है आपको?

तिवारी — (कुछ देर बाद) सचमुच नाराज हो गईं!

वसन्ती — आप बातें तो ऐसी करते हैं — दिल जला देने वाली!

तिवारी — (कमरे में टहलता हुआ गुनगुनाता है) "रूठा हुआ है कोई, कोई मना रहा है।"

(कुछ देर बाद)

आओ, सुलह करलें वसन्ती! वह तो सब मजाक में था। जाने भी दो वसन्ती—

वसंती—अब कौन मिन्नत करता है आपकी! जाइये कीजिये अपना काम।

तिवारी —इधर देखो, वसन्ती, ऐसी छोटी छोटी झपट प्रेम में वृद्धि करती है और फिर—"गुदगुदा के भी हंसाते हैं हसाने वाले"—(तिवारी गुदगुदाने के लिये बढ़ता है। वसन्ती उछल कर एक ओर खड़ी हो जाती है।। फिर दोनों हंसने लगते हैं।)

तिवारी—(कुछ देर बाद) देखो, अब वे तुम्हारे डाक्टर लांबे आ रहे हैं।(तुम्हारे शब्द पर जोर देता है।)

वसन्ती—'तुम्हारे' का क्या मतलब?

तिवारी—ओह! तुम्हारे......हैं तो वे मित्र मेरे ही, परन्तु तुम्हें उनकी बातें बहुत पसन्द हैं न! जब उन्होंने अपने कालिज के दिनों का एक प्रेम-प्रसंग सुनाया था तो कितनी खुश हुई थीं तुम। और तुमने स्वयं ही कहा था कि कितना अच्छा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदमी है! इसके साथ जो औरत शादी करेगी वह गोया स्वर्ग में रहेगी!

वसंती—(बिगड़ कर) तो क्या झूठ कहा था मैंने?

तिवारी—अजी, झूठ वूठ का तो प्रश्न ही नहीं उठता। बात यह है कि प्रत्येक दूसरे पुरुष की स्त्री स्वर्ग में रहती है—

वसन्ती—(जल कर) स्वर्ग को सिधार जाती है।

तिवारी—जी आं, यह तो अब कह रही हो!

वसन्ती—हां......

तिवारी—अच्छा, तो यो सही —आज वे मेरे डाक्टर लांबे आ रहे हैं। ('मेरे' शब्द पर जोर देता है)

वसन्ती—तो मैं क्या करूं, मुझे क्या गर्ज? मैंने कौन-से थाल परोस रखे हैं उसके लिये?

तिवारी—फिर वही बात खा-म-खा झगड़े की। अजी देवी जी, मैं कहता हूं तुम्हें वे सैर करवा लायेंगे। जरा उनके संग वायु सेवन के लिये चली जाना। आखिर इसमें हर्ज ही क्या है? तुम्हारा मन जो हर वक्त मेरे कारण खिन्न-सा रहता है, अच्छी अच्छी बातें सुनने से बहल जायेगा। और फिर तुम अच्छी-सी साड़ी पहिनोगी। कहो, तुम्हें मदन से सिनेमा का पास मंगवा दूं!

वसन्ती—(क्रोध से) मैं नहीं जाऊंगी—मैं कभी किसी के साथ नहीं जाऊंगी। अब न किसी के होते यहां आकर बैठूंगी, न किसी की बात पर हंसूंगी, न किसी के दुःख पर रोऊंगी। मैं नहीं जानती थी कि आप का हृदय इतना छोटा है (स्वर फिर भर्रा जाता है)...... अपनी बारी याद नहीं, मिसेज गुप्ता के साथ किस तरह घुल मिल कर बातें करते हैं। जब वह आती है तो मेरी आत्मा जल उठती है। उसका हार अच्छा लगा तो मुझे भी एक ला दिया। पहले ही ला देते तब मैं जानती! उस दिन अकेले ही सिनेमा चले गये। वापस आये तो कहने लगे — आज तुम मुझे बिल्कुल फलां एक्ट्रेस दिखाई देती हो और लगे मुझ से घुलमिल कर बातें करने; सामने वसंती और दिमाग में मिस···इसे आपके व्याकरण में प्रेम कहते हैं! अब मैं खूब समझती हूं आपकी इन बातों को!

तिवारी—देखो वसंती, तुम व्यर्थ ही मुझ पर दोष लगा रही हो—

वसन्ती—(रुंधे हुए कण्ठ से) और आप तो मेरे साथ बहुत ही अच्छा बर्ताव कर रहे हैं, हैं न?

तिवारी—मेरा काम हरेक की प्रकृति का अध्ययन करना है। मैं तुम्हें देखता हूं, मिसेज गुप्ता को देखता हूं। यदि तुम्हें पता हो कि मैंने अपने नये नाटक में मिसेज गुप्ता की सी पढ़ी-लिखी, परन्तु बच्चों के नाम से कोसों दूर भागने वाली बीसवीं सदी की औरत की कितनी गत बनाई है तो तुम हैरान रह जाओ।

वसंती—जी हां, जानती हूं। वह तो केवल लिखने में है!

तिवारी—ऊं हूं!

बसंती—हूं, जानती हूं—यों तो उस पर प्राण देते हैं, उसे हृदय से चाहते हैं—

तिवारी—उतना ही जितना तुम डाक्टर लांबे को चाहती हो!

वसंती—(जोर से) चुप, ऐसी बातें मुझे बिल्कुल नहीं भाती। मुझे आप·······मुझे उस मुए··· निगोड़े की शक्ल तक से घृणा है—सख्त घृणा है!

तिवारी—मुझे भी मिसेज गुप्ता एक आंख नहीं भाती, एक आंख!

(दोनों हंस देते हैं)

वसंती—बातें हैं.......

तिवारी—हां बातें........(कुछ सोचते हुए) आ—आ—मैं क्या कह रहा था?

वसंती—मैं क्या जानूं क्या कह रहे थे।

तिवारी—हां, मैं तुम ही से से कुछ कहने वाला था, भूल गया—ओह, कम्बख्त याद ही नहीं आता!

(कुछ देर बाद)

मेरी स्मरण-शक्ति दिनोदिन कमजोर होती जा रही है।

वसंती—वही निगोड़े डाक्टर लांबे का जिक्र कर रहे थे; किधर के किधर बहक गये!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिवारी—(ताली बजाते हुए) ओ हां, बहुत अच्छी याद है तुम्हारी, विशेषकर जबकि—हां, आज शाम को वे यहां आयेंगे। देखो, एक बात कहे देता हूं वसंती — मैंने एक और भी नया नाटक आरम्भ किया है, 'ताक-झांक' उसका नाम है। मैं चाहता हूं, कल तक उसे समाप्त कर डालूं। दो दृश्य तो मैंने लिख भी लिये हैं। डाक्टर लांबे आयें तो कह देना मैं घर पर नहीं हूं। बोलो क्या कहोगी ?

वसती—यही कहूँगी, अपने कमरे में बैठे ताक-झांक......

तिवारी—हुश ! बहुत बुरी हो तुम।

वसंती—जी हां, हूं तो बुरी ही।

तिवारी—देखो, मिन्नत से कहता हूं, उन से कह देना कि मैं आज घर पर नहीं हूं। तुम जानती हो, मेरे सिर में सुबह से थोड़ा-थोड़ा दर्द हो रहा है। नाटक लिखता रहा हूं सुबह से......जाओ, जरा चिमनी-पीस पर से एस्प्रीन की टिकिया तो ला दो।

वसंती—मैं कहती हूं, अधिक एस्प्रीन नहीं खानी चाहिये।

तिवारी—मैं तो जैसे हर रोज एक शीशी एस्प्रीन की खाता हूं ! मैं समझता हूं, कोई हानि नहीं। मेरा कहा याद रखोगी न ? और देखो, दाया को भेज कर मदन जी से दो पास मंगवा लेना और डाक्टर साहब के साथ सिनेमा चली जाना; शाम अच्छी गुजर जायेगी। हमारे भाग्य में तो रोना-पीटना बदा है, तुम्हें भी अपने साथ क्यों रुलाऊं ? भाषी को दाया के हवाले कर देना। समझीं ? जरा बाग में घुमा लायेगी। आयेगा तो दूध मैं पिला दूंगा। शीशी कहां रखी है ? फ़ेडर—और निपल कहां है निपल ? मुझे बताती जाना।

बसंती—मैं ने जाना स्वीकार कब किया है ?

तिवारी—देखो, माना भी करते हैं; यों तंग नहीं किया करते। मैं कहता हूं, आखिर इसमें हर्ज ही क्या है ?

वसन्ती—ऊं हूं, मैं तो कभी नहीं जाने की। मदन से बातें करने में क्या हर्ज था ?

तिवारी—उफ ईश्वर ! वह तो सब कुछ मजाक में था''देखो, जरा साड़ी अच्छी पहनना, बांकी लगो। वही—वही जिसमें साढ़े तीन इंच चौड़ा बार्डर लगा है। अलीभाई के यहां से लाये थे—हां हां, वही। मुस्करा रही हो—बड़ी उस्ताद हो !

(नीचे दरवाजा खटखटाने की आवाज)

वसंती—देखिये, कोई आया है।

तिवारी—डाक्टर लांबे के सिवा और कौन होगा ?

वसन्ती—उफ, मैं तो मैली-सी धोती बांधे बैठी हूं। (घबरा कर दूसरे कमरे की ओर जाती है और वहीं से कहती है) नई धोती ही कोई नहीं और यह दोनों मैली हो चुकी हैं—शलवार भी मैली। अच्छा, साड़ी ही बांध लेती हूं—वही जो आपको पसन्द है।

तिवारी—हां हां, वही बांधना जिसमें साढ़े तीन इंच चौड़ा बार्डर लगा है — वही। (मुस्कराता है)

वसंती—मुस्करा रहे हो; बड़े उस्ताद हो !

(फिर नीचे से दरवाजा खटखटाने की आवाज)

तिवारी—दाया से कहो, वही आवाज दे दे; एक भला आदमी नीचे खड़ा है। आखिर इसमें हर्ज ही क्या है।

(वसती घबराई-सी हतबुद्धि-सी कमरे में आकर दूसरी ओर जाती है। उसके कपड़ों की लपेट में आकर एक कुर्सी गिर जाती है।)

वसंती—(दबे स्वर में) रामी ! अरी रामी ! मुई, दो बजे से सो रही है तू ! उठ, देख बाहर डाक्टर लांबे आये हैं। उनसे कह दे बाबू जी घर पर नहीं हैं। उठ जल्दी से। अरी, उठ भी (अपेक्षाकृत धीमे स्वर में) दर-असल आज बाबू जी के सिर में दर्द हो रहा है। वे जाना नहीं चाहते। सारा दिन बेचारे काम करते करते थक जाते हैं।

तिवारी—रहने दो अब। मैं तुम्हारी सहानुभूति नहीं चाहता। रामी ! कह दो घर पर हैं नहीं।

वसंती—कह दो, बाबू जी घर पर नहीं हैं....... लेकिन.......बीबी जी हैं।

तिवारी—ओह, मैं भूल गया ! (मुस्कराता है)

वसंती—बड़े उस्ताद हैं आप ! आप ने ही तो कहा था सिनेमा''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिवारी—रामी, कहो आप आ जायं। बीबी जी को आपके साथ बाहर जाना है—सिनेमा; पास हैं। देखो, ठीक इसी तरह कहना। जरा दो मिनट लगाकर दरवाजा खोलना। आवाज दे दो पहले—

वसंती—मैं ने कहा जी, कंघी कहां है? मेरे बाल भी बिखर रहे हैं।

(बाल खोले घबराहट में इधर-उधर कंघी को ढूंढती है। मेज के साथ ठोकर लगती है और 'ऊई' कहकर लंगड़ाती हुई चलने लगती है और तिवारी उसके पांव को दबाने लगता है)

तिवारी—कहीं बहुत तो नहीं लगी, वसन्ती!

(वसन्ती इधर-उधर घूमने के बाद सिंगार-मेज के दराजों को बार-बार खोलती और बन्द करती है)

वसंती—न जाने कंघी कहां रखी है कम्बख्त! यह मुए भाषी ने कहीं फेंक दी होगी। नाक में दम कर दिया है इसने तो मेरा। रो चुकी इसकी जान को मैं तो—

तिवारी—खफा क्यों होती हो? कंघी मेरे पास है। यह लो (कंघा देता है) और देखो, अच्छी तरह बनाना बाल (मुस्कराता है)।

वसंती—भला बाल बनाने में क्या बुराई है? (सिंगार-मेज की ओर मुंह करके बाल बनाती है) आप ही को कोई कहेगा, इतने बड़े लेखक की स्त्री कितनी उजड्ड है — खानाबदोश औरतों की तरह बाल भी सांधे नहीं करती (कुछ क्षण बाद) दाईं और मांग निकालूंगी, बिल्कुल मिसेज गुप्ता की भांति!

तिवारी—मिसेज गुप्ता से इसका क्या सम्बन्ध है? तुम अपना काम किये जाओ।

वसंती — (उसी तरह बाल संवारते हुए) ओहो, उसका नाम लेना भी पाप होगया अब!

(फिर जोर से दरवाजा खटखटाने की आवाज आती है)

तिवारी—रामी से कहो, अब तो दरवाजा खोल दे; वर्ना बेचारा निराश होकर चला जायेगा।

वसंती—ठहरो, मुझे बाल ठीक कर लेने दो। मेरा ... मेरा पाउडर भी तो यहां नहीं है।

(सिंगार-मेज के दराजों को कई बार खोलती और बन्द करती है)

तिवारी—वह सामने तो पड़ा है, व्यर्थ ही घबराये जाती हो।

वसंती — (पाउडर उठाते हुए और लगाते हुए) ओह, मैं तो सचमुच ही घबरा गई थी। यह साड़ी अच्छी लगती है न! मुझे आपकी इज्जत का बड़ा ध्यान रहता है। देखिये, स्त्री पति की इज्जत होती है।

तिवारी—हूं, मैं कब इन्कार करता हूं?

वसन्ती—तो स्वीकार कब करते हैं? वह मेरी सेंट की शीशी कहां गई। (घबरा कर) जल्दी बताइये। उधर देखिये, उधर; भाषी—मुआ भाषी—

(सीढ़ियों पर पांव की चाप)

तिवारी — (दबे स्वर में) लो, वे आगये सीढ़ियों में! सिंगारदान में पड़ी होगी तुम्हारी सेंट।

(वसन्ती सेंट की शीशी निकालती है। भीतरी दरवाजे पर दस्तक होती है। तिवारी झट अपने अध्ययन-कक्ष में प्रविष्ट होकर दरवाजा बन्द कर लेता है)

वसन्ती — (दरवाजे की ओर मुंह करके) आ जाइये,...आइये, आइये।

(डाक्टर लांबे की बजाय मिसेज गुप्ता प्रकट होती हैं। वसन्ती का मुंह खुले का खुला रह जाता है और सेंट की शीशी हाथ से गिर कर टूट जाती है।)

वसन्ती—ओह, मिसेज गुप्ता! आप! आइये, आ-इ-ये—

मिसेज गुप्ता—ओह, शीशी टूट गई सेंट की, बेहद अफसोस हुआ मुझे!

वसन्ती — (रुखाई से) कोई बात नहीं बहिन! एक शीशी? यहां तो बहुत कुछ टूटता रहता है और किसी दिन...

मिसेज गुप्ता—कहीं जा रही थीं आप?

वसन्ती—नहीं, योंही सुबह से चित्त कुछ परेशान था, मैंने कहा जरा टायलेट कर लूं।

मिसेज गुप्ता—हां बहिन, टायलेट करने से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्त प्रसन्न और स्वस्थ हो जाता है, शरीर में स्फूर्ति आ जाती है; परन्तु इतनी सजधज ? क्रीम, सेंट—और फिर कहीं जा भी नहीं रहीं आप ! तिवारी जी तो घर पर नहीं हैं।

वसन्ती — (घबरा कर) वे तांक-झांक— अभी बाहर गये हैं।

मिसेज गुप्ता—तांक-झांक—क्या कहने लगी थीं आप ?

वसंती—यह उनके नये नाटक का नाम है। 'ताक-झांक' समाप्त करने के पश्चात् घर से निकले हैं। नाटक का नाम तो अच्छा है; कहते हैं इसमें बीसवीं सदी की एक बच्चों से डरने वाली स्त्री··

मिसेज गुप्ता — (सुनी अनसुनी करते हुए विजय-भाव से) बहिन आश्चर्य है ! आज तुमने मेरी तरह क्यों दाईं मांग निकाली है ?

वसंती—हां, वे ऐसी ही मांग पसन्द करते हैं।

मिसेज गुप्ता—सच ?

वसंती—हां सच !

मिसेज गुप्ता — मेरा तो इरादा था कहीं बाहर चलें।

वसंती — परन्तु, वे घर पर नहीं हैं।

मिसेज गुप्ता — हां जानती हूं — रामी ने बता दिया था। जरा वे होते··तुम होती तो रौनक हो जाती।

वसंती — बहिन मैं तुम्हारे साथ चली ही जाती, लेकिन मेरे पांव में कुछ मोच आगई है और फिर चूल्हे पर कुछ चावल रखे हैं।

तिवारी — (अध्ययन-कक्ष के भीतर से) डर है कि कहीं गल न जायें चावल !

मिसेज गुप्ता — (खुश होकर) तिवारी जी की आवाज !

(अध्ययन-कक्ष का दरवाजा खुलता है। तिवारी बाहर आता है)

तिवारी — क्षमा कीजियेगा, मिसेज गुप्ता, मैं घर पर नहीं हूं; अर्थात् इनसे मैंने ही कहा था कि कह देना मैं बाहर चला गया हूं। बात यों है कि एक नाटक शुरू किया था; देखिये न, लोग आते हैं, मेरा समय नष्ट करके चले जाते हैं। पूछो, भई क्या काम है तो बस यही श्रीमान जी, आपके दर्शन करने हैं। खैर, आपकी तो अलग बात है, बिल्कुल अलग। मेरी टोपी कहां है वसन्ती ?

वसंती — बाहर जा रहे हैं आप ? मैं आपको हर्गिज-हर्गिज बाहर नहीं जाने दूंगी। देखो बहिन, आज इनकी तबयित खराब है। सुबह से सिर में दर्द हो रहा है। अभी अभी एस्प्रीन खाई है और अब बाहर जाने लगे—

तिवारी — जाने भी दो, एक घण्टा हुआ एस्प्रीन खाये और—

वसंती — मैं कहती हूं हवा लग जायेगी और ज्यादा बीमार हो जायेंगे आप।

तिवारी — छोड़ो इस बात को ! मेरी टोपी कहां है ? ठंडी हवा में घूमने से दर्द काफूर हो जायेगा। वह अलीभाई वाली साड़ी तुमने पहनी ही हुई है, भाभी को खिलाने रामी ले ही गई है—दो तीन घण्टे से पहले क्या आयेगी ? बस, अब चलो। मिसेज गुप्ता भी चलें, अच्छा रंग रहेगा।

वसंती — (पांव को दबाते हुए, कराहते हुए) मुश्किल है, मैं नहीं जाऊंगी। आप जायें !

मिसेज गुप्ता — आप भी चलें, बहिन। कपड़े तो आपने पहने ही हुए हैं। लेकिन, बाबा मैं मजबूर नहीं करती; आखिर सेहत का ध्यान भी रखना आवश्यक है !

वसंती — (तिवारी से) अच्छा, आप जो आग्रह करते हैं तो चली ही जाती हूं; लेकिन—ओह—उफ, हाय ! (कराहती हुई बैठ जाती है) मेरे पांव की मोच का क्या होगा ? मेरे··पांव··की··मोच ! हाय ! (कराहती है)

तिवारी — (बाजू पकड़ कर उठाते हुए) अरे, उठो चलो, रास्ते में से डाक्टर लांबे को साथ ले लेंगे !

(दोनों हसते हैं)

पर्दा गिरता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

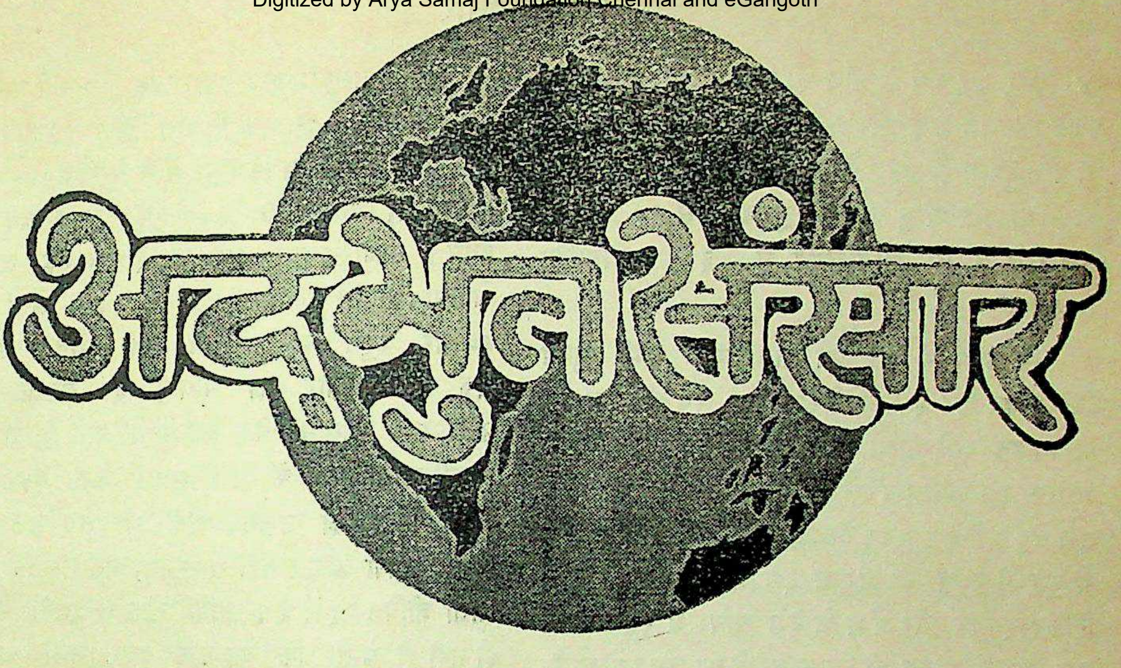

आदित्य-ब्रह्मचारियों का देश

[श्री कृष्णचन्द्र विद्यालङ्कार]

आज बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में इस भूतल पर किसी ऐसे देश का होना जिसके निवासी ४०-५० वर्ष की अवस्था तक अविवाहित रहते हों, निश्चय ही आश्चर्य और कौतूहल का विषय है। इससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि वह देश न तो जंगली जातियों से भरे अफ्रीका के महाद्वीप में है और न आस्ट्रेलिया या दक्षिण अमेरिका में, जहां विचित्र प्रथाओं की पोषक आज भी कई जातियां मिलती हैं। वह देश है यूरोप में और है संयुक्त-राज्य ब्रिटेन का एक भाग। नाम है आयरलैंड—डी वलेरा का आयरलैंड!

आयरलैण्ड कलाकारों, लेखकों और कवियों का देश है। वह इंगलैण्ड का सबसे निकट पड़ौसी देश है और सचाई यह है कि सदियों तक स्वातंत्र्य-युद्ध करने के बाद भी आज वह ब्रिटेन के संयुक्त राज्य में सम्मिलित है। वहां न शिक्षा की कमी है, न संस्कृति और सभ्यता की। फिर भी वेल्स, स्काटलैण्ड और इंगलैण्ड से वह बहुत भिन्न है। जो भिन्नताएं उसे ब्रिटेन से पृथक करती हैं, उनमें से एक है वहां की विवाह प्रथा। आयरलैण्ड में जनसंख्या का अनुपात यूरोप भर में सबसे अधिक है; लेकिन विवाह का अनुपात सबसे कम। प्रत्येक अवस्था के अविवाहित [illegible]

पात संसार के किसी भी देश से वहां अधिक मिलेगा। प्रेम और रोमांस की भावना वहां न हो, ऐसा नहीं है—वह शायद अन्य देशों के समान है; फिर भी वहां विवाह की लोकप्रियता लगातार कम होती जाती है। उदाहरण के लिए सन् १८४१ में वहां प्रति आठ में से एक स्त्री अविवाहित अवस्था में ही मर जाती थी, लेकिन दूसरे महायुद्ध से पूर्व ऐसी संख्या दुगनी हो गई, अर्थात चार स्त्रियों में से एक को आजीवन विवाह करने का अवसर प्राप्त नहीं होता था। यह आश्चर्य इसलिए और भी बढ़ जाता है कि यूरोप के अन्य देशों की तरह वहां स्त्रियों की संख्या पुरुषों से [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४० और ४६ वर्ष के बीच की अवस्था के अविवाहित जिस अनुपात में इंगलैण्ड में मिलते हैं, उससे तीन गुना अनुपात में आयरलैण्ड में मिलते हैं, अर्थात यदि ब्रिटेन में उक्त आयु के १०० पुरुषों में से १० अविवाहित रहते हैं, तो आयरलैण्ड में ३० अविवाहित मिलेंगे।

भारतवर्ष में २५ वर्ष तक प्रायः सभी पुरुष विवाह कर लेते हैं। अमेरिका में २६ वर्ष की उम्र तक अविवाहत रहने वालों की संख्या ३७ प्रतिशत से अधिक नहीं होती। इंगलैण्ड और वेल्स में इस उम्र तक ४७ प्रतिशत पुरुष विवाह नहीं करते। आस्ट्रेलिया में युद्ध से पहले यह संख्या ६८ प्रतिशत तक थी। लेकिन रोमांस और प्रेम के देश आयर में २६ वर्ष की उम्र तक, जो यौवन की उद्दाम तरंगों का समय होता है, जो लोग विवाह नहीं करते, उनकी संख्या ८२ प्रतिशत होती है। इससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि इसके बाद जब वे ४० और ६० साल के बीच में पहुंचते हैं और जब हमारे देश में अधिकांश लोग परलोक की तैयारी करने लगते हैं, आयरिश लोग गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करते हैं। इस समय वहां अविवाहित रहने वालों की संख्या ८२ प्रतिशत से घट कर केवल २० प्रतिशत रह जाती है। है न सचमुच आयरलैण्ड आदित्य ब्रह्मचारियों का देश!

विवाह बड़ी उम्र में क्यों?

श्रीमती मेरी ईटन ने इस सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए समस्त देश का पर्यटन किया। वह सरकारी अफसरों से मिली; पहाड़ों, उपत्यकाओं तथा सुनहरे पश्चिम के झील-प्रदेश में गई। वहां पादरियों, किसानों, मछियारों, गृहिणियों तथा स्वयं कन्याओं से मिली और इतनी देर में विवाह करने की देशव्यापी प्रवृत्ति के कारणों की छान-बीन की। अपने एक लेख में वह कहती है कि इसके अनेक कारण हैं—आर्थिक, सामाजिक और भावुकता इत्यादि। लेकिन इसका एक बड़ा कौतूहलपूर्ण कारण यह भी है कि वहां घटकों का—विवाह सम्बन्ध जोड़ने वाले मध्यस्थों का उत्तरोत्तर

आयर वस्तुतः कृषि प्रधान देश है। वहां के किसान संपन्न नहीं हैं। हर एक के पास छोटे छोटे खेत होते हैं। करीब एक लाख किसानों में से सिर्फ ७०००० ऐसे किसान हैं, जिनके पास २०० एकड़ से अधिक भूमि होगी। साधारणतया १५ से ३० एकड़ तक की खेतियां किसानों के पास होती हैं। इन खेतों में भी पैदावार बहुत नहीं होती। एक औसत खेत से एक ही परिवार का पोषण हो सकता है। यदि एक किसान के कई बच्चे होते हैं, तो उन्हें अपनी आजीविका के लिए अन्यत्र जाना पड़ता है। अपने पिता का उत्तराधिकारी भी तब तक अपना विवाह करना उचित नहीं समझता, जब तक कि उसकी माता जीवित रहती है। उसके खेत से इतनी पैदावार ही नहीं हो पाती कि वह एक दूसरी स्त्री का खर्च बरदाश्त कर सके। संभव है, किसी सुदूरवर्ती अतीत में सास और बहू के झगड़ों के कारण इस प्रथा का जन्म हुआ हो कि माता के रहते पुत्र अपनी पत्नी को घर में न ला सके; लेकिन इस कारण का उल्लेख श्रीमती मेरी ईटन ने अपने लेख में नहीं किया। इस प्रथा का यह परिणाम स्वाभाविक है कि पुरुषों के विवाह वहां बहुत देर में होते हैं।

साधारणतया आयरवासी स्वस्थ, हृष्ट-पुष्ट और दीर्घायु होते हैं। उनकी आयु ८०-६० वर्ष होती है। इसलिए जब वे मरते हैं, तो उनके पुत्र ५०-६० साल के हो जाते हैं और तभी उन्हें अपने घर दुलहन लाने का—विवाह करने का अवसर मिलता है। यही कारण है कि ३०-३५ वर्ष के कुंआरे अविवाहित वहां ८० प्रतिशत मिलते हैं, लेकिन बुढ़ापे में अविवाहितों की संख्या सिर्फ २० प्रतिशत रह जाती है।

इस तरह जब ५०-६० साल का बूढ़ा पुत्र दूल्हा बनता है, तब उसकी दुलहन भी करीब ३५-४० वर्ष की होती है। अपनी आयु का दीर्घ काल ब्रह्मचर्य पूर्वक बिता कर जब वे गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते हैं, तब यह स्वाभाविक ही है कि उनकी संतान भी जल्दी जल्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करार दिये गये हैं। वहां अवैध संतानों की संख्या भी बहुत कम है—सिर्फ ४ फीसदी। वहां तलाक भी गैर कानूनी है। इसलिए दम्पति को भारत की तरह वहां भी इच्छा या अनिच्छा-पूर्वक आजन्म गृहस्थ जीवन साथ साथ बिताना पड़ता है और इस अर्से में उनकी संतान बढ़ती जाती है।

रोचक विवाह-प्रणाली

अब तो वहां भी नयी रोशनी के कारण पुरुष अपने लिए स्त्री और स्त्री अपने लिए वर का चुनाव स्वयं करने लगी है, लेकिन पहले यह काम घटकों का था। वे अपने अपने क्षेत्र के अविवाहित पुरुषों और स्त्रियों का पूरा ब्योरा रखते थे। केवल गणना ही नहीं, प्रत्येक की शिक्षा-दीक्षा, स्वास्थ्य, स्वभाव और आर्थिक स्थिति का भी उन्हें ज्ञान रहता था। वे यथा-योग्य संबन्ध स्थापित करते थे। यदि किसी दम्पति का विवाहित जीवन सुखी नहीं होता था, तो उसके घटक की लोकप्रियता कम हो जाती थी और उसकी आमदनी मारी जाती थी, जो कि दहेज का बीसवां हिस्सा होती थी। आज न वे घटक रहे हैं और न नई रोशनी के लड़के लड़कियां उनकी बुद्धि पर विश्वास करते हैं। वे माता पिता से छिपा कर परस्पर संबन्ध करने का निश्चय कर लेते हैं और फिर उन्हें उसकी सूचना देते हैं। तब घटक की विधि का मात्र उपचार पूरा किया जाता है। घटक वर के घर से सब जानकारी हासिल कर के शराब का एक डोल (बैरल) खरीदता है। वर को साथ लेकर वह करीब आधी रात के समय लड़की के घर जाता है। घटक दरवाजा खटखटाता है, लड़की का पिता नीचे उतरता है और बड़ी हैरानी प्रकट करते हुए दरवाजा खोलता है। तब लड़की की भाभी वहां आ जाती है। करीब एक घंटे तक वर के घर, स्वास्थ्य, सम्पत्ति और दहेज आदि पर विचार होता है। जब कन्या के माता पिता अनुमति दे देते हैं, तब वर को, जो इस समय तक बाहर खड़ा होता है, अन्दर बुलाया जाता है। उसी समय लड़की भी अन्दर आती है। उससे भी पूछा जाता है कि क्या तुम वर को पसन्द करती हो? उसके 'हां' कहने पर वह शराब अन्दर लाई जाती है, पड़ौसी बुलाये जाते हैं, रात भर गपशप होती है, शराब पी जाती है और इस तरह वाग्दान की रस्म समाप्त होती है। कुछ दिन बाद विवाह भी हो जाता है।

आर्थिक समस्या

परन्तु, गांवों में मुक्त-प्रेम के चालू हो जाने पर भी आर्थिक समस्या अब भी विकट है। एक खेत पर अधिक व्यक्ति तो गुजर नहीं कर सकते। इस बाधा को दूर करने के लिए वहां डी वलेरा की सरकार काफी प्रयत्न कर रही है। आयर आज भी गरीब देश है। वहां की सरकार दूसरे देशों में जाने की पुरानी प्रथा को रोक कर सब नागरिकों को वहीं बसाना चाहती है। नये नये मकान बनाने, नये उद्योगधन्धों को प्रोत्साहित करने, हवाई अड्डों के निर्माण आदि की ओर सरकार पूरा ध्यान दे रही है। यदि वहां सम्पन्नता बढ़ गई, तो पिता के रहते पुत्र इसलिए विवाह करने से संकोच नहीं करेंगे कि उसका भार खेत नहीं उठा सकता।

लेकिन, जैसा कि श्रीमती मेरी ईटन को वहां के एक प्रमुख सरकारी-अधिकारी ने, जो डी वलेरा का दाहिना हाथ समझा जाता है, हंसते हुए बताया, यदि सरकार अपनी योजनाओं में सफल भी हो गई—जिसमें कई वर्ष लगेंगे—तो भी संदेह है कि विवाह इससे कम उम्र में होने लगें। आयरिश लोग बहुत चतुर और सतर्क होते हैं। वे कम उम्र में विवाह करने से पूर्व कई बार सोचने की आदत को नहीं छोड़ेंगे।

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौनों का चमत्कारी जीवन

[श्री गो० व० उपाध्याय]

बौने व ठिंगने लोग सदा से ही कौतुक और कौतूहल का विषय रहे हैं; किन्तु इन दिनों उनके सम्बन्ध में विशेष चर्चा हो रही है। प्राचीनकाल में बौने लोगों को प्राप्त करने के लिए राजाओं में युद्ध तक होने के प्रमाण मिलते हैं, क्योंकि वे लोग केवल मनोरंजन के लिए ही नहीं, वरन् राजमन्त्रणा में अथवा गुप्त योजनाओं को पूरा करने और शत्रुओं के भेद पाने में भी विशेषरूप से उपयोगी सिद्ध होते थे। हमारे यहां तो स्वयं भगवान के अवतार की चमत्कारिक कथा प्रसिद्ध है।

इतिहास-प्रसिद्ध बौने

ब्रिटेन के इतिहास में सबसे पहले जिस महत्वशाली बौने का नाम आता है, वह है 'जारविल'। यह दो फुट ऊंचा था और रानी मेरी का खास कृपा-पात्र था। इसी प्रकार राजा एडवर्ड षष्ठ के पास भी जेफ्री हडसन नाम का एक बौना था। इसके साथ राजा अपना और दरबारियों का दिल बहलाया करता था। यह केवल अठारह इंच अर्थात् डेढ़ फुट ऊंचा था और अपनी चेष्टाओं के लिये विश्व-विख्यात था। एक बार मुर्गे के साथ इसकी लड़ाई होने पर इसने उसे हरा दिया, किन्तु इसे भी खासी मार पड़ी। इस बीच यह एक राज्य-विरोधी षडयन्त्र में फंस गया और इसे जेल में भेज दिया गया; किन्तु जेल के एकान्त-वास का परिणाम यह हुआ कि इसकी लम्बाई बढ़ कर तीन फुट नौ इंच हो गई।

सम्राट हेनरी टामोराया के पास भी दो बौने थे—रिचर्ड शिवसन और उसकी पत्नी। ये दम्पति केवल चार फुट के थे और इनके सात बच्चे पैदा हुये। उनमें से पांच सामान्य ऊंचाई के थे और शेष दो बौने थे।

फ्रांस के इतिहास में भी एक बौने का उल्लेख मिलता है। उसका नाम था रिश बोग। वह ९० वर्ष की अवस्था में पेरिस में मरा। उसकी ऊंचाई केवल २३ इंच की थी। फ्रांस की राज्य-क्रांति के समय वह एक नर्स की गोद में बैठकर बालक के रूप में संतरियों के कड़े पहरे के बीच से शहर के बाहर जा पहुंचा था। उस समय वह अपने साथ कई महत्वपूर्ण कागजात भी ले गया था।

मेरीजेन वंगमैन नाम की एक और भी प्रसिद्ध बौनी स्त्री का नाम इतिहास में मिलता है। यह आस्ट्रेलियन थी और पन्द्रह वर्ष की अवस्था में भी यह केवल ३५ इंच ऊंची थी। किन्तु इतने पर भी इसकी कमर का घेरा ५१ इंच का था। इसके मुकाबिले में कोसनो फिलेटास उतना ही दुबला और नाजुक था। हवा में उड़ न जाय, इस भय से यह अपनी जेबों में रेत भर लेता था। प्रकृति का चमत्कार तो देखिये कि ब्रचियिंगर नाम का एक और बौना हाथ पांव और जांघ रहित पैदा हुआ था, किन्तु इस हालत में भी वह प्रतिवर्ष कुछ इंच बढ़ता जाता था।

ओएन फ़ुरेल नामक बौने में राक्षस के समान बल था। वह केवल ४१ इंच ऊंचा था; फिर भी अपने हाथों पर पूरे कद के मोटे मोटे दो दो आदमियों को उठा कर घूमता फिरता था।

प्रणय-कला विशारद

ठिंगने व बौने व्यक्तियों के सम्बन्ध में सब से अधिक आश्चर्य की बात यह है कि ये प्रेम करने में भी सब से बढ़े चढ़े होते हैं। इस बात के कई प्रमाण हैं कि गौरांगनाओं ने बौने व्यक्तियों को ही अपने पति रूप में चुना था। फ्रांस की प्रसिद्ध नर्तकी ला शार्मोन का तो कहना था कि बौने पुरुष प्रेम करने की कला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में निष्णात होते हैं और उनके संसर्ग में अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है। परन्तु एक अमेरिकन ललना का मत इसके विरुद्ध भी है। वह कहती है कि ये प्रेम की कला में कुशल तो नहीं होते, किन्तु प्रेमिका के सन्मुख अपना सर्वस्व अर्पण अवश्य कर देते हैं; उनकी यह भावना ही उनकी उदार वृत्ति के रूप में स्त्री के लिये प्रेम-भाव बढ़ा देती है।

सात वर्ष हुए, अमेरिका में होने वाले प्रेम-विवाहों की छान-बीन की जाने पर सिद्ध हुआ था कि सौ में से अस्सी स्त्रियों ने ठिंगने आदमियों को ही पति-रूप में चुना था। उनमें अनेक लम्बे कद की भी थीं; किन्तु उनमें से केवल दस प्रतिशत ने ही लम्बे (ऊंचे) शरीर वाले पतियों को चुना और शेष १० प्रतिशत ने मध्यम कद के पतियों को पसन्द किया था।

मेराया नाम की एक उमरावजादी अपनी सुन्दरता के लिये प्रसिद्ध थी। उससे विवाह करने के लिये कई युवकों में होड़-सी लग गई थी, किन्तु उसने किसी को भी पसन्द नहीं किया; क्योंकि उसकी दृष्टि किसी अन्य ही पुरुष पर लगी हुई थी और वह कोई सर्वगुण सम्पन्न पुरुष नहीं था, बल्कि एक अत्यंत साधारण एवं हलके दर्जे का आदमी था, जो एक होटल में ब्वाय के रूप में काम करता था। देखने में वह बहुत अद्‌भुत था। काला-कलूटा और ठिंगने कद का होते हुये भी वह शरीर से पूर्ण शक्तिशाली था। उसकी आंखों ने ऐसा कुछ जादू कर दिया कि मेराया उसके पीछे पागल हो गई थी। एक दिन उस बौने युवक को लेकर वह भाग गयी। जब लोगों को मेराया के इस पागलपन-भरे प्रेम का पता लगा तो सब चकित रह गये।

★

'दुखोबोर' : एक विचित्र जाति

वास्तव में यह सुनकर आश्चर्य हो सकता है कि इस युग में भी कोई जाति ऐसी हो जहां पति-पत्नियों का जातीय आधार पर आपस में विनिमय होता हो। लेकिन कनाडा के बैंकोवर द्वीप में कुछ इस प्रकार के ही लोग बसते हैं। वे दुखोबोर कहे जाते हैं। इन लोगों की संख्या लगभग १८,००० है। मूलतया ये लोग रूसी हैं और कई शताब्दियों पहले प्रसिद्ध रूसी लेखक और सुधारक टालसटाय की प्रेरणा से ये लोग रूस छोड़ कर एक नये प्रकार का जीवन बिताने के लिये ब्रिटिश कोलम्बिया में आये थे।

'दुखोबोर' शब्द के अर्थ आत्मिक योद्धा होते हैं और इन आत्मिक योद्धाओं के आध्यात्मिक मुखिया का वंशगत नाम वेरिजिन है। वेरिजिन और उसके अनुयायी हमेशा कनाडा सरकार के लिए एक कष्टप्रद समस्या रहे हैं; क्योंकि मलिका विक्टोरिया के एक आज्ञापत्र के अनुसार इन्हें नागरिकता की नामजदगी, अनिवार्य फौजी भर्ती और टैक्सों से भी मुक्ति मिली हुई है।

वर्तमान मुखिया माइकेल वेरिजिन अपने वंश की चौथी कड़ी में है। दुखोबोरों के धार्मिक विश्वासों के अनुसार ईसा का अवतरण तब हुआ, जब 'महान पीटर वेरिजिन' ने दुखोबोरों का नेतृत्व ग्रहण किया। वैसे एक पीटर खान के विस्फोट में मरा। लेकिन मरने के पहले उसने करों के विरुद्ध एक आन्दोलन किया, जिसमें उसने अपनी जाति के नारी और पुरुषों को सर्वथा नग्न रूप में सड़कों पर घुमाया। पीटर के बाद 'पेट्रोविच शोधक' का अवतार हुआ जिसने इस मजहब का शोधन किया।

वर्तमान मुखिया माइकेल को 'न्यायी माइकेल' कहा जाता है। दुखोबोरों का विश्वास है कि उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाद भविष्य में किसी संहारक मुखिया का अवतार होगा, जो सभी असत्यों का संहार करेगा।

अप्राकृतिक प्रतिबंधों से मुक्त

माइकेल ने एक अमेरिकन पत्रकार ग्रेगसन को अपने इस नये उपनिवेश का कारण समझाते हुये कहा कि "हम लोगों ने वह नया उपनिवेश इसलिये बनाया है कि ईर्ष्या, अविश्वास, व्यभिचार, धोका आदि हीन प्रवृत्तियों से मुक्ति पा सकें। यह सब आज के जीवन में केवल इसलिए हैं कि हम ने अपनी प्रवृत्तियों पर अप्राकृतिक प्रतिबन्ध लगा रखे हैं।

"हम लोगों ने हर तरह के प्रतिबन्ध को हटाने का प्रयास किया है। यहां हम लोगों में से अगर कोई पति अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्री के साथ रहना चाहता है और उस स्त्री को कोई आपत्ति नहीं है, तो पत्नी कभी उस पर प्रतिबन्ध नहीं लगायेगी। इसी तरह हमने स्त्रियों को भी स्वच्छन्द यौन-सम्बन्धों की स्वतन्त्रता दे रक्खी है।

"हम लोग व्यक्तिगत सम्पत्ति में विश्वास नहीं रखते और इस लिये विवाह के अन्तर्गत आने वाले व्यक्तिगत अधिकार तत्व को भी हमने मिटाने का प्रयास किया है।"

इस जाति के कुछ दिलचस्प लोगों में से साम मार्किन है, जो समस्त समूह की मोटरें चलाता है। सोफयोड विन्निकव सारा लिखने पढ़ने और मन्त्रित्व का काम करता है और ये दोनों अपनी स्त्रियों के साथ एक ही घर में रहते हैं। उन सब के बच्चे भी जातीय बच्चे होते हैं। कौन बच्चा किसका है, यह जानने की न उत्सुकता, न आवश्यकता उन्हें रहती है।

जिस स्थान पर वह लोग रहते हैं, वहां मुख्यतया ऐंग्लो सैक्सनों की बस्ती है। वे लोग शहतीर के धनी व्यापारी हैं और वे इस प्रकार के लोगों पर अपना विश्वास नहीं जमा पाते। फलस्वरूप, हमेशा कुछ न कुछ झगड़ा चलता रहता है।

निरामिष-भोजी

ये लोग खाने पीने में भी बहुत सादे और स्वच्छ

(शेष पृष्ठ ४० पर)

क्या आप जानते हैं?

चन्द्रलोक का एक दिन हमारी पृथ्वी के दो सप्ताहों के बराबर है।

संसार का आधे से अधिक पानी प्रशांत महासागर में है।

जिस प्रकार किसी व्यक्ति की अंगुलियों, विशेषकर अंगूठे के चिन्हों से उस व्यक्ति का पता चल सकता है, उसी प्रकार टाइप करने वाली मशीन की लिखावट से उस मशीन का भी पता चल सकता है।

सन् १९४० में संसार की कुल जनसंख्या २ अरब १७ करोड़ और ४० लाख थी।

हाल ही में एक ऐसी मशीन आविष्कृत हुई है जो मनुष्य के मस्तिष्क का स्थान ले सकती है। इस मशीन द्वारा २ घंटों में गणित का इतना काम किया जा सकता है, जो सामान्यतया एक सौ वर्ष में हो पाये। इस मशीन का प्रयोग विज्ञान व उद्योग सम्बन्धी गणित के कठिनतम प्रश्नों को हल करने के लिये किया जायगा।

आइसलैण्ड में यद्यपि ३००० मील लम्बी सड़कें, ४००० से अधिक मोटर गाड़ियां और ३३० डाकखाने हैं, परन्तु रेलवे एक भी नहीं है।

लंदन में १७,६०० गलियां, ३४३ थियेटर व सिनेमा-घर और ३०० से अधिक रेलवे स्टेशन हैं।

निकल एक ऐसी धातु है जिसका उत्पादन संसार भर में केवल एक देश में केन्द्रित है— वह देश है कैनेडा।

पैन्सलीन की सहायता से रोग-ग्रस्त दांत को निकाल कर ठीक करके फिर वहीं अपने स्थान पर लगाया जा सकता है, जहां वह फिर से उगने लगेगा।

इंगलैण्ड, स्काटलैण्ड और वेल्स की ७५ प्रतिशत जन-संख्या सप्ताह में कम से कम एक बार अवश्य सिनेमा देखती है।

सारे संसार में १,०४४ भाषाएं बोली जाती हैं। एशिया में ४२९, अफ्रीका में ११४, अमरीका में ४२३, यूरोप में ५३, आस्ट्रेलिया में ९ तथा पोलेनेशिया में १७ भाषाएं प्रचलित हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

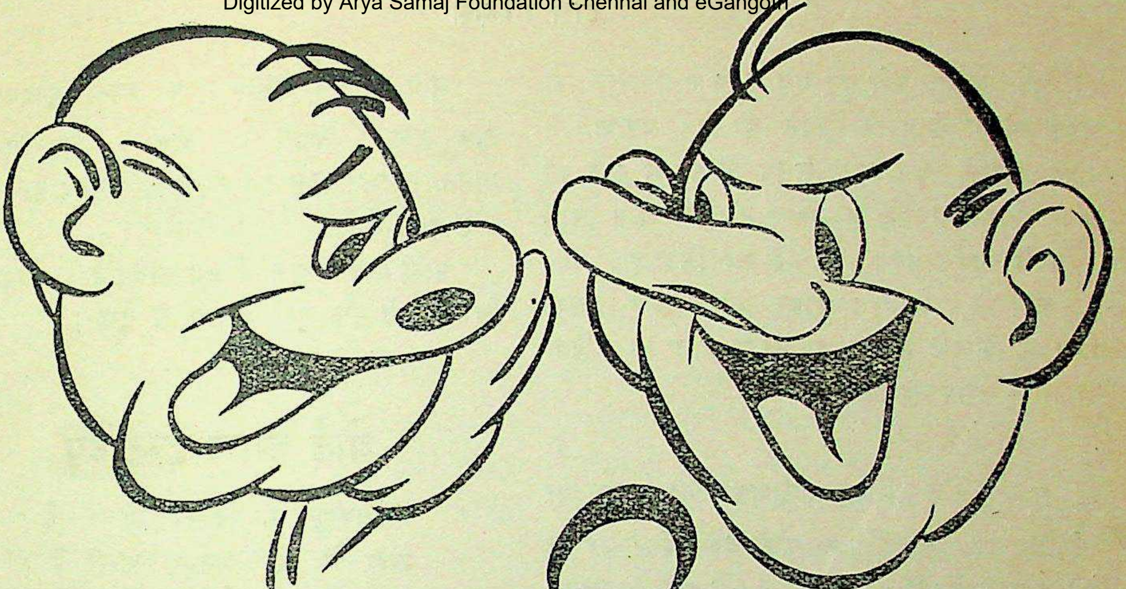

हास परिहास

एक व्यक्ति जोंक बनकर अपने एक मित्र के हां कई दिनों से चिपका पड़ा था और जाने का नाम ही नहीं लेता था। घर का मालिक अपने इस अवांछित मेहमान से तंग आ चुका था। आखिर उसे अपना पिण्ड छुड़ाने की एक युक्ति सूझी। वह मेहमान से बोला — इतने दिनों तक आप से बिछुड़े रहकर न जाने आप के बीवी-बच्चे किस हाल में होंगे!

मेहमान बोला — ओह, मुझे तो उनका ध्यान ही नहीं आया। मैं आज ही तार देकर उन्हें यहां बुलाये लेता हूं।

* * *

डाक्टर—देखिये, उस दिन आप जो चैक दे गये थे, वह बैंक से लौट आया है।

रोगी—यह भी अजीब इत्तिफ़ाक है, डाक्टर साहब! मैंने आप से जिस रोग का इलाज करवाया था, वह भी लौट आया है!

* * *

"जिस घोड़े पर मैं सवार था, वह जाना चाहता था पूर्व की ओर, और मैं जाना चाहता था पश्चिम

"आखिर जीत किस की हुई?"

"घोड़े ने उठाकर मेरी ही 'टास' डाल दी!"

* * *

शाम को पार्क से सैर करके दोनों पति-पत्नी बच्चा-गाड़ी के साथ वापस लौट रहे थे। अचानक श्रीमती जी चिल्ला उठीं — अरे, यह हमारा मुन्ना नहीं! यह बच्चा-गाड़ी तो किसी और की है!

पति — शोर क्यों मचा रही हो। यह गाड़ी हमारी गाड़ी से बढ़िया है!

* * *

"मैं वाद-विवाद सभा का सदस्य बन गया हूं।"

"अच्छा! तुम्हारा विवाह कब हुआ?"

* * *

पति—वह दिन दूर नहीं जब रेडियो समाचार पत्रों का स्थान ले लेगा।

पत्नी—आपका खयाल गलत है। रेडियो सेट में न तो कोई चीज लपेटी जा सकती है और न ही उससे चूल्हे में आग जलाई जा सकती है।

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े बड़े बाल रखे हुए एक युवक ने प्रकाशक को अपनी कविता की पुस्तक छापने को दी। प्रकाशक ने कहा—आपकी लिपि इतनी खराब है कि मैं एक भी कविता ठीक नहीं पढ़ सकता। इसे मेरे पास लाने के पहले आपने टाइप क्यों नहीं कर लिया ?

कवि ने मर्माहत होकर कहा—आप समझ सकते हैं कि यदि मुझे टाइप करना आता तो कविता लिखने में समय नष्ट करता ?

* * *

एक अंग्रेज स्त्री एक फोटोग्राफर की दूकान पर गई और उसे एक छोटा सा फोटो देकर बोली—"यह मेरे स्वर्गवासी पति का फोटो है। मैं इसे 'इनलार्ज' करवाना चाहती हूं।"

"हो जायेगा।"

"परन्तु, मैं चाहती हूं कि 'इनलार्जमेंट' में सिर पर यह हैट न रहे। क्या ऐसा संभव है ?"

फोटोग्राफर ने कुछ देर तक फोटो को सूक्ष्म दृष्टि से देखा और फिर बोला—"इनलार्जमेंट में हैट नहीं रहेगा। उसकी जगह मैं बाल बना दूंगा; लेकिन, जरा बता दीजिये कि आपके पति महोदय मांग किस ओर निकालते थे ?"

"यह तो मुझे याद नहीं", स्त्री ने उत्तर दिया, "लेकिन, खैर जब आप फोटो का हैट उतारेंगे तो देख लीजियेगा कि मांग किस ओर है।"

* * *

सतीश ने घिघियाते हुए कहा—"प्रिये, यदि तूने मुझ से विवाह करना स्वीकार न किया तो मैं सचमुच प्राण दे दूंगा।"

लड़की ने उससे विवाह करने से इन्कार कर दिया। पचास वर्ष बाद सतीश की मृत्यु हो गई।

* * *

"क्या हुआ, प्रोफेसर साहब ?"

"अजी क्या बताऊं। मेरी ऐनक खो गई है, और मेरी नजर इतनी कमजोर है कि जब तक वह मिल न जाये तब तक मैं उसे ढूंढ नहीं सकता।"

* * *

पति महाशय श्रीमती जी पर अपनी बुद्धिमत्ता की धाक जमाना चाहते थे, बोले — यह तो तुम्हें मानना ही पड़ेगा कि स्त्री की अपेक्षा पुरुष का निर्णय श्रेष्ठ होता है।

पत्नी बोली—इस में क्या सन्देह है। विवाह के लिये तुम ने मुझे चुना और मैं ने तुम्हें।

बोर्ड आफ़ इन्टरव्यू

"धोबढ़ीपुर में कितने माली हैं ?
शहर में कै मकान खाली हैं ?"
"लांग-फैलो की कितनी टांगें थीं ?
सुबह मुर्गे ने कितनी बांगें दीं ?"
"आज क्या भाव है बताशे का ?
कीट्स का वजन कितने माशे का ?"
"शहर में नालियां हैं कुल कितनी ?
तेरे घर थालियां हैं कुल कितनी ?"
"भंगी कितने रुपये कमाता है ?
घोड़ा किस तरह हिनहिनाता है ?"

—राजा मह्दी

पृष्ठ ३८ का शेष

हैं। शराब, तम्बाकू, मांस, अंडा आदि ये कुछ भी नहीं खाते। केवल दूध या फटे हुये दूध के कुछ पदार्थ और रोटी, यही इनका भोजन है।

ये कभी भी मशीनों पर काम नहीं करते। इनमें हाथ से ही मेहनत करने का रिवाज है।

रूसी भाषा बोलने के कारण ये दूसरे लोगों में घुलमिल नहीं पाते, लेकिन इनके सिद्धान्तानुसार कोई भी इनकी जाति में शामिल हो सकता है।

आज के युग में जब यन्त्रों के विरुद्ध फिर से महात्मा गांधी ने आवाज उठाई है, इन दुखोबोरों का उदाहरण बहुत महत्वपूर्ण है। प्राकृतिक जीवन की ओर लौट चलने का नारा रूसो से लेकर टाल्सटाय और गांधी जी तक ने दिया है; लेकिन यह कहां तक मानवता के लिये कल्याणकारी होगा,यह भविष्य ही बता सकेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खेलें

आस्ट्रेलिया में भारत की क्रिकेट-टीम

(श्री धीरेन्द्रकुमार विद्यालंकार)

गत ११ अक्टूबर को भारत की क्रिकेट-टीम आस्ट्रेलिया पहुंच गई। यह इतिहास में पहला ही अवसर है कि भारत की टीम आस्ट्रेलिया में क्रिकेट खेलने के लिए गई है। आस्ट्रेलिया क्रिकेट की खेल के लिए संसार में अपना सानी नहीं रखता। भारतीय क्रिकेट-टीम ने पिछले वर्षों में अनेक बार इंगलैण्ड से अपनी बल-परीक्षा की है और इसे प्रायः उससे मात ही खानी पड़ी है, पर आस्ट्रेलिया ने उस इंगलैंड का भी आसानी से गर्व खर्व करके रख दिया है। ऐसी टीम से भारत की टीम का खेलकर जीत जाना आश्चर्यजनक घटना ही होगी। तथापि, इससे निराश और हतोत्साह होने की कोई बात नहीं। टीम के कप्तान लाला अमरनाथ ने कलकत्ता से विदा होते हुए इसी आत्म-विश्वास की भावना के साथ भारत के गौरव को अक्षुण्ण रखने का विचार प्रकट किया था।

भारतीय टीम जिस रूप में और जिन परिस्थितियों में भेजी गई है, उनसे किसी को भी सन्तोष नहीं हो सकता। विजय मर्चेण्ट का कप्तान के रूप में अभाव इतनी बड़ी कमी है, जिसे भारतीय टीम आस्ट्रेलिया के दौरे में खेले जाने वाले प्रत्येक मैच में बार बार अनुभव करेगी। निस्सन्देह भारत ने मर्चेण्ट की अपेक्षा अधिक अच्छा खिलाड़ी (बैट्समैन) आज तक तैयार नहीं किया। वह गीले मैदान, खराब मौसम और कैसी भी 'बाउलिंग' के बावजूद 'रन' बनाने में बड़े सिद्धहस्त हैं। पिछली इंगलैण्ड-यात्रा में भारतीय टीम को अनेक बार संकट से उबार कर मर्चेण्ट ने अपनी चातुरी का अच्छा परिचय दिया था। अपने पेट के निचले भाग में दर्द रहने के कारण मर्चेण्ट ने अगस्त में ही अपनी असमर्थता प्रकट कर दी थी। मर्चेण्ट के अतिरिक्त मूल टीम के चुने हुए खिलाड़ियों में से मुश्ताकअली, रूसी मोदी और फजल महमूद भी निकल गये। इन चार अनुभवी सदस्यों के न जा सकने से एक समय इतनी निराशा हो गई थी कि टीम को आस्ट्रेलिया न भेजने तक का विचार प्रकट किया जाने लगा था। तथापि, क्रिकेट-कण्ट्रोल बोर्ड के अध्यक्ष श्री डिमेलो के प्रयत्नों और अमरनाथ के आशावाद के फलस्वरूप टीम अन्ततः रवाना हो गई। रिक्त स्थानों के लिए सी० टी० सरवटे, रणवीरसिंहजी, रायसिंह और सी० आर० रंगाचारी को चुना गया। प्रारम्भकर्ता खिलाड़ी के रूप में मुश्ताकअली और आल राउण्डर (खेल के सब कार्यों में कुशल) के रूप में मोदी का अभाव भी सब को खटकेगा, पर अनुभवी सरवटे को रिक्त स्थान

टीम के कप्तान ला० अमरनाथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर लेकर वर्तमान परिस्थितियों में उपयुक्त चुनाव ही किया गया है।

भारतीय टीम के जाने से पूर्व पूना में ३ सप्ताह के अभ्यास का कार्यक्रम बनाया गया था, पर वह सब भी मौसम की प्रतिकूलता और खिलाड़ियों की अनुपस्थिति व अनबन के कारण नहीं हो सका। ला० अमरनाथ को कप्तानी का पूर्व-अनुभव न होना भी टीम की विजय के लिए अधिक आशाजनक लक्षण नहीं है। इनके अलावा भारतीय टीम में गेंद को तेजी से फैंकने वाले (फास्ट बाउलर्स) और खेल शुरू करने वाली जोड़ी का अभाव दो सबसे बड़ी कमियां हैं। आस्ट्रेलिया के टैस्ट-मैचों के कप्तान ब्रैडमैन की टीम से मुकाबला करने के लिए भारतीय टीम में 'फास्ट-बाउलर्स' का अभाव बड़ी घातक कमी है। अब अमरनाथ को या तो मध्यम दर्जे की तेजी के 'बाउलर्स' फाड़कर, सोहनी और रंगाचारी पर ही भरोसा करना पड़ेगा अथवा अमीरइलाही और सी० एस० नायडू की धीमी गेंदों को परखना होगा।

कहा जाता है कि टीम की ताकत उसके आलराउण्डर (खेल में सर्वतोमुखी कुशल) खिलाड़ियों में होती है। इस दृष्टि से टीम में अमरनाथ, विनू मनकद और हजारे तीनों बड़े खिलाड़ी हैं। दूसरी पार्टी को खिलाने (फील्डिंग) के लिहाज से भी टीम बुरी नहीं है। इस विषय में गुलमोहम्मद टीम का बेजोड़ खिलाड़ी है। उसका दौड़ना, गेंद पकड़ना और तुरत-फुरत फैंकना दर्शकों के लिए बड़ा कौतुक पैदा करता है।

मूल टीम में ७ बैट्समैन, ६ आलराउण्डर, ४ बाउलर और २ विकेटकीपर (ईरानी और सेन) थे, पर अब ८ के बजाय १० बाउलर हो गये हैं। किन्तु फास्ट बाउलरों के अत्यन्ताभाव के कारण टीम में इस वृद्धि से भी विशेष सन्तोष नहीं दीखता। इसके साथ मूल टीम में ३ प्रारम्भकर्ता खिलाड़ी (मर्चेण्ट, मुश्ताकअली और मनकद) थे, पर अब मनकद ही बाकी है। कप्तान अमरनाथ को इस कमी को पूरा करने के लिए विभिन्न खिलाड़ियों को परखना पड़ेगा। अब टीम में रणवीरसिंहजी (आल राउण्डर) या किशनचन्द जैसे दूसरी कोटि के खिलाड़ियों को सबसे पहले भेजकर दांव खेलना होगा। खेल अच्छी तरह शुरू होने से उसका प्रभाव अगले खिलाड़ियों पर अनुकूल अन्यथा प्रतिकूल होता है।

हजारे (उपकप्तान) गुल मोहम्मद, मनकद और रंगनेकर (बांये हाथ से खेलने वाले) के रूप में अमरनाथ को ऐसे खिलाड़ी मिले हैं, जिनसे विषम परिस्थितियों में भी रनें बनाने की आशा की जा सकती है। क्या ही अच्छा होता कि रूसी मोदी के बीमारी से अच्छा हो जाने के कारण उसको भी आस्ट्रेलिया जाने के लिये तैयार कर लिया जाता।

भारतीय टीम का प्रोग्राम आस्ट्रेलिया में १७ अक्टूबर से २४ फरवरी तक के लिए बनाया गया है। इस दौरे में निम्न ५ टैस्ट-मैचों के प्रोग्राम रखे गये हैं, जिनसे हार जीत का फैसला किया जायेगा —

(१) ब्रिसबेन में २८ नव० से ४ दिस०
(२) सिडनी में १२ दिस० से १८ दिस०
(४) मैलबोर्न में १ से ७ जनवरी
(४) एडीलेड में २३ से २९ जनवरी
(५) मैलबोर्न में ६ फरवरी तक

भारतीय टीम ने पर्थ में पश्चिमी आस्ट्रेलिया की टीम से जो प्रथम ४ दिन मैच खेला, वह बिना हार जीत के छूटा, क्योंकि वर्षा के कारण खेल बहुत कम हो सका। तथापि, भारतीय टीम के लिए उसे बैटिंग, फील्डिंग और बाउलिंग किसी भी लिहाज से संतोषप्रद नहीं कहा जा सकता। फिर भी आशा है कि भारत के ये प्रतिनिधि अपने देश के गौरव को कायम रखने के लिए भावी मैचों में अधिक अच्छा कौशल दिखायेंगे और, इस यात्रा द्वारा, अपने देश के संस्कृति-दूतों के रूप में आस्ट्रेलिया से ऐसे मधुर और घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करके लौटेंगे जो अनेक पीढ़ियों तक अपनी छाप बनाये रहेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वावलंबिनी नारी

एक नर्स

मैं एक सरकारी अस्पताल में नर्स हूं। रोगियों की देखभाल करना, औषधि देना, मरहम पट्टी करना, 'आपरेशन' के कमरे में काम करना, जच्चा को संभालना, रात-रात भर ज्वर व पीड़ा-विकल मानवों—शिशु-से मानवों की सेवा शुश्रूषा करना, अपने प्राणों की परवाह न करके कराहती, तड़पती, मृत्यु से जूझती मानवता पर अपने नारी-हृदय की स्नेह, वात्सल्य और करुणा की अक्षय निधियों को बिखेरना—नर्स की हैसियत से यह सब मुझे करना पड़ता है। इनमें बाज काम अत्यन्त कठिन हैं; परन्तु सच कहूं, इन्हें करते हुए मैंने हमेशा ही आंतरिक आल्हाद का, संतोष का अनुभव किया है। स्त्रियोचित सेवावृत्ति और त्याग की भावना को मैं अपने अस्तित्व से अलग ही नहीं कर सकती! मेरे सामने जहां एक ओर सीता का आदर्श रहा है, तो दूसरी ओर असंख्य लाशों से पटी भयानक रणभूमि में हाथ में लैम्प, हृदय में करुणा, नयनों में स्नेह लिये मूर्तिमती सेवा-सी घूमती, घायलों की सेवा शुश्रूषा करती "फ्लोरेन्स नाइटिंगेल" का लोकोत्तर आदर्श रहा है। दोनों के पदचिन्हों पर चलकर अपने जीवन को सार्थक बनाना मेरा ध्येय रहा है।

मैं एक उच्च हिन्दू घराने की कन्या हूं। घर में बूढ़ी मां और दो छोटे भाई हैं। मेरे पिता हम चारों को निस्सहाय और निरवलम्ब छोड़ कर कई वर्ष हुए स्वर्ग सिधार गये थे। उस समय मैं मैट्रिक की परीक्षा देके चुकी थी। घर में जो थोड़ा-बहुत रुपया-पैसा था, यह पिता के झूठे-सच्चे कर्ज चुकाने में समाप्त होगया। अधिकांश भारतीय स्त्रियों की भांति मेरी मां इस योग्य नहीं थी कि हम तीनों बहिन-भाइयों का भरण-पोषण कर सकती। मेरे पिता की उम्र के एक पूंजीपति सज्जन (?) मुझ से शादी करके हमारे घर के आर्थिक कष्ट को दूर करने को तैयार थे — तैयार नहीं, लालायित थे। उन्हें समाज के पंचों का, धर्म और नैतिकता के ठेकेदारों का, तथाकथित अबला-सहायकों का आशीर्वाद प्राप्त था। मां भी मान गईं; लेकिन मैं नहीं मानी। भारतीय नारी की आर्थिक-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरणार्थी-बच्चों के लिए वस्त्रों का प्रबंध करने में संलग्न कालिज की छात्राएं।

पराधीनता मुझे सह्य नहीं थी। मैं पढ़ी-लिखी तो थी ही, मैंने स्वावलंबिनी बनने का निश्चय किया या यों कहिये कि पुरुष की शासन-सत्ता से विद्रोह करने का निश्चय किया। मुझे अध्यापिका बनना अथवा आफिस में क्लर्क बनना पसन्द नहीं था। मैंने नर्स बनने का निश्चय किया—शायद हृदय में छिपी बैठी चिरन्तन सेवा-वृत्ति के कारण! स्त्रियों को चहारदीवारी में कैद रखने के पक्षपाती, रूढ़िवादी और स्वार्थी पुरुष शासित समाज ने मेरा विरोध किया, मुझ पर लांछन लगाये; परन्तु मैं अपने निश्चय पर अडिग रही और ट्रेनिंग प्राप्त करने के पश्चात मैं नर्स बनकर इस अस्पताल में नौकर होगई। अब मैं अपनी बूढ़ी मां और दोनों छोटे भाइयों का भरण-पोषण कर रही हूं — दूसरे शब्दों में अब मैं स्वावलंबिनी हूं, आत्म-निर्भर हूं, आर्थिक रूप से स्वतन्त्र हूं। मैंने अभी विवाह नहीं किया; परन्तु एक दिन विवाह तो करना ही होगा। मैं समझती हूं कि मेरा दाम्पत्य-जीवन अत्यन्त सुखद और आनन्दपूर्ण होगा। मैं अपने पति पर भार न होकर, दो रोटियों के लिये उसकी चेरी न होकर उसकी सहायिका, उसकी सहयोगिनी, उसकी समकक्षिणी होऊंगी। गार्हस्थ्य-जीवन की गाड़ी दो बराबर के पहियों पर चलती हुई सुख और आल्हाद की मंजिल पर पहुंचेगी।

आजकल भारतीय स्त्रियों में सामाजिक समानता प्राप्त करने का आंदोलन चल रहा है। मैं समझती हूं कि बिना आर्थिक-स्वतन्त्रता के स्त्री-पुरुष की समानता बिल्कुल असम्भव है। जो स्त्रियां घर की चहारदीवारी से निकल कर कुछ आजीविका कमा सकती हैं उन्हें लज्जा अनुभव नहीं करनी चाहिये। नर्सिंग का काम स्त्रियों के सर्वथा अनुकूल बैठता है।

यह तो हुआ केवल आर्थिक तथा व्यक्तिगत पहलू। आजीविकोपार्जन के लिये नर्सिंग के काम को चुनते समय मेरे सामने मानवीय तथा राष्ट्रीय पहलू भी था।

यह तो सर्वविदित है कि अन्य देशों के मुकाबले में हमारे देश के स्त्री-पुरुषों का स्वास्थ्य बहुत गिरा हुआ है। जबकि यूरोप और अमेरिका में आयु का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुपात ५० व ६५ वर्ष है, यहां भारत में केवल २७ वर्ष है। अतः यहां जनता के स्वास्थ्य-सुधार के लिये अधिक से अधिक डाक्टरों, नर्सों और अस्पतालों की आवश्यकता है। स्त्रियों का यह कर्तव्य है कि वे नर्सें अथवा डाक्टर बन कर राष्ट्र के स्वास्थ्य-सुधार के काम को आगे बढ़ायें।

स्त्रियों को नर्सिंग की ट्रेनिंग देने के लिये भारतीय सरकार काफी सचेष्ट है। जगह-जगह नर्सिंग कालिज खुल रहे हैं। मैं समझती हूं कि हम स्त्रियों को इनसे लाभ उठाना चाहिये। इंग्लैण्ड आदि उन्नत देशों में सामान्य स्त्रियों को भी नर्सिंग की शिक्षा देने की व्यवस्था की गई है। इसका सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि महामारियां फैलने पर अस्पतालों में मरीजों की रेल-पेल नहीं होती और घरों पर ही उपचार किया जा सकता है। यदि इंग्लैण्ड जैसे समृद्ध देश में यह व्यवस्था उपयोगी व सफल हो सकती है तो भारत में तो इसकी सफलता और भी असंदिग्ध है। यह शोचनीय ही है कि सारे भारत में अकेले लन्दन शहर जितनी भी नर्सें नहीं हैं। विदेशों में स्त्री-सेविकाओं का संगठन करके बीमारियों की रोकथाम में उनसे मदद ली जाती है। वे घरों से लेकर युद्ध-मोर्चों तक रोगियों और घायलों को नव-जीवन देती हुई अपने सेवा-व्रत का अनुपम आदर्श प्रस्तुत करती हैं।

बात कहां की कहां पहुंच गई। मैं कह रही थी कि नर्स के पेशे को चुनते समय मेरे सामने राष्ट्रीय पहलू भी था और आज भी है। मुझे गर्व है कि मैं नर्स के रूप में राष्ट्र की बहुमूल्य सेवा कर रही हूं। मैं स्वावलंबिनी भी हूँ और उससे बढ़ कर राष्ट्र-सेविका हूं। अपने इस काम को मैं बहुत सम्मानित और गौरवास्पद मानती हूं।

स्वास्थ्य-रक्षा के सिद्धांतों और रोगियों की परिचर्या के काम को दृष्टि में रखते हुए मुझे हमेशा साफ-सुथरा और हंसमुख रहना पड़ता है। चूंकि मैं स्त्री को पुरुष के मुकाबले में किसी तरह भी हीन नहीं मानती, इसलिये मैं झुक कर नहीं, बल्कि जरा तन कर चलती हूं! चूंकि मैं स्वास्थ्य के नियमों का कठोरता से पालन करती हूं, इसलिये मेरे मुख पर—प्रसाधन-शृंगार-वहीन मुख पर अनायास ही एक मोहकता, एक दीप्ति रहती है। मेरे इसी साफ-सुथरेपन को, हीनभावना रहित चलन को, मानसिक और शारीरिक स्वस्थता को यदि पुरुष-शासित समाज उच्छृंखलता कहता है तो मेरी बला से! मुझे उच्छृंखल कहते समय समाज पुरुष के पापी और लोलुप मन की उच्छृंखलता को भूल जाता है!

व्यायाम से स्वास्थ्य और स्वास्थ्य से सौंदर्य—ये लड़कियां शायद इसी 'गुर' पर अमल कर रही हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमेरिका में नारी-विद्रोह

चालू फैशन

नारी क्या पहने, यह निश्चय पुरुष-समाज करता है। यह सत्य अमेरिका में केवल इस लिये लागू नहीं कि नारी का साज-सिंगार पुरुष के लिये है, बल्कि इसलिए भी कि कपड़ों के व्यापारी पुरुष हैं; विज्ञापन-व्यापार भी पुरुषों के हाथ में है। यदि प्रत्येक वर्ष-दिन फैशन न बदला करें, तो ये व्यापारी क्या कमायें?

अमेरिकन नारी की 'स्कर्ट' (घघरा) अब तक घुटनों के जरा ऊपर तक थी। इस वर्ष फैशन बनाने वालों, कपड़े के व्यापारियों और विज्ञापनबाजों ने अमेरिकन नारी पर घुटनों से नीचे स्कर्ट पहनने का जबरदस्त आंदोलन किया है। आज अमेरिका में नारी सर्वत्र इस अन्याय का विरोध कर रही है। सहस्रों संघ बने हैं, सभाएं और भाषण हो रहे हैं, हड़तालें हो रही हैं और धमकियां दी जा रही हैं; पर व्यापारी मस्त हैं। उन्होंने [illegible] कर दी है। फैशन तथा स्त्रियों की पत्रिकाओं में बराबर लम्बी 'स्कर्टों' का प्रचार हो रहा है, लम्बी स्कर्टें पहने सुन्दरियां तथा प्रतिष्ठित महिलाओं के चित्र प्रकाशित हो रहे हैं। स्त्रियों की पत्रिकाओं को भी विरोध की परवाह नहीं, क्योंकि उन्होंने अपना विज्ञापन-व्यापार देखना है। यदि वे व्यापारियों के विरुद्ध जांय तो विज्ञापन मिलना बन्द हो जाय। व्यापारी कह रहे हैं—"स्त्रियां झक मार कर लम्बी स्कर्ट पहनेंगी। जहां कुछ-एक ने पहनना शुरू कर दिया, देखादेखी फैशन में पिछड़े न रह जाने के कारण दूसरी भी खरीदेंगी।"

नया फैशन

नारी और व्यापारी के इस झगड़े में बेचारा पति भी परेशान है। कई पति-संघों ने भी विरोध किया है कि उन्हें पत्नियों के लिए नए कपड़े खरीदने होंगे तथा 'स्कर्ट' लम्बी होने के कारण मूल्य भी अधिक होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिंदी

(कुमारी इन्दुलेखा)

भारत में प्रत्येक हिंदू स्त्री जब स्नानादि के बाद शृंगार करने बैठती है, तो वह बिंदी लगाना नहीं भूलती। बिंदी शृंगार व सौंदर्य-वृद्धि का अनुपम साधन तो है ही, साथ ही यह भारतीय नारी के सौभग्य का भी चिह्न है। अब तो इसका रिवाज अन्य जातियों और देशों की शृंगार-प्रिय स्त्रियों में भी होता जा रहा है।

बिंदी सिंदूर, रोली, इंगुर, केशर, चन्दन, कस्तूरी, काजल इत्यादि अनेक वस्तुओं से लगाई जाती है। गोरे और प्रशस्त मस्तक पर किसी भी रङ्ग की बिंदी सुन्दर लग सकती है। सामान्यतया लाल रङ्ग की बिंदी ही प्रचलित है।

सौंदर्य-वृद्धि के अन्य उपचारों की भांति बिंदी लगाना भी एक कला है, जिसका ज्ञान प्रत्येक शृङ्गार-प्रिय स्त्री को अवश्य होना चाहिये। कलापूर्ण ढंग से लगी हुई बिंदी माथे व चेहरे के प्राकृतिक दोषों को भी छिपा देती है।

बिंदी माथे और चेहरे की आकृति के अनुकूल होनी चाहिये। छोटे, चिपटे व तंग माथे पर छोटी बिंदी और चौड़े व उन्नत माथे पर बड़ी बिंदी अधिक फबती है। आधुनिक ढंग के केश-विन्यास द्वारा संकरे माथे को प्रशस्त और अत्यधिक प्रशस्त माथे को संकरा किया जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुखाकृति को देखते हुए गोल के अतिरिक्त चौड़ी, लम्बाकार, त्रिभुजाकार अथवा अन्य आकार व बनावट की बिंदी लगाई जा सकती है। चित्र में दिये गये डिजाइन अनुकरणीय हैं।

बिंदी लगाते समय केश-विन्यास का ध्यान भी रखना चाहिये। आजकल जूड़े का रिवाज अधिक है। यदि जूड़ा नीचे गर्दन पर बांधा जाये तो बिंदी गोल होनी चाहिये, यदि जूड़ा गर्दन से ऊपर बांधा जाये तो बिंदी चौड़ी होनी चाहिये और यदि जूड़ा मणिपुरी फैशन का हो तो बिंदी लम्बाकार होनी चाहिये।

बिंदी यदि साड़ी अथवा अवसर विशेष के साथ मेल खाती हो तो और भी अच्छा है।

संक्षेप में, बिंदी आपके व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करने में समर्थ होनी चाहिये।

शृंगार-प्रिया

एक दम्पति गाड़ी छूट जाने पर स्टेशन पहुचे। गाड़ी छूट जाने के कारण पति झल्ला कर पत्नी से बोला — 'अगर तुम बनाव-सिंगार में इतनी देर न लगती, तो गाड़ी कभी न छूटती।'

पत्नी ने कहा — 'अगर आप इतनी जल्दी न मचाते, तो दूसरी गाड़ी के लिये ज्यादा प्रतीक्षा न करनी पड़ती।'

★

समस्त परिवार के मनोरंजन
के लिये
"मनोरंजन"
खरीदिये और पढ़िये।

काम की बातें

कपड़ों के दाग व धब्बे कैसे दूर करने चाहियें ?

— यदि इस्त्री करते समय असावधानी से कपड़े पर दाग पड़ जाये तो उसे तुरन्त पानी में भिगो दीजिये।

— यदि स्याही अथवा जंग का दाग लग जाये तो उस पर नींबू के रस में नमक मिला कर मलिये और फिर कपड़े को धूप में रखकर सुखाइये। यदि पहली बार सफलता न मिले तो फिर यही प्रयोग कीजिये।

— टिंकचर आयडीन और कत्थे के दाग कपड़े को ताज़ा दूध में भिगोने से उतर जाते हैं।

— यदि शराब गिरने से दाग पड़ जाये तो कपड़े को कुछ समय के लिये उबलते हुए दूध के ऊपर भाप में रखिये।

— यदि उंगली वगैरा कट जाने से रेशमी कपड़े पर खून का दाग पड़ जाये तो ठण्डे पानी में नमक घोलकर उसमें कपड़े को रात भर रखिये। फिर उसे सामान्य रीति से धो डालिये।

— तेल आदि के धब्बे पैट्रोल से दूर हो जाते हैं। पैट्रोल लगाने से पहले कपड़े के नीचे स्याहीचूस रख लेना चाहिये। पैट्रोल का प्रयोग धब्बे के किनारों से आरम्भ करके मध्य की ओर करना चाहिये; इस तरह धब्बा फैलता नहीं।

— यदि खट्टा फल खाते समय कपड़े पर दाग पड़ जाये तो उस पर किसी साफ धज्जी से 'एमोनिया' मलिये। यदि कपड़ा रङ्गदार हो और रङ्ग के उड़ने का डर हो, तो 'एमोनिये' में थोड़ा-सा नमकीन पानी मिला लीजिये।

— यदि रेशमी कपड़े की जरदोजी अथवा गोटे किनारी की चमक-दमक मन्द पड़ गई हो तो उस पर डबल रोटी के टुकड़े मलिये।

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाल मनोरंजन

भारत-वन्दन

(श्री चिरंजीत)

जय जय भारत देश हमारा, जय जय भारत प्यारा !

मुकुट हिमालय साजे सिर पर,
गंगा-यमुना हार मनोहर,
हरियाली का बाना सुन्दर,

रंग बिरंगे कलि-फूलों से सजा हुआ तन सारा !
जय जय भारत देश हमारा, जय जय भारत प्यारा !

छः ऋतुएँ आ रूप सँवारें,
सागर-लहरें चरण पखारें,
आरति सूरज चांद उतारें,

तारक-दीपों से नीलम का जगमग मन्दिर न्यारा !
जय जय भारत देश हमारा, जय जय भारत प्यारा !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुन्नी-बिल्ली

(श्री निरंकार देव सेवक एम० ए०)

चींटा, भाग मुन्नी आई।
चूहा, भाग बिल्ली आई।

बिल्ली चूहों को धमकाती,
अक्सर उनको बहुत डराती,
उनको मीलों तक दौड़ाती,
खुद भी हांफ-हांफ थक जाती।
चूहे बिल में घुस जाते जब—
बिल्ली खड़ी खड़ी पछताती।
चूहा, भाग बिल्ली आई।
चींटा, भाग मुन्नी आई।

मुन्नी चींटे खूब पकड़ती,
उनके पीछे ऐसी पड़ती
उनको जहां देखती लड़ती,
उनकी गरदन पकड़ रगड़ती।
लेकिन चिपट काट खाता जब—
चींटा, मुन्नी नहीं अकड़ती।
चींटा, भाग मुन्नी आई।
चूहा, भाग बिल्ली आई।

मुन्नी बिल्ली में क्या अन्तर,
बिल्ली मुन्नी एक बराबर,
बिल्ली चूहे पकड़ न पाती,
मुन्नी चींटों से घबराती।
बिल्ली नौ सौ चूहे खानी,
मुन्नी सौ चींटों की नानी।
बिल्ली मुन्नी दोनों बहनें,
दोनों बहनों के क्या कहने।

मुन्नी, भाग चींटा आया।
बिल्ली, भाग चूहा आया।

"भोंपू"

(शशिकांत)

भूपेन्दर है मित्र हमारा,
दुनिया भर में सब से न्यारा।
बौने जैसा कद का छोटा,
फूले कुप्पे जैसा मोटा।
आबनूस-सा रंग का काला,
शिवरलेट का माडल आला।
छोटी छोटी दोनों अंखियां,
जैसे मोटर की हों बतियां।

मोटे मोटे होठ लटकते,
जैसे हों मडगार्ड अटकते।
पढ़ना लिखना कुछ ना आता,
मास्टर जी से बैंतें खाता।
जब पिटता तो रोता ऐसे,
मोटर बोले "भोंपू" जैसे।
इसी लिये तो भूपेन्दर का
"भोंपू" हमने नाम है रक्खा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जादू का टल्ला

(कुमारी उषा)

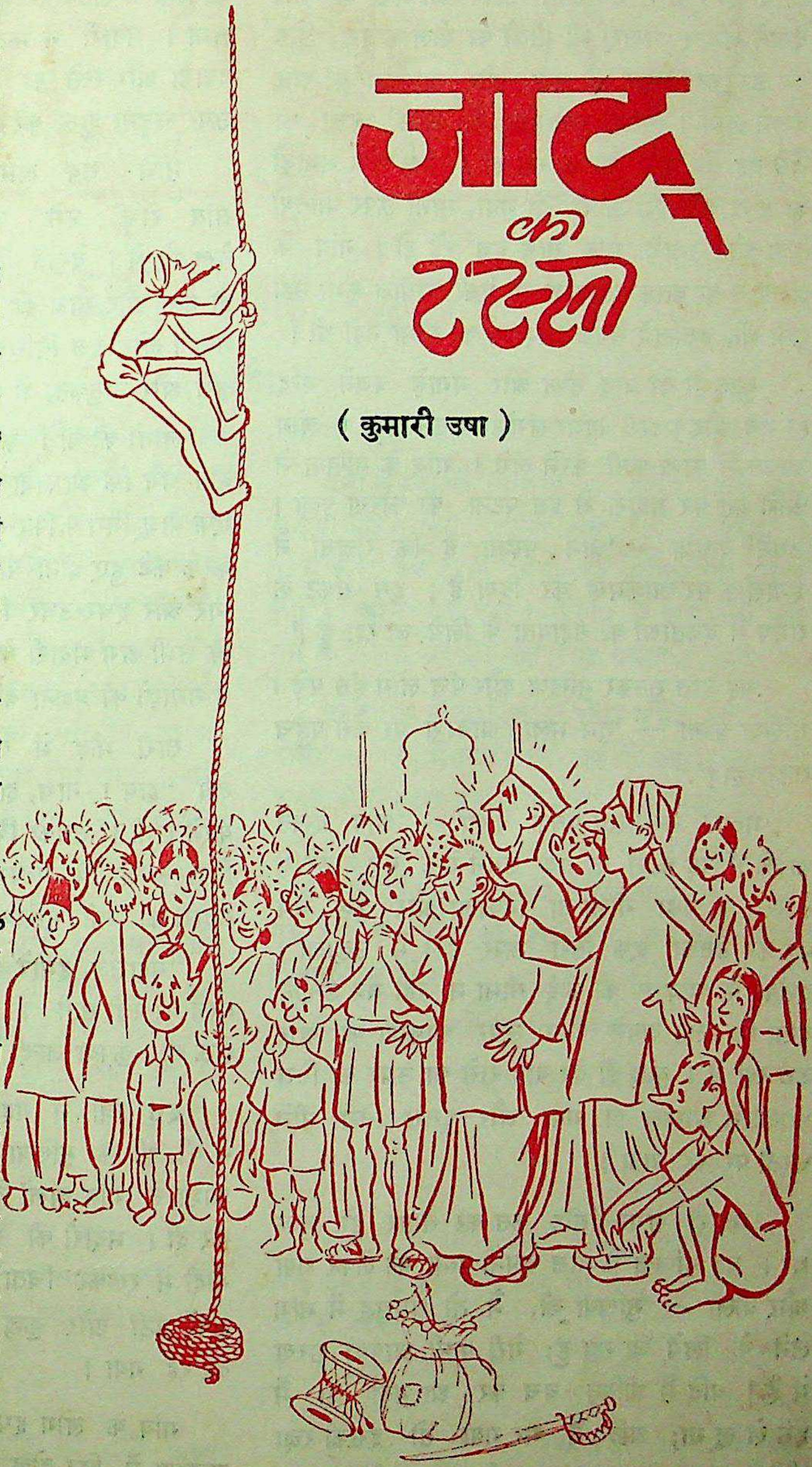

कुछ समय हुआ, सिंहपुर गांव में बाहर से एक मदारी आया। उसके साथ उसकी पत्नी भी थी। चौपाल के पास मदारी ने अपना 'भानमती का पिटारा' रखा और फिर उसमें से एक बांसुरी और डमरू निकाल कर बजाने लगा। बांसुरी और डमरू की आवाज सुनकर धीरे-धीरे सारा गांव वहां इकट्ठा हो गया। जो लोग खेतों में काम कर रहे थे, वे भी हल और हंसिया छोड़ कर वहां पहुंच गये। तमाशा देखने का मोह गांव के मुखिया और पंचों को भी वहां खींच लाया।

जब वहां काफी भीड़ जमा हो गई, तो मदारी ने बांसुरी बजाना छोड़ कर ऊंचे स्वर से कहा — 'भाइओ, मैं कामरूप देश का मदारी हूं। आज मैं आप को जो-जो खेल दिखाऊंगा, वैसे न कभी आपने देखे होंगे और न कभी सुने होंगे।'

मदारी की इस घोषणा से दर्शकों का कौतूहल और भी बढ़ गया। भीड़ में जो लड़के खड़े थे, वे कूद कर आगे बैठ गये। मदारी ने थैले से बहुत-सी चीजें बाहर निकाल कर रखीं, जिनमें एक तलवार भी थी। खेल आरम्भ हुआ। दर्शक ध्यान से देखने लगे। लड़के कभी उछलते, कभी हंसी से लोट-पोट हो जाते।

मदारी गोलों का खेल दिखा रहा था कि इतने में ऊपर आकाश से ढोल और नगाड़ों का शब्द सुनाई दिया। यह शब्द एकाएक बहुत ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊंचा हो गया। सब लोग ऊपर आकाश की ओर देखने लगे। मदारी भी गोलों का खेल अधूरा छोड़ कर उठ कर खड़ा हो गया और आकाश की ओर देखने लगा। उसकी मुख-मुद्रा से जान पड़ता था जैसे वह सब कुछ समझ रहा हो। ढोल और नगाड़ों का शब्द और भी ऊंचा हो गया, मानों ऊपर बीसियों ढोल और नगाड़े एक साथ बज रहे हों। गांव के लोगों ने आजतक आकाश से ऐसी आवाज कभी नहीं सुनी थी, इसलिये सबके आश्चर्य की सीमा नहीं थी।

कुछ ही देर बाद ढोल और नगाड़े बजने बन्द हो गये और मदारी लंगर-लंगोट कसने लगा। लोग आपस में काना-फूसी करने लगे। गांव के मुखिया ने आगे बढ़ कर मदारी से इस घटना का कारण पूछा। उसने बताया — 'जान पड़ता है कि राक्षसों ने इन्द्रलोक पर आक्रमण कर दिया है। इस संकट के समय में देवताओं की सहायता के लिये जा रहा हूं।'

यह बात सुनकर मुखिया और पंच लोग हंस पड़े। मुखिया बोला — 'तुम भला आकाश पर कैसे पहुंच सकते हो?'

मदारी गम्भीरता पूर्वक बोला — 'आप देखते जाइये।' यह कहने के बाद उसने एक बड़े टोकरे में से रस्से का बड़ा गोला-सा निकाला और कुछ मत्र पढ़ कर उसका एक सिरा ऊपर हवा में उछाला। दर्शकों के आश्चर्य की कोई सीमा न रही जब उन्होंने देखा कि रस्सा अपने आप ऊपर आकाश की ओर उठ रहा है। कुछ ही देर बाद रस्से का ऊपर का सिरा आंखों से ओझल हो गया और दूसरा सिरा नीचे धरती पर रह गया।

मदारी लंगर-लंगोट कस कर तैयार हो चुका था। वह मुखिया के पास अपनी पत्नी को लेकर गया और बोला — 'मुखिया जी, मैं तो धर्मयुद्ध में भाग लेने के लिये जा रहा हूं; मेरी पत्नी आपकी शरण में है। यदि मैं जीवित बच कर आ गया तो मैं इसे ले लूंगा; यदि मैं मर गया तो इसकी रक्षा कीजिये।' मदारी यह बात कह ही रहा था कि आकाश में फिर ढोल और नगाड़ों का शब्द गूंजने लगा और आकाश से लटकता हुआ रस्सा जोर-जोर से हिलने लगा। मदारी ने झट तलवार को अपने दांतों में दबाया और रस्से को पकड़ कर कुछ मंत्र पढ़ते हुए ऊपर चढ़ना शुरू कर दिया।

नीचे सब लोग आश्चर्य और भय से सांस रोके उसे ऊपर चढ़ते हुए एकटक देख रहे थे। देखते ही देखते वह आंखों से ओझल हो गया और साथ ही रस्से का हिलना भी बन्द हो गया। लोग इस विचित्र घटना पर टीका-टिप्पणी करने लगे और उत्सुकता से परिणाम की प्रतीक्षा करने लगे।

लोगों को बातें करते हुए अभी दो मिनट ही बीते होंगे कि आकाश से रक्त में लथपथ कटा हुआ एक बाजू गिरा। फिर दूसरा बाजू गिरा। फिर एक-एक करके कटे हुए दोनों पांव, टांगें, सिर, धड़ धरती पर गिरे और इधर-उधर बिखर गये। लोगों ने पहचाना कि सभी अंग मदारी के ही हैं। उधर आकाश में ढोल व नगाड़ों का बजना बन्द होगया।

सारी भीड़ में खलबली मच गयी। मदारी की स्त्री "हाय! नाथ, हाय! नाथ," कहती हुई विलाप करने लगी। उसका विलाप इतना करुण और हृदय-विदारक था कि पत्थर भी पसीज जाये। रोती हुई मदारी की स्त्री मुखिया के पास गई और बोली—

"महाराज, हमारे देश में यह प्रथा है कि पति के मरने पर स्त्री सती हो जाती है। मैं भी अब सती होऊंगी। कृपया जल्दी से चिता तैयार करवा दीजिये।"

इस स्त्री ने यह प्रार्थना इस तरह करुण भाव से की थी कि मुखिया 'ना' न कर सका। मुखिया की आज्ञा से गांव वालों ने तुरन्त ही वहां चिता तैयार कर दी। मदारी की स्त्री पति के कटे हुए शरीर को गोदी में रखकर चिता पर बैठ गई। आग लगी, लपटें उठीं और कुछ देर में वहां केवल राख का ढेर रह गया।

गांव के लोग इधर से निवृत्त हुए ही थे कि आकाश में फिर ढोल और नगाड़े बजने लगे और

(शेष पृष्ठ ६२ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

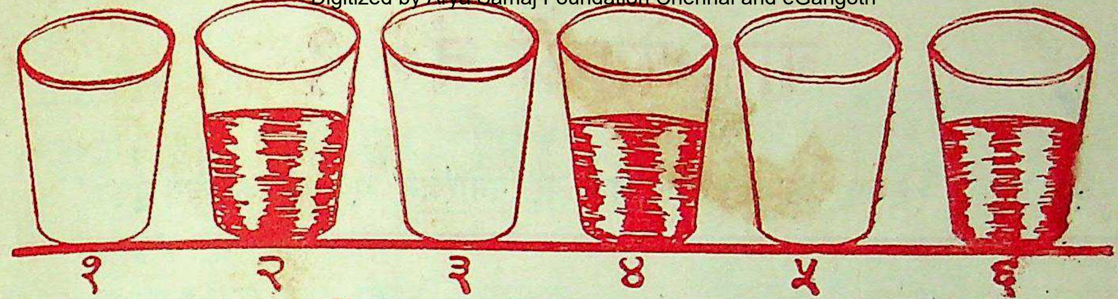

गिलासों का खेल

(सरोज)

सुरेश ने अपने सभी मित्रों को गिलासों का खेल दिखाने के लिये अपने घर बुलाया। उन्हें वह एक कमरे में ले गया, जहां एक मेज पर शीशे के छः गिलास रखे हुये थे। सुरेश ने तीन गिलासों को आधा-आधा पानी से भर दिया और बाकी तीनों को खाली रहने दिया। फिर उसने इन छहों गिलासों को सीधी लाइन में ऊपर दिये चित्र के अनुसार रखा—अर्थात् पहले खाली गिलास, फिर आधा भरा, फिर खाली, फिर आधा भरा, फिर खाली और फिर आधा भरा। गिलासों को इस प्रकार रखने के बाद सुरेश ने अपने मित्रों को सम्बोधित करते हुए कहा — 'क्या तुम में से कोई गिलासों के इस क्रम को इस तरह बदल सकता है कि तीनों आधे भरे गिलास एक साथ एक ओर हो जायें और शेष तीनों खाली गिलास एक साथ एक ओर ? शर्त यह है कि केवल एक गिलास को ही अपने स्थान से उठाना पड़े; बाकी पांचों जहां हैं, वहीं पड़े रहें।'

सभी लड़कों ने गिलासों पर दृष्टि जमाये हुए मन ही मन तरीका सोचना शुरू किया। सुरेश ने काफी समय तक अपने मित्रों की प्रतीक्षा की, परन्तु कोई भी आगे नहीं बढ़ा। सुरेश ने पूछा — 'क्या तुम में से कोई भी क्रम नहीं बदल सकता ?'

सबने सिर हिला दिया। सुरेश आगे बढ़ा और बोला — 'तो, मैं क्रम बदल कर दिखाता हूं। शर्त के अनुसार मैं केवल एक ही गिलास को उठाऊंगा।'

उसके सारे मित्र 'वाह वाह' कर उठे जब सुरेश ने शर्त का पालन करते हुए तीनों आधे भरे गिलास एक साथ एक ओर कर दिये और शेष तीनों खाली गिलास एक ओर।

जानते हो, उसने यह कैसे किया ?

(उत्तर पृष्ठ के नीचे देखो)

स्कूल में

क्लास में अध्यापक जब पढ़ा रहा था तो मोहन बीच-बीच में बोल उठता था। अध्यापक को क्रोध आया और मोहन को डांटकर वह बोला — 'इस क्लास के क्या तुम अध्यापक हो ?'

मोहन — जी नहीं।

अध्यापक — तो फिर बेवकूफ की तरह अपनी ही क्यों हांक रहे हो ?

* * *

मास्टर — यदि मेज पर पांच मक्खियां बैठी हों और उनमें से एक मैंने मार दी; बताओ, बाकी वहां कितनी रहेंगी ?

एक लड़का — एक — जो मर गई है।

सुरेश ने गिलास नं० २ को उठाकर उसका पानी गिलास नं० ५ में डाल दिया और उसको फिर वहीं अपने स्थान पर रख दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाल-पेहली नं० १

१५ नवम्बर १९४७ तक सही उत्तर आने पर 'मनोरंजन' एक वर्ष के लिये मुफ्त

दायं से वायं

१. एक नये पत्र का नाम।
५. 'भगवान' के उलट-पलट अक्षर।
७. इससे कौन नहीं डरता!
८. प्राचीन काल में इसका बहुत रिवाज था।
१०. पहले को छोड़ कर
१२. इसे उलटने से एक समय-सूचक शब्द बन जाता है।
१४. पाताल

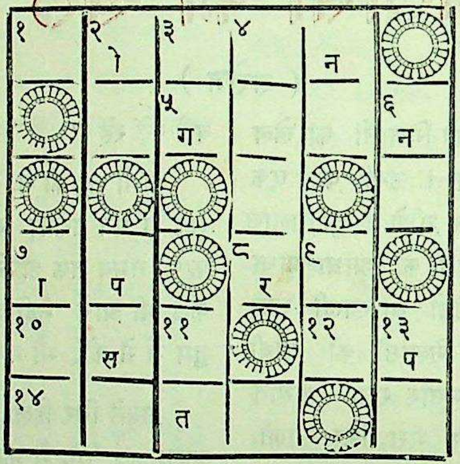

ऊपर से नीचे

२. सोने से भी कीमती कागज का टुकड़ा।
३. इंद्र-धनुष में ये सात होते हैं।
४. हमारे प्रिय नेता।
६. इस से पानी मिलता है।
९. आज के युद्धों में इसकी अपेक्षा वायु-सेना का अधिक महत्व है।
१०. निकट का उलट।
११. यह न हो तो जीना कठिन हो जाये।
१३. दो अक्षरों का एक सरल-सा शब्द जिसके कम से कम तीन अर्थ हो सकते हैं।

पहेली के नियम

१. उत्तर के साथ चार आने के टिकट आने चाहियें।
२. केवल १४ वर्ष की आयु तक के लड़के-लड़कियां ही इस प्रतियोगिता में भाग ले सकते हैं।
३. उत्तर 'मनोरंजन' के इसी पृष्ठ की पहेली को काट कर और भरकर भेजना चाहिए। किसी और कागज पर अलग से भेजे गये उत्तर पर विचार नहीं किया जायेगा। एक व्यक्ति एक से अधिक भी भेज सकता है।
४. खानों को स्याही से सुस्पष्ट लिखे अक्षरों से भरना चाहिये। कटे छंटे या पैंसल आदि से लिखे अक्षरों को सही नहीं माना जायेगा।
५. उत्तर १५ नवम्बर १९४७ को शाम तक 'मनोरंजन' कार्यालय में पहुंच जाना चाहिये।
६. संपादक का निर्णय अंतिम होगा।

नोटः—सही उत्तर दिसम्बर १९४७ के 'मनोरंजन' में प्रकाशित होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

इन्द्र विद्यावाचस्पति
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
चन्द्रलोक, जवाहर नगर
दिल्ली द्वारा

नव-प्रकाशन

गरीबी या अमीरी

लेखक — सेठ गोविन्ददास
प्रकाशक—हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद
पृष्ठ संख्या—१६५ मूल्य—दो रुपये

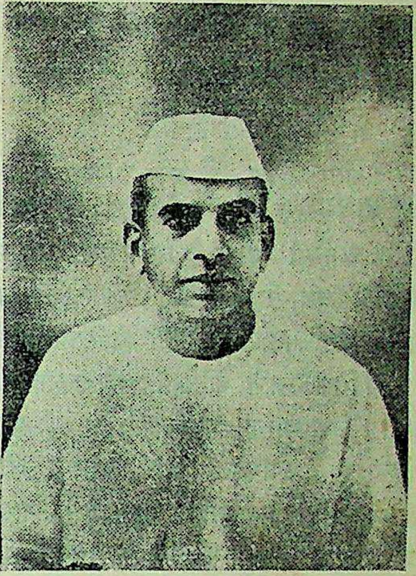

सेठ गोविंददास एम० एल० ए०

प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी के यशस्वी नाटककार सेठ गोविददास का तीन-तीन दृश्यों के पांच अंकों का नवीनतम नाटक है और सर्वोत्तम कृति के रूप में लेखक को इस पर हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद की ओर से १२००) का पुरस्कार दिया गया है।

जैसा कि नाम से स्पष्ट है, इसका विषय है धन की समस्या—बुरे उपायों से उपार्जित तथा उत्तराधिकार द्वारा प्राप्त धन बनाम श्रम और ईमानदारी से अर्जित धन। इस समस्या का समाधान लेखक ने विशुद्ध गांधीवादी आदर्शों के अनुरूप उपस्थित किया है। (सेठजी गांधीवादी जो ठहरे!) उत्तराधिकार के थोथे आलसी निर्वाह के मुकाबले में श्रममय, कर्मण्य जीविका को श्रेष्ठ व स्पृहणीय माना है।

नाटक की कथा संक्षेप में यों हैः—दक्षिणी अफ्रीका में बसे हुए धनकुबेर लक्ष्मीदास की इकलौती लड़की अचला विद्याभूषण नामक एक कठोर आदर्शवादी परन्तु धनहीन लेखक से प्रेम करती है। विद्याभूषण का विश्वास है कि लक्ष्मीदास ने सारा धन बुरे उपायों से, गरीबों का खून चूस कर उपार्जित किया है। अतः जब अचला के साथ उसके विवाह की बात उठती है तो वह यह शर्त लगाता है कि अचला पिता की इस सम्पत्ति के उत्तराधिकार से वंचित रहना स्वीकार कर ले। अचला आरम्भ में आनाकानी करती; परन्तु जब विद्याभूषण अफ्रीका से भारत की ओर रवाना होता है तो अचला भी उसी जहाज में सवार हो जाती है और रास्ते में उसकी शर्त पूर्ण रूप से मान लेती है। बम्बई पहुंचकर दोनों का विवाह हो जाता है। वे कठोर श्रम का जीवन व्यतीत करने लगते हैं। विद्याभूषण नोबल-प्राइज प्राप्त करने के स्वप्न देखता है। उनके एक पुत्र उत्पन्न होता है—सरस्वतीचन्द्र। कुछ समय बाद वैभव और सुख में पली अचला का मन गरीबी के जीवन से उकता जाता है और विद्याभूषण के साथ अनबन हो जाने पर वह अपने पुत्र को लेकर अपने पिता के पास वापस दक्षिण-अफ्रीका लौट आती है। यहां आकर उसे अपनी भूल का अनुभव होता है। वह अपने आप को अपने पति के आदर्शों और सिद्धांतों के अनुरूप ढालने का निश्चय करती है। इस उद्देश्य से वह अपने लड़के के साथ पुनः भारत लौटती है और मध्य प्रांत के एक गांव में अध्यापिका बनकर श्रम द्वारा जीविकोपार्जन करती हुई लोक-सेवा में लग जाती है। लक्ष्मीदास के मरने पर उसे करोड़ों की सम्पत्ति उत्तराधिकार में मिलती है; परन्तु वह सारी सम्पत्ति उन गरीब हिन्दुस्तानियों के हित के लिये दान में दे देती हैं जिनके कुटुम्बियों ने अफ्रीका में जाकर मेहनत मजदूरी करके उसे सरसब्ज बनाया था। उधर विद्याभूषण घोर गरीबी भोगता हुआ अपने आदर्शों और सिद्धांतों से गिर जाता है और कुमार्गी बन जाता है। मद्यपान से उसकी सेहत खराब हो जाती है। वह अपने ही सिद्धांतों और

आलोचना के लिये प्रत्येक पुस्तक या पत्र-पत्रिका की दो-दो प्रतियां आनी चाहिये। —सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदर्शों को गलत समझने लगता है। जब उसे अचला के सर्वस्वदान का समाचार मिलता है तो वह उसे इस "बर्बादी" से रोकने के लिये गांव में पहुँचता है। वह हृद्रोग-ग्रस्त है, अतः गांव में पहुंचते ही मर जाता है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, नाटक का विकास और पर्यवसान गांधीवादी विचार धारा के अनुरूप होता है। अचला श्रममय जीवन बिताने के लिये, साधना के लिये, लोक-सेवा के लिये गांव की ओर जाती है। पिता की सम्पत्ति को वह देश की औद्योगिक उन्नति के लिये कल-कारखानों पर नहीं लगाती। विद्याभूषण आदर्शवादी तो है, परन्तु उसमें अपेक्षित धैर्य, कर्मण्यता और साधना की कमी है, इसीलिये उसका घोर पतन होता है। नाटक पढ़ते-पढ़ते प्राचीन हिन्दू संस्कृति के कीर्तिस्तम्भ रघु व हर्षवर्धन जैसे सर्वस्वदानी राजाओं के साथ-साथ रूस के उन 'निहलिस्ट' लोगों का स्मरण हो आता है जिन्होंने अपनी सम्पत्तियों को इस लिये त्याग दिया था कि वे उनका उपार्जन अनुपयुक्त मार्गों से हुआ मानते थे। रूस की 'निहलिस्ट' कथाओं का प्रभाव इस नाटक पर स्पष्ट है और इसे स्वयं नाटककार ने भी स्वीकार किया है।

नाटक के आरम्भ में दिये गये 'प्रकाशकीय' में हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान-आलोचक श्री धीरेन्द्र वर्मा ने कहा है कि इस रचना में सेठ जी की नाट्य-कला का पूर्णतया परिपाक हुआ है। वर्माजी की यह सम्मति पूर्णतया सत्य है। सेठ जी अब तक दर्जनों छोटे बड़े नाटक लिख चुके हैं और नाट्य रचना की टैकनीक पर उनका अधिकार कम से कम हिन्दी में तो अद्वितीय है। प्रस्तुत नाटक उनकी इस अद्वितीयता को भलीभांति सिद्ध करता है। उद्देश्य, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, प्रभावोत्पादन, मनोवैज्ञानिक शैली, अभिनेयत्व आदि सभी दृष्टियों से यह सफल कहा जा सकता है। आंतरिक भावों व द्वन्द्वों के प्रकाशन में नाटककार ने अद्भुत कौशल का परिचय दिया है।

नाटक के मुख्य तीन पात्र — विद्याभूषण-अचला और लक्ष्मीदास एक समस्यात्मक त्रिकोण बनाते हैं और तीन विभिन्न पहलुओं से प्रतिपाद्य विषय की अभिव्यंजना में सहायक होते हैं। नाटक के गीत उच्चकोटि के हैं, भावपूर्ण और हृदयग्राही हैं। आधुनिक ढंग और शैली के नाटक में गीतों का समावेश आपत्तिजनक हो सकता है, परन्तु इस नाटक में गीतों से स्वाभाविकता और प्रभावोत्पादकता बढ़ी ही है, नष्ट नहीं हुई। लगभग आधा दर्जन पात्रों में से केवल अचला ही गाती है। अचला जैसी राग-विरागात्मक आंतरिक द्वन्द्वों से ग्रस्त, भावप्रवण और कोमल लड़की यदि न गाये तो नितांत अस्वाभाविक जान पड़े।

नाटक में स्वगत-भाषणों (सालिलाकी) का प्रचुर परिमाण में प्रयोग हुआ है जो विचारणीय है। इब्सनादि नाटककारों द्वारा प्रतिपादित स्वाभाविकवाद की दृष्टि से नाटकों में स्वगत-भाषण नहीं होने चाहियें क्योंकि इन से स्वाभाविकता नष्ट होती है। परन्तु मैं समझता हूं कि इस नियम का हर जगह कठोरता से पालन करना मानव-प्रकृति और मनोविज्ञान के नितांत विरुद्ध होगा। असीम शोक में, भावावेग में, उन्माद अथवा गहरे नशे में प्रायः आदमी अपने आप से बातें करने लगता है। यदि ऐसे स्थानों पर स्वगत-भाषण न रखे जायें तो सर्वथा अस्वाभाविक जान पड़ेगा। पात्रों के आंतरिक द्वन्द्वों और भावों के प्रकाशन के लिए स्वगत-भाषण आवश्यक हैं। प्रस्तुत नाटक में केवल विद्याभूषण और अचला स्वगत-भाषणों (सालिलाकी) का आश्रय लेते हैं—और कोई पात्र नहीं। दोनों ही कल्पनाशील, भावुक, आत्मबद्ध और आंतरिक द्वन्द्वों के शिकार हैं। इस 'टाइप' के चरित्रों का अपने आप से बातें करना, 'loud thinking' करना सर्वथा स्वाभाविक है— पढ़ने में चाहे स्वाभाविक न लगे, परन्तु स्टेज पर उपयुक्त दृश्य-संविधान, अवलम्बन और अभिनय के साथ ये निश्चय स्वाभाविक जान पड़ेंगे। इसी में नाटककार का कौशल निहित है।

अस्तु। जिस भी पहलू से विचार करें यह नाटक उच्चकोटि का सिद्ध होता है। हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने इसे पुरस्कृत करके अपनी कला-मर्मज्ञता का ही परिचय दिया है।

— चिरंजीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिभाविका

(पृष्ठ २० का शेष)

"गोरा की मां।" स्वर क्षीण था।

नारी स्तब्ध रही।

"तुम बोलती नहीं, गोरा की मां।" उस वाणी में अटूट करुण-याचना थी। नन्दलाल का शरीर हिल नहीं रहा था। वह स्तब्ध पडा था—नींद में इतना नहीं जितना कि ढाई सौ मील पैदल चलने की थकन से आहत। उसके अंग प्रत्यंग शिथिल थे। एक मांसपेशी दूसरी का भार वहन करने की सामर्थ्य नहीं रखती थी।

थोड़ी देर तक वह शांत रहा। फिर कांपा। नारी ने उसके मस्तक पर तेजी से हाथ फेरा और निकट लेटे अनाथ बालक को थपथपाया। एक अनाथ नारी ने एक अनाथ बालक को अपने साथ ले लिया था और इस सम्पर्क से दोनों सनाथ हो गये थे। उसे पुत्र प्राप्त हो गया था और अनाथ को यदि मां नहीं तो अभिभाविका!

नारी की दृष्टि भूत की ओर फिर गई। वह पहिले ही विधवा थी। अपने देवर के यहां रहती थी। पता नहीं वे लोग कहां है? उसकी पुत्री कहां है? उसका दामाद कहां है? उसकी देवरानी और उनके बच्चे कहां है? सुना है उन सब की हत्या कर दी गई है। उनके रक्त की धारा को पार करके मनुष्य राजकीय सत्ता की ओर बढ़ा है। उसने कल्पना में उनके स्वरक्त सिंचित शरीरों को देखने की चेष्टा की। और अब उस का भविष्य!

क्या पुनः उनमें से किसी से भेंट की सम्भावना है? उसका जीवन, उसका अभिशप्त जीवन? परमात्मा ने उसी को जीवित रखना क्यों विचारा। उन लोगों के बदले उसे क्यों नहीं उठा लिया? अग्नि के मुख में वह क्यों नहीं पड़ी? रक्त चाहिये था तो उससे क्यों नहीं लिया? वह उन लोगों की सुरक्षा के निमित्त अपनी बोटी-बोटी देने को प्रस्तुत है। वे लोग कहां हैं? क्या वास्तव में.............

उसके नयनों से अश्रु बह चले। और अब उसे एक यह और मिल गया, जिसे अभिभाविका की आवश्यकता प्रतीत होती है। जो वयस्क होकर भी इतना भयभीत हो सकता है, वह अकेला कैसे जीवित रह सकेगा? उसकी रक्षा के लिये कोई चाहिये।

उसके आंसू बहते रहे। जलते नयनों से उसने वन के अंधकार को भेद कर उसका मुख देख लेना चाहा।

उसने हाथ से सहायता ली। उसके चिबुक-रोममय चिबुक का स्पर्श किया, अधर छुए, नासिका टटोली और उंगलियां कपोलों पर होती बरौनियों की ओर बढ़ीं। वे तर हो गईं। यह जल! उसने दूसरे कपोल का स्पर्श किया।

यह वयस्क रो रहा है, वास्तव में रो रहा है। इसकी सांसें बता रही हैं — इसकी चोट गहरी है, बहुत गहरी है। उसने उसे जगाया।

"सुनो जी, सुनो?"

व्यक्ति कुनमुनाया।

"सुनो", नारी ने स्निग्ध स्वर से कहा।

"मैं जीना नही चाहता। भगवान उठाले मुझे। मैं अब किसके लिये जिऊं, मैं ....।"

नारी ने उसके सिर पर हाथ फेरा।

"ओह, सभी कुछ तो......।"

"क्या बात है?" नारी ने पूछा।

"कौन? गोरा की मां, तुम आ गईं?"

नारी एक क्षण चुप रही। कुछ सोचा, फिर धीरे से बोली, "हां।"

"और हमारा गोरा? नहीं वह नहीं आ सकता, मैंने...।'

"तुम सो जाओ।"

"नहीं, गोरा नहीं आ सकता। हमने गंवा दिया है उसे।"

"वह यहीं हैं, तुम सो जाओ।"

"हूं।"

तब उस नारी ने उस बालक को उठाकर नन्दलाल के पास लिटा दिया। नन्दलाल जगा नहीं। नींद में ही उसने उसे हृदय से लगा लिया, उसे छाती से चिपका लिया।

"मेरा गोरा, तू आ गया! सो जा मेरे भैया!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उसे अपनी भुजाओं में लपेट कर वह शांत हो गया। नारी ने पिता-पुत्र को देखा। उसने अंधकार में नन्दलाल के हाथ में गति अनुभव की जैसे कि वह कुछ खोज़ रहा हो। उसने अपना हाथ उसके हाथ में दे दिया। निद्रित नन्दलाल ने उसे मुट्ठी में पकड़ लिया।

नारी को उसके सांस के स्वर में परिवर्तन अनुभव हुआ। उसे निश्चय हो गया कि अब इस पुरुष को वास्तविक शांति प्राप्त हो गई है और वह गाढ़ी निद्रा में अभिभूत हो गया है। पर, नारी को नींद नहीं आई, वह जैसे और भी दूर भाग गई।

अब क्या होगा।

यह बेचारा हत भाग्य पुरुष! कहां हैं इसके पत्नी पुत्र। निस्सन्देह यह उन्हें बहुत प्यार करता रहा होगा जो इस घोर निद्रा में भी उन्हें न भुला सका।

ठीक है। उसे निद्रा आ गई है। बहुत दूर से आया जान पड़ता है। और उसकी पुत्री, उसका देवर! क्या वह इस व्यक्ति और इस बालक को लेकर, इन भग्नावशेषों से नवीन परिवार नहीं बन सकती?

ओह, कैसा मोहक और सुखद भ्रम है इसका! हे भगवान, तू इसे ऐसा ही उठा ले; इसकी नींद अब न खुले। इसका सुखद भ्रम न टूटे। हे भगवान, यदि मैंने कभी कुछ पुण्य किये हों तो तू उन्हें ले ले और इस व्यक्ति के, इस दुर्बल व्यक्ति के नयन सदा के लिये इस सुखद स्वप्न के मध्य ही बन्द कर दे!

वह सोचती रही, उन दोनों के ऊपर पहरा देती रही।

सोचा—रात्रि सदा ऐसी ही रहे। अब प्रातः न हो। सूर्य न निकले। संसार की गति स्थिर हो जाये।

पर अधिक काल तक वह विचार भी न सकी। उसके नयनों के सम्मुख अंधकार भी चंचल हो गया। उसकी मांसपेशियों की शक्ति क्षीण होने लगी, सौ मील पैदल चलने का परिश्रम उभरने लगा। वह दो बार भूमी और फिर अपने सामने के दोनों विश्चेष्ट शरीरों पर स्वयं भी विश्चेष्ट होकर गिर गई।

★

श्री सुदर्शन

(पृष्ठ १४ का शेष)

उन्होंने बड़े संयत स्वर में कहा—"मेरा खयाल यह है कि प्रेमचन्द जी ज्यादा उम्र के थे और इतने पक गए थे कि अपने को adapt न कर सके। (वातावरण के अनुरूप ढाल न सके)। दूसरी बात यह है कि उनकी जिन्दगी में ड्रामा न था और न उनकी कला ही में ड्रामा था, जिससे वे ड्रामा के अनुकूल अपने को बना सकते। तीसरी बात यह है कि वे साधना के पक्के थे, इस लिए compromise (समझौता) न कर सके। चौथी बात यह है कि प्रेमचन्द जी कवि न थे। वे शब्दों के मास्टर जरूर थे, पर खयाल की ऊंचाई उनमें न थी। उनमें Realistic (यथार्थवादी) तत्व अधिक थे। इसलिए वे यहां न जम सके।

"इसके विपरीत मेरे भीतर Compromise (समझौता) करने की आदत थी, मैंने compromise कर लिया। प्रेमचन्दजी ने शायद ड्रामे देखे भी कम थे, जबकि मुझे जन्म देते समय मेरी मां रामलीला देख रही थी। बचपन में मैंने रामलीला बहुत देखी थी। ड्रामे भी बहुत देखे थे। मुझे पैसे की भी प्रेमचंद की अपेक्षा अधिक जरूरत थी, इसलिए मैंने Compromise कर लिया।"

यहीं उन्होंने प्रेमचंदजी के जीवन की उस घटना का भी जिक्र किया, जो उनके जीवन की बड़ी महत्वपूर्ण घटना है और जिससे उनकी स्वाभिमानी आत्मा का दर्शन होता है। वह घटना है, प्रेमचद जी को विश्व-कवि टैगोर द्वारा बुलाया जाना और उनका न जाना। इसमें लोग अक्सर यह समझाते हैं कि प्रेमचंद जी के पास जाने को किराया न था, इसलिए न गए; पर सुदर्शन जी ने उसका दूसरा ही कारण बताया। उन्होंने कहा, "यह गलत है कि प्रेमचंद जी रुपये के कारण टैगोर से मिलने नहीं गए। बात दूसरी थी और काफी गंभीर थी। वे बंगालियों की Superiority (श्रेष्ठता)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को नहीं मानते थे। सन् १९३३-३४ में जब सुभाष बोस कलकत्ता के मेयर थे, तब रामानन्द चट्टोपाध्याय ने हिन्दी को कुलियों की भाषा कहा था। उन्हें यह भी अखरता था कि हिन्दी के साहित्यिकों को प्रांतीय भाषा वाले कोई सम्मान नहीं देते। उनका कहना था कि हिन्दी के प्रतिनिधि की हैसियत से टैगोर से मिलने जाना अनुचित है। इसलिए वे मिलने नहीं गए।" इसके साथ ही सुदर्शनजी ने यह भी बताया कि उनका 'भाग्य-चक्र' फिल्म जब बंगला में 'धूप छांह' नाम से निकला तो प्रोड्यूसर को बढ़ी गालियां सुननी पड़ीं और उसके बाद कोई हिन्दी फिल्म बंगला में अनुवादित न हुई।

यह सुनकर मुझे प्रेमचंद जी की महानता और उत्तरदायित्व का तो ज्ञान हुआ ही, साथ ही बंगला भाषा-भाषियों की संकीर्णता पर भी दुःख हुआ। हिन्दी वालों ने अपने को वास्तव में नीचे गिराया है, हीन-भावना उनमें बेहद है। इसे दूर करने की सख्त जरूरत है।

मैं यह सब सोच रहा था और सुदर्शन जी कह रहे थे, "सिनेमा में कल्पना का धनी लेखक सफल हो सकता है। उसे कवि अवश्य होना चाहिए। इसके साथ ही अपनी चीजों को Reject (रद्द) करने का भी साहस होना चाहिए, क्योंकि सिनेमा की टैकनीक की दृष्टि से नए लेखक को ट्रेन्ड होने में काफी समय लगता है। परिश्रमी होना तो बेहद जरूरी है। इसके साथ ही अभिमान और प्रतिष्ठा का मोह छोड़ देना चाहिए। भारी खयालात वाले लोगों की अपेक्षा चार आने वालों के लिए जो लिख सके वही सफल हो सकता है। भाषा गंगा-जमुनी होनी ही चाहिए। जो भी लेखक सफल हुए हैं, वे इसी प्रकार के रहे हैं। 'प्रदीप' और 'मधोक' के गीत काव्य की दृष्टि से कुछ न हों, पर उनमें देहाती गीतों का जोश और ग्रामीण धुनें हैं। भगवती चरण वर्मा और नरेन्द्र भी सफल हो रहे हैं। लेकिन सफलता का पथ वही है, जो मैंने बताया है।"

इसी के साथ मैंने उनसे पूछा, "क्या इस प्रकार साहित्यकार की हानि नहीं होती? और की बात जाने दीजिए, मैं आपसे ही पूछता हूं कि यदि आप सिनेमा में न आये होते तो आप आज कितने ऊंचे न होते? इस दृष्टि से सिनेमा ने आपकी कला को हानि जरूर पहुंचाई होगी?"

"अवश्य" उन्होंने स्वीकृति-सूचक स्वर में कहा, "हानि अवश्य होती है; परन्तु ये जो मजबूरियां हैं, इनको कोई क्या करे? अब तो मेरा खयाल यह हो गया है कि ४० के बाद लिखना चाहिए। छोटी उम्र में चीज अच्छी नहीं बनती। सोचना, अनुभव करना, कष्ट सहना—यह सब उम्र से ताल्लुक रखता है। अब जो कुछ मैं लिखूंगा, वह 'मनी' के लिए नहीं, क्योंकि अब मुझे भूखों मरने की जरूरत न पड़ेगी।"

"अब आप क्या लिखेंगे?"

"कम से कम ६ उपन्यास लिखने का विचार है। दूसरी चीज है—बच्चों की किताबें लिखना। हिन्दी में उम्र की दृष्टि से बच्चों के लिए किताबें नहीं हैं, इस अभाव को पूरा करने की बड़ी लालसा है। मैं साधन जुटा रहा हूं। काश्मीर में बैठ के लिखूंगा।"

"क्या आप सिनेमा में यह अनुभव नहीं करते कि आप साहित्य-जगत से दूर हैं और क्या आपको कभी इसके सम्बंध में दुःख नहीं होता है?"

"क्यों नहीं? मैं बराबर यह अनुभव करता हूं कि सिनेमा में व्यक्तित्व का ह्रास ही नहीं होता, वह बिक भी जाता है। यहां vanity suffer करती है। साहित्यिक महत्व की रक्षा का मुझे बराबर खयाल रहता है। मगरमच्छ, जो बराबर पानी के भीतर रहता है, दिन में एक बार रेती में लोटने आता है। साहित्यकारों को भी कभी-कभी सिनेमा से साहित्य में जाना चाहिए, यह मेरा स्पष्ट मत है; क्योंकि बुनियाद उनकी वहीं है, उसी के बल पर वे सिनेमा में हैं और उसे खोना बुद्धिमानी नहीं है।"

"क्या आप हिन्दी साहित्य के भविष्य के विषय में कुछ कहेंगे?"

"भविष्य उज्ज्वल है। नए लेखकों में साधना और ईमानदारी भी काफी है। आवश्यकता इस बात की है कि पुराने नयों से सहयोग करें और नए पुरानों से सीखें। नया विचार हर एक अच्छा है, पर सब के [illegible] इतना अच्छा नहीं है। दूसरी बात यह है कि जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ लिखा जाय वह जनता के समझने के लिए लिखा जाय, नहीं तो परिश्रम व्यर्थ जाता है। जैसे बीज बोने से पहले जमीन देख ली जाती है, वैसे ही साहित्य लिखने से पहले उसका लक्ष्य समझ लेना चाहिए। आधुनिक लेखकों को इसे भलीभांति समझना है। कविता तो हिन्दी की आज उर्दू से भी नीची है। मेरी दृष्टि में लफजों की खूबसूरती ही कविता है और वही हिन्दी वालों के पास नहीं हैं। तुलसी, सूर और गालिब की परम्परा को कायम रखने की जरूरत है।"

वे जब यह बता रहे थे तब दरवाजा खटक रहा था। तीन-चार घण्टे हो गए थे। सुदर्शन जी गत वर्ष से बीमार भी हैं। इतनी देर तक बैठा रहना भी बीमार की दृष्टि से ठीक न था। चलते २ उनसे अंत में मैंने पूछा "क्या आप अपनी आत्मकथा लिखेंगे?"

"हां" उन्होंने कहा, "मैं एक पुस्तक लिखना चाहता हूं, जिसका नाम Life & death of an Artist होगा। इसमें मैं अपने जीवन पर अधिक प्रकाश डालूंगा।"

सुदर्शन जी ने इस बातचीत के दौरान में लगभग एक दर्जन चुटकले और किस्से सुनाये होंगे। हर बात को वे उदाहरण देकर बताते थे और उदाहरण में कोई चुटकला या किस्सा होता था। कहीं भी उनके विचारों में उलझाव न था। मंजे हुए और सुलझे हुए ढंग से महादेवी जी के बाद सुदर्शन जी ही मुझे ऐसे व्यक्ति लगे जो Good-talker (अच्छे बातचीत करने वाले) कहे जा सकते हैं। सुदर्शन जी में नाटकीय ढंग का आधिक्य है। उनकी बातचीत दूसरे कमरे में बैठकर सुनी जाय तो ऐसी लगेगी मानो कोई अभिनेता संवाद बोल रहा है। हो सकता है यह उनको सिनेमा से मिलने वाली विरासत हो, पर वह उनकी विशेषता है और ऐसी विशेषता है जिस पर हमें गर्व है।

हिन्दी का यह लोकप्रिय कलाकार फिर हिन्दी को अपनी कृतियों से भरे और सिनेमा के जाल से निकले, यही हमारी एक मात्र आकांक्षा है!

जादू का रस्सा

(पृष्ठ ५४ का शेष)

रस्सा हिलने लगा। कुछ ही क्षण बाद लोगों ने आश्चर्य-चकित होकर देखा कि मदारी दांतों में तलवार थामे रस्से को पकड़े नीचे उतर रहा है। लोगों को अपनी आंखों पर विश्वास न होता था। परन्तु मदारी सच-मुच जीवित नीचे धरती पर उतर आया और उसने रस्से को नीचे खींच लिया। उसका शरीर लहू से लथपथ था। तलवार भी लहू से सनी थी। मुखिया के पास जाकर वह बोला--"आपकी कृपा से हमारी विजय हुई। शत्रु का हमने पूरी तरह से नाश कर दिया।" फिर वह इधर-उधर देखते हुए बोला--"मुखिया जी, मेरी पत्नी कहां है?"

मुखिया को जैसे सांप सूंघ गया हो। वह क्या उत्तर देता? मदारी को कुछ सन्देह हुआ। वह जरा कड़े स्वर में बोला—"आप बोलते क्यों नहीं; मेरी पत्नी कहां है? उसे मैं आपके सुपुर्द कर गया था।"

विवश हकर मुखिया ने सारा हाल कह सुनाया और चिता की ओर इशारा किया। अरे! यह क्या? वहां तो चिता का कोई चिन्ह ही नहीं था। मदारी चिल्लाया—"आप झूठ बोलते हैं। आपने मेरी स्त्री को जरूर ही कहीं छुपा रखा है।" फिर वह अपनी स्त्री का नाम लेकर पुकारने लगा। उसके पुकारते ही मैदान में पड़ा हुआ बड़ा-सा टोकरा हिलने लगा और लोगों ने अचरज और कौतूहल से देखा कि मदारी की स्त्री जीती जागती उसके नीचे से निकल आई है।

मदारी का यह सब कमाल देखकर लोग वाह-वाह कर उठे। मुखिया ने उसे सौ रुपये पुरस्कार स्वरूप दिये और अन्य लोगों ने उसे बहुत से रुपये, पैसे और कपड़े दिये और उसे खिलाया पिलाया।

इसके बाद मदारी अपनी पत्नी के साथ खुशी-खुशी गांव से विदा हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फुलझड़ियाँ

यह हर्ष का विषय है कि 'मनोरंजन' का यह अंक स्वतन्त्र भारत की प्रथम विजयदशमी और प्रथम दीपावली के बीच प्रकाशित हो रहा है। एक ओर यदि विजयदशमी का हर्षपूर्ण विजयघोष है, तो दूसरी ओर दीपावली का झिलमिल उल्लास है—स्वर्ण-रजत बिखेरती दीपकलड़ियां और फुलझड़ियां हैं। अतः यदि फुलझड़ियों को ही 'मनोरंजन' का प्रतीक मान लिया जाये तो असंगत न होगा !

× × ×

फुलझड़ी वस्तुतः आतशबाजी का ही एक रूप है और बारूदी आतशबाजी के अलावा साहित्यिक और राजनैतिक आतशबाजी भी हो सकती है। साहित्यिक आतशबाजी हिंदी में तो प्रचुर परिमाण में है। श्री प्रभाकर माचवे जैसे विद्वान शब्द-शास्त्री इसे 'गाली' की संज्ञा देकर इसी तर्क की पुष्टि करते हैं। माचवे जी चाहे कुछ ही कहें, हम तो संपादकों और आलोचकों को आतशबाज ही कहेंगे !

× × ×

दिल्ली के डा० नगेन्द्र हिन्दी के सफल कवि भी हैं और आलोचक भी। पहले वे केवल कवि थे—छायावादी कवि, बाद में आलोचक भी बन गये और उनकी गणना हिन्दी के प्रमुख आलोचकों में होने लगी। कुछ साहित्यिक आतशबाजों को उनकी प्रतिभा के इस अभूतपूर्व द्विमुखी विकास से शायद ईर्ष्या हुई और किसी मनचले ने ड्रायडन की इस उक्ति—'असफल कवि आलोचक बन जाता है' की आड़ लेकर यह फुलझड़ी छोड़ दी कि श्री नगेन्द्र की कविता मर चुकी है। फुलझड़ी देखने में तो सुन्दर लगती है, परन्तु यदि छू जाय तो जलन और तिलमिलाहट पैदा कर देती है। नगेन्द्र जी ने अपने आलोचक मित्र की बात का प्रतिवाद कविता लिखकर किया—मानो उनके कवि होने का यही प्रमाण-पत्र हो ! उनकी उस कविता से पता नहीं उनके आलोचक मित्र को उनके कवि होने का विश्वास हुआ या नहीं, परन्तु वह व्यक्ति जो उनके कवि न होने की बात सुनकर उदास हो गया था, अवश्य ही प्रसन्न हुआ होगा !

× × ×

साहित्यिक आतशबाजी यदि छू जाये तो केवल हलकी सी जलन अथवा तिलमिलाहट ही पैदा करती है—वह भी कभी २ सुखद ही; परन्तु राजनैतिक आतशबाजी तो जलाकर राख कर देती है। दो विश्व-युद्धों का उदाहरण हमारे सामने है और उनसे भी बड़ा उदाहरण है अमरीका के आतशबाजों द्वारा बनाया गया एटम बम जो हिरोशिमा को भस्मसात् करने के बाद आज आतंक का विषय बना हुआ है। परन्तु जिन्नापंथियों द्वारा पाकिस्तान में की गई राजनैतिक आतशबाजी का उदाहरण शायद सारे इतिहास में भी न मिले—जो सामूहिक हत्याकाण्डों, अग्निकाण्डों, अपहरणों, पैशाचिक लूट और जिहाद के रूप में सामने आई है।

× × ×

जब से भारतीय कम्यूनिस्टों ने नेहरू-सरकार का समर्थन करना प्रारम्भ किया है, वे फुलझड़ियों का विषय बन गये हैं। वे लोग जो इन पर १९४२ में देश के साथ विश्वासघात करने का आरोप लगाते हैं, इनके अब नेहरू सरकार के समर्थन को राजनैतिक कला-बाजी और समयसाधकता बताते हैं। हमारे विचार में ऐसे टिप्पणीकार भारतीय कम्यूनिस्टों के साथ सरासर ज्यादती कर रहे हैं। उनकी वर्तमान नीति न तो राज-नैतिक कलाबाजी है और न ही समयसाधकता; वह तो द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार विशुद्ध प्राकृतिक परिवर्तन है !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वायु मार्ग द्वारा

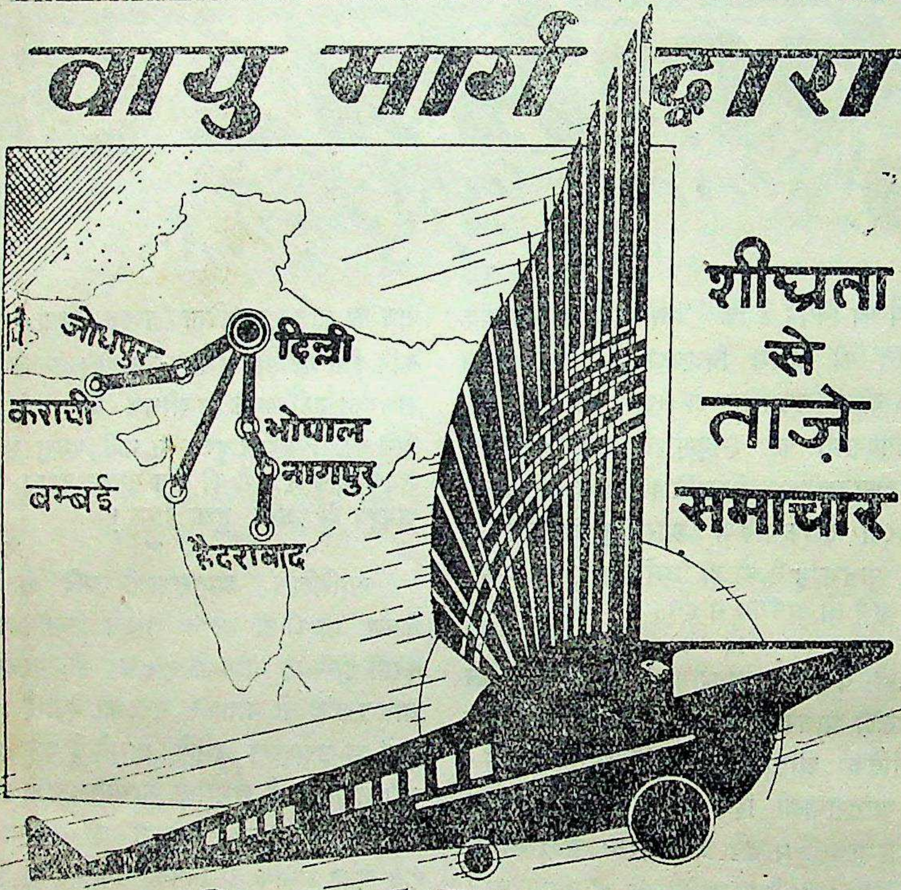

वीर अर्जुन

दैनिक व साप्ताहिक

वीर अर्जुन

देश के कोने-कोने में वायुयानों द्वारा पहुंचता है। आप अपने लिए स्थानीय एजेन्ट से पूछताछ कीजिये।

मैनेजर वीर अर्जुन, दिल्ली।

उत्तरीय भारत का सर्वोत्तम दैनिक व सचित्र साप्ताहिक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री श्रद्धानन्द पब्लिकेशन्स लिमिटेड

आज इस प्रकाशन संस्था के तत्वावधान में

★ दैनिक वीर अर्जुन
★ सचित्र वीर अर्जुन साप्ताहिक
★ मनोरंजन मासिक
★ विजय पुस्तक भण्डार
★ अर्जुन प्रेस

संचालित हो रहे हैं। यह प्रकाशन संस्था सुदृढ़ आर्थिक स्थिति की है।

अधिकृत पूंजी ५,००,००० **प्रस्तुत पूंजी २,००,०००**

गत वर्षों में इस संस्था की ओर से अपने भागीदारों को अब तक इस प्रकार लाभ बांटा जा चुका है

सन् १९४४	१० प्रतिशत
सन् १९४५	१० प्रतिशत
सन् १९४६	१५ प्रतिशत

१९४७ में कम्पनी ने अपने भागीदारों को
१० प्रतिशत लाभ देने का निश्चय किया है!

आप जानते हैं?

* इस कम्पनी के सभी भागीदार मध्यम वर्ग के हैं और इसका संचालन उन्हीं लोगों द्वारा होता है।
* 'वीर अर्जुन' वर्ग के पत्रों की सम्पूर्ण शक्तियां अब तक राष्ट्र की आवाज को सफल बनाने में लगी रही हैं।

आप भी इस संस्था के भागीदार बन सकते हैं।

और

* इस प्रकाशन संस्था के संचालक वर्ग में सम्मिलित हो सकते हैं।
* राष्ट्र की आवाज को सबल बनाने के लिए इन पत्रों को और अधिक मजबूत बना सकते हैं।
* अपने धन को सुरक्षित स्थान में लगा कर निश्चित हो सकते हैं।
* आप स्थिर आय प्राप्त कर सकते हैं।

इस संस्था का प्रत्येक शेयर दस रुपये का है। आप भागीदार बनने के लिये आज ही आवेदन-पत्र की मांग कीजिये।

श्री श्रद्धानन्द पब्लिकेशन्स लिमिटेड,
श्रद्धानन्द बाजार, दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरंजन
मासिक

एक विश्लेषणात्मक
पुस्तक

हिन्दुओं के जातिगतपतन पर एक विश्लेषणात्मक पुस्तक है। उस पतन में ब्रेक लगाने के क्या कर सकते हैं? इस पुस्तक में पढ़िये।

मूल्य : दो रुपये

विजय पुस्तक भण्डार, श्रद्धानन्द बाजार, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वर्ष १
संख्या ३

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरंजन

दिसम्बर १९४७

मूल्य आठ आने

वार्षिक मूल्य ५॥)

इस अंक में

कविता

ठिठुरे हैं विकल प्राण	श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	१
शारद पूर्णिमा	सुश्री सुमित्राकुमारी सिनहा	६
सुधि	श्री बाबूराम पालीवाल	१४
नदी का गीत	श्री निरंकार देव सेवक	१७
गीत	श्री ईशकुमार	३४

नाटक

बीमार का इलाज	श्री उदयशंकर भट्ट	२

कहानी

बेबसी	श्री विष्णु प्रभाकर	१०
पेड़, पशु, मनुष्य !	श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	२३
यदा यदाहि धर्मस्य···	श्री महावीर अधिकारी	२४
यह बचपन !	सुश्री स्नेहलता एम० ए०, बी० टी०	३३
संगीत का जादू	सुश्री सुदर्शना कुमारी	३७

लेख

नृत्यकार राम-गोपाल	श्री रंजन शर्मा	६
निजाम की वफादारी ?	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	१५
पृथ्वी के दक्षिणी छोर पर	श्री विराज	१६

विशेष स्तम्भ

हास-परिहास	३५	चित्रलोक	४४
सलोनी दुनिया	४५	बाल-मनोरंजन	५१
नव प्रकाशन	५७	फुलझड़ियां	५६

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

प्रबन्ध सम्पादक
श्री विद्यासागर विद्यालंकार

सम्पादक
श्री चिरंजीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ठिठुरे हैं विकल प्राण

श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

ठिठुरे हैं हाथ पाँव, सब शरीर कम्पमान,
रोम-रोम कण्टक-सम, ठिठुर गए विकल प्राण !

शिलीभूत, पिण्डबद्ध धमनीगत रुधिर-धार,
घनीभूत श्वास-पवन, जड़ीभूत हिय-विचार,
अब तो असहनीय विप्रयोग-शीत-भार,
मन्दस्मित किरणों से विहँस [illegible]
ठिठुरे हैं विकल [illegible] !

मेरे प्रिय, मन्दादर शीत श्वास पवन-दूत —
मत भेजो इस दिशि तुम; मैं हूं अति पराभूत;
थर-थर-थर काँप रहा रहसि हृदय मम अजान,
ठिठुरे हैं विकल प्राण !

काँवँ काँवँ, टुँ ट्टँयँ टुँ-ट्टँ-यँ बोल रहे काक कीर,
चैं-चुक-चुक करती यह काँपी खग वृन्द-भीर,
शीत-बाण बरसाता बहा सनन-सन समीर,
पीर भरे अन्तर में ठिठुर गए सरस प्राण;
सब शरीर कम्पमान !

घन-गत यह पौष तरणि, क्षीणतेज, मानों मृत, —
निष्प्रभ-सा काँप रहा मन्द-मन्द धूमावृत;
ऋतु कृतु कर मुकुत किरण आज हुईं विकृत, अनृत;
ऐसे क्षण विहँस रहो दिनकर का गलित मान,
ठिठुरे हैं विकल प्राण !

हवा, हहर, श्रवणों में कहती यह शीत बात :
तेरे प्रिय विमुख हुए; अब तेरी क्या बिसात ?
सकल मनोरथ तेरे सपने हैं मनसिजात !
सच है क्या यह सब ? कुछ बोलो तो सुरस स्नान ?
ठिठुरे हैं विकल प्राण !

जिला-कारागार, उन्नाव
३१ दिसम्बर १९४२

★

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकांकी—

बीमार का इलाज

श्री उदयशंकर भट्ट

ठिठुरे हैं विरत

पात्र-परिचय

चन्द्रकान्त—आगरे का एक रईस जो अंग्रेजी सभ्यता व रहन-सहन का प्रेमी है। एकदम भारी भरकम, उम्र ४५ वर्ष।

कान्ति—चंद्रकांत का बड़ा पुत्र। उम्र लगभग २१-२२ वर्ष।

विनोद—कांति का समवयस्क मित्र। **शांति**—कांति का छोटा भाई।

सरस्वती—कांति की मां, अपने पति से सर्वथा भिन्न—दुबली पतली, पुराने विचारों की।

प्रतिमा—कांति की बहिन—एकदम मोटी, उम्र २४ वर्ष।

डा० गुप्ता, डा० नानकचंद, वैद हरिचंद, बूढ़ा नौकर सुखिया, पण्डित, पुजारी इत्यादि।

★

(आगरे में कांति के पिता मि० चन्द्रकांत की कोठी का एक कमरा। कमरे की सजावट एक सम्पन्न परिवार के अनुरूप—सोफा-सेट, कुर्सियां, तिपाई इत्यादि सभी वस्तुयें मौजूद हैं—पर नौकर पर निर्भर रहने तथा रूढ़िवादी गृहस्वामिनी के कारण स्वच्छता, सलीके का अभाव; दरी पर बिछी हुई चादर काफी मैली है। जिस समय का यह दृश्य दिखाया जा रहा है, उस समय सवेरे के आठ बजे हैं। कांति का मित्र विनोद बिस्तर पर लेटा है। उसे अचानक रात में ज्वर हो गया लगभग १०४ डिग्री। कड़ी काठी होने के कारण वह लापरवाही से कभी उठकर बैठ जाता है और कभी उठकर टहलने लगता है। वह अपने भीतर से यह विचार निकाल देना चाहता है कि उसे ज्वर है। फिर भी ज्वर की तेजी उसे बेचैन कर देती है और वह लेट जाता है। कुछ देर बाद कांति 'नाइट ड्रेस' में कन्धे पर तौलिया डाले चपलियां फटफटाता, सीटी बजाता बायें दरवाजे से कमरे में आता है)

कांति—हलो विनोद, अमां अभी तक चारपाई से चिपटे हो—आठ बज रहे हैं। क्या भूल गये, आज गांव जाना है? मैं तो स्वयं देर से उठा, वरना मुझे अब तक तैयार हो जाना चाहिये था। लेकिन तुमने तो कुम्भकर्ण के चाचा को भी मात कर दिया, यार! (पास जाकर) क्या बात है? खैर तो है?

विनोद—रात न जाने क्यों बुखार हो गया (हाथ फैला कर) देखो।

कांति—(देह छूकर) ओः, सारी देह अंगारे की तरह दहक रही है।

विनोद—कमबख्त बुखार कैसे बेमौके आ धमका!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कांति—यार, इस बुखार ने तो सारा मजा किर-किरा कर दिया। इलाहाबाद से मैं तुम्हें कितने आग्रह से छुट्टियां बिताने के लिये यहां आगरे लाया था—सोचा था, कुछ दिन यहां घर में आनन्द-मौज करेंगे और फिर खूब गांव की सैर करेंगे—

विनोद—मालूम होता है, मेरे भाग्य में गांव की सैर नहीं लिखी है। ये छुट्टियां बेकार ही गईं—

कांति—गांव का रास्ता बड़ा ऊबड़-खाबड़ है। इस दशा में तुम्हारा गांव जाना असम्भव है। सोचता हूं, मैं भी न जाऊं; पर जाये बिना काम भी तो नहीं चलेगा। कल चाचाजी शायद मुकदमे के लिये बाहर चले जायेंगे; न जाने कब तक लौटें। कहो तो मैं अकेला ही हो आऊं—इफ यू डोण्ट माइण्ड!

विनोद—नहीं, नहीं, तुम हो आओ। उन्होंने आग्रह करके बुलाया है, हो आओ। मैं ठीक हो जाऊंगा, कोई बात नहीं।

कांति—तुम्हें कोई तकलीफ न होगी। डाक्टर आ जायगा। पिता माता सभी तो हैं। मैं शाम को ही लौटने का यत्न करूंगा।

विनोद—नहीं, नहीं, मामूली बुखार है, ठीक हो जायगा। जाओ।

(कांति के पिता चन्द्रकांत का प्रवेश)

चन्द्रकांत—(दूर से) किसको बुखार है, बेटा कांति! अरे इतनी देर हो गई तुम, अभी तक गांव नहीं गये। धूप हो जायगी। धूप, धूल और धुआं इनमें तीन न सही, दो ही आदमी के प्राण निकालने को काफी हैं। उस पर घोड़े की सवारी—न कूदते बने, न सीधे बैठे। बुखार किसे होगया बेटा?

कांति—बाबू जी, विनोद को रात बुखार होगया। देह तवे की तरह गरम है। डाक्टर को बुलाना है। ऐसे में इसका जाना······

चन्द्रकांत—हैं हैं, विनोद कैसे जा सकता है! और फीवर जंगल में आग की तरह उद्दण्ड! अभी डाक्टर को बुलाकर दिखा देना होगा। मैंने निश्चय कर लिया

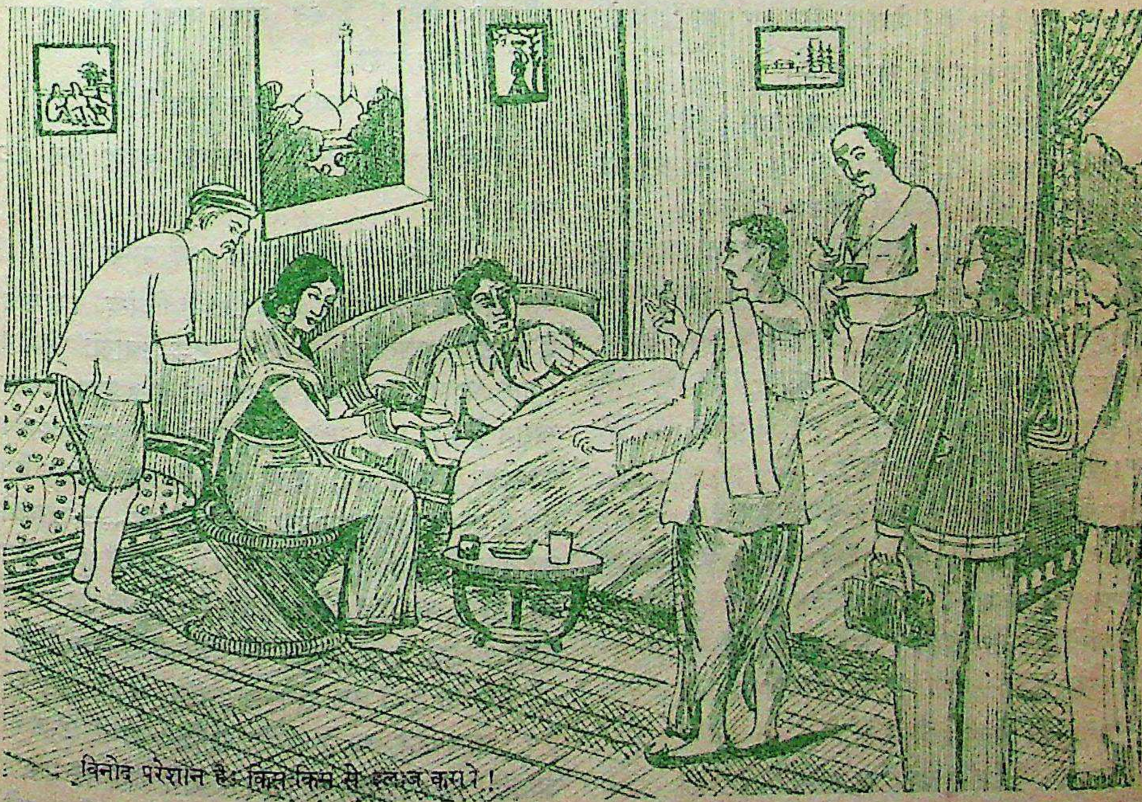
विनोद परेशान है: किस-किस से इलाज कराये!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, डा० भटनागर अब इस घर में कदम नहीं रख सकता। उसने प्रतिमा का केस खराब कर दिया था। बुखार उससे उतरता ही न था। वह एकदम बकरी के थन की तरह निकम्मा सिद्ध हुआ। वैसे पूछो तो उस बिचारे का कसूर भी नहीं था, दवा तो उसने एक से एक बढ़िया दी; पर इससे क्या, बुखार तो नहीं उतरा। टाइफाइड को छोड़कर चाहे उसका बाप भी क्यों न हो, उसे कुछ न कुछ तो उतरना ही चाहिये। डा० गुप्ता ने आते ही उतार दिया। अब तो गुप्ता ही मेरा फैमिली डाक्टर है। गुप्ता को बुलाओ। सुखिया, ओ सुखिया, जा जरा डा०गुप्ता को तो बुला ला। कहना—वह कांति के मित्र हैं न,जो प्रयाग से आये हैं,उन्हें बुखार हो गया है; जरा चल कर देख लीजिये। बाबूजी ने कहा है। बेटा, मान गया मैं तो…

कांति—डा० भटनागर में मेरा 'फेथ' कभी नहीं रहा बाबूजी, लेकिन डा० नानकचन्द भी कम नहीं है। विनोद को उसे दिखाना ही ठीक होगा। न जाने उसके हाथ में कैसा जादू है। मेरा तो दिन पर दिन 'होमियोपैथी' में विश्वास बढ़ता जा रहा है।

चन्द्रकांत—(कमरे में टहलते हुए) मेरे बच्चे, तुम पढ़ लिखकर भी नासमझ ही रहे। बिना अनुभव के समझदार और बच्चे में अन्तर ही क्या है। अरे होमियोपैथी भी कोई इलाज है! चाकलेट या मीठी गोलियां न दीं; होमियोपैथिक दवा दे दी! याद रखो, बड़ों की बात गांठ बांध लो—जब इलाज करो, ऐलोपैथिक डाक्टर का इलाज करो। 'करवी भेषज बिन पिये मिटे न तन को ताप'। ये बाल धूप में सफेद नहीं हुए हैं। कहते क्यों नहीं विनोद बेटा ?

विनोद—जी! (करवट बदल लेता है)

चन्द्रकांत—ये वैद्य-हकीम क्या जानें, हरड़ बहेड़ा और शरबत-शोरबे के पण्डित!

कांति—मैं चाहता हूं आप इस मामले में…

चन्द्रकांत—नहीं, यह नहीं हो सकेगा। मैं जानता हूं विनोद का भला इसी में है।

(सुखिया का प्रवेश)

सुखिया—सरकार वो बाबू आये हैं।

चन्द्रकांत—अबे कौन बाबू, नाम भी बतावेगा या योंहीं…

सुखिया—वही जो उस दिन रात को आये थे।

चन्द्रकांत—लो और सुनो, गधों से पाला पड़ा है।

सुखिया—वह बाबू सरकार…

चन्द्रकांत—कह दे आता हूं। और मैंने तुझे डाक्टर के पास भेजा था। जल्दी जा (स्वयं भी चला जाता है)

कांति—तुम घबराना मत। मैं डाक्टर नानकचंद को बुलाकर लाऊंगा। अव्वल तो मेरा खयाल है, शाम तक बुखार उतर जायेगा। अच्छा विनोद, देर हो रही है चलूं। अभी मुझे बाथ-रूम भी जाना है।

विनोद—हां हां, तुम जाओ। मैंने बुखार की कभी परवाह नहीं की है, कांति। उतर जायगा अपने आप। शाम तक लौटने की कोशिश करना।

कांति—अवश्य, अवश्य, तुम्हारे बिना मेरा मन भी क्या लगेगा। लेकिन जाना जरूरी है। अच्छा, विश यू आल राइट।

(सीटी बजाता चला जाता है)

विनोद—नमस्कार। (करवट बदल कर लेट जाता है)

(कांति की मां सरस्वती का प्रवेश)

सरस्वती—(कमरे में घुसते ही) विनोद, क्या बात है? उठो चाय-वाय तैयार है। कुछ खाओ पियो। (पास जाकर) क्या बात है, खैर तो है? कुछ तबियत खराब है क्या? (पलंग के पास जा कर विनोद को छूकर) आय-हाय, देखो तो कितना बुखार है। मुंह ईंगुर-सा लाल हो रिया है बिचारे का।—घबराओ मत बेटा, मैं अभी वैद हरिचंद को बुलाती हूं। देख कर दवा दे जायंगे। बड़े काबिल वैद हैं, विनोद। जरा कपड़ा ओढ़ लो न। (उढ़ाती है) जैसा कांति वैसा ही तू। मेरे लेखे तो दोनों एक हो। क्या सिर में भी कुछ दर्द है? (हाथ फेर कर) कब्जी होगी। अभी ठीक हो जायगी। सुखिया, ओ सुखिया। न जाने कहां मर गया। इन नौकरों के मारे तो नाक में दम हो गिया है। अरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्ति, श्रो शांति ! (शांति आता है) देख तो बेटा, जा हरिचन्द वैद जी को बुला ला। देखकर दवा दे जाएंगे। भैया वैद हो तो ऐसा हो......

विनोद— माता जी, बाबू जी ने डा० गुप्ता को बुलाया है। शायद कान्ति ने डा० नानकचन्द के लिए कहा है।

सरस्वती—लो और सुनो, इनके मारे भी मेरा नाक में दम है। उस मरे डाक्टर को न कुछ आवे है न जावे है। न जाने क्यों डा० गुप्ता के पीछे पड़े रहे हैंगे। क्या नाम है उस मरे भटनागर का ? इन दोनों ने तो छोरी को मार ही डाला था। वह तो कहो, भला हो इन वैद जी का, बचा लिया। जा बेटा शान्ति, जा तो सही जल्दी।

शांति—जाऊं हूं मां। (चला जाता है)

सरस्वती— अरी प्रतिमा, श्रो प्रतिमा, (दूर से ही आवाज आती है—'हां मां, क्या है ?') । देख, जरा मन्दिर में पण्डित जी पूजा कर रहे हैं। उनसे कहियो, जरा इधर होते जायं। और देख, उनसे कहियो, मार्जन का जल लेते आवें, विनोद भैया बीमार है। मैंने घर में ही मन्दिर बनवाया है बेटा !

विनोद—(उत्सुकता से करवट बदल कर) पण्डित जी का क्या होगा यहां मां ?

सरस्वती—बेटा जरा मार्जन कर देंगे। अपने वो पण्डित जी रोज पूजा करने आवें हैं। मार्जन कर देंगे। सारी अला-बला दूर हो जायगी। तुम पढ़े लिखे लोग मानों या न मानों, पर मैं तो मानूहूंगी भैया ! पिछले दिनों प्रतिमा बीमार थी। समझ लो पण्डित जी के मार्जन से ही अच्छी हुई। मैंने कथा में एक बार सुना था—बुखार उखार तो नाम के हैं, असलो तो ये ग्रह, भूत ही हैं जो बुखार बन कर आजायं हैंगे। सिर दबादूं क्या बेटा ? जैसे कांति वैसे तुम। तब तक न हो थोड़ा-सा दूध पीलो। अरी मिसरानी, श्रो मिसरानी। (दूर से आवाज—'आई बहू जी') अरी देख, थोड़ा दूध तो गरम कर लाइयो।

विनोद—दूध तो मैं नहीं पीऊंगा, माताजी।

सरस्वती—(चिल्लाकर) अच्छा रहने दे। (विनोद से) क्या हर्ज है, थोड़ी देर बाद सही। जरा ओढ़ लो, मैं अभी आई। (जैसे ही जाने लगती है वैसे ही मार्जन का जल, दूर्वा लेकर पण्डितजी कमरे में आते हैं। सरस्वती पण्डितजी से) देखो पण्डितजी, तुम्हारी पूजा से प्रतिमा जी उठी थी। याद है न ? ये मेरे कान्ति का मित्र है। देखो एक साथ पढ़े हैं। तुम्हें नहीं मालूम आज कल वो आया है न ! चाचा ने बुलाया है, आज गांव जा रिया है। विनोद भी जारिया था, पर इस बिचारे को बुखार हो गिया। जरा मन्त्र पढ़ कर मार्जन तो कर दो।

पण्डित — क्यों नहीं, बहू जी, मन्त्र का बड़ा प्रभाव है। पुराने समयों में दवादारू कौन करे था। बस, मन्त्राभिसिक्त जल से मार्जन करा कि बीमारी गई। तुम तो बीमारी की कहो हो, यहां तो मरे जी उठें थे मरे, जिनके जीने का कोई सवाल ही नहीं उठे था। (आंखें मटका कर) हां, ऐसा था मन्त्र का प्रभाव !

सरस्वती—सच कहो हो पण्डितजी, जरा कर तो दो मार्जन। वैसे मैंने अपने उन वैद जी को भी बुलाया है। शांति गया है बुलाने।

पण्डित—तभी तभी, मैं भी कहूं आज शान्ति बाबू नहीं दिखाई दिये। ठीक है, एक शत्रु पर जब दो पिल पड़ें तो वह कैसे बच कर जायगा। अच्छा, ये कान्ति बाबू के दोस्त हैं ! अच्छा है भैया, खुश रहो, खूब पढ़ो लिखो, धर्म में श्रद्धा रखो—हम तो ये कहे हैं। क्यों बहू जी ?

सरस्वती—हां और क्या, पर आजकल के ये पढ़े लिखे कुछ मानें तब न ? तुम्हारे उन्हीं को देख लो, कुछ दिनों से डाक्टरों के चक्कर में पड़े हैं। मैं कहूं हूं, अपने बुजुर्गों की दवाइयां क्यों छोड़ी जायं ? जब ये डाक्टर नहीं थे तब क्या कोई अच्छा नहीं होवे था ? सभी ठीक होंय थे। अब न जाने कैसा जमाना आरिया है।

पण्डित—जमाना बड़ा खराब है, बहू जी ! देवता, ब्राह्मण और गौ पर तो जैसे श्रद्धा ही न रही।

सरस्वती—अच्छा पण्डित जी, मार्जन कर दो मैं अभी आई। (चली जाती है। पण्डित मंत्र पढ़ कर

(शेष पृष्ठ २६ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

XXX नृत्यकार

राम गोपाल

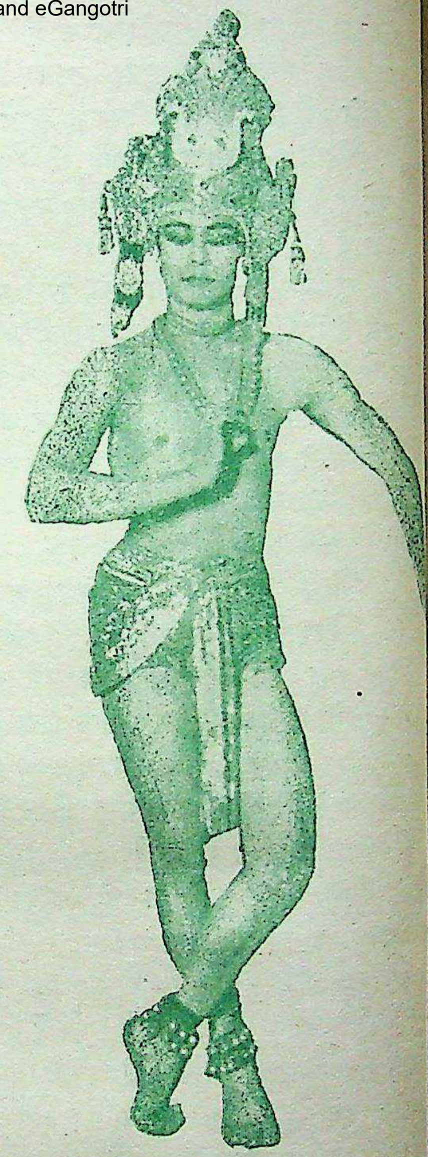

आज से सोलह-सत्रह वर्ष पहले की बात है। एक उत्साही-सा सुन्दर गौर-वर्ण युवक भारत के प्राचीन मन्दिरों, भग्नावशेषों, सांस्कृतिक केन्द्रों और गुफाओं में घूम-घूमकर मूर्तियों, दीवारों पर खुदे चित्रों और कला के अन्य निदर्शनों का निरीक्षण व अध्ययन कर रहा था और अपनी नृत्यकला सम्बन्धी ज्ञान-पिपासा को बुझा रहा था। उसकी यह ज्ञान-पिपासा इतनी तीव्र थी कि जहां कहीं भी उसे किसी प्राचीन मूर्ति अथवा भग्नावशेष के होने का समाचार मिलता, वहां वह तुरन्त पहुंचता और महीनों तक वहां रहकर उस मूर्ति की मुद्राओं व अंग-विन्यास का अनुशीलन करता और आस-पास के गांव में किसी बूढ़े नृत्यकला-मर्मज्ञ की खोज करता। यदि कोई मिल जाता तो महीनों उसके चरणों में बैठकर नृत्यकला के मर्म को समझता और अपनी ज्ञान-पिपासा बुझाता। अपनी इस लगन में उस युवक ने शायद ही भारत का कोई प्राचीन स्थान छोड़ा हो। उसकी यही लगन उसे चीन, जावा, फिलपाइन्स इत्यादि उन देशों में भी ले गयी जहां भारत की प्राचीन संस्कृति और कला के आज भी भग्नावशेष मूर्तियों, मन्दिरों और विहारों के रूप में मिलते हैं।

यों जगह २ घूमने-भटकने वाले उस सुन्दर गौर-वर्ण युवक का नाम था राम गोपाल।

श्री राम गोपाल की गणना आज भारत के प्रमुख नृत्यकारों में होती है। उदयशंकर की भांति इन्हें भी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त है। भारतीय नृत्यकला के विश्वव्यापी प्रचार-प्रसार के लिए इन्होंने उदयशंकर से कम काम नहीं किया। एक ही कला के प्रतिनिधि होते हुए भी भारत के इन दोनों महान कलाकारों में एक मूलगत भेद है—जहां उदयशंकर की कला के प्रेरणा-केन्द्र और आधार पौराणिक कथायें हैं, वहां रामगोपाल के प्रेरणा-केन्द्र हैं भारत के प्राचीन मन्दिर और उनमें स्थापित मूर्तियां। दूसरे शब्दों में, श्री रामगोपाल प्राचीन मूर्ति-मुद्राओं के विशेषज्ञ हैं।

प्राचीन भारत में धर्म और कला का चोली-दामन का साथ था। नृत्यकला के विकास में तो धर्म का

(श्री रंजन शर्मा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम गोपाल और शेवंती एक अत्यंत मोहक मुद्रा में

विशेष हाथ रहा है और मूर्तिकला और नृत्यकला आपस में सम्बन्धित हैं। मन्दिरों और विहारों में मूर्तिकारों व चित्रकारों ने अपनी कलात्मक अनुभूतियों को चित्रों और मूर्तियों के रूप में आकार प्रदान किया। भारतीय नृत्य की सभी मुद्राओं, भाव-भंगियों और अंग-विन्यास का निरूपण इन मूर्तियों और चित्रों में हुआ। सम्भवतः इसीलिए श्री राम गोपाल ने प्राचीन मन्दिरों, गुफाओं और बौद्ध विहारों को अपने अध्ययन केंद्र बनाया।

हाल ही में श्री राम गोपाल ने अपने मूर्ति-मुद्रा-ज्ञान का लन्दन में अपूर्व परिचय दिया। सितम्बर मास में वहां के "विक्टोरिया एण्ड अलबर्ट म्यूजियम" के भारतीय विभाग ने भारत के प्राचीन भित्ति चित्रों और मूर्तियों की पदर्शनी सयोजित की। उस प्रदर्शनी में प्राचीन काल से लेकर १८वीं शताब्दी तक की कलाकृतियां संग्रहीत थीं। भारत की मूर्तिकला और नृत्यकला के मूलगत एक्य और सामंजस्य को प्रदर्शितकरने के लिए श्री रामगोपाल को उद्घाटन समारोह में निमन्त्रित किया गया। कुमारी शेवन्ती और अपने दल के अन्य कलाकारों के सहयोग से इन्होंने देश-विदेश से आये अभ्यागतों और कला मर्मज्ञों के सम्मुख भारतीय नृत्य के तात्विक स्वरूप और भारतीय चित्रकला, मूर्तिकला और नृत्यकला के सामजस्य को सफलतापूर्वक प्रदर्शित किया। पाश्चात्य विद्वानों एवं कलाविदों को श्री रामगोपाल ने अपने नृत्य, अंग-विन्यास तथा विभिन्न मुद्राओं के प्रदर्शन से इस तरह अभिभूत कर लिया था कि वे प्रस्तर-मूर्ति और उनके द्वारा प्रतिपादित मानव मूर्ति में रंच मात्र भी कोई भेद कर नहीं पाते थे।

श्री रामगोपाल का जन्म सन् १९१८ में बंगलौर में हुआ था। इनके पिता संस्कृत के बहुत बड़े पण्डित थे। इनकी माता वर्मी थीं और खूब सुसंस्कृत और सुशिक्षित थी। सामान्य बालकों की तरह ही इनका बचपन मस्ती मौज और आवारागर्दी में गुजरा। परन्तु उन दिनों भी इनमें कलाकारोचित स्वाभिमान प्रचुर मात्रा में था। एक बार इनके पिता इन पर अकारण नाराज हुए। बालक रामगोपाल ने इसे अपना अपमान समझा और वह एक दूरस्थित अमराई में एक वृक्ष पर चढ़कर छिप गया इनकी आयु तब अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

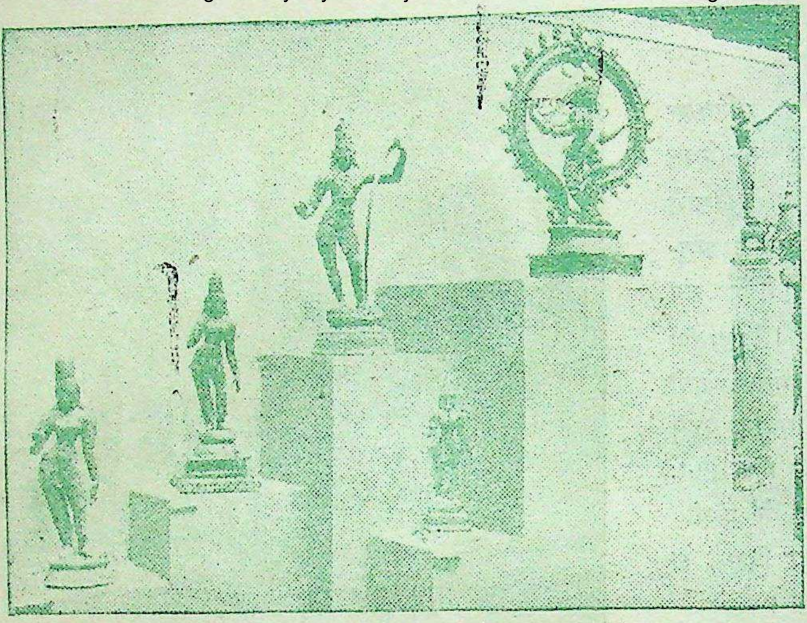

विक्टोरिया एण्ड अ
बर्ट म्यूजियम, लन्दन
भारतीय विभाग द्वा
आयोजित प्रदर्शनी
प्रदर्शित तांबे और क
की प्राचीन मूर्तियां।

न थी, अतः मां बाप ने वृक्ष से उतर आने को कहा, पर बालक नहीं माना। जब तक पिता ने दण्ड न देने का वचन नहीं दिया तब तक वह नहीं उतरा।

श्री रामगोपाल ने छः वर्ष की आयु से ही नृत्य सीखना शुरू कर दिया था। इसके प्रति इन्हें गहरा अनुराग-सा हो गया था। इन्होंने स्थान-स्थान पर जाकर दक्षिण भारत के कई प्रमुख नृत्यकारों से इसे सीखा और प्राचीन मन्दिरों और कला-केन्द्रों में जा जा कर मुद्राओं का अध्ययन किया। आरम्भ में इन्होंने भारत-नाट्य की ताण्डव शैली और कथाकली नृत्य में विशिष्ट योग्यता प्राप्त की। बाद में इन्होंने उत्तरी भारत में प्रचलित कत्थक-नृत्य, मणिपुरी इत्यादि शैलियों का भी अध्ययन किया।

इनकी प्रसिद्धि का वास्तविक श्रीगणेश सन् १९३५ से होता है जब मैसूर के महाराज ने इन्हें एक वार्षिकोत्सव पर नृत्य के लिये आमंत्रित किया था। इनके नृत्य-प्रयोगों से महाराज इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने इन्हें प्राचीन नृत्यकला के जीर्णोद्धार के लिये आर्थि
सहायता देनी प्रारम्भ कर दी और इनकी ख्याति
में फैल गई।

सन् १९३७ में श्री रामगोपाल ने नृत्यकला
प्रदर्शन के लिये अपने दल के साथ अमरीका का
१९३८ में यूरोप का दौरा किया। बाद में युद्ध
प्रारम्भ हो जाने से यह दौरा स्थगित करना पड़
इस वर्ष यह पुनः यूरोप की यात्रा पर गये
आजकल लन्दन में हैं और कला-प्रेमियों के
विशेष आकर्षण का केन्द्र बने हुए हैं। इस आक
का एक कारण यह भी है कि भारतीय नृत्य पाश्
नृत्य की तरह बहिर्मुखी नहीं है; बल्कि अंतर्मुखी
भौतिक नहीं, आध्यात्मिक है; यह अंग-संचालन
ही सीमित नहीं, मानव-हृदय से इसका अटूट सम
है। भारतीय नृत्य की इस विशेषता को व्यक्त करने
लिये श्री रामगोपाल पूर्णरूप से समर्थ हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शारद पूर्णिमा

सुश्री सुमित्राकुमारी सिनहा

आज शारद पूर्णिमा !
और इस नीरव निशा में बोलती स्मृति-मधुरिमा !

जागती हूं मैं, नयन में
चित्र गत के हैं समाये,
सोचती हूं—मैं वही हूं,
बीत कितने शरद् आये,
फूल से सपने वही हैं, पर न उनमें है अरुणिमा !

रजनिगन्धा का सुरभि-
नर्त्तन समीरण श्रान्त करता,
विधुध जीवन में पपीहा
टेर कर झंकार भरता,
होड़ मुझ से ले रही इस चांदनी की रूप-गरिमा !

सिन्धु-तट का श्वेत तम घिर
ज्वार लाया प्राण में तिर,
गूँजने को स्वर विकल हैं
इस पुराने गान में फिर,
मापने लघुता चली फिर यह समर्पित मान-महिमा !
आज शारद पूर्णिमा !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

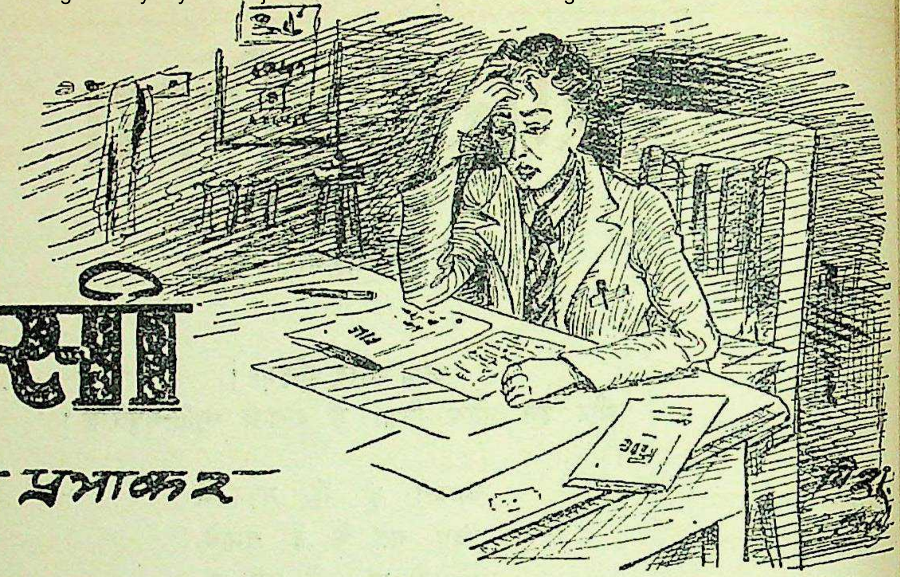

कहानी

बेबसी

श्री विष्णु प्रभाकर

निशिकान्त जिस समय दफ्तर से लौटा तो सन्ध्या गहरी हो चुकी थी। उसने देखा, मां सदा की भांति चबूतरे पर बैठी हुई उसकी बाट देख रही है। वह सीधा अपने कमरे में चला गया। उसका मन भरा आ रहा था और उसका जी किसी से बातें करने को नहीं करता था। उसने कपड़े उतारे और धम्म से कुरसी पर गिर पड़ा। उसे अब बहुत-सी पुरानी बातें याद आ रही थीं। उसने अपना सिर मेज पर रख दिया और सोचने लगा। वे बड़ी अजीब बातें थीं और उनका सम्बन्ध उसके पुराने जीवन से था।

* * *

एक दिन बालक कान्त घर लौट रहा था। रास्ते में कूड़े के ढेर के पास कुछ कागज़ पड़े हुए थे; उन्हें उठा कर उसने ठीक किया और जैसा कि वह सदा करता था, घर जाकर उन्हें बड़े मनोयोग से पढ़ने लगा। मां देखकर बोली—"कम्बख्त! कूड़े से कागज क्यों उठा लाया?"

उसने शान्त भाव से कहा—"पढ़ूंगा।"

चाचा तब खाना खा रहे थे। मां उन्हीं से बोली—"देख रे, इसे पढ़ने का कैसा शौक है! जिन कागजों में मसाला बंध कर आता है, उन्हें भी मुझ से लेकर बांचा करे है।"

चाचा ने स्निग्ध हंसी हंस कर कहा—"मैं जानता हूं, यह एक दिन बड़ा आदमी होगा।"

* * *

एक रात की बात है। वह मां की कोठरी में सो रहा था। अचानक आंख खुल गई। उसने सुना—माता पिता उसका नाम लेकर बातें कर रहे हैं। स्वभावतः उसका कौतूहल जागा, कान खड़े हो गये। पिता जी कह रहे थे—"रमानन्द ज्योतिषी जैसा विद्वान हमारे सारे जिले में नहीं है।"

मां बोली—"हां जी, वे बड़े विद्वान हैं। चिच्चा उनकी बड़ी मानता करें थे।"

"अजी सभी उन्हें माने हैं और माने क्यों ना! वे हैं ही ऐसे। लाखा पंसारी को दो साल पहिले बता दिया था कि फलां दिन, फलां घड़ी तेरी मौत होगी और उसी दिन उसी घड़ी को हुई। उस दिन घण्टा भर पहिले वह हमारे पास बैठा अच्छा भला ताश खेले था। वह उठ के घर कूं गया और मैं मन्दिर। लौट कर आया तो चिच्चा बोले— 'अरे उरे सुनना, लाखा मर गया।' सुन कर मैं सन्न रह गया।"

मां ने विश्वास से भर कर कहा—"हां जी, वे जोगी हैं। उन्हें देवी का इष्ट है।"

"और उन्हीं ने कहा है—कांत भाग्य का सिकन्दर है। एक दिन बड़ा आदमी होगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह एक साधारण क्लर्क था। उसके दिल में देश-प्रेम की आग धधका करती थी। उसका देश परतन्त्र था; उसे मुक्त कराने के लिये वह सब कुछ करने को तैयार था। उसने नौकरी छोड़ने का निश्चय किया, परन्तु......

सुनकर कान्त का मन गद्-गद् हो उठा — तो सचमुच वह एक दिन बड़ा आदमी होगा!

* * *

और उस दिन पड़ौसिन मां से कह रही थी— "तुम्हारा बेटा बड़ा लायक है।"

"जी, इसी के दम से घर बसा है।"

दूसरी बोल उठी—"हां जी, लाखों में एक है! सदा नीची निगाह किये चला जा है। न आते को देखे, न जाते को।"

तीसरी ने कहा—"मैं देखूं हूं जी, उसका माथा दिपो दिपो करे है।"

चौथी बोली—"बिल्कुल साधु है जी; जरूर एक दिन बड़ा आदमी होगा।"

मां गद्-गद् हुई और उसी शाम को कान्त जब दफ्तर से लौटा तो उसने सबसे पहिले यही बात लम्बी-चौड़ी भूमिका के साथ उसे सुनाई। प्रसन्नता कान्त को भी हुई; परन्तु उसे छिपाने के लिये वह खुलकर हंसा और बोला—"ठीक तो है, मैं बहुत बड़ा आदमी हूं। हमारे दफ्तर में देखो, मुझ से अधिक कमाने वाले मुश्किल से बीस-बाईस होंगे; परन्तु जिन्हें महीने में दस रुपये भी नहीं मिलते वे हजारों हैं।"

मां ने बेबसी से कहा—"हां बेटा, हम आज भी लाखों से अच्छे हैं।"

* * *

अभी एक दिन वह अपने मित्र से बातें कर रहा था। अचानक मित्र बोले—"भई कान्त, तुम यहां कहां आ फंसे!"

अचरज से कांत ने कहा—"क्यों?"

"तुम्हारा माथा कहता है, तुम्हें बहुत बड़ा आदमी होना चाहिये।"

"सच!"

"हां, उस पर एक ऐसी चमक है जो साधारण आदमी के माथे पर नहीं पाई जाती।"

कान्त मुस्कराया—"तुम ठीक कहते हो, मैं साधारण नहीं हूं असाधारण हूं और असाधारणता यदि आदमी को ऊंचा उठा सकती है तो गिरा भी सकती है।"

दोनों खिलखिला कर हंस पड़े और यहीं आकर उसकी विचार-शृंखला भी टूट गई। मां ने ऊपर आकर कहा—"अरे बेटा, क्या करने लगा? मैं तो रोटी लिये बैठी हूं।"

वह मुस्कराया, बोला—"अभी आता हूं मां।"

"आ तो! साग ठण्डे हुए जाते हैं।"

वह उठा और नीचे चला गया। छोटे भाई देवी-कान्त ने जल्दी से पटरा बिछा दिया। मां ने आग चेतन कर साग उस पर रख दिया। देवी से बोली— "भइया के लिये आम ला।"

"आम कहां से आये मां?"

"तुझे पता नहीं, रमेश के चाचा आये थे। कह रहे थे— गोमती का विवाह है, रमेश के बच्चों को ले जाऊंगा।"

"कहां है गोमती का विवाह?"

"मेरठ। लड़के ने वकालत पास की है। चौध-रियों का खान्दान है, भइया। किसी जमाने में ठाठ थे उनके! चार घोड़ों की बग्घी तो मेरी याद में थी।"

बीच में टोक कर कान्त ने पूछा—"और क्या कहते थे? गांव का क्या हाल है?"

"और सीताराम को छः महीने की सजा हो गई। और................"

"हो गई.........?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हां। पटवारी का कुछ फैसला नहीं हुआ। बाकी कहवे था, पिकेटिंग अभी चले जा है।"

निशिकान्त ने सुन लिया। सुनकर जैसे दिल में चोट लगी। यह सीताराम स्कूल में उसके साथ पढ़ा करता था। निहायत नालायक और गधा लड़का था। जगना मास्टर कहा करते थे—साले की ऐसी शक्ल है जैसे अभी-अभी कब्र से उठकर आया है और काम के नाम बिल्ली का···। और वही सीताराम आज कांग्रेसी लीडर है। १९३० में उसने गांधी जी की तरह चौपाल में बैठकर नमक बनाया था। उसका चित्र उसने अखबारों में देखा था—जैसे कोई रोबीला जवान हो, छाती तनी हुई, हजारों की भीड़ में खड़ा था; हाथ में नमक की पुड़िया थी। वह पुड़िया बाद में पांच सौ रुपये में बिकी थी········

कांत का दिल बैठने लगा। उसे अपने ऊपर ग्लानि हो आई—मैं जो क्लास का मानिटर था, जो सदा मास्टरों की आंखों में चढ़ा रहा—जिसके भविष्य के सम्बन्ध में सब एक मत थे "यह एक दिन बड़ा आदमी होगा —" वह मैं उसी नौकरशाही का गुलाम हूं जो मेरे देश की दुश्मन है; जिसका नाश करने के लिये दुनिया के सबसे बड़े आदमी गांधी ने देश को ललकारा है और लाखों नर-नारी उसकी पुकार पर पागलों की तरह आग में कूद रहे हैं·············

मां ने कहा—"रोटी लाऊं, भइया ?"

"नहीं।"

"नहीं क्यों ? खाया ही क्या है ?"

"नहीं मां।"

"तो बस भइया, चल लिये हाथ पैर ! इस उमर में यह खुराक ! सारा दिन कोल्हू की तरह पिले जा है, नहीं खायेगा तो········।"

"मां लालटैन ठीक कर देना। मुझे रात का काम करना है।"

मां अचरज से बोली—"रात काम करेगा रे ?"

"हां मां, काम बढ़ गया है; आज से रात को भी करना होगा।"

"उत्ता होजा ऐसा काम। यो बखत आ गया, ना खाना, ना पीना। काम अब्भी बाकी पड़ा है। ना बाबा········"

कान्त सहसा हंस पड़ा—"अरे मां ! काम पूरा हो गया तो मुझे कौन पूछेगा ?"

"फिर भी बेटे, कोई वक्त होता है।"

"मां, गुलामी के लिये क्या वक्त और क्या बेवक्त !"

और फिर झट-पट हाथ मुंह धोकर आ गया। फिर वहीं से पुकार कर उसने कहा—"मां, अन्धेरा हो गया है। लालटैन भिजवा दो।"

* * *

सघन रात्रि, मौन और मदिर। नीलाम्बर रजत तारिकाओं से पूरित था, पृथ्वी स्वप्न देख रही थी; परंतु कभी कभी ईर्षालु कुत्ते उसका स्वप्न भंग कर देते थे तब वह चिहुंक उठती और तभी कान्त को अपने अस्तित्व का ज्ञान हो आता। वह उस समय मेज पर लालटैन रखे बैठा था। उसे बहुत से रजिस्टरों पर लाल निशान लगाने थे। इन्हीं लाल निशानों के कारण कान्त कान्त है, यशस्वी है और कुटुम्ब का भरण-पोषण कर्त्ता भी। परन्तु आज बाबू निशिकान्त के हृदय में यह यश पीड़ा पैदा कर रहा है। उसका मन विद्रोह करना चाहता है। वह बड़ी तीव्रता से सोच रहा है—मैं अपने देश से प्रेम करता हूं। मेरा देश परतंत्र है। उसकी मुक्ति के लिये मैं प्राण देना चाहता हूं। मैं प्राण दे सकता हूं, परन्तु·····परन्तु मैं कर क्या रहा हूं ? उसी सरकार की दासता जो मेरे देशकी गुलामी का कारण है; जो मेरे द्वारा ही मेरी मातृभूमि को अपमानित और पददलित कर रही है। मैं उन्हीं के पैर सहलाता हूं जो मेरी मां को ठुकराते हैं। मैंने अपना जीवन उन्हीं को बेच दिया है जो मुझे मेरे अपने भाई का गला घोंटने के लिये विवश करते हैं······मैं अपने भाई का गला घोंटता हूं······मैं अपना गला घोंटता हूं!···मैं कितना क्षुद्र, कितना घृणित, कितना नीच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूं······नहीं, नहीं, मैं अब और मूर्ख नहीं बनूंगा। मैं आज ही त्याग-पत्र दूंगा······आज ही।

तब उस मधुर-रात्रि में जो दीन-भाव कान्त के मस्तिष्क में उमड़े, वे सहसा विद्रोह में पलट गये। उसके हृदय की गति तीव्र हो गई। छाती दृढ़ हो उठी, शरीर में स्फूर्ति उमड़ पड़ी। उसने दृष्टि उठाकर अपने सामने पड़े हुए रजिस्टरों को देखा। तब वे उसे अपने शुभ जीवन में पाप के काले धब्बों की तरह जान पड़े। उसने उन्हें जोर से परे हटा दिया। मेज हिल उठी और साथ ही प्रकाश भी। परन्तु वह मुस्कराने लगा, क्योंकि उसके सिर में जो पीड़ा हो रही थी वह अब शांत हो चुकी थी। आधी रात समाप्त हो चली थी। पहरुये का शब्द-घोष उठने लगा। उसके पैरों की खड़खड़ाहट कान्त ने स्पष्ट सुनी। बीच में उसकी मां जोर से ठोरी और शान्त हो गई; उसका भाई नींद में बड़बड़ाया और चुप हो गया। परन्तु आज उसने इन बातों की ओर ध्यान नहीं दिया। उसे तो अब कल सरकारी दफ्तर में बैठने की कल्पना भी दुखदायी जान पड़ रही थी। उसने एक कोरा कागज उठाया और तीव्रता से लिखना शुरू किया—

महोदय,

मुझे दुख है, मैं अब आपके दफ्तर में काम करने में असमर्थ हूं···

सहसा उसे सूझा, इतनी बड़ी बात बिना किसी भूमिका के लिखना उचित नहीं है। इसलिये उसने वह कागज फाड़ डाला और नया कागज लेकर लिखना शुरू किया—

महोदय,

और अब···अब क्या लिखूं···हूं···तो···?

और दृष्टि मस्तिष्क में गड़ा कर उसने कलम स्याही में डुबोई; एक लम्बा तिनका साथ चला आया। कागज पर एक भौंडी-सी लाइन खिंच कर रह गई। वह खीझ उठा, शान्ति भंग हो गई। उसने चिनचिना कर कलम को मेज पर दे मारा—"क्या वाहियात बात है······।"

और तभी उसने सुना, कोई बड़े जोर से हंसा—"हां, क्या वाहियात बात है! तुम स्तीफा क्यों दे रहे हो?"

"क्योंकि मैं अपने देश का अपमान नहीं सह सकता!"

"नहीं सह सकते, परन्तु उसकी रक्षा के लिये क्या करोगे?"

"क्या करूंगा···करता क्या? वही करूंगा जो दूसरे लोग करते हैं। गांधी जी के साथ देश के दुश्मनों से लडूंगा······।"

"ठीक है, लेकिन अपने और अपने परिवार के लिये क्या करोगे? कल को तुम्हारा विवाह होगा, बच्चे··················।"

"मैं देश के गुलाम रहते विवाह नहीं करूंगा।"

"मत करना, लेकिन जो हैं उन्हें तो जहर नहीं दे दोगे। जानते हो तुम अपने भाई को कितना प्यार करते हो। तुम उसे पढ़ा लिखा कर योग्य बनाना चाहते हो कि वह तुम्हारे पापों का प्रायश्चित कर सके···।"

कान्त सहसा चौंका। त्याग-पत्र का मसविदा सोचते-सोचते उसे झपकी लग गई थी। उसने स्वप्नमें जो कुछ सुना उससे उसे कंपकंपी आने लगी। सिर का दर्द फिर जाग उठा। कलम हाथ से छूट कर नीचे गिर पड़ी। उसने सिर मेज पर दे मारा— "तो मैं क्या करूं?" लेकिन उसे कुछ भी नहीं करना पड़ा।

अगले दिन सवेरे वह सदा की भांति उठा, घूमने गया, लौट कर दूध पिया और फिर स्नान करके कोट कन्धे पर लटकाया। तब घड़ी सात बजा रही थी और वह लपका हुआ दफ्तर की ओर जा रहा था।

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुधि

श्री बाबूराम पालीवाल

आज तुम्हारी सुमधुर सुधि ने फिर से तुम्हें समीप बुलाया !

सुरभित स्वांस तुम्हारी छू कर अरुण कपोल हो गये मेरे,
प्राणों में अमृत बरसाते वे मधुमय संगीत घनेरे,
नयनों में साकार थिरकती मृदु मुसकान सलज कल्याणी !
कानों में कोकिल–कूजन सी कूजी कलित तुम्हारी वाणी,
आज युगों के बाद प्राण, तुमने अतीत का गीत सुनाया !
आज तुम्हारी सुमधुर सुधि ने फिर से तुम्हें समीप बुलाया !

जब साकार कल्पना में तुम प्राणों में आ बसीं हमारे,
टूट गये तब सहसा तड़-तड़ कुटिल काल के बन्धन सारे,
सब सामाजिक परिभाषायें छिन्न-भिन्न हो गईं क्षणों में,
प्राण, देखता हूं मैं तुमको जग के सब चल अचल कणों में,
आज तुम्हारा एक रूप बनकर अरूप कण-कण में छाया !
आज तुम्हारी सुमधुर सुधि ने फिर से तुम्हें समीप बुलाया !

मेरा ज्ञान तड़क कर बोला — 'मूरख, यह सब तेरा भ्रम है !'
किन्तु भावना ने दुलराकर कहा — 'स्नेह का यही नियम है'
स्नेह न आधारित हो सकता कभी पार्थिवी उपधानो पर;
भौतिकता से परे प्राण जब अवलंबित होता प्राणों पर,
प्रस्तर की प्रतिमा में तब भक्तों ने निज भगवान बसाया ।
आज तुम्हारी सुमधुर सुधि ने फिर से तुम्हें समीप बुलाया !

मैंने अनुभव किया, अतीन्द्रिय सरस परस इन्द्रिय सुख देता,
युग-युग का अतृप्त मन मेरा आज तृप्ति–सुख का रस लेता !
तुम अनन्त रस की निर्झरिणी जीवन और मरण के ऊपर,
अपनी आत्मा का पावन रस मेरे प्राणों में देतीं भर !
प्राण, आज पावन वेला में मैंने प्राणों का फल पाया,
प्राण, तुम्हारी सुमधुर सुधि ने फिर से तुम्हें समीप बुलाया !

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निज़ाम की वफ़ादारी ?

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

रियासत हैदराबाद भारत के लिये एक टेढ़ी समस्या का रूप धारण कर चुकी है। महीनों इधर-उधर हाथ-पांव मारने और टाल-मटोल करने के बाद अब निजाम ने भारत सरकार की शर्तें मानकर यथापूर्व समझौते पर हस्ताक्षर कर दिये हैं और हमारे नेता समझते हैं कि कुछ समय बाद निजाम भारतीय संघ में सम्मिलित होना भी स्वीकार कर लेगा। परन्तु प्रश्न यह है कि भारतीय संघ में सम्मिलित होने के बाद भी क्या निजाम भारत के प्रति वफादार रहेगा? निजाम की वंशगत परम्परा बताती है — नहीं। वह वंशगत परम्परा क्या है, इस लेख में पढ़िये।

हैदराबाद के शासक की पेचदार और धूर्त्तता-पूर्ण नीति को देखकर जो लोग आश्चर्यित होते हैं, उनके आश्चर्य के निवारण के लिये मैं निजाम-राज्य की स्थापना करने वाले निजाम-उल-मुल्क के जीवन की कुछ घटनायें पाठकों को सुनाता हूं। उनसे विदित होगा कि जन्म-काल से ही निजाम राज्य का वफादारी या सचाई से कोई सम्बन्ध नहीं था। उसका श्रीगणेश ही स्वामिद्रोह और विद्रोह के साथ हुआ।

*

औरङ्गजेब के समय में मुगलों के राज्य की जो टूट-फूट आरम्भ हुई थी, वह उसके निर्बल उत्तराधिकारी मुहम्मदशाह के समय में पूरे जोर पर पहुंच गयी। मुहम्मदशाह के राज्यकाल में उसके जिन बहुत से सूबेदारों ने राज्य के विद्रोही बनकर स्वतंत्रता की घोषणा की, उनमें से पहिला नम्बर हैदराबाद के सूबेदार निजाम-उल-मुल्क का था। अपने मालिक मुहम्मदशाह के नाम और प्रभाव के बल से जब उसने दक्षिण के कुछ भाग—मालवा और गुजरात को जीत लिया, तब उसके दिमाग में यह बात समायी कि सूबेदारी छोड़कर स्वतंत्र राज्य की घोषणा क्यों न की जाय? यह विचार मन में आने के बाद यद्यपि नाम से वह मुगल बादशाह की ओर से सूबेदार ही रहा, परन्तु वस्तुतः उस समय से वह स्वतन्त्र शासक ही बन गया। बनावटी शिष्टाचार, जिसमें सब एक दूसरे को धोखा देना ही उचित समझते हैं, अब भी जारी रहा। निजाम-उल-मुल्क जानता था कि सब कांटे मुहम्मदशाह के बोये हुए हैं, परन्तु फिर भी उसने मुबारिज की पराजय के पश्चात् बादशाह को एक खरीता भेजा जिसमें उसे एक विद्रोही की पराजय पर बधाई देते हुए अपनी अटूट राजभक्ति की घोषणा की। दोनों जानते थे कि उस बधाई और राजभक्ति की घोषणा में बहुत भयानक व्यंग छुपा हुआ है, तो भी किसी को आश्चर्य नहीं हुआ; क्योंकि उस समय की राजनीति में ईमानदारी की कोई आशा ही नहीं करता था।

*

जिस व्यक्ति ने अपने स्वामी से द्रोह करके स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की, उसके अगले कार्य भी उसकी प्रवृत्ति और ख्याति के अनुकूल ही हुए। यह मानी हुई बात है कि अन्दर की निर्बलता से जर्जरित मुगल साम्राज्य को जिस वज्राघात ने बाहिर से आकर सबसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जबरदस्त धक्का पहुंचाया, वह नादिरशाह का हमला था। नादिरशाह के आक्रमण ने मुगल-साम्राज्य के शरीर में से रही सही जान भी निकाल दी थी। एक इतिहासकार लिखता है—

"नादिरशाह को भारत पर आक्रमण करने की प्रेरणा करने वाले सर्वविदित कारणों में एक और भी कहा जाता है। कई इतिहास-लेखकों ने लिखा है कि नादिरशाह को निमन्त्रण देने वाले निजाम-उल-मुल्क और सफदर-जंग थे। उन दिनों दिल्ली के दरबार में खान दौरान की तूती बोलती थी। निजाम-उल-मुल्क और सफदरजंग उससे जलते थे। उधर मराठों के आक्रमणों के मारे निजाम का नाक में दम था। कुछ लेखकों ने लिखा है कि काबुल में निजाम और सफदरजंग के दूतों ने जाकर नादिरशाह को हिन्दुस्तान की निर्बल दशा से परिचित कराते हुए उसे दिल्ली पर आक्रमण करने की प्रेरणा की। यह बात कहां तक सच है, यह नहीं कहा जा सकता। इसके पक्ष में सीधे प्रमाणों का अभाव-सा है; परन्तु आगे जो घटनायें हुईं, उनसे यह सन्देह होता है कि उपर्युक्त दोनों रईसों का नादिरशाह के आने में थोड़ा बहुत हाथ अवश्य था।"

*

नादिरशाह के भारत-आक्रमण की कहानी इतिहास-प्रसिद्ध है। उस समय मुगल बादशाह के सब से बड़े सलाहकार दो थे, एक हैदराबाद का शासक निजाम-उल-मुल्क और दूसरा अवध का शासक सफदरजंग। दोनों ने मुहम्मदशाह के साथ पूरा द्रोह किया। उनका विश्वासघात युद्ध में और युद्ध के पश्चात् कदम-कदम पर दिखाई दे रहा था। जिस शासक का भरोसा ऐसे विश्वासघातियों पर हो, उसकी जो गति होनी चाहिये थी, मुहम्मदशाह की वही गति हुई। वह बुरी तरह हार गया। दिल्ली पहुंच कर नादिरशाह ने जो क्रूरतापूर्ण हत्याकाण्ड मचाया, वह संसार के इतिहास में अपना सानी नहीं रखता। उन अत्याचारों में निजाम-उल-मुल्क ने नादिरशाह के एजेण्ट के तौर पर काम किया।

ऐसे देशद्रोही और राजद्रोही के जीवन की एक और घटना भी मजेदार है जो उपर्युक्त युद्ध के बाद हुई। इसका वर्णन 'मुगल साम्राज्य और उसकी क्षय के कारण' नामक इतिहास-पुस्तक के चतुर्थ भाग में मिलता है। निजाम ने साम्राज्य की रक्षा के लिये न स्वयं तलवार उठाई और न अपने मालिक मुहम्मदशाह को उठाने दी। सफदरजंग ने नादिरशाह की लोभवृत्ति को भड़का कर हर्जाने की रकम को ५० लाख से २० करोड़ तक पहुंचा दिया। इसके जवाब में दोनों रईस क्या इनाम चाहते थे, यह तो मालूम नहीं; परन्तु उन्हें मिला वही इनाम जो उचित था। नादिरशाह ने दिल्ली पहुंचकर उन दोनों को अपने पास बुलाया और अपमान-पूर्वक कहा—

"मैं तुम दोनों पर लानत भेजता हूं और मेरा यह क्रोध तुम्हारे लिये खुदा के कहर की निशानी है।" यह कहकर उसने दोनों विश्वासघातियों की दाढ़ियों पर थूक दिया और उन्हें दरबार से बाहर निकलवा दिया।

कहते हैं कि दोनों अपमानित रईसों ने बाहिर जाकर निश्चय किया कि इतनी बेइज्जती के पीछे जीना असम्भव है; इस कारण दोनों को जहर खाकर प्राण छोड़ देने चाहिये। निजाम ने पहल की। उसने घर जाकर जहर पी लिया और धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ा। सफदरजंग का दूत यह सब कुछ देख रहा था। उसने अपने मालिक को सूचना दी कि निजाम मर गया। तब सफदरजंग को पीछे रह जाने पर बड़ी ग्लानि हुई और उसने तेज जहर की खुराक पीकर तत्काल ही आत्महत्या कर ली। उसका मरना था कि न जाने कैसे निजाम के प्राण वापिस आ गये और वह उठ खड़ा हुआ। कहते हैं, निजाम जीवन भर इस बात को साभिमान सुनाया करता था कि उसने खुरासान के भोंदू को कैसा गधा बनाया।

*

यह है निजामशाही के जन्मदाता की जीवन-गाथा। उसके उत्तराधिकारियों से वफादारी की क्या आशा रखी जा सकती है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नदी का गीत

श्री निरंकार देव सेवक

कल-कल छल-छल कल-कल छल-छल
कल-कल छल-छल कहती जाती।
मैं मस्त अकेली लहरों में
उठ गिर गाती बहती जाती।

मेरी गति को कब रोक सके
पर्वत विशाल पथ में आकर,
मेरी गति को कम कर न सके
बीहड़ बन दुर्गम गिरि गह्वर,

पाषाण शिला आतीं मेरे
फूलों के मग में कण्टक बन;

पर उन्हें देख कर कब ठहरा
मेरे प्रवाह का वेग प्रखर!

अपने पथ की बाधाओं को
मैं ठुकराती बहती जाती।
मैं मस्त अकेली लहरों में
उठ गिर गाती बहती जाती।

कल-कल छल-छल कल-कल छल-छल
कल-कल छल-छल कहती जाती।

*

मेरी मस्ती के पास नहीं
आते दुनिया के हास रुदन,
मेरी मस्ती से दूर बहुत
रहती है सुख दुख की उलझन,

मेरी तन्मयता से भीषण—
भव-कोलाहल भय खाता है,
मेरी मस्ती ने कब माना
दुश्चिन्ताओं का अनुशासन!

अनुराग हिलोरों-सी गति मम,
मैं लहराती बहती जाती।

कल-कल छल-छल कल-कल छल-छल
कल-कल छल-छल कहती जाती।
मैं मस्त अकेली लहरों में
उठ गिर गाती बहती जाती।

*

दुनिया के विभव विलासों से
मेरी मस्ती को काम नहीं,
दुनिया के हास हुलासों से
मेरी मस्ती को काम नहीं,

जग की संतप्त उसासों से
मेरी मस्ती को काम नहीं,

उत्पीड़ित की उच्छ्वासों से
मेरी मस्ती को काम नहीं।

मेरे तट पर आ जाता है
जो कोई प्यास बुझाने को,
मैं उसकी तृष्णा के मरु पर
मधु बरसाती बहती जाती।

मैं मस्त अकेली लहरों में
उठ गिर गाती बहती जाती।

*

अपने तट के गिरजाघर से
मेरी मस्ती को द्रोह नहीं,
अपने तट के शिव-मन्दिर से
मेरी मस्ती को मोह नहीं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आतंक भला मैं क्यों मानूं
रे मस्जिद की मीनारों का,
मैं एक जगह रुक कर पल भर
लेती ही कब विश्राम कहीं !
अविरत अविराम निरन्तर नित
गति को ही ध्येय बना अपना,
मैं अपने कूल कगारों की
सीमा ढाती बहती जाती ।
मैं मस्त अकेली लहरों में
उठ गिर गाती बहती जाती ।

*

मेरे कानों तक आता है
झोंपड़ियों का चीत्कार नहीं,
मेरी आंखों में रमता है
प्रासादों का शृंगार नहीं ।
मैं ऊंच नीच का भेद चला
विद्रोह सिखाऊं क्यों जग को ?
मुझको महलों से वैर नहीं,
मुझको कुटिया से प्यार नहीं ।
मैं एक भाव से दोनों में
सुख सरसाती बहती जाती ।
मैं मस्त अकेली लहरों में
उठ गिर गाती बहती जाती ।
कल-कल छल-छल कल-कल छल-छल
कल-कल छल-छल कहती जाती ।

*

यह दुनिया पथ-गृह है, इसमें—
कितने पथिकों के दल आए,
कुछ मधु मदिरा पीकर आए,
कुछ खारी दृग-जल ही लाए,
कितने सम्राटों ने इसमें
बजवाए विजय नगाड़े, पर—
कोई आए, कोई जाए,
कोई रोये, कोई गाए ।

जीवन मद पी उन्मत्त बनी
मैं मदमाती बहती जाती ।
कल-कल छल-छल कल-कल छल-छल
कल-कल छल-छल कहती जाती ।
मैं मस्त अकेली लहरों में
उठ गिर गाती बहती जाती ।

*

क्या सोच रहा कवि रे पागल,
चुप चाप खड़ा मेरे तट पर ?
सुख दुख द्वन्द्वों से क्यों इतना
व्याकुल रहता है तेरा उर ?
जो जग तुझको ठग लेता है
स्वर्गों का वैभव दिखला कर,
जो जग तुझको दुख देता है
तेरी सीमायें बतला कर,
तेरे उस जग के आंगन में
मैं इठलाती बहती जाती ।
मैं मस्त अकेली लहरों में
उठ गिर गाती बहती जाती ।
कल-कल छल-छल कल-कल छल-छल
कल-कल छल-छल कहती जाती ।

*

कवि तू क्या पायेगा मथ कर
चिन्ताओं के गहरे सागर ?
मेरी लहरों से ले ले कर
मधु मादकता गीतों में भर ।
तेरा कुछ साथ निभाने को
सोचा करती मैं युक्ति यही :
तू युग युग तक गाता रहता
मेरी मस्ती के गीत अमर,
मैं तेरे मानस में रस के
नद उमगाती बहती जाती ।
कल-कल छल-छल कल-कल छल-छल
कल-कल छल-छल कहती जाती ।
मैं मस्त अकेली लहरों में
उठ गिर गाती बहती जाती ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथ्वी के दक्षिणी छोर पर

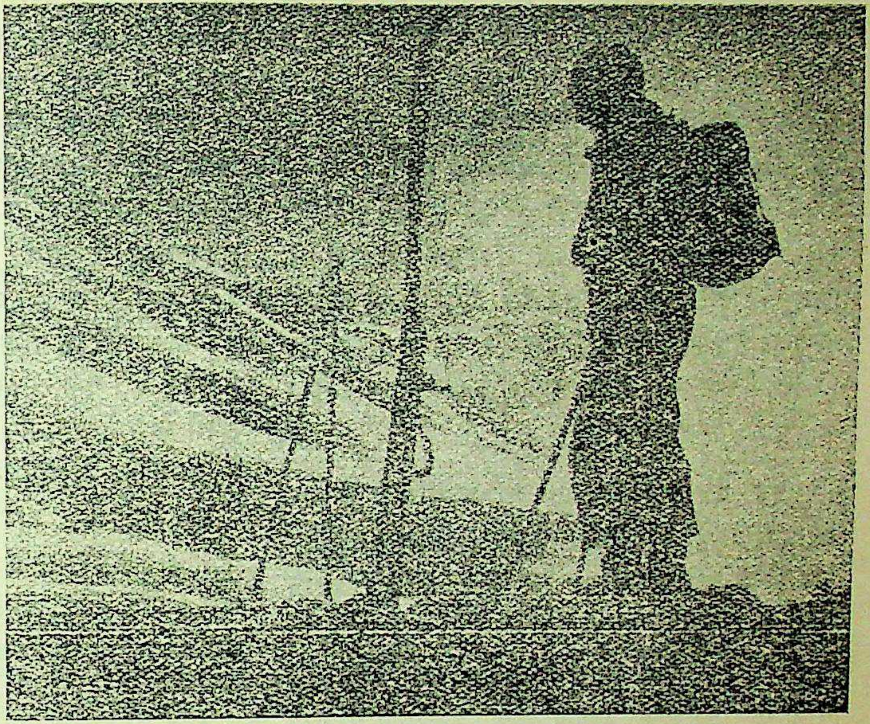

श्री विराज

> पृथ्वी के दोनों हिमाच्छादित ध्रुवों में से उत्तरी ध्रुव के सम्बन्ध में तो सभ्य संसार काफी जानकारी प्राप्त कर चुका है, परन्तु दक्षिणी ध्रुव के सम्बन्ध में उसे बहुत कम ज्ञात है; अतः हाल ही में इस ध्रुव की स्थिति, आकार प्रकार व अन्य बातों की छानबीन करने के लिये अमरीका से एक पार्टी गई है। वहां पहुंच कर उस पार्टी ने क्या २ देखा और अनुभव किया, इसी का रोचक विवरण इस लेख में पढ़िये।

'सारा प्रदेश वनस्पति से शून्य है। तापमान जमाव-बिन्दु के आस-पास रहता है। नीचे जमी हुई कठोर हिम के ऊपर किसी भी समय तुषारपात होने लगता है। कई-कई दिन तक कुहरा छाया रहता है। किसी महादैत्य के चीखने का-सा भयंकर शब्द करती हुई आंधियां नब्वे मील प्रति घण्टे के प्रचण्ड वेग से कई दिनों तक चलती रहती हैं। सूर्य के दर्शन बहुत कम कभी-कभी सौभाग्य से ही होते हैं।' इन शब्दों में कमांडर फिनरोन ने दक्षिणी ध्रुव का चित्र खींचने का यत्न किया है।

कमांडर रोन उस साहसिक दल के नेता हैं, जो अमेरिका के पत्रकार संघ की ओर से दक्षिणी ध्रुव के अनुसन्धान के लिये भेजा गया है। इस साहसिक दल में कुल मिला कर बीस व्यक्ति हैं, जिनमें दो महिलाएं श्रीमती फिनरोन तथा श्रीमती हेरी डार्लिंगटन हैं। शेष सब व्यक्ति अपने-अपने विषय के विशेषज्ञ हैं। कमांडर फिनरोन अमेरिकन जलसेना के अफसर हैं तथा पहले भी कई अनुसन्धान-यात्राओं का नेतृत्व कर चुके हैं। एएडी थामसन भू-विज्ञान का विशेषज्ञ है। हेरी पीटर्सन अन्तरिक्ष विज्ञान के अनुसन्धान में निपुण है और वहां उसने ऋतु, वायु की गति तथा तापमान का अंकन करने के लिये ६००० फीट ऊंची एक पहाड़ी पर अपनी वेधशाला बना ली है। बिल लेटेडी ने कैमरा से सारे प्रदेश के फोटो लेना प्रारम्भ कर दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। चार्ली हैसेज मिस्त्री है और उसने इस कैम्प को बिजली देने के लिये अपने डीजल एंजिन यथास्थान जमा लिये हैं। सिग गुटैंको रसोइया है, जिसके स्वादिष्ट भोजन के लिये सब प्रतीक्षा करते रहते हैं! बाब डाडसन तथा आर्ट-ओवन कुत्तों को स्लैज (बर्फ पर चलने वाली गाड़ी) खींचने की शिक्षा देने में लगे हुए हैं। हेरी डार्लिंगटन तथा जिमी राबर्टसन विमानों के लिए गैरेज बनाने में जुटे हैं। हेरी कैल्सी रेडियो विशेषज्ञ हैं। कोई भी व्यक्ति फालतू नहीं है। यहां तक कि स्त्रियों का भी दावा है कि उन्होंने भी सारे कैम्प को 'घर' बना दिया है।

इस दल को एक ओर जहां पत्रकारों ने आर्थिक सहायता दी है, वहां सरकारी सहायता भी कम नहीं है। दल को अमेरिकन जलसेना का एक मजबूत जहाज 'पोर्ट आफ ब्यूमांट' तथा चार विमान दिये गये हैं। जल सेना विभाग ने भौलोगिक, सामुद्रिक, ज्वारभाटा सम्बन्धी, कास्मिक किरण तथा इलैक्ट्रोन सम्बन्धी अनुसन्धानों के विषय में इस दल से ठेका कर लिया है। दल उन प्रभावों के विषय में खोज करेगा जो कि इतने शीत जलवायु में मनुष्य शरीर पर होते हैं।

प्रदेश विचित्र है

दक्षिणी ध्रुव-प्रदेश की कल्पना करना कठिन है। शीतल जलवायु के कारण कभी भी एकाएक समुद्र जमने लगता है और ऐसा पहले कई बार हो चुका है कि इस बात से अनभिज्ञ बहुत से लोगों के जहाज समुद्र में ही जम गये। परन्तु जहाज का बर्फ में जम जाना ही समाप्ति नहीं है; क्योंकि जमते हुए पानी फैलता है और तब बर्फ का अकल्पनीय भयंकर दवाब अभागे जहाज को चूर-चूर कर देता है। और क्योंकि जमने की दशा में ऊपर बर्फ होने पर भी नीचे पानी ही होता है, अतः वह पानी टूटे उस जहाज में भर जाता है। प्रसिद्ध यात्री सर अर्नेस्ट शैकल्टन और उनके साथियों को एक बार ऐसे ही दुर्भाग्य का सामना करना पड़ा था और बड़ी मुश्किल से कई दिन तक समुद्र की जमी हुई सतह पर चल कर वे 'एलिफैन्ट' द्वीप में पहुंच सके थे, जहां से उन्हें जहाज द्वारा बचाया गया था। पु[illegible] अनुभवों से लाभ उठाकर इस बात की पूरी कोशि[illegible] की गई है कि इस जहाज की वैसी गति न हो। ह[illegible] का जमना प्रारम्भ होने से पहले ही जहाज को मार्ग[illegible] खाड़ी में स्टोनिंगटन द्वीप तथा एक विशाल आइस[illegible] के बीच खड़ा कर दिया गया था। इस आइसबर्ग[illegible] उतना अंश जो पानी से ऊपर दीखता है, लग[illegible] १०० फीट ऊंचा है। जहाज अब समुद्र में जम [illegible] है। चारों ओर के पानी पर दो फीट मोटी बर्फ की[illegible] जम गई है। एक रोचक बात यह है कि जब जहाज[illegible] ऊपरी भाग में तापमान शून्य से ३८ डिग्री नीचे [illegible] है तो जहाज के इंजिन-रूम में, जो कि नीचे [illegible] में डूबा रहता है, तापमान शून्य से दस डिग्री [illegible] रहता है। अर्थात् समुद्र की ऊपर की सतह के ताप[illegible] और बर्फ के नीचे पानी के तापमान में ४८ [illegible] का अन्तर रहता है और शायद यही कारण है [illegible] भयंकर से भयंकर शीत में भी जल-जन्तु आराम से [illegible] सकते हैं।

दक्षिणी ध्रुव-प्रदेश को बर्फ का रेगिस्तान क[illegible] अनुपयुक्त न होगा। जिस प्रकार रेगिस्तान में आंधि[illegible] रेत के टीलों को एक जगह से उड़ाकर दूसरी जगह[illegible] जाकर खड़ा कर देती हैं, उसी प्रकार यहां की [illegible] और तेज हवाएं बर्फ को उड़ाकर जहां-तहां जमा [illegible] देती हैं। चलने वाले आदमी के लिये इस बर्फ[illegible] मार रेत की मार से कहीं अधिक कठोर होती है। [illegible] नहीं कि केवल वनस्पतिशून्य होने से ही यह रेगिस[illegible] जैसा हो, बल्कि यहां मृगमरीचिकाएं भी दिखाई देती हैं [illegible] कि अब तक रेगिस्तानों की ही विशेषता सम[illegible] जाती थीं।

साहसिक दल की दिनचर्या

इस साहसिक दल ने दक्षिणी ध्रुव के इस वि[illegible] प्रदेश में जाकर अपना छोटा-सा अड्डा बना लिया [illegible] और सप्ताह में एक बार ये बर्फीले मैदान और प[illegible] ड़ियां सिनेमा के गीतों से गूंज उठती हैं, जबकि [illegible] छोटे से कैम्प के लोग कैम्प में ही सिनेमा देखते हैं [illegible] रेडियो तो लगभग दिन भर बजता ही रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैम्प के मकान लकड़ी के बने हुए हैं, जो जहाज में साथ ले जाई गई थी। उनमें बिजली की रोशनी का प्रबन्ध है। परन्तु स्थान बहुत थोड़ा है, इसलिये सभी को तंगी से गुजारा करना पड़ता है।

अनुभव ने इन लोगों को समझा दिया कि है ध्रुव-प्रदेश की भयंकर सर्दी में बिना एस्किमो बने काम नहीं चलेगा। इसलिये इनकी वेशभूषा तथा यातायात के साधन वही हैं, जो असभ्य अशिक्षित एस्किमो लोगों के पास होते हैं। इन्हें भी कुत्तों से स्लैज गाड़ियां खिंचवानी पड़ती हैं। घर से बाहर निकलते हुए ये समूर के बने कपड़े पहनते हैं। जब सरदी कुछ कम हो तो केवल हवा से बचाने वाले गर्म कपड़े पहनने से काम चल जाता है। इसी प्रकार जब तापमान जमाव-बिन्दु से नीचे गिर जाता है तो रात को सोने के लिये इन्हें एक विशेष प्रकार के थैले इस्तेमाल करने पड़ते हैं। ये थैले विशेष रूप से इसीलिये बनाये गये हैं। पर फिर भी होता यह है कि सांस की भाप बर्फ बन कर थैले के मुंह पर जमा होती जाती है और उठने से पहले उसे साफ करना पड़ता है। पर जब सर्दी अपेक्षाकृत कम होती है तो ऊनी स्वेटर और ऊनी पाजामे पहन कर पांच छः मोटे कम्बलों में सोने से काम चल जाता है। स्त्रियों को यह बड़ा विचित्र अनुभव होता है कि उन्हें भी पुरुषों की तरह भद्दे और भारी कपड़े पहनने पड़ते हैं, जिन में शृंगार-सजावट की कोई गुंजाइश नहीं। पर इसके बिना कोई उपाय भी नहीं है!

महिलाओं का एक और भी अनुभव है कि यहां उन्हें क्रीम का बहुत अधिक उपयोग करना पड़ता है। निरन्तर अत्यन्त सर्दी तथा तेज हवाओं के कारण शरीर की त्वचा बहुत जल्दी सूख कर फटने लगती है। और उन्हें १५ महीने तक वहां रहना है। यदि वहां सदा रहने की ही बात होती तो शायद वे त्वचा को फट भी जाने देतीं; परन्तु अनुसंधान-कार्य के बाद उन्हें फिर इसी सभ्य और सुसंस्कृत संसार में लौटना भी है; इस लिये उन्हें इस विषय में काफी मेहनत करनी पड़ रही है।

सबसे अधिक मनोरंजक वस्तु इस प्रदेश में कपड़े सुखाने का नया ढंग है। सामान्यतया हमारे उष्ण प्रदेश में सुखाने के लिये कपड़े धूप में डाल दिये जाते हैं और पानी के भाप बन कर उड़ जाने पर वे सूख जाते हैं। परन्तु इस बर्फीले प्रदेश में इतनी गर्मी कहां कि पानी भाप बन कर उड़ सके। इसलिये यहां कपड़े गर्म पानी में धोकर बाहर खुली हवा में डाल दिये जाते हैं। रात भर में ठंडी हवा सारे पानी को जमाकर बर्फ बना देती है, जिसे झाड़कर हटा देने पर सूखा और मुलायम कपड़ा बाकी बच जाता है।

खैर, ये लोग वहां रहने नहीं गये हैं। केवल पन्द्रह महीने ध्रुव प्रदेश में बिता कर लौट आना-भर इनका उद्देश्य नहीं है। इन्हें सारे प्रदेश के नक्शे तैयार करने है और समुद्र के तूफान के सम्बन्ध में, गुरुत्वाकर्षण के सम्बंध में, ऋतु के सम्बंध में और सबसे बढ़कर कास्मिक किरण और इलैक्ट्रोन-विज्ञान के सम्बंध में वहां पर खोज करनी है। इसलिये कैम्प के अन्दर बैठकर सर्दी का अनुभव करते रहने से काम नहीं चल सकता। इसके लिये तट से अन्दर के प्रदेश में इन की छोटी छोटी पार्टियां खोज के लिये जाती हैं; जरूरी सामान कुत्तों की गाड़ी पर लाद कर ले जाया जाता है और अपने कैम्प से बाहर तम्बुओं के अन्दर इन्हें कई कई रातें बितानी पड़ती हैं। यद्यपि विमानों तथा रेडियो की सहायता से इनकी कठिनाइयां बहुत कुछ कम हो गई हैं, परन्तु फिर भी मृत्यु इनके कितना निकट रहती है, यह नीचे लिखी घटना से मालूम हो जायगा।

मौत के मुंह में

इस अमेरिकन दल की भांति एक अंग्रेजों का दल भी दक्षिणी ध्रुव में पहुंचा हुआ है और दोनों दलों में परस्पर सहयोग भी है। एक दिन ब्रिटिश दल के तीन सदस्य एक छोटे विमान में अन्दर के प्रदेश का निरीक्षण करने गये हुए थे। एकाएक तेज हवा चलनी प्रारम्भ हो गई और उसका वेग ६० मील प्रति घण्टे तक जा पहुंचा। अपने अड्डे की ओर लौटना कठिन था, क्योंकि आकाश बादलों से भरा हुआ था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विमानचालक ने विमान को बचाने के लिये उसे कई ओर ले जाने की कोशिश की, पर वह सब असफल रही। तब चालक ने जमे हुए समुद्र की ओर जाकर बर्फ पर उतरने का निश्चय किया। परन्तु मार्गरेट की खाड़ी तक पहुंचने से पहले ही बर्फ पड़नी प्रारम्भ हो गई और सब कुछ दीखना बन्द हो गया। नीचे भूमि भी नहीं दीख रही थी और जब विमान ने भूमि को छुआ, तब मालूम हुआ कि विमान भूमि पर आ गया है। विमान के पंख, इंजिन आदि सब टूट फूट गये, परन्तु यात्री कष्ट भोगने के लिये जीवित और सकुशल जीवित बच गये। उस भीषण सर्दी और बर्फ में उन्होंने बड़ी कठिनाई से अनुमान से कैम्प की ओर बढ़ना प्रारम्भ किया। सात दिन तक चलने की थकान, अनाहार तथा भयंकर शीत का कष्ट उन्हें भोगना पड़ा। उनके पास जो थोड़ा सा भोजन था, उसे वे बहुत बचा बचा कर खाते थे। दस मिनट चलते थे और फिर दस मिनट विश्राम करते थे। उनके सौभाग्य से उनके विमान टूटने का हाल रेडियो से उनके कैम्प को मालूम हो चुका था, परन्तु वे अपनी दिशा और स्थान की सूचना नहीं दे पाये थे कि उनका संदेश भेजने वाला रेडियो ट्रांसमिटर खराब हो गया। पर रेडियो का रिसीवर सैट ठीक हालत में था और वे सुन सकते थे कि उनके कैम्प का रेडियो बराबर उन्हें बुला रहा था। पर उत्तर देने का साधन उनके पास नहीं था।

ब्रिटिश तथा अमेरिकन दलों की संयुक्त खोज के बाद आठवें दिन एक अमेरिकन विमान ने उन्हें खोज निकाला। वे इतने कमजोर हो गये थे कि एक सील मछली को मारने का भी उनमें दम न रहा था और उसे मारने से पहले उन्हें काफी देर विश्राम करना पड़ा। सर्दी से उनके हाथ पांव सूज गये थे, जो कि काफी दिन तक ठीक न हुए। उन सब का भार २० से २५ पौंड तक घट गया था।

जब अमेरिकन विमान उनके पास उतरा तो उनके मुंह से आवाज न निकली, पर उनकी आंखें उल्लास से चमकने लगीं और उनके होठ मुस्कराहट से खिल उठे। उस दिन उनके बच जाने की खुशी में कैम्प में सिनेमा दिखाया गया।

फिर भी अनुसन्धान जारी है

यद्यपि परिस्थितियां विपरीत हैं और मृत्यु केवल दो कदम की दूरी पर पीछा करती रहती है, फिर भी ये अद्भुत साहसी वीर हार नहीं मानते। इनका काम जारी है। एक ऊंची पहाड़ी पर ऋतु-सूचना स्थान बना लिया गया है, जहां से रेडियो द्वारा नियमित रूप से खबरें अमेरिका भेजी जा रही हैं। आंधी तूफान और बर्फ की परवाह न करके ये लोग ध्रुव-प्रदेश के रहस्योद्घाटन में लगे हुए हैं।

ध्रुव प्रदेश भयंकर तो है ही, परन्तु ऐसे समय भी आते हैं जब आकाश साफ हो जाता है, कुहरा हट जाता है, वायु का वेग रुक जाता है और सारा प्रदेश सूर्य की उज्ज्वल धूप में चमचमा उठता है। सफेद बर्फ, सुनील क्षितिज तथा लाल रंग के द्वीप दूर दूर तक दिखाई पड़ते हैं। ऐसे दिनों में आकाश इतना निर्मल होता है कि पहाड़ियों पर से साठ साठ मील तक का दृश्य स्पष्ट दिखाई पड़ता है। परन्तु ऐसे सुन्दर अवसर कम आते हैं और बहुत कम समय तक रहते हैं।

अभी दक्षिणी ध्रुव का अनुसंधान प्रारम्भ ही हुआ है। इसके समाप्त होने तक न जाने कितनी और मनोरंजक बातें दुनिया के सामने आयेंगी।

★

समस्त परिवार के मनोरंजन
के लिये
मनोरंजन
खरीदिये और पढ़िये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक भाव-चित्र

श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

पेड़, पशु, मनुष्य !

मेरी खिड़की के सामने एक पेड़ खड़ा है। मेरी ही तरह साधारण देह है उसकी; पर जब उस पर फूल आते हैं, तो मुझे ऐसा लगता है जैसे आकाश से बरसी देवताओं की हंसी का अम्बार हो! चारों ओर हल्के लाल रंग के फूल; यहां तक कि पत्ते भी ढक से जाते हैं।

मैं अपने पलंग पर बैठा घण्टों उसे देखता रहता हूं, पर मन नहीं भरता। मैं अक्सर सोचा करता हूं कि काली मिट्टी में जन्मे कुरूप तने पर आश्रित इस पेड़ में ऐसे कोमल पत्ते और इतने सुन्दर फूलों की सृष्टि विश्व का कितना बड़ा चमत्कार है। सोचते-सोचते ही मैं कई बार उठकर अपनी भावुकता के आवेश में उस पेड़ से जा लिपटा हूं और मुझे ऐसा आनन्द आया है मानों मैं अपने किसी मित्र से मिल रहा हूं!

शास्त्र और विज्ञान दोनों वृक्षों को 'सजीव' मानते हैं। मेरा भी इसमें यों ही विश्वास-सा था, पर १९४२ की जेल-यात्रा में अपने साथियों के साथ जब मैं डाकू-वार्ड में बन्द किया गया, तो कुछ ही दिन पहले अपनी पत्नी की मृत्यु के कारण मेरे मन पर छाई शून्यता और भी घनी हो गई। शून्यता के इसी वातावरण में एक दिन चांदनी रात में अचानक चौक में खड़े पेड़ की जीवन-शक्ति का मुझे साक्षात् अनुभव हुआ और मुझ पर से शून्यता का वातावरण कुछ हट-सा गया। तब से वृक्षों के साथ मेरी आत्मीयता और भी गहरी हो गई।

× × ×

उस दिन भी मैं कुछ ऐसे ही 'मूड' में था कि उस पेड़ के पास पहुंच गया। सन्ध्या का समय था और सूर्य की हल्की किरणों से वह और भी भव्य हो रहा था।

मैंने कहा—'आज तो मित्र, तुम अपनी हंसी में आप ही लिपटे जा रहे हो; क्या बात है?' पेड़ बेचारा क्या बोलता; पर तभी कुछ फूल नीचे चू आये। अपनी भावुकता में मुझे ऐसा लगा कि ये फूल मेरे प्रश्न का उत्तर हैं और तभी आत्मीयता के प्रवाह में मैं ऐसा डूब गया कि पेड़ के तने पर प्यार से थपथपा कर मैंने कहा—'अच्छा चलो, कुछ दूर घूम आयें।'

तभी हो गया मेरा खुमार कम और मैं आगया भावुकता के आकाश से यथार्थ की पृथ्वी पर, जिसमें पेड़ पेड़ है और मनुष्य मनुष्य! तब मैंने अपने आप से कहा—'पागल, पेड़ है यह तो; यह कहां जायेगा?' मन में अफसोस-सा हुआ—'काश, पेड़ भी चला करते!'

× × ×

मैं फिर विचारों में डूब गया। इस पेड़ में जीवन है, सौन्दर्य है और बहुत-सी बातों में यह आज के मानव से तो श्रेष्ठ ही है; पर इसमें जाति नहीं है, इस लिये यह जंगम है।

इसी शृंखला में सोचता हुआ मैं घूमने चला गया और खेतों पर पहुंचते-पहुंचते एक सूत्र मेरे हाथ लगा जिस की तीन धारायें हैं—

— जिसमें जीवन है, पर गति नहीं है, वह पेड़ है,

— जिसमें जीवन है और गति है, वह पशु है, और

— जिसमें जीवन है, गति है और गति की सही दिशा—प्रगति—भी है, वह मनुष्य है।

इन तीनों धाराओं का समन्वित भाष्य हुआ कि प्रगतिशीलता ही मानव की कसौटी है और यही उसे वृक्ष और पशु से पृथक करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

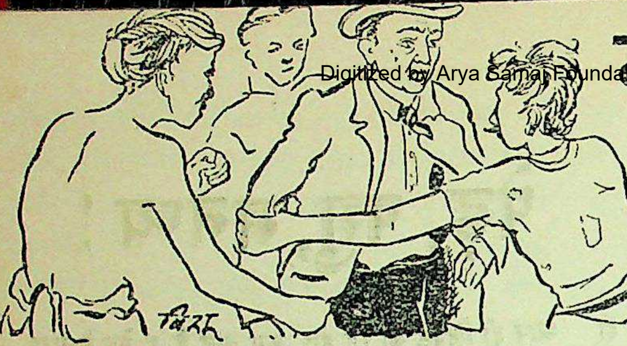

यदा यदा हि धर्मस्य......

श्री महावीर अधिकारी

मेज पर रखी हुई डाक में अकस्मात् मेरी निगाह एक पत्र पर पड़ी, जिस पर मृतक-पत्र-कार्यालय की मुहर लगी थी। मृतक-पत्र-कार्यालय से यह अर्थ न समझा जाए कि किसी आध्यात्मिक शंकेबाज ने हमारे किसी स्वर्गीय परिजन की कुशल-पाती हमारे पास भेजी है। यह तो हमारे मित्र का दुर्घटना-ग्रस्त पत्र है जो उन्होंने व्यग्रता में लिखा हमारे नाम, पर जा पहुंचा मृतक-पत्र-कार्यालय—यानी 'डेड लेटर आफिस।'

हमने खोल कर देखा। पत्र ऊपरी आकार में जितना पुराना था, विषय में भी उससे कम पुराना नहीं था। पत्र में कुशल-क्षेम कुछ न थी। सारा का सारा राजनीति से ही सराबोर था—राजनीति के चक्कर में फंस कर राजेन्द्र बाबू के 'खण्डित भारत' की तरह हलकान हो रहा था।

मित्र ने एक स्थल पर लिखा था — "इस इलाके में धर्म के नाम पर गुण्डों का राज है। जिन्हें धर्म और संस्कृति के शाब्दिक अर्थ भी नहीं मालूम, वे ही आज पृथ्वी को सिर पर उठाए हुए हैं। किसी भी भद्र पुरुष की जेब और प्रतिष्ठा सुरक्षित नहीं। जान का भी खतरा है।"

आगे उन्होंने हमें तम्बीह की थी कि समय-असमय घर से बाहर न निकलें और इस वक्तव्य की पुष्टि के लिए दो एक मित्रों की आप-बीतियां भी लिखी थीं।

वस्तुतः पत्र का विषय गम्भीर था और मित्र ने, प्रतीत होता था, पूरी गम्भीरता से उसे प्रतिपादित भी करने का प्रयत्न किया था। पर मैं इतना अकृतज्ञ कि उसे बार-बार पढ़कर ठी···ठी···ठी···करने लगा। उन आप-बीतियों में जैसे हंसाने वाली गैस भरी थी जो पत्र के खुलते ही भयानक आक्रमण करती थी।

पड़ोसी और घरवाले कहीं मुझे पागल न समझें, इसलिए उस पत्र को बन्द कर दिया। मैं दूसरी डाक देख रहा था, पर पत्र की याद करके अब भी हास्य से कलेजा कूद रहा था। ध्यान आया, क्यों न इस गैस का मजा मित्रवर प्रोफेसर घीमर्जा साहब को चखाया जाए। ओ····हो···धर्म और संस्कृति की रक्षा के ढोंगियों को ऐसी ताक-ताक कर सुनाएंगे प्रोफेसर घीमर्जा कि बस···!

पत्र को जेब में खोंस कर मैं फोरन प्रोफेसर घीमर्जा के मकान की ओर लपक लिया। मन में मेरे अब भी कुटिल-कल्पनाएं उठ रही थीं और मैं आसमान में अजीब-अजीब खाके खींचता जा रहा था।

मेरे मित्र प्रोफेसर घीमर्जा बड़े ऊंचे विद्वान हैं। उन्होंने वर्षों विदेशों में शिक्षा पाई है। हर वस्तु में उन्हें पाश्चात्य रंग पसन्द है। उनकी पोशाक अंग्रेज कम्पनी में सिलती है। भोजन वह नितान्त अभारतीय यानी शुद्ध यूरोपियन करते हैं। बीमार पड़ने पर इलाज भी विलायती करते हैं और स्वस्थ होने पर ताकत के टानिक भी विलायती। यम-नियम और आदर्श सभी पश्चिमी! देशी भाषा उन्हें पसन्द नहीं, देशी-ज्ञान-विज्ञान या कला-साहित्य कुछ भी तो नहीं। वे घर में अंग्रेजी बोलते हैं और पण्डित जवाहरलाल नेहरू की तरह स्वप्न भी उन्हें अंग्रेजी में ही आते हैं। धर्म के नाम से ऐसे बिदकते हैं जैसे छाते से बैल। और उस पर कभी चर्चा करनी पड़े तो ऐसे मुंह बिचका लेते हैं जैसे किसी पुजारी के मुंह में मोहनभोग के स्थान पर धोखे से गोबर का टुकड़ा चला गया हो। उन्हें यदि कोई चीज देशी पसन्द है तो बस केवल बनारसी पान, जो उन्होंने विलायत में भी नहीं छोड़े।

वह देशी सन्त-महात्मों और नेताओं को भी पसन्द नहीं करते। उनके खास कमरे में विदेशी विचारकों और संतों के चित्र लगे हैं। मिस मेयो का चित्र भी उनमें है और बीवर्ले निकोल्स के लिए इङ्गलैंड की एक प्रसिद्ध फोटो-कम्पनी को आर्डर दे दिया गया है।

पर आदमी वह बड़े चरित्रवान् हैं। हृदय के सरल और सच्चे मोती हैं। हर विषय पर जम कर वादविवाद करते हैं और विरोधी के कथन में रस लेते हैं। यदि उनकी भावनाओं को उत्तेजित न किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाए तो बड़े मौलिक निर्णय देते हैं। वे अर्थशास्त्र के प्रोफेसर, पर दर्शनशास्त्र के पंडित हैं। इसीलिए दर्शन को विज्ञान से बिना कसे नहीं छोड़ते। एक बार गीता की मीमांसा करते हुए कहा था—"लौकिक सत्ता प्राप्त करने के लिए ही यादव कृष्ण ने चक्र सुदर्शन के साथ इस दार्शनिक अस्त्र का भी निर्माण किया था। यह तो विरोधी को पिछाड़ने का हथियार थी, दर्शन-वर्शन क्या है इसमें।"

मैं सुनकर दंग रह गया। और कोई इससे दंग हो या न हो, पर वह कल्पना भली प्रकार की जा सकती है कि मेरे मनोविनोद के लिए उनसे अच्छा साथी विज्ञापन देने पर भी प्राप्त नहीं हो सकता। और मैं उन्हीं से शीघ्र मिलने की इच्छा से सरपट चला जा रहा था।

उनके मकान पर पहुंच कर देखा कोई सज्जन दरवाजे की ओर पीठ किए, गले में रेशमी पटका डाले ध्यान-मग्न हैं। उनके सामने कोई बड़ी-सी मूर्ति थी जिसकी दोनों तरफ निकलने वाली भुजाएं ही दीख पड़ती थीं। दीवारों पर देवी-देवताओं के चित्र और मूर्तियां। वह कमरा छोटा-मोटा देवालय लगता था। मैं ने सोचा, प्रोफेसर धीमर्जा क्या हुए? मकान उन्हीं का है। ठीक दोनों ओर वही क्वार्टर, वही बगीचा और वही विलायती फूल, जो प्रोफेसर ने इटली की एक प्रसिद्ध नर्सरी से मंगाए थे। पर ये धर्मात्मा उदाराशय कौन हैं?

फिर सोचा—बड़ी मुद्दत बाद हम आये हैं। जमाने में कितनी तब्दीलियां हो गईं। शायद कहीं मकान बदल गए हों। कम से कम पता तो पूछ लिया जाए। हमने ध्यानमग्न सज्जन के हिलने-डुलने की प्रतीक्षा की, पर अधिक न कर सके। उधर सूरज अपनी पैनी किरणों से दिमाग में उतरते जा रहे थे और इधें ताव आता जा रहा था। लाख उन सज्जन को चाहे कितना ही आध्यात्मिक सुख क्यों न मिल रहा हो, पर अपना समय तो बुरी तरह नष्ट हो रहा था। हमने उस ध्यानी की तपस्या खण्डित करने की दुर्भावना से कड़ककर पूछा—"क्या प्रोफेसर धीमर्जा अन्दर हैं?"

पर वह हिले न डुले। हमने फिर पूछा—"क्या प्रोफेसर धीमर्जा यह मकान छोड़ गए हैं? क्या मैं उनका नया पता जान सकता हूं?" इस पर वह सज्जन बिना सिर घुमाए ही बोले—"मकान छोड़ गए हैं। पता नहीं मालूम।"

कितना टका-सा अशिष्ट और बेहूदा उत्तर था! हमने सोचा प्रोफेसर साहब इन लोगों से ठीक ही नफरत करते हैं। इन्हें इतनी तमीज नहीं कि किसी को सीधे मुंह बात भी बता सकें। खाक पड़े ऐसे पूजा-पाठ पर! खिन्न मन से हम लौटने लगे। कहां सुन्दर, सरल हास्य से हृदय को आलोकित करने आए थे और कहां घृणा और विषाद से सारा शरीर भर उठा था!

पर चार कदम चले होंगे कि पीठ पर भयानक अट्टहास गूंज उठा। हमने आंखें फेर कर अपनी परेशानी का मजाक उड़ाने वाले उस उद्धत व्यक्ति की ओर कड़ी निगाह से देखना चाहा और देखते ही रह गए—स्वयं प्रोफेसर धीमर्जा खड़े अट्टहास कर रहे हैं।

मुंडी मूंछें, ढलवां कन्धे, ऊंचा कद और सल्वाट होती हुई खोपड़ी, आंखों पर चश्मा, रेशमी चोगा और उस पर पीला रेशमी पटका। प्रोफेसर धीमर्जा हमें लगे जैसे दक्षिण प्रान्त की कोई श्रमणी हो। बड़ा विस्मय, बड़ा कुतूहल हुआ। यह मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूं। हां, यह सब उसी प्रकार असम्भव था जैसे सूरज की रोशनी में खुली आंखों स्वप्न देखना। हमने कहा," अखा! आप हैं...।" नाम फिर भी मुंह से न निकला।

"मैं ठीक समझ रहा था। पहिचान नहीं पाए हो, वह देखो," धीमर्जा साहब ने परिचय-पत्र की ओर अंगुली-निर्देश करते हुए कहा।

परिचय-पत्र पर लिखा था—प्रोफेसर धर्मराज।

हमने सुन्दर अक्षरों पर हाथ फेरते हुए कहा,"ओ...हो... ...सीधे धर्मराज! ये क्या भाया है श्रीमान्?"

उन्होंने अन्दर आने का संकेत करते हुए कहा, "आओ!" हमने जूतों की ओर हाथ बढ़ाया।

"नहीं-नहीं, जूते पहिने ही आओ। वैसी बात नहीं है। बड़े दिनों बाद घूम पड़े। मैं तो याद करता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा। पर इधर बाहर निकलना ही नहीं हुआ। बड़ा आश्चर्य कर रहे हो?" प्रोफेसर ने कहा।

सचमुच मैं आश्चर्य कर रहा था। कमरे में टंगे चित्रों और मूर्तियों का ठीक उसी प्रकार निरीक्षण कर रहा था जैसे कोई अपरिचित अतिथि बन कर आ जाए और किंकर्तव्यविमूढ़ बैठा-बैठा दीवारों के चित्रों से निगाह लड़ाता रहे। प्रोफेसर ने नौकर को आवाज देते हुए जलपान बाजार से लाने के लिए कहा। हमने पूछा," भाभी सरिता को कहां भेजा? ऐसे नाजुक जमाने में अलग रखना उचित नहीं।" पर वह चुप रह गए। हमने फिर कहा, "हां तो प्रोफेसर धर्मराज साहब, यह शुद्ध सांस्कृतिक पोशाक आपको खूब फब रही है। किसकी प्रेरणा कारगर हो गई आप पर?"

प्रो० धर्मराज के चेहरे पर अकस्मात् शिकन पड़ गई। बोले,"अब बुढ़ापे में किसकी प्रेरणा कारगर होने वाली थी मुझ पर! दुष्टों के इस देश में सच्ची प्रेरणा सम्भव है कहीं? जेलखाने की जिन्दगी बिता रहा हूं। देखते हो यह ढोंग?" उन्होंने नाटकीय अन्दाज से दीवारों की ओर संकेत करते हुए कहा, "तुम जानते हो, इनकी पूजा इस जीवन में मैं कभी कर सकता था? धर्म और मानवता के नाम पर शोषण और मक्कारी की भायानक हथियार यह बुत-परस्ती!"

मेरे मस्तिष्क में अकस्मात् यह विचार दौड़ गया कि कहीं प्रोफेसर के दिमाग में कुछ गड़बड़ तो नहीं हो गई है। मुझे समस्त वातावरण एक जासूसी रहस्य से भरा हुआ लगा। प्रोफेसर धर्मराज की मुखाकृति पर विषाद की रेखाएं उभर आई थीं और मेरे अन्दर का गरजता अट्टहास म्याऊं होकर रह गया था। मैंने पूछा—"कुछ सुनाओ तो सही मित्र! कुछ भूत-प्रेत...पर, तुम तो उनमें विश्वास ही नहीं करते......!"

मेरी बात काटते हुए वे बोले, "कोई भूत-प्रेत नहीं साहब। सब कुछ यह जहालत है जो धर्म और संस्कृति के नाम पर गुण्डई कर रही है।"

प्रोफेसर की बातें सुनकर मुझे मृतक-पत्र-कार्यालय के उस पत्र की याद आ गई, जो इस बीच मस्तिष्क में से बिलकुल ही निकल गया था। मैंने किसी बहाने जेब में हाथ डालकर उसे बाहर निकाला और उसके अस्तित्व को अनुभव किया। मेरा हृदय फिर हास्य से उछला पड़ता था। प्रोफेसर से पूछा, "तो क्या कहीं गुण्डों में फंस गए थे भाई साहब? बाप रे बाप, कितने सभ्य सुसंस्कृत और सच्चे मानव धर्म को समझने वाले आप विद्वान प्रोफेसर और कहां.....!"

"जी हां, विद्वत्ता तो उनकी चमरौधी जूतियों की नोक पर नाचती है। पन्द्रह दिन हुए होंगे, बाजार से लौट रहा था। तुम जानते हो, धर्मभीरुओं की तरह मैं अफवाहों से नहीं डरता और जरा-सा झुटपुटा हो जाने पर धर्मशाला भी नहीं तलाशता; पर क्या मालूम था मुझी को यह दिन देखना पड़ेगा। कूचा दिलगीर से १०० कदम आगे चला हूंगा कि अगल-बगल से निकल कर चार आदमी मेरे सामने आ गये। छूटते ही बोले—'ठहरजा, क्या नाम है?' मैंने कहा, 'मेरा नाम धीमर्जा है। प्रोफैसर धीमर्जा...... क्रिश्चियन कालिज...।' पर बात भी पूरी कहां करने दी उन्होंने। एक बोला, 'क्या बकता है, धीमर्जा? हिन्दू है या मुसलमान?' मुझे गुस्सा आ गया था, डपट कर कहा, 'डेमिट, हम हिन्दू मुसलमान कुछ नहीं हैं।' तो दूसरे ने कहा, 'तो क्रिस्तान है।' और एक हाथ मेरे ऊपर चला दिया।"

प्रोफैसर इतना कह कर पटके को ठीक करने लगे। मैंने कहा, "ओह, गुस्ताखों ने हाथ भी चला दिया! आखिर आप कर भी क्या सकते थे।"

"जी हां, दूसरे ने गेरबां में हाथ डाल कर जोर से मेरी गर्दन दबाई और कहा, 'ठीक बोल, हिन्दू है कि मुसलमान? ऐसा भी कोई बसर होवे है जो न हिन्दू होवे न मुसलमान होवे और क्रिस्तान भी ना होवे।' दूसरा एक और सामने आया, जिसका सीना पूरा गज भर का होगा और कपड़ों से तेल की बदबू आ रही थी। वह बोला, 'ठीक-ठीक बतला दे, नहीं तो एक चपड़ास में कनपटी उतार लूंगा।' दीनदयालु जी, अगर वे मुझे बोलने का मौका ठीक-ठीक देते और मेरी बात को समझते तो उन्हें अपना शिष्य बना कर छोड़ता...था। पर बोलता कैसे? उसने गर्दन को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुब्बारे की तरह दबाकर अन्दर की हवा अन्दर ही रोक रखी थी। मुंह से बोल निकला तब जब उस पहलवान के घूंसे से मेरा गला छूटा और मैं पृथ्वी पर गिर गया। जब मैंने कहा, 'हमारा नाम चन्द्रप्रकाश धर्मराज है,' तो वह ढीठ दांत फाड़कर क्या कहता है, 'ले भय्यू, तेरी तो एक टिक्की में यू सूदा धर्मराज बन गया। चपड़ास लग गई तो बिरमा (ब्रह्मा) के सिंहासन पै हाथ मारेगो।' फिर कहने लगा—'अच्छा भय्या धर्मराज, तारा जनेऊ देखें। कपड़े उतारो।'

बात अधूरी छोड़ कर प्रोफेसर पान का बीड़ा लेने भीतर चले गए। मुझे अपने अन्दर के हास्य को रास्ता देने का समय मिल गया जो रुकी हुई जलधारा की तरह अन्दर ही अन्दर काट रहा था। मैं सोचता रहा—राम···राम, कहां वे कठोर हिन्दुस्तानी दांव और कहां पश्चिमी हवा में पला यह मुलायम प्रोफेसर। पर मैं आगे कुछ भी न सोच सका। प्रोफेसर पान लेकर आ गए। पान लेते हुए मैंने कहा, "ओ··फो··· कितनी भारी बदसलूकी हुई आपके साथ प्रोफेसर धर्मराज जी! बुरा हो उन कम्बख्तों का!"

प्रोफेसर धर्मराज पुनः कहने लगे, "कल ही मैंने प्रधान मंत्री को चिट्ठी लिखी है। मुझे प्रोटेक्शन चाहिए। इस तरह जेल खाने में कब तक सड़ सकता हूं।"

"ठीक किया आपने। चलो, छोड़ दिया तो उन्होंने आपको। मेरे तो सुनकर ही रोंगटे खड़े हो रहे हैं।"

"छोड़ तो दिया। पर क्या छोड़ा। एक ने जेब से सोने का चैन, घड़ी, नकदी, बटन और जो कुछ भी था सभी साफ कर दिया। मैंने कहा, 'भाई हम तो तुम्हारे भाई हैं, हमें लूटते क्यों हो।' तो एक ने फिर हाथ चला दिया और कहा, 'बक बक करता है। अलीरजा का बड़ा भाई धीम रजा है तू। सोचे है छुट्टी हो गई अभी से।' अबकी बार में घबरा गया। तो क्या लूट-पीट पर गर्दन लेने की तैयारी कर रहे हैं। उनके लिए दुनिया में क्या करना मुश्किल है। मैंने कहा, 'अरे भाई, हम तो पूरबिया ब्राह्मण हैं, चौके में जीमे हैं हमारे घर वाले तो। जरा विलायत में रहने से हमारी आदतें बिगड़ गई हैं। अरे भाई, चाहे कुछ निशानी देख लो; ऊपर की निशानी से क्या होता है। तुम्हें हमारे नाम पर शक है? अरे यह तो धर्मराज का अंग्रेजी में बिगड़ कर वैसे ही हो गया है जैसे ठाकुर का टैगोर, सक्सेना का सौनरिक्सा और हिन्दू नाई का हिन्डोनिया। हम तो सारस्वत ब्राह्मण हैं भाई।' मेरी इस बात को सुनकर पहलवान बोला, 'क्या गीदड़-सा घिघयावे है। बोल हिन्दू है तो राम के सुसर का नाम, गायत्री का जापकर, गीता का श्लोक पढ़।' हमने पढ़ दिया सब कुछ। तो जाहिल कहता क्या है, 'क्यू खामूखां मरने को डोलता फिरे है देर-सबेर। चुटिया रख, जनेऊ पहन, क्रिस्तान बना घूमे है! कोई संगवाय के रख देगा धी के क्वारे को! नास्तक कहीं का।' मैंने सोचा इनकी खोपड़ी में मेरी बात असर कर गई है। चलो जान बच जाएगी। कहा, 'लो भाई, जरूरत हो तो कपड़े भी ले लो।' तब कड़ी निगाहों से चारों मेरी ओर देखते गली में गायब हो गए और मैं इधर आ गया।"

प्रोफेसर धर्मराज ने अपनी कहानी समाप्त करदी और पानका नया बीड़ा दबा लिया।

मैंने कहा, "चलो छुट्टी तो हो गई आपकी। देखता हूं, अब तो पूजा-पाठ भी बड़े मनोयोग से करने लगे हैं!"

"ऊंह, खाक करने लगा हूं! जरा देख रहा था बैठकर यह कहते हैं न ध्यान लगाने से बड़ा आध्यात्मिक आनन्द मिलता है। पर अपने को तो कुछ भी हाथ लगा नहीं। तुम समझते होगे हृदय से बड़ा भक्त हो गया हूं। पर मूर्खों के हाथों मरने से यह ढोंग ही भला है"— उन्होंने कहा।

'धन्यवाद दीजिए भगवान को कि आपको मार्टिन लूथर की याद न आई, मैकस्विनी की याद न आई। हकीकत और बन्दा बैरागी का नाम तो आपको याद होगा कहां!" मैंने कहा।

"याद क्यों नहीं है, पर मेरा मजाक बना रहे हो बाबू दीनदयालु जी। बेशक, कभी सोचा भी न था कि मौत का मुझे इतना भय है। सोचता हूं, कालिज खुलेंगे तो क्या होगा। सब से तुम्हारी तरह तो यह दुर्घटना बयान नहीं की जा सकती," प्रोफेसर धर्मराज बोले।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आपने अपने साथ घर का भी नक्शा बदल डाला है," मैंने पुनः उन्हें छेड़ा।

"जी हां, बड़ा खर्च हो गया। पर क्या आश्चर्य था, कोई घर ही जला डालता। इधर तो कोई सबूत ही नहीं था हिन्दुत्व का। कैसा बुरा जमाना आ गया है!"

हमने सोचा मृतक-पत्र कार्यालय से आया पत्र इन्हें दिखा कर अब होगा क्या। नौकर जलपान ले आया था और तश्तरियों में लगा रहा था। मैंने कहा, "धर्मराज जी, मंत्र उच्चारिये तो फिर भोग लगाया जाये।"

इस बार धर्मराज भूतपूर्व प्रोफेसर धीमर्जा के अनुरूप विराट हंसी हंसे जिससे उनके कान गुसांई जी के कनकटे कुत्ते के समान खड़े हो गये और जबड़े पुनिया-पनवाड़िन के पान-दान की तरह फैल गये। मैंने फिर पूछा, "बताइये, तो गीता का कौन-सा श्लोक सुनाया आपने?"

"श्लोक क्या सुनाया साहब" वह पुनः हंसने लगे, "उस समय बुद्धि पर पत्थर पड़ गये थे। बहुत याद करने पर भी कुछ याद नहीं आया। शुक्र भेजो भगवान को, घर में सरिता गाया करती थी न 'त्वमेव माता च पिता'... वही सुनाया तब। उन्हें क्या मालूम कि कोई गीता का श्लोक है या गीत गोविन्द का पद।"

मुझे फिर जोर की हंसी आ गई। "चलो धर्मराज जी, आचार्य चाणक्य तो गधे को इंसान के मां-बाप बना गए, आपने कम से कम इन्सान को ही माई-बाप बनाया।" यह सुन कर प्रोफेसर धर्मराज जी कुछ चुप रह गये। मैंने फिर कहा, "अगर हम आपकी जगह होते तो सुनाते—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत,
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।"

और फिर जोरों से कहा, "हे भगवान, जिस आदमी ने उजड्डों और गंवारों के इस समूह का नाम जनता जनार्दन रखा होगा उसे क्या पता होगा कि राष्ट्र कवि पार्षद के झण्डागीत की तरह उनका यह नाम भी लोगों ने सार्थक सिद्ध कर दिया है!"

प्रोफेसर धर्मराज लज्जित और खिजलाए से मेरी ओर देखने लगे और बोले, "ये चुभती फुलझड़ियां छोड़ते जा रहे हो। उन्हें नहीं धिक्कारते जो प्रजातंत्र, धर्म और संस्कृति के नाम पर ऐसा अन्धेर मचा रहे हैं!"

मैंने कहा, "जो मित्र के दुख से दुखी न हो वह भी कोई आदमी है, धर्मराज जी। क्या उत्तर दिया प्रधानमंत्री ने आपके पत्र का? थाने में रिपोर्ट नहीं लिखाई आपने? आप घबरा बहुत गये हैं, भाई साहब!" पर हंसी से मेरा कलेजा अन्दर ही अन्दर दर्द करने लगा था और प्रोफेसर धर्मराज का जलपान इस अकृतज्ञता के प्रति विद्रोह करके बाहर निकल आना चाहता था। मैंने फिर कहा, "कोई फिक्र नहीं है भाई साहब, अब कहीं न जाइये थाने-वाने। अगर आपको इस ढोंग से कष्ट होता है तो मेरी गारंटी पर इसे उतार डालिये। गुण्डों के डर से कोई भला आदमी अपना धर्म बदल डाले, क्या खूब!"

इससे प्रोफेसर को थोड़ी तसल्ली हुई और वह बोले, "क्या हर्ज है बाबू दीनदयालु जी। अब तो अभ्यास पड़ता जा रहा है। पोशाक थोड़ी बदल लूंगा। कालिज भी तो जाना होगा। पर हिन्दुस्तानी पोशाक देखता हूं बड़ी हल्की और आरामदेह है। बड़ी बड़ी विश्व प्रख्यात हस्तियां पहिनती हैं। और देवी-देवताओं के न सही, पर राष्ट्रीय-नेताओं के कुछ चित्र लगा लेने में अपना क्या बिगड़ता है। कितनी कुर्बानियां की हैं उन लोगों ने!"

"खैर ये तो बड़े शुभ विचार हैं आपके। ऐसा है तो बहुत ही ठीक है। अच्छा आज्ञा दीजिए। कोई संकट आवे तो मुझे याद कीजिएगा। और हां" मैंने उठते हुए कहा, "बच्चों को भी बुला लीजिए। बड़ी तकलीफ हो रही होगी।"

प्रोफेसर धर्मराज ने बड़ा हर्ष प्रकट किया और कुछ दूर तक मुझे छोड़ने आए। उनका परिचय-पत्र, उनकी पोशाक पुनः मेरे फेफड़ों को गुदगुदाने लगी। वह लौट गए तो मैं सोचने लगा—घूमते थे भारी पंडित बने! चार हाथों में कांचली उतर गई, मियां की। मुझे इस दुर्घटना पर भारी विस्मय हो रहा था और सब से अधिक उस शब्द-स्रष्टा की दूरदर्शी बुद्धि पर जिसने जनता को जनता-जनार्दन कहा!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीमार का इलाज

(पृष्ठ ५ का शेष)

विनोद के ऊपर बार-बार जल छिड़कता है। इसी समय डाक्टर को लेकर चन्द्रकान्त प्रवेश करता है)

चन्द्रकान्त—हैं हैं, अरे क्या हो रहा है? (पास जाकर) बस करो, ब्राह्मण देवता, बस करो (जोर से) अरे, तुम क्या समझते हो इसे भूत है? रहने दो। न जाने इन औरतों को कब बुद्धि आवेगी। अरे, डाक्टर गुप्ता, आप इधर बैठिये न।

पण्डित—बस, थोड़ा ही मार्जन रह गया है, बाबू जी। (मार्जन करता है)

डा० गुप्ता—महाराज, क्यों मारना चाहते हो बीमार को। निमोनिया हो जायगा निमोनिया। (पण्डित डाक्टर के कहने पर भी मार्जन किये ही जाता है) अटर न्यूसेन्स, मिस्टर चन्द्रकान्त!

चन्द्रकान्त—(कड़क कर) बस रहने दो। सुनते नहीं डाक्टर गुप्ता क्या कह रहे हैं? निमोनिया हो जायगा।

पण्डित—जैसी आपकी इच्छा। मेरा तो विचार है, विनोद बाबू का इतने से ही बुखार उतर गया होगा। (चला जाता है)

डा० गुप्ता—मंत्रों से बीमारी अच्छी हो जाती तो हम क्या भाड़ झोंकने को इतना पढ़ते! न जाने देश का यह अज्ञान कब दूर होगा! (डाक्टर खाट के पास खड़ा होकर विनोद को देखता है।) बुखार तेज है। जीभ दिखाइये। पेट दिखाइये। (थर्मामीटर लगा कर नाड़ी की गति गिनता है, फिर थर्मामीटर देखकर) १०४ डिगरी। कोई बात नहीं। ठीक हो जायगा। दवा लिखे देता हूं, डिस्पेन्सरी से मंगा लीजियेगा। दो-दो घण्टे बाद। पीने को केवल दूध। यू विल बी आल राइट विथ इन टू आर थ्री डेज।

चन्द्रकान्त—डाक्टर गुप्ता, ये कान्ति के दोस्त हैं। बिचारे उसके साथ सैर को आये थे।

डा० गुप्ता—ठीक हो जायंगे। बेचैनी मालूम हो, बुखार न उतरे तो बरफ रखियेगा सिर पर।

चन्द्रकान्त—ठीक है। (विनोद से) घबराने की कोई बात नहीं। ठीक हो जाओगे, मामूली बुखार है। मैं अभी दवा लाता हूं।

डा० गुप्ता—मैं शाम को भी आकर देख लूंगा। अच्छा मिस्टर चन्द्रकान्त! (एक तरफ से दोनों चले जाते हैं। दूसरी तरफ से सरस्वती आती है)

सरस्वती—क्या हुआ, पण्डित जी चले गये? मार्जन कर गये?

विनोद—(चुपचाप पड़ा रहता है)

सरस्वती—(देह छू कर) अब तो बुखार कम है। देखा मंत्र का प्रभाव, मार्जन करते ही फरक पड़ गया। (वहीं चिल्ला कर) प्रतिमा, ओ प्रतिमा, सुनियो री जरा।

प्रतिमा—(वहीं चिल्लाती हुई) क्या है?

सरस्वती—देख तो पण्डित जी गये क्या। बुखार तो कुछ उतरा दिखाई दे है। उनसे कह जरा और थोड़ी देर मार्जन कर दें। (प्रतिमा जाती है)

विनोद—नहीं रहने दीजिये। वे मार्जन कर गये हैं।

सरस्वती—क्या हर्ज है, अपने घर के ही पण्डित तो हैं। आधी रात को बुलाओ तो आधी रात को आवें। मखौल है क्या, बीस रुपये महीना, तीज-त्यौहार पर आटा-सीधा अलग। तीस तो पड़ी जाये हैंगे। ऊपर से भी आमदनी हो जाय हैगी।

(प्रतिमा आकर)

प्रतिमा—पण्डित जी तो गये, अम्मा।

विनोद—माता जी, मार्जन रहने दीजिये। काफी हो गया। (चुप हो जाता है। वैद्य हरिचन्द शान्ति के साथ आते हैं)

सरस्वती—लो, वैद जी आ गये। आओ वैद जी।

हरिचंद—क्या बात है बहू जी? सबेरे ही सबेरे शान्ति जो पहुंचा तो मैं डर गया। कायदे से किसी आदमी को देख कर वैद्य को खुश होना चाहिये, परन्तु मेरी आदत तो और ही है, मैं तो चाहता हूं अपनी जान-पहिचान के लोग सदा प्रसन्न रहें। हां, क्या बात है? (संकेत से पूछता है)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती—ये कान्ति के साथ पढ़े है वैद जी। छुट्टियों में उसी के संग सैर को आया, सो बिचारा बीमार पड़ गया। जरा देखो तो—

(जैसे ही वैद्य नाड़ी देखने को बढ़ता है वैसे ही विनोद बोल उठता है।)

विनोद—डा० गुप्ता भी देख गये हैं, माता जी।

हरिचन्द—फिर मेरी क्या आवश्यकता है, मेरा काम ही क्या है (एक दम दूर जा खड़ा होता है) मैं ऐसे रोगियों का इलाज नहीं करता। उसी डाक्टर का इलाज करो। और मैं तो राजा भूपेन्द्रसिंह के यहां जा रहा था। सोचा, बाबू जी ने बुलाया है तो जाना ही चाहिये।

(लौटने लगता है)

सरस्वती—वैद जी, उनकी भली चलाई। आने दो डा० गुप्ता को। इलाज तो तुम जानो, तुम्हारा ही होगा। मैं क्या कान्ति के मित्र को और बीमार होने दूंगी? नहीं, तुम्हें ही इलाज करना होगा। तुम्हारी ही दवा दी जायगी। चलो देखो। उन मरों ने प्रतिमा को तो मार ही दिया था। तुम्हीं ने तो बचाया। वाह, यह कैसे हो सके हैगा? इस घर में डाक्टरी नहीं चलेगी।

हरिचन्द—(पास जाकर विनोद को देखते हुए) हां, सोच लो। मैं उन लोगों में से नहीं हूं जो दवा देने के लिये भागते फिरें। मैं अच्छी तरह जानता हूं, बाबू चन्द्रकान्त डाक्टरों के चक्कर में पड़ गये हैं, जो अंग्रेजी दवाइयां देकर लोगों को मार देते हैं। (व्यंग्य से हंस कर) ये डाक्टर भी अजीब हैं। देशी बीमारी और अंग्रेजी दवाई! न देश न काल! (विनोद को देख कर) पेट खराब है। काढ़ा देना होगा। एक गोली दूंगा, काढ़े के साथ दे देना। बुखार पचेगा और ठीक हो जायगा।

सरस्वती—(उछल कर) मैं कह नहीं रही थी कब्जी से बुखार है। कहो विनोद, क्या कहा था? घोड़ी नहीं चढ़े तो क्या बरात भी नहीं देखी! बहुत सी बीमारी का इलाज तो मैं खुद ही कर लूं हूंगी।

हरिचन्द—बीमारी पहचानने में कर तो ले कोई मेरा मुकाबला। बड़े-बड़े सिविल सर्जन मुझे बुलाते हैं। अभी उस दिन राजा साहब के यहां सारे शहर के डाक्टर इकट्ठे हुए, किसी की समझ में नहीं आ रहा था क्या बीमारी है। मुझे बुलाया गया, देखते ही मैंने झट से कह दिया यह बीमारी है।

सरस्वती—(वैद्य की तरफ विश्वास से देखकर) फिर मान गये।

हरिचन्द—मानते न तो क्या करते! वह सिक्का बैठा कि शहर में धूम मच गई। अब रोज जाता हूं।

सरस्वती—आराम आ गया फिर। भला क्यों न आराम आता। हमारे वैद जी क्या कोई कम हैं।

हरिचन्द—अभी देर लगेगी। पुराना रोग है। ठीक हो जायगा।

सरस्वती—अरे, तो आराम नहीं आया? भला कौन बीमार है?

हरिचन्द—उनकी लड़की बड़ी।

सरस्वती—(साश्चर्य) वह गप्पो क्या वैद जी! बड़ी अच्छी लड़की है बिचारी। राम करे अच्छी हो जाय!

हरिचन्द—हां। अच्छा चला। काढ़ा और गोली भेज दूंगा। पहले बुखार पचेगा, फिर उतरेगा। उस दिन राजा साहब बोले — वैद्य जी, हमने आपको अपने परिवार का चिकित्सक बना लिया है।

सरस्वती—सो तो है ही। तुम्हें क्या कमी है। मैं उन से यही तो कहूं हूं कि हमें तो वैद जी की दवा लगे है। पर न जाने···

हरिचन्द—सस्ती दवा, थोड़ी फीस, देश काल के अनुसार। और मैं क्या डाक्टरी नहीं जानता। मैंने भी तो मेटीरिया मेडिका, सर्जरी पढ़ी है।

सरस्वती—सो तो है ही वैद जी। (सरस्वती वैद्य के साथ एक द्वार से निकल जाती है। दूसरे से चन्द्रकान्त सुखिया के साथ दवा लेकर आते हैं।)

चन्द्रकान्त—लो बेटा विनोद, एक खुराक पी लो। अभी ठीक हो जाओगे। (विनोद को उठा कर दवा पिलाता है)

विनोद—अभी वैद्य हरिचन्द भी देखने आये थे।

चन्द्रकान्त—(चौंक कर) आये थे? वह मूर्ख वैद्य! वह क्या जाने इलाज करना। इन औरतों के मारे नाक में दम है साहब! दवा तो नहीं पी न! अच्छा दो-दो घण्टे बाद दवा लेते रहना। पीने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूध, बस और कुछ नहीं। मैं काम से जा रहा हूं। (जाते-जाते सुखिया से) देख, तू यहां बैठ। बाबू की देखभाल करना भला।

सुखिया—जी सरकार।

(चन्द्रकान्त चला जाता है)

बाबू, मैं तो झाड़-फूंक में विश्वास करता हूं। हाथ फेरते ही बुखार उतर जायगा। यह ओझा से पानी लाया हूं। दो घण्टे में बुखार क्या उसका नाम भी न रहेगा। मैंने तो छोटे बाबू से सबेरे ही कहा था—कहो तो ओझा को बुलाऊं, पर वे न माने। कहा, तू पागल है सुखिया। मैं चुप हो रहा। क्या करता, गरीब आदमी ठहरा। अभी दो घण्टे में बुखार का नाम भी न रहेगा बाबू!

विनोद—अरे कहीं बुखार भी झाड़-फूंक से गया है सुखिया! मैं भी तो गांव का रहने वाला हूं। मैंने तो कहीं नहीं देखा कि बुखार झाड़-फूंक से उतरता है। जरा पानी तो दो।

सुखिया—(दरी पर बैठ कर तमाखू खाता हुआ) शर्त बद लो बाबू शर्त। और वह ओझा तो वैदगी भी जाने है। हमारे यहां तो कोई भी और कहीं नहीं जाय हैगा। वैसे तुम्हारी मर्जी। पानी पियोगे? देता हूं। यही पानी पी लो न। किसी को मालूम भी न होगा। न दवा, न दारू। (पानी देता है)

विनोद—(पानी पीकर) नहीं सुखिया, ओझा की कोई आवश्यकता नहीं है। कान्ति गया क्या?

सुखिया—गये होंगे। घोड़ी तो दो दिन से खड़ी थी। अब तो पहुंचने वाले होंगे।

(इसी समय सरस्वती कटोरे में काढ़ा और दूसरे हाथ में दवा की गोली लेकर आती है।)

सरस्वती—लो बेटा विनोद, जरा जी कड़ा कर के पी तो लो। ऊपर से ये गोली खा लो। नहीं नहीं, पहले गोली फिर काढ़ा। मैं भी कितनी भुलक्कड़ हूं!

विनोद—दवा तो अभी मैं पी चुका हूं, माता जी। बाबू जी पिला गये हैं।

सरस्वती—क्या कहा, दवा दे गये हैं? कोई हर्ज नहीं, फायदा तुम्हें इसी दवा से होगा। यह काढ़ा ऐसा वैसा नहीं है। एकदम लाभ होगा और मेरा तो तजुर्बा है। प्रतिमा मर रही थी, इन्हीं वैद जी ने उसे जिलाया। लो पी तो लो। (कटोरा देती है। विनोद चुपचाप काढ़ा पीने लगता है। इसी समय चन्द्रकान्त लौट आते हैं। विनोद को दवा पीते देख कर)

चन्द्रकान्त—यह क्या हो रहा है विनोद?

सरस्वती—दवा दे रही हूं और क्या?

चन्द्रकान्त—तुम पागल हो गई हो। विनोद डाक्टर गुप्ता की दवा पी चुका है, और उसे और दवा देना!

सरस्वती—सुनो, मैं यह नहीं मानती। मैं डाक्टर की दवा और डाक्टर दोनों को व्यर्थ समझती हूं। मालूम नहीं है, प्रतिमा को इस डाक्टर ने मार ही डाला था; वह तो कहो वैद हरिचन्द ने बचा लिया।

चन्द्रकान्त—तुम मूर्ख हो। कहीं डाक्टर मूर्ख होता है? मूर्ख हैं ये वैद्य जो कुछ नहीं जानते। प्रतिमा को तो डाक्टर गुप्ता से लाभ हुआ था।

सरस्वती—बिल्कुल गलत। दवा तो मैं देती थी। मुझे मालूम है, किस से लाभ हुआ उसे।

चन्द्रकान्त — विनोद, दवा मत पियो, हर्गिज न पियो। वैद्यों की दवा पीना मृत्यु को बुलाना है।

सरस्वती —बेटा, यह काढ़ा पीना बहुत आवश्यक है। इसे बिना पिये तुम्हें लाभ ही न होगा। इन्हें कहने दो। ये ऐसे ही कहते रहे हैं। यदि इन वैद जी की दवा न होती तो प्रतिमा कभी की मर गई होती।

चन्द्रकान्त —(कटोरा विनोद के हाथ से लेकर) इसे रहने दो। न जाने संसार से मूर्खता कब जायगी! लो इसे पियो।

सरस्वती — नहीं, यह नहीं हो सके हैगा। तुम्हें मालूम है वैद हरिचन्द की दवा से प्रतिमा मरते मरते बची है। पराया लड़का है बिचारा, कान्ति के साथ सैर को आया है। डाक्टरों के चक्कर में पड़ा और बस। मैं हा हा खाती हूं, इसे डाक्टर की दवा मत दो। रहने दो विनोद, क्या मैं इस घर की कोई भी नहीं हूं।

चन्द्रकान्त — क्या तुम यह नहीं मानती कि औरतों में बुद्धि थोड़ी होती है। मेरा कहा मानो और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनोद को डाक्टर की दवा पीने दो। अच्छा हो जायगा—जल्दी अच्छा हो जायगा, सरस्वती !

सरस्वती — देखो जी, तुम क्या नाम है मुझे ही सदा दबाते रहते हो। इस घर में कोई भी मेरी बात नहीं सुनेहैगा। (एक दम रोकर) दो और गाली दो, मार लो। (काढ़ा गोली जमीन पर रखकर रोने लगती हैं। आंचल से आंसू पोंछती हुई) जैसे मैं इस घर की कोई भी नहीं हूंगी। ईं ईं ईं ईं न अच्छी बात सुनेहैंगे न समझ की बात। ईं ईं ईं ईं (रोती है)

चन्द्रकान्त — (हैरान रहकर) अरे तो भागवान, मैंने तुझे गाली कब दो। मैंने तो यही कहा है कि डाक्टर की दवा से विनोद अच्छा हो जायगा।

सरस्वती—(रोते हुए) ईं ईं ईं ईं और गाली किसे कहेंहैंगे। मुझे मरी को मौत भी तो नहीं आवे है। एक दफे मर जाऊं तो रोज रोज का झंझट तो जाय। (रोकर) वैद हरिचंद ने जहर तो नहीं दिया है, काढ़ा और गोली ही तो दी है। फिर न जाने इतनी जिद क्यों है। मैं क्या कोई इसकी दुश्मन हूं। (हिलकी भरकर) अच्छा करो तो बुरा होय है। (अकड़कर) मैं साफ कहे दूं हूं, विनोद पियेगा तो काढ़ा ही, डाक्टर की दवा हरगिज हरगिज नहीं पियेगा।

चन्द्रकान्त — (लाचारी से) अच्छा भाई, काढ़ा ही पीले, मुझे क्या। अजब परेशानी में जान है इन औरतों के मारे ! तुम लोग कभी कोई नई बात नहीं सीखोगी। कभी दूसरे का कहना न मानोगी। कभी भला बुरा न सोचोगी। (अकड़कर) डाक्टर मेरा चाचा तो नहीं लगता। लेकिन याद रखो विनोद, जल्दी अच्छा होने के लिये यह आवश्यक है कि तुम डाक्टर की दवा पियो। अच्छा चलो, विनोद के ऊपर ही फैसला रहा। क्यों विनोद ?

सरस्वती — देखा, लगे उसे बहकाने। वह क्या जाने बेचारा। मैं कहूं हूं एक दिन वैद की दवा देकर तो देखो। लो बेटा, पियो तो सही काढ़ा। (पिलाने लगती है) मैं क्या कोई इसकी दुश्मन हूं।

चन्द्रकान्त — और मैं दुश्मन हूं।

सरस्वती — तुम क्यों दुश्मन होते। राम करे इसके दुश्मन रहें ही न ! लो पियो तो सही।

विनोद — (दोनों के हाथ जोड़कर) यदि आप मुझे मेरे हाल पर छोड़दें तो मैं शाम तक ठीक हो जाऊंगा।

दोनों — (चिल्लाकर) यह कैसे हो सकता है। दवा तो तुम जानों पीनी ही पड़ेगी।

विनोद — नहीं नहीं, आप क्षमा करें बाबूजी, मैं अंग्रेजी दवा पीने का आदी नहीं हूं।

सरस्वती — (चिल्लाकर) मैंने कहा था न कि विनोद को वैद जी की दवा से ही आराम होगा।

विनोद — नहीं, मैं वैद्य की दवा भी न पीऊंगा। मैं वैसे ही ठीक हो जाऊंगा, माताजी।

(उठकर चलने को तैयार होता है। इसी समय कान्ति डा० नानकचंद के साथ प्रवेश करता है)

कान्ति — आइये डाक्टर साहब, मैंने कहा (पिता को देखकर) विनोद को जरा डाक्टर साहब को भी दिखा दूं। (विनोद की तरफ देखकर) अरे विनोद, तुम तो जा रहे हो। क्या बात है ? सुनो देखो, डाक्टर साहब आये हैं — होमियोपैथिक हैं। सुनो विनोद।

विनोद — मेरा बुखार घूमने से उतरता है कान्ति। मैं घूमने जा रहा हूं। (जाता है)

डाक्टर — ही इज सफरिंग परहेप्स फ्राम किंग्स डिसीज। इनको नींद में घूमने की बीमारी मालूम होती है।

कान्ति — (चिल्लाकर) बिचारा विनोद ! मैं जाता हूं। शायद वह अपने आप में नहीं है।

चन्द्रकान्त — लेकिन डाक्टर ने तो बुखार की दवा दी है।

सरस्वती — और वैद जी ने अपच का काढ़ा, डाक्टर साहब।

सुखिया — फायदा तो मेरे लाये पानी से हुआ है। मैं ओझा से फुंकवा कर पानी लाया था।

डाक्टर — मिस्टर कान्ति, मुझे इस घर में सभी बीमार मालूम देते हैं। चलो

सब—(चिल्लाकर) ओः डाक्टर !

परदा गिरता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक भावपूर्ण शब्द-चित्र

यह बचपन !

(सुश्री स्नेहलता एम० ए०, बी० टी०)

घर के सामने एक सड़क छोड़ कर पड़ौसी की लता-कुंजों से घिरी कोठी है। उनकी बगीची में सब तरह की सब्जी तथा फल-फूलों के पेड़-पौधे लगे हुए हैं। आम, जामुन, अमरूद, अंजीर और लौकाट मौसम पाकर फलते-फूलते रहते हैं। ये सब फल न केवल गृहस्वामी के ही काम में आते हैं, वरन् पास-पड़ौस की बाल-सेना की भी सेवा करने से नहीं चूकते। हो सकता है कि आम राहगीर अपने काम की धुन में एक नजर भर डालकर ही इनके पास से गुजर जाये, पर मोहल्ले के छोटे छोटे बच्चों के लिये तो ये अपूर्व प्रलोभन का केन्द्र हैं ही !

उस रोज दिन भर वर्षा होती रही थी। शाम के समय अभी झुटपुटा-सा ही था। आसमान साफ होता जा रहा था। मौसम बड़ा भला लग रहा था। पास ही पेड़ों पर बैठी चिड़ियां इकट्ठी होकर अपने दिन भर के किस्से-कहानियां कह रही थीं। सड़क पर आदमियों का आवागमन नहीं के बराबर ही था।

मैं अचानक ही घर के दरवाजे पर खड़ी शून्य दृष्टि से सड़क पर देख रही थी। इतने में ही सामने की दीवार पर चढ़े हुए बच्चों ने मेरी दृष्टि अपनी ओर अटका ली। कोठी की चहारदीवारी पर अमरूद इत्यादि पेड़ों की शाखायें अपने अधकचरे फलों के भार से झुकी पड़ रही थीं। इन्हीं अमरूदों को लक्ष्य करके वे बच्चे दीवार पर चढ़ रहे थे।

दीवार ढ़ाई-तीन गज ऊंची थी और बच्चे गज भर भी लम्बे नहीं थे। चढ़ने की मुश्किल थी। वे तीन छोटी-छोटी छै-सात साल की लड़कियां ही थीं—सांवले रङ्ग, हसते चेहरे, नीली हरी पीली छींट के फ्रॉक पहिने अपने छोटे-छोटे बालों को बार-बार जूड़े के रूप में बांधने की असफल कोशिश करती हुई इस दीवार पर चढ़ने का अनथक प्रयास कर रही थीं। किसी तरह अपनी पतली-पतली टांगों का जोर लगा कर ऊपर चढ़ कर उन्होंने अमरूद की टहनी खींच ली। दूसरी ने सहारा दिया और तीनों ने झटपट छोटे छोटे कच्चे-हरे अमरूदों से अपने हाथों को भरना शुरू कर दिया। जो हाथों में न समाये उन्हें पटरी पर डाल दिया। शायद किसी नौकर की निगाह पड़ जाने के कारण तीनों ने डाली को छोड़ दिया और झटपट दीवार को पकड़ कर नीचे उतरना शुरू किया। इतने में ही उधर नौकर ने उन्हें उतरते देखकर शायद फिर अपने काम में ध्यान लगाया होगा; यह देखकर वे तीनों उतरती-उतरती फिर चढ़ीं। पर ऊपर चढ़ कर अभी अमरूदों को हाथ लगाया ही था कि एक भारी आवाज सुनाई पड़ी—"कच्चे अमरूद क्यों तोड़ रही हो ?" तीनों झटपट उतरने लगीं। सिर घुमाकर देखा कि घर का एक नौकर बाल्टी लिये जा रहा है — सम्भवतः दूध लाने के लिये। उसके वहां से जाते ही उन्होंने फिर धावा बोला। कुछ सन्तुष्ट हो चुकने पर तीनों नीचे उतर आईं और जल्दी-जल्दी पटरी पर के सारे अमरूद चुन कर अपने-अपने जांघियों की अंटी में उनस लिये और फ्रॉक ठीक करके हाथ झाड़ कर एक सुख की सांस ली। यह जानने के लिये कि किसी ने उनकी चोरी तो नहीं पकड़ ली, चारों तरफ उन्होंने एक नजर जो दौड़ाई तो मुझपर पड़ी। बेचारी एकदम सकपका गईं। उनकी इस बाल-क्रीडा में मुझे अपना बचपन याद हो आया। थोड़े से अमरूदों के टूट जाने से इन धन-सम्पन्न गृहस्वामी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ भी हानि नहीं थी, परन्तु यदि मैं उनको उस समय रोकती तो उन गरीब बच्चों के इन कच्चे अमरूदों के चबाने के सुख को भी छीन लेती—इसी विचार ने मेरी जबान पर ताला डाल दिया। तीनों ने मेरे मौन से 'लाइनक्लियर' का संकेत पाकर इतनी मधुर विजयोल्लास की किलकारी भरी कि मैं मुग्ध रह गई।

अब उन्होंने उधर से पीठ फेर कर लड़कियों के स्कूल के अनार के पेड़ों पर एक अन्वेषक दृष्टि दौड़ाई। पर अभागे पेड़ों पर अभी तक लाल-लाल कलियां ही खिली थीं। उधर लापरवाही से देखती हुई वे अपने और छिपे हुए साथियों को यह खुशखबरी देने इधर-उधर दौड़ गईं।

शायद उन तीनों के तोड़े अमरूद उनकी मण्डली के लिये ना-काफी थे; इसलिये इस बार एक लड़की को और साथ लिये हुए उन्होंने फिर डालियों को झुकाया। पर उधर घर के अंदर फिर कुछ चहल-पहल देखकर थोड़े ही अमरूदों को अपने कर-कमलों से पवित्र कर पाईं थी कि दरवाजे के पास दमसाधे छिपा हुआ उनका एक छोटा गुप्तचर लड़का चिल्लाता हुआ आया—"जमादार जी आरहे हैं, भागो।" उसके पीछे एक और आठ-नौ साल की लड़की इस दुर्घटना के घटित होने के फलस्वरूप अपना हिस्सा बंटाने दौड़ी आई। चारों लड़कियां धम से नीचे कूदीं; फलों को शेष साथियों को भी ले-देकर फुर्ती से अपने-अपने घरों की दिशा में नौ दो ग्यारह हो गईं।

मारवाड़ी चौकीदार राजपूती खाकी पगड़ी बांधे, हाथ में लाठी सम्भाले शान से कदम बढ़ाता घटना-स्थल पर आया, पर मैदान साफ था—केवल अमरूद के छोटे-छोटे पत्ते पटरी पर इधर-उधर बिखर कर अपने भगाये हुए साथियों की दुर्गति का संकेत कर रहे थे। चौकीदार ने इन पत्तों की शिकायत सुनी और अमरूद की लुटी हुई शाखाओं को देखा; अभियुक्तों को न पाकर उन्हें फिर कभी रंगे हाथों दण्ड देने का दिलासा देकर बिदा हुआ।

चौकीदार के असफल जाने पर अनजाने ही मैंने भी एक सुख की सांस ली।

इस समय अंधेरा घिरा आ रहा था। देखते ही देखते मोटी-मोटी बूंदें पड़ने लगीं। ऊपर को जो निगाह उठाई तो देखा विशालकाय काले-काले बादल आकाश में उमड़-घुमड़ कर मुझे भी अंदर जाने के लिये कह रहे हैं। मैं अंदर चली आई।

★

गीत

श्री ईशकुमार

मैं हृदय की वेदना कैसे दबा लूं ?

अब कठिन उर भी धरा का चीरने पर है उबलता,
तपन पाकर हिम-उपल भी तरल होकर है पिघलता,
फिर भला मेरा हृदय तो एक कवि का ही हृदय है :
चोट खाई, डबडबाई आंख फिर कैसे छिपा लूं ?
मैं हृदय की वेदना कैसे दबा लूं ?

घन घुमड़ता है तभी तो चपल चपला भी कड़कती,
मेदिनी भी भार पाकर ही धसकती और फटती,
धधकती हो आग, फिर लपटें भला बाहर न आयें :
फूस के आधार पर मैं निज भवन कैसे टिका लूं ?
मैं हृदय की वेदना कैसे दबा लूं ?

निलय को भी फोड़कर स्वर आज जाना चाहता है,
वायु का यह वेग पर्वत तोड़ जाना चाहता है,
सात पर्दे फाड़ कर भी चीख बाहर जायगी ही :
आज अम्बर और धरती का हृदय कैसे मिला लूं ?
मैं हृदय की वेदना कैसे दबा लूं ?

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

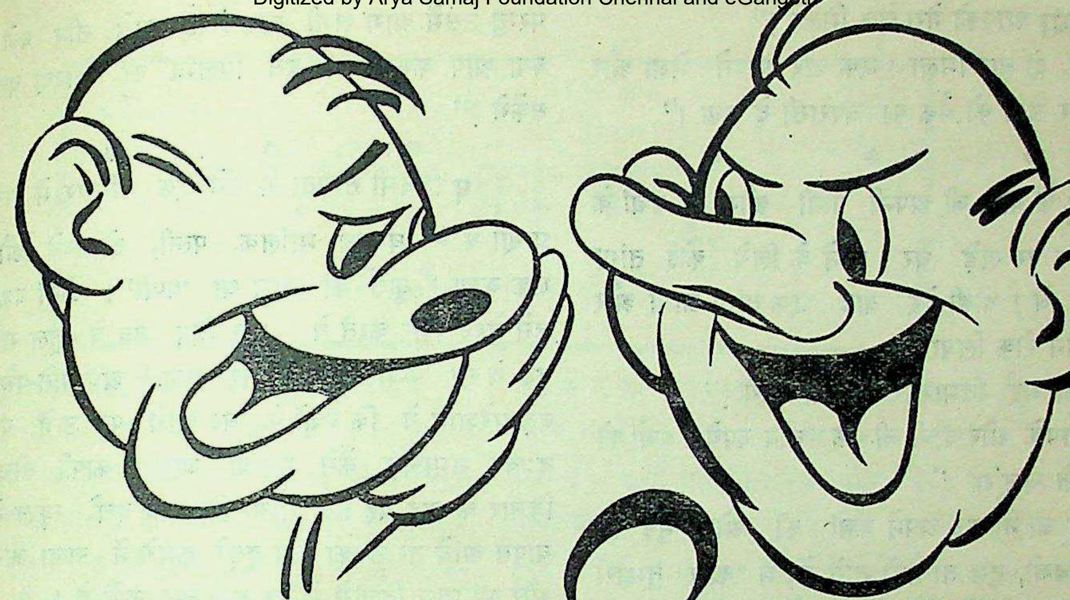

हास परिहास

लगभग आधी रात का समय था कि प्रोफेसर साहब ने चारपाई पर लेटे-लेटे बड़ी अफरातफरी की हालत में पत्नी को जगाया—"जग जल्दी से मुझे मेरी ऐनक तो देना।"

"इस समय ऐनक की क्या जरूरत पड़ गई ?"

"मैं एक अत्यन्त सुहावना स्वप्न देख रहा हूं। ऐनक के बिना दो-तीन चीजें अच्छी तरह सुझाई नहीं पड़ रहीं।"

* * *

"वह कभी भी पुरुषों के पीछे-पीछे नहीं भागती।"

"जी हां, चूहादानी कब चूहों के पीछे भागती है !"

* * *

डाक्टर—आपके पति के स्वास्थ्य के लिए शांत वातावरण अत्यन्त आवश्यक है। यह लीजिये, नींद की दवाई।

स्त्री—उन्हें यह दवाई मैं किस समय पिलाऊं ?

डाक्टर—यह उन्हें नहीं पिलाइयेगा। यह दवाई आपके लिये है।

* * *

कुछ समय पूर्व एक भारतीय सज्जन रूस गये थे। वहां कुछ समय रहने के बाद उन्होंने सोवियट नागरिकता प्राप्त करने की प्रार्थना की। उनकी इस प्रार्थना को स्वीकार करने के पहले अधिकारियों ने उनकी जांच की।

उनसे पूछा गया—"यदि आपके पास १० लाख रूबल (रूसी सिक्का) हों तो क्या आप आधा सोवियट राष्ट्र को देंगे ?"

उत्तर मिला—"अवश्य।"

"यदि आपके पास १००० एकड़ जमीन हो तो क्या आधी आप सोवियट राष्ट्र को देंगे ?"

"अवश्य।"

"यदि आपके पास दो कमीजें हों तो क्या आप उनमें से एक राज्य को देने को राजी होंगे ?"

"नहीं।"

"क्यों नहीं ?"

"इसका कारण यह है कि मेरे पास दो कमीजें वास्तव में हैं, जबकि १० लाख रूबल अथवा १००० एकड़ जमीन वाली बात अभी केवल कल्पना में पर्यवसित है !"

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"**क्या** आपको मेरा चेक मिला ?"

"हां, दो बार मिला। एक बार आपने भेजा और दूसरी बार उसी को बैंक का चपरासी दे गया।"

* * *

एक बाबू जी अपनी पत्नी और दो बच्चों के साथ सड़क पर खड़े घर जाने के लिये कोई तांगा ढूंढ रहे थे। थोड़ी देर बाद एक तांगा आया और उसे उन्होंने रोक लिया।

"क्यों भई, तिमारपुर का क्या लोगे ?"

"आपके और बीबी जी के तीन रुपये। बच्चों को मैं मुफ्त ले चलूंगा।"

बाबू जी ने झट अपने बच्चों की ओर मुड़ कर कहा—"बच्चो, तुम तो बैठो तांगे में, मैं और तुम्हारी माता पैदल आते हैं।"

* * *

पति—तुम पीहर पहुंचते ही मुझे तार दे देना।

पत्नी—कितने रुपये के लिये ?

* * *

"**य**दि तुम्हें मुझसे विवाह करना है तो सिगरेट पीना और क्लब जाना छोड़ना पड़ेगा।"

"अच्छा !"

"अच्छा, यह तो वे चीजें हुईं जो तुम मेरे कहने से छोड़ोगे। अब तुम एक ऐसी चीज बताओ जो तुम अपने आप अपनी मर्जी से छोड़ोगे।"

"हां, एक चीज अपनी मर्जी से भी छोड़ूंगा।"

"वह क्या ?"

"तुम्हारे साथ विवाह करने का इरादा।"

* * *

नगर के एक बहुत बड़े व्यापारी ने जिस दिन अपने गोदाम का बीमा कराया उसी दिन उसमें आग लग गई। बीमा कम्पनी के मैनेजर को सन्देह हो गया कि यह आग व्यापारी ने स्वयं जानबूझ कर लगाई है, परन्तु इस बात का वह कोई प्रमाण नहीं जुटा पाया। अंत में उसने उक्त व्यापारी को निम्नलिखित पत्र भेजा — "श्रीमान जी, आपने हमारे हां अपने गोदाम का बीमा तो करवाया था आज सुबह १० बजे, परन्तु उसमें आग लगी बाद-दोपहर साढ़े तीन बजे। क्या आप कम्पनी को इस विलम्ब का कारण बता सकेंगे ?"

* * *

पश्चिमी सभ्यता में रंगे एक परिवार में पांच प्राणी थे — घर का मालिक, पत्नी, दो बच्चे और एक कुत्ता। कुत्ते का नाम था 'पप्पी'। दोनों बच्चे उसे बेहद प्यार करते थे। एक दिन जब वे स्कूल गये हुए थे तो 'पप्पी' (कुत्ता) मर गया। अब पति-पत्नी बड़े परेशान थे कि बच्चों के घर आने पर उन्हें यह दुःखद समाचार कैसे सुनाया जाय। काफी सोच-विचार के बाद यह तय पाया कि जब बच्चे स्कूल से वापस आवें तो उनका बाप दूसरे कमरे में चला जाय और मां प्यार दिलासे से यह समाचार उन्हें दे।

बच्चों के लौटने पर यह खबर उनकी मां ने इधर-उधर की हजार बातें बनाकर अत्यन्त प्यार दुलार से उन्हें सुनाई। लेकिन यह देख कर उसके आश्चर्य की सीमा न रही कि वे रोये-चिल्लाये नहीं। उन्होंने केवल एक दूसरे का मुंह ताका और अपने कमरे में चले गये।

पिता भी आश्चर्य में मुंह बाये बाहर निकला। "इन लड़के वालों की मुहब्बत ऐसी ही होती है। 'पप्पी' से इनका इतना हेल-मेल और संग-साथ था और अब उसकी मृत्यु पर इनकी आंखों में आंसू की एक बूंद भी नहीं।" कुछ देर बाद मां ने बच्चों को बड़े प्यार से आवाज दी 'डियर इन्दु, स्वीट भाषी'। क्षण भर के लिये सन्नाटा छा गया, कोई उत्तर नहीं मिला। और फिर एकदम उन दोनों की पूरे जोर से रोने और चीखने की आवाजें आने लगीं। वे आंखों में मुट्ठियां ठूंस ठूंस कर, फूट-फूट कर रोते हुए उस कमरे में आ गये। उनकी माता ने फर्श पर बैठते हुए उनको बाहों में लेकर पूछा — "क्या बात है ?"

"पप्पी मर गया"—वे दोनों एक साथ बड़बड़ाये।

"मैंने तो तुम्हें बताया था" — मां ने उनका चुम्बन लेते हुए उन्हें पुचकारते-दुलारते हुए कहा।

"हमने तो पापा समझा था"—यह कहते-कहते बच्चों ने 'पापा' की ओर चोर नजर से देखा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी

संगीत का जादू

(श्रीमती सुदर्शना कुमारी)

फ्रांस और हिंदचीनी के मध्य जलमार्ग पर नियमित रूप से आने-जाने वाले प्रमुख फ्रेंच जहाज "पोर्थोस" के आरकैस्ट्रा का मैं संचालक था। मेरे साथ मार्सल वायलिन बजाता था और आर्टी पियानो। इस जहाज पर हमें हर प्रकार की सुख-सुविधायें प्राप्त थीं। यदि कोई कष्ट था—सबसे बड़ा कष्ट—तो वह था नौकरों का। जहाज पर दो प्रकार के नौकर रखे जाते थे—एक तो फ्रेंच और दूसरे अनामी। सामान्य नियमों के अनुसार फ्रेंच नौकर तो जहाज के भोजनालय और मदिरालय (बार) में काम करते थे और अनामी नौकर जहाज के अन्य भागों में। हमें कष्ट इन्हीं अनामी नौकरों के कारण होता था और वह इस तरह कि जब जहाज इनके देश अनाम की किसी भी बन्दरगाह पर पहुंचता, तो ये उतर जाते और फिर कभी वापस न लौटते। प्रत्येक यात्रा में यही होता था। इस तरह हमारे "पोर्थोस" जहाज पर अनामी नौकरों की हमेशा समस्या बनी रहती थी और वह इस कारण से भी कि ये लोग बेहद कामचोर होते थे—उनका जैसे यह विश्वास था कि आलस्य और शिथिलता दैवी गुण है! अनामी नौकर कमरों तथा स्नानागारों को साफ-सुथरा रखने का, झाड़ने-बुहारने का कभी भी कष्ट नहीं करते थे; परिणामतः हमारे कमरे में हमारे जूते, मौजे, टाइयां, वाद्य-यंत्र, संगीत-पुस्तिकायें इत्यादि वस्तुयें हमेशा ही बिखरी पड़ी रहतीं। कई बार संगीत-पुस्तिकायें हमें यहां-वहां फटी हुई मिलतीं, हमारी वायलिनों के तार गायब हो जाते और इस तरह हमारा संगीत-वादन का कार्य ठप्प हो जाता। हमारा एक अनामी नौकर पहले अपने घर में टोकरियां बनाने का काम करता था। जब वह जहाज पर परिचारक के रूप में नौकर हुआ तो वह मानो अपने अभ्यास को बनाये रखने के लिये मेरी वायलिन के तारों से कभी ऐश-ट्रे, कभी माचिस-होल्डर और कभी प्याला बना दिया करता था। अनाम पहुंचने पर जब औरों की तरह वह भी भाग गया तो मेरे वायलिन के तारों का स्टाक खत्म हो चुका था। इन अनामी नौकरों की ऐसी ही आदतों के कारण हमारा नाक में दम रहता था। परन्तु चूंकि अनामियों के अतिरिक्त कोई और नौकर उपलब्ध नहीं थे, हमें विवश होकर इन्हीं से काम लेना पड़ता था और इनके भाग जाने पर असुविधा उठानी पड़ती थी।

*

एक दिन प्रातः जब हमारा जहाज सिंगापुर और सैगोन के बीचों बीच जलमार्ग तय करता हुआ बढ़ा जा रहा था और हम संगीत को समाप्त करके निरुत्साहित से अपने कमरे में लौटे तो हमें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि हमारा कमरा खूब अच्छी तरह से झाड़-बुहार दिया गया है, बिस्तरे ठीक-ठाक कर दिये गये हैं, मैले कपड़े हटा दिये गये हैं और हमारे दर्पण के ऊपर नया बल्ब लगा दिया गया है। आज तक हमने अपने कमरे को इतना साफ-सुथरा कभी नहीं देखा था। जिस जादूगर की यह करामात थी उसे हमने

यह कहानी श्री जोजफ वैशबर्ग की एक अंग्रेजी कहानी के आधार पर स्वतन्त्र रूप से लिखी गई है। वातावरण अभारतीय होने पर भी इसमें एक सहज आकर्षण है — चिरंतन कला-प्रेम का आकर्षण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमरे में ढूंढा, पर वहां कोई न था। फिर हम स्नानागार की ओर गये और देखा कि वह चमक रहा है, रैकों पर बिल्कुल साफ-सुथरे तौलिये लटक रहे हैं और पूरे किनारे तक भरे टब में एक छोटा-सा अनामी लड़का शांतिपूर्वक ठण्डे पानी में लेटा हुआ है। हमें वह देखकर मुस्कराया और उठ कर बैठ गया। अपना परिचय देते हुए उसने बताया—"मेरा नाम 'नाम' है और मैं अनाम स्टेट के टैराने नामक कस्बे का रहने वाला हूं। आज ही मैं परिचारक के रूप में जहाज पर नौकर हुआ हूं और मुझे आपके कमरे में लगाया गया है।"

नाम ने कपड़े पहने, स्नानागार और टब को साफ किया और फिर मनोयोग से दूसरे कामों में लग गया। उसकी लगन और कार्य-कुशलता देखकर मेरे सहयोगी मार्सल और आर्टी तो इतने पागल हो उठे कि उन्होंने प्रस्ताव किया कि नाम पर सख्त निगरानी रखी जाये और अपने कमरे से इधर-उधर न जाने दिया जाये। आर्टी तो यहां तक तैयार हो गया कि वह नाम के लिये भोजन यहीं ले आया करेगा ताकि उसे यहां से कोई फुसला कर न ले जा सके। नाम ने यह सब कुछ सुना और धीमे से मुस्कराते हुए कहा—"मुझे छिपाने की या मुझ पर पहरा देने की कोई जरूरत नहीं; मैं भागूंगा नहीं।"

और कामों के अतिरिक्त 'नाम' हमारी संगीत सम्बन्धी पुस्तकों की बहुत देख-भाल करता था। मार्सिलीज से मैं जो संगीतपत्र अपने साथ लाया था, उसने उन्हें बहुत ही सुन्दरता से छः-सात फाइलों में गूंथ दिया। पहले नौकरों ने जिन संगीत-पुस्तिकाओं को असावधानी से फाड़ दिया था, नाम घण्टों बैठा-बैठा उन्हें जोड़ता रहता। वह फटे टुकड़ों को उलटता पुलटता और फिर बिल्कुल ठीक स्थान पर उन्हें जोड़ देता। उसने हमें यह कभी नहीं बताया कि उसने इन संगीतपत्रों को पढ़ना कहां से सीखा। वह अत्यन्त विनम्र, क्रियाशील और बहुत साफ-सुथरा था। वह सदा हमारे ही टब में स्नान करता और अपनी छोटी-छोटी खड़ाऊं को सदा फव्वारे के सामने लटके पर्दे के पीछे रख देता। सोने के लिये कमरे में उसने वह स्थान चुना जहां हम अपने वाद्यों को रखते थे।

*

एकदिन सायंकाल के समय भोजन से कुछ पू मैं और आर्टी गैलरी से अपने कमरे की ओर आ रहे थे कि हमने अपने कमरे से बहुत ही विचित्र और कर्ण कटु-सी आवाज आती हुई सुनी। जल्दी २ अन्दर जाकर मैंने एक विचित्र दृश्य देखा। 'नाम' शीशे के साम ठोडी के नीचे वायलिन दबाये हुए खड़ा था और ठी उसी प्रकार उसे बजाने का प्रयत्न कर रहा था जैसा कि उसने मुझे बजाते देखा था। उसके छोटे छोटे हाथ की तुलना में वायलिन बहुत बड़ा था। उसे वायलिन को पकड़ने के लिये अपनी बांहों को पूरी तरह से फैला पड़ रहा था। वह इतनी तल्लीनता से बजा रहा था कि न तो उसे वायलिन से निकलने वाली भद्दी और कर्णक ध्वनियों का खयाल था और न हमारे वहां पहुंचने का कुछ देर बाद उसका वह जादू टूटा और उसने मुड़ पीछे देखा। हमें वहां पाकर वह शर्मा गया। उस चेहरा लाल हो उठा और मन्द मुस्कान के साथ उस अपनी इस अनधिकार चेष्टा के लिये क्षमा याचना की

उस नौकर का यह संगीत-प्रेम मुझे अजीब-सा लगा उसके बारे में कुछ जानकारी प्राप्त करने की मुझे कुछ उत्सुकता हुई। मेरे पूछने पर वह बोला।—" संगीत सीखने के लिये ही विदेश में भटक रहा हूं इसी उद्देश्य से मैंने यहां कैबिन परिचारक का का ग्रहण किया है। मैं एक ऊंचे संभ्रांत कुल का लड़ हूं। मेरे परिवार वालों को मेरा यह संगीत का व्यस कभी पसंद नहीं आया। आज यदि उन्हें यह मालूम जाये कि मैं यहां कैबिन पारिचारक का काम कर रहा तो उन्हें बहुत धक्का लगे।"

उसकी बातों में रस लेते हुए मैंने पूछा "तुम घर से भागे कैसे?"

वह बोला—"मैंने उन्हें यह बताया था कि मु फ्रांस की एक सांस्कृतिक संस्था ने छात्रवृत्ति दी और फ्रांस आने जाने का मुफ्त में प्रबन्ध कर दि है।" कुछ देर तक रुककर वह फिर बोला—" परिवार के लोग अपने अतीत को याद करके गर्व फूल उठते हैं। परन्तु आजकल वे बहुत निर्धन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं सैगोन में रहते हुए संगीत सीखने का खर्चा नहीं उठा सकता था।"

आर्टी कभी कभी किसी विचार-तरंग के उठने पर उसे रोक सकने में असमर्थ हो जाता था और तत्काल उसे उगल देता था। अपनी इस आदत से लाचार होकर उसने बड़े उग्र शब्दों में नाम को अपने एश्वर्य और संभ्रांत कुल सम्बन्धी भ्रम को दूर करने को कहा। उसने कहा — "तुम तो शंघाई में आये उन रूसी भगोड़ों को भी मात दे रहे हो, जिनमें से प्रत्येक अपने को जार का वंशज बताता है। अब तो तुम में से प्रत्येक अनामी अपने को अनाम के उच्च कुल का बताने लगेगा।"

मुझे लगा कि नाम को इससे काफी आघात पहुंचा है। उसे प्रसन्न करने के लिए मैंने उसे वायलिन सिखाने का वचन दिया। वह हर्ष से उछल पड़ा। दूसरे दिन मैंने उसे बाकायदा वायलिन सिखाना शुरू कर दिया। मुझे इसमें कोई कष्ट नहीं होता था। शंघाई में एक छोटी सी दूकान से हमने उसके लिए सस्ता सा वायलिन खरीद लिया। इससे वह बहुत अधिक प्रसन्न हो उठा। जब हमारा जहाज हांगकांग पहुंचा तो नाम वायलिन पर कुछ धुनें बजाना सीख गया था।

उसे संगीत से इतना प्रेम था कि वह हमारे आरकैस्टरा की किसी भी संगत को सुनने से चूकता नहीं था। बार (मदिरालय) के हैड-वेटर से उसने दोस्ती गांठ ली थी। वह शराब ढालने में उसका हाथ बटाता था तथा बीच के समय में वह मेजें आदि साफ कर देता था। इस समय जब आरकैस्टरा बजता और उसे कोई अंश बहुत रुचिकर प्रतीत होता तो वह उसे प्रकट करने के लिये मुस्कराता और अपने दाहिने हाथ के अंगूठे और तर्जनी को ऊपर उठा देता। जिस धुन को वह पसंद करता उसे वह पुनः पुनः सुनाने का आग्रह करता। उन धुनों को वह बड़े ध्यान से सुनता। उसके चेहरा पर हर्ष की रेखाएं चमकने लगतीं और उसका सिर बांई ओर झुक जाता।

*

हमारे सैगोन पहुंचने से ठीक पूर्व नाम ने हमें सूचना दी कि 'पोर्थोस' जब तक सैगोन बन्दरगाह में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

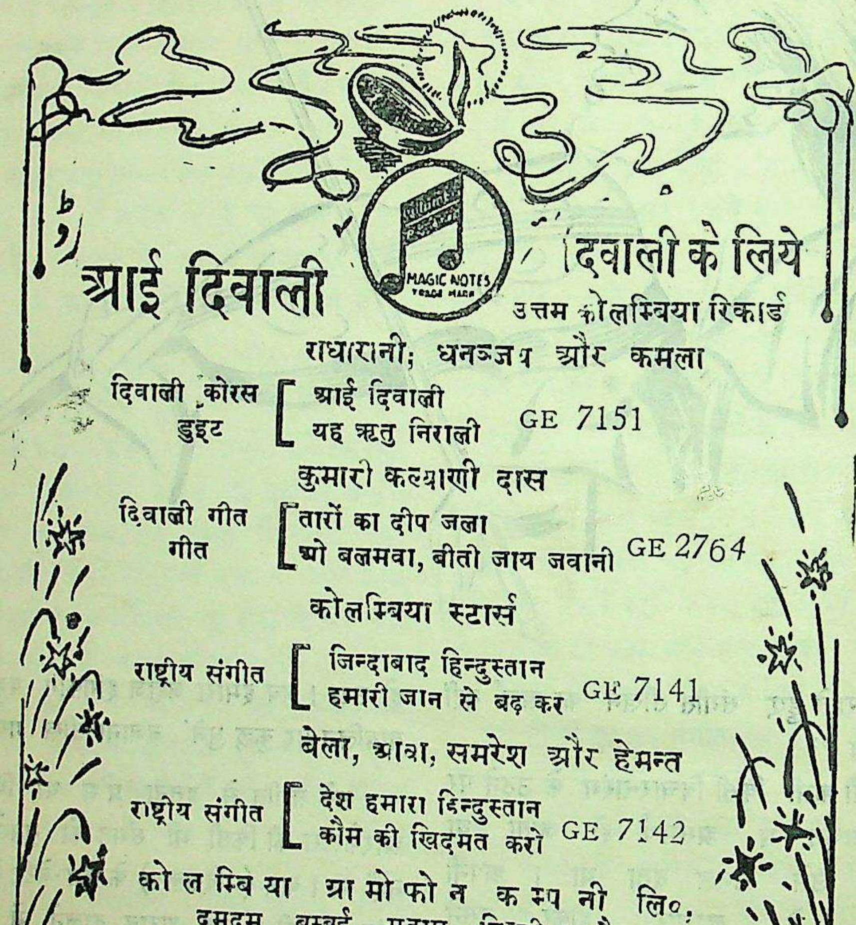

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहेगा, वह इस पर न रह कर अपने परिवार के लोगों से मिलने चला जायेगा। उसने अपने वायलिन को बांध लिया और साथ ही यह वचन दिया कि वह ठीक समय पर वापस लौट आयेगा। हमने इसका विरोध किया, उसे धमकाया, समझाया-बुझाया; परन्तु उस पर कोई असर नहीं हुआ। जब जहाज सैगोन के घाट पर आकर लगा, नाम चला गया।

"वह फिर कभी नहीं लौटेगा"— आर्टी ने अत्यन्त खिन्नता के साथ भविष्यवाणी की। एटीनी मार्सल ने भी स्वीकृति-सूचक सिर हिलाते हुए एक आह भरी। हम लोग नीचे अपने साफ सुथरे कमरों में चले गये; बहुत देर तक कोई कुछ नहीं बोला। सबसे पहले आर्टी की जबान हिली और उसने एक ठंडी सांस लेते हुए कहा —"चलो, किसी होटल में चलकर गम गलत करें।"

"भई, मेरी तो पीने की इच्छा नहीं। तुम दोनों जाओ!" एटीनी मार्सल ने रुंधे गले से कहा।

आर्टी और मैं तट पर आ गये। वह लगभग मध्य रात्रि का समय था, परन्तु गरमी बहुत तेज थी।

हम रिक्शा में बैठ गये। रिक्शा-कुली कुछ ही दूर जाकर हांफने लगे। उनके हल्के नीले वस्त्रों पर पसीने के बड़े-बड़े गहरे विन्दु चमक उठे। सड़क दोनों ओर वृक्षों से छाई हुई थी। इधर उधर लता-कुंजों में बने हुए खुले 'केफ' बिल्कुल फ्रांसीसी ढंग के प्रतीत होते थे। हमने एक हाटल में प्रवेश किया।

होटल के मदिरालय में मन्द मन्द प्रकाश था और उसके शांत एवं सुशीतल वातावरण को देखकर आश्चर्य-सा होता था। वहां कुछ सफेद सी प्रेत-मूर्तियां बैठी ह्विस्की और सोडा मिला कर उसकी चुस्कियां ले रही थीं। उन्हें देखने से यह स्पष्ट प्रतीत होता था कि ये यूरोपियन मूर्तियां इन एशियायी उपनिवेशों में आकर बस गई हैं। इन गरम देशों में उनकी सफेदी कोढ़ सी प्रतीत होती थी। होटल के कमरे के कोने में चार आदमी आर्केस्टरा बजा रहे थे। हमें देख कर निर्देशक बड़ा खुश हुआ और उठकर हमारी ओर आया। यह राल्फ होहेन्फेन्स था जो कि निर्देशक के रूप में भिन्न-भिन्न स्थानों पर कई बार मेरे साथ यात्रा कर चुका था।

"कब आये आप दोनों?" उसने हाथ मिलाते हुए पूछा।

"आज अभी। गर्मी के मारे बुरा हाल था। सोचा किसी होटल में—"

मेरी बात अभी पूरी भी न हो पाई थी कि राल्फ ने झट से शराब का आर्डर दे दिया। दूसरे क्षण हमारी मेज पर हिम शीत स्वर्ण-मदिरा से छलकते तीन गिलास पड़े थे। चुस्की लगाते हुए राल्फ बोला—"आप लोग खूब मौके पर आये हैं। कल रात को इसी होटल के 'बाल रूम' में एक वृहत् 'कान्सर्ट' का आयोजन किया गया है। इस

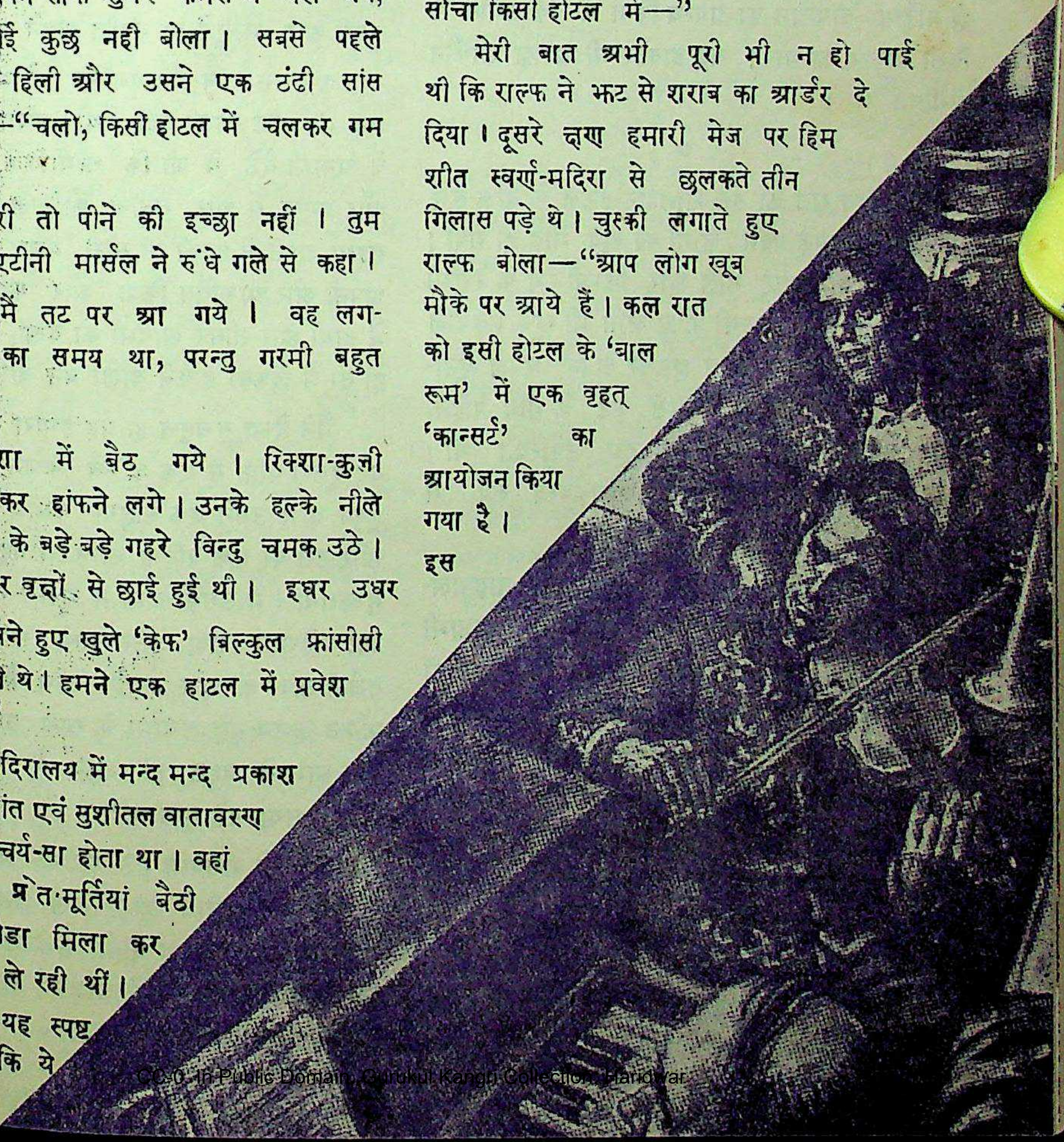

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिये मैं आप सब को आमंत्रित करता हूं। इस में 'फ्रेन्च-अनामी सांस्कृतिक संस्था' के अनेक प्रमुख स्थानीय लोगों को तथा उपनिवेश के बड़े-बड़े अफसरों को भी निमंत्रित किया गया है।"

यद्यपि उसी दिन अर्द्धरात्रि के समय हमारा जहाज सैगोन से प्रस्थान करने वाला था, तो भी मैंने कान्सर्ट में सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया।

इस आयोजन में बजाने के लिये जिन गीतों को राल्फ ने चुना था, वे उसके अत्यन्त प्रिय गीतों में से थे। उसने अपने उत्साहातिरेक के कारण मेरे लिये एक बहुत ही बढ़िया वायलिन का प्रबन्ध किया जो कि सैगोन के किसी डाक्टर का था। वह डाक्टर भी अच्छा शौकीन संगीतज्ञ था।

*

दूसरे दिन रात को उस शानदार होटल के बाल-रूम में रंगा रंग कपड़े पहने लोगों की खूब भीड़ हो गयी। कम्बोडियन महिलाएं नीले और क्रिम्जी रंग के रेशमी वस्त्र पहिने थीं। अनामी फ्रेंच लोग भी खूब भड़कीले वस्त्र पहिने हुए थे। फ्रेंच अफसर अपनी धवल यूनीफार्म में थे, फ्रेंच स्त्रियां पेरिस कट के गौन पहिने, अपने रेशमी बालों को संवारे हुए उपस्थित थीं। कुछ जापानी भी वहां बड़े अस्त-व्यस्त रूप में उपस्थित थे।

होटल के हैड-वेटर ने एक लम्बा चीनी घड़ियाल-सा बजाया और श्रोतागण नीचे बैठ गये। अनामी लोगों के अगल बगल फ्रांससी अफसर थे। फ्रांसीसी स्त्रियां वहां की महिलाओं के साथ पेरिस के नूतनतम फैशन के सम्बन्ध में चर्चा करने में व्यस्त थीं। प्रथम पंक्ति में वहां के फ्रेंच गवर्नर जनरल के प्रतिनिधि ने स्थान ग्रहण किया। उनकी बगल में ही एक वृद्ध अनामी महोदय ने स्थान ग्रहण किया। प्रथम दो पंक्तियों में बहुत से स्थान खाली छोड़ दिये गये थे।

सर्वप्रथम राल्फ के चार आदमियों ने कुछ मधुर गीतों से लोगों का मनोरंजन किया। उस के बाद आर्टी, एटीनी मार्सल और मैं मंच पर आये। हमारे साथ राल्फ तथा एक अन्य वादक भी आया। कमरे में हमारे सामने एक विचित्र-सा दृश्य था। एक ओर तो काले परन्तु चमकीले दांतों वाली अनामी महिलाएं थीं, दूसरी ओर फ्रेंच अफसर अपने कपड़ों में चमक रहे थे। एक ओर तो मलाई जैसे कोमल धवल फूलों की सुगन्ध आ रही थी, दूसरी ओर मछलियों की सड़ांद से कमरा भरा हुआ था। कमरे के बड़े बड़े द्वार खुले हुए थे। हमारे वादनों की ध्वनि उस उष्ण प्रदेशीय होटल में बाहर से आने वाले शोर में लीन होई जा रही थी। एक ओर कुलियों और उनके रिक्शाओं की पड़पड़ाहट थी, दूसरी ओर झींगुरों का संगीत अपने पूरे जोर पर था।

अब तक बाल-रूम पूर्णरूप से भर चुका था! एक भी सीट खाली नहीं थी। प्रथम दो पंक्तियों में वे अनामी बैठे थे जो कि सामाजिक दृष्टि से संभ्रांत और प्रमुख थे और सर्वोच्च कौन्सिल के सदस्य थे। सहसा आर्टी ने हल्की सी सीटी बजा कर मेरा ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया और कहा—"दूसरी पंक्ति में दायीं ओर तीसरे आदमी को देखो, यदि वह नाम न हो तो मैं छकड़ा हांकने वाला बन जाऊंगा।"

मैंने देखा सचमुच ही वह हमारा नौकर नाम था। वह दूसरी पंक्ति में एक फ्रेन्च केप्टन के साथ बैठा हुआ था। उसने एक बढ़िया कमीज पहिनी हुई थी और उस पर एक बढ़िया जाकिट। वह मुझे देख कर मुस्कराया। मैं उसकी कभी न भूलने वाली मुस्कान को झट पहिचान गया और उसने अपना अंगूठा तथा तर्जनी ऊपर की ओर उठाई। साथ में बैठा हुआ वह फ्रेन्च केप्टन बड़े सम्मान के साथ उसके सामने झुका और नाम ने बहुत ही शान के साथ अपना सिर हिलाया तथा उसे कुछ कहा।

"हे मेरे भगवान्!" एटीनी मार्सल अपने गज को हवा में झुलाते हुए बोल उठा : "वह तो कोई राजकुमार है और हम मूर्खों ने उसके साथ चमारों जैसा बर्ताव किया। इसमें आश्चर्य ही क्या है यदि वह हमें छोड़ कर चला गया।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे 'कन्सर्ट' की समाप्ति पर सारा हाल तालियों से गूंज उठा। नाम उत्साहवश खड़ा हो गया और मुस्कराते हुए उसने अपनी दोनों अंगुलियां खड़ी कर दीं। गवर्नर जनरल के प्रतिनिधि के साथ प्रथम पंक्ति में बैठा वृद्ध अनामी पीछे की ओर मुड़ा और नाम की ओर उसने असन्तोष पूर्वक एक कठोर दृष्टि डाली। नाम बैठ गया। लोगों ने ताली पीटना जारी रखा। राल्फ ने अधीरता से कहा : "लोगों ने हमारा वादन तो पसन्द किया है, फिर उसी चीज को दुबारा बजाने की मांग क्यों नहीं है ?"

मार्सल ने उस ओर इशारा किया जहां नाम बैठा था और कहा : "मैं समझता हूं यहां एक ऐसा व्यक्ति भी है जो हमारी चीजों को पसन्द कर रहा है। क्यों न हम उसे उसका ही प्रिय गीत सुनायें।" राल्फ और उसके साथियों ने बड़े आश्चर्य के साथ सिर उठा कर देखा। मैंने और आर्टी ने आंखों ही आंखों से मार्सल की बात का समर्थन किया और हम तीनों ने नाम के प्रिय गीत को बजाना शुरू कर दिया। जब हम पांचवीं कड़ी पर पहुंचे तो राल्फ और उसके साथी भी हमारे साथ वादन में सम्मिलित हो गये। मैंने नाम की ओर देखा। नाम खिसक कर कुर्सी के किनारे पर आ चुका था और वह एकदम तना हुआ बैठा था। फ्रेन्च केप्टन उससे कुछ कह रहा था, परन्तु उसने उसकी किसी बात का उत्तर नहीं दिया। उसकी आंखें हम लोगों पर जमी थीं और उसका सिर थोड़ा सा बाईं ओर झुका हुआ था।

*

जब संगीत का कार्यक्रम समाप्त हुआ तो हमने नाम को ढूंढने का प्रयत्न किया, परन्तु दुर्भाग्यवश उसी समय एक वृद्ध आ गया और वह हमें गवर्नर जनरल के प्रतिनिधि के पास ले गया। जब हम वहां से किसी प्रकार पिंड छुड़ा कर भागे और नाम को ढूंढा तो वह तब तक लापता हो चुका था। निराश होकर हम लोग जहाज पर वापिस लौट आये और सीधे अपने कमरे की ओर चल दिये। हम लोग बड़ी निराशा के साथ अपने कमरे की देहली पर रुक गये। एटनी मार्सल का बिस्तरा अस्त व्यस्त पड़ा था, बर्फ और पानी रखने की बोतलें खाली पड़ी थीं, जहां तहां संगीत-पत्र बिखरे पड़े थे। हम लोग वहां खिन्न-से, शिथिल-से, उदास-से खड़े हो गये। हमें अपने ऊपर क्रोध सा आ रहा था। इतने में आर्टी ने कहा—"अब विदाई का संगीत बजाने का समय हो रहा है।"

हम लोग डेक पर चले गये। हम लोगों ने झुक कर घाट की ओर देखा। लोग अपने २ सगे-सम्बन्धियों को रूमाल हिला-हिला कर विदाई दे रहे थे और यात्रा की कुशलता के लिये मंगल कामनाए कर रहे थे। आर्टी बोल उठा—"वह भी जरूर हमें विदाई देने आया होगा।"

उस दिन बहुत अधिक गर्मी थी। जब कि 'पोर्थोस' डोने नदी के जंगलों से पूर्ण किनारों को धीमे-धीमे पार कर रहा था, हम लोग डेक पर खड़े सैगोन की अट्टालिकाओं को ओझल होते हुए देख रहे थे। उषःकाल में जब डेक पर रखी कुर्सियां, ओस से भीग चुकी थीं, तब हम लोग अपने कमरों में लौटे। भीतर पहुंच कर हम आश्चर्य-चकित रह गये। हमारे संगीत-पत्र पूर्ववत व्यवस्थित कर दिये गये थे। बोतलों में बर्फ भर कर रख दी गई थी। स्नानागार के फव्वारे वाले पर्दे के पीछे 'नाम' की छोटी सी चरण पादुकाएं यथापूर्व रखी हुई थीं और वह स्वयं हमारे केबिन के कोने में वायलिन के डिब्बे पर सिर रखे फर्श पर गहरी निद्रा में मग्न पड़ा था।

★

मनोरंजन

का

वार्षिक मूल्य

५॥) रु०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'१८५७'

श्री कलाधर

मुरारी पिक्चर्स कृत '१८५७' नामक चित्र को देखने के बाद दर्शक ठगा-ठगा-सा, आहत-सा, जला-भुना-सा अनुभव करता है — उस ग्राहक की तरह जो विज्ञापन से प्रेरित होकर कोई बढ़िया 'ट्रेड मार्क' की चीज खरीदता है और पैकिट खोलने पर असली की जगह नकली चीज पाता है!

'१८५७' को देखने के लिये जब एक सामान्य नागरिक टिकिट खरीदता है तो उसे यह विश्वास होता है कि वह इस चित्र में उस महान विद्रोह की गौरव-गाथा अविकल रूप से चित्रित पायेगा जो हमारे राष्ट्र ने पहले-पहल सामूहिक रूप से अंग्रेजी शासन के विरुद्ध किया था और झांसी की रानी, तांतिया तोपे, नाना साहब इत्यादि अपने उन अनेक ऐतिहासिक व राष्ट्रीय नेताओं के पराक्रम का सजीव चित्रण देखेगा जो भारत के स्वाधीनता-संग्राम में सदा से प्रेरणा का केन्द्र रहे हैं और रहेंगे। परन्तु इसके स्थान पर वह देखता है अवध और दिल्ली के दो नवाबी घरानों के लड़के लड़की की प्रेम कहानी जिसके आरम्भ और अंत में १८५७ के सैनिक विद्रोह के कुछेक दृश्य उसी प्रकार जोड़ दिये गये हैं जैसे किसी घिसे-फटे कुर्ते में पैवंद लगा दिये गये हों। इन दृश्यों में बादशाह बहादुर शाह, झांसी की रानी और विद्रोही सैनिकों के दर्शन अवश्य होते हैं; परन्तु मूलकथा से उनका कोई सम्बन्ध नहीं। समय-समय पर उद्घोषणाओं द्वारा सम्बन्ध बिठाने का प्रयास अवश्य किया गया है; परन्तु सफलता नहीं मिली। मूल-चूल को 'फिट' करने के लिए भी कारीगरी चाहिये!

चित्र का कथानक संक्षेप में यों है:—

अवध की एक छोटी-सी रियासत रहमतपुर पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेनायें आक्रमण करती हैं और उसे तहस-नहस कर देती हैं। रियासत के नवाब की लड़की तसलीम अपने प्राण बचाती हुई दिल्ली पहुंचती है और मुगलवंश के एक ऐसे छोटे से नवाब के घर में नौकरानी के रूप में रहने लगती है जो ईस्ट इण्डिया कम्पनी का सहायक और कृपापात्र है। इसी नवाब का लड़का तसलीम से प्रेम करने लगता है। यह प्रणय-काण्ड आगे बढ़ता है और पिता-पुत्री के पुनर्मिलन व लड़के-लड़की के विवाह के साथ चरम सीमा को प्राप्त करता है। कहानी के अंत में सैनिक विद्रोह की असफलता, बहादुर शाह की गिरफ्तारी और सम्राज्ञी विक्टोरिया की घोषणा का उल्लेख कर दिया गया है।

मूल-रूप में कहानी सामान्य प्रेम-कथा है और उसे बहादुरशाह के काल में न रखकर आगे-पीछे यदि किसी और मुगल शासक के काल में भी रख दिया जाता तो कोई अन्तर न पड़ता। परन्तु निर्माता ने अपने व्यावसायिक लाभ को दृष्टि में रखते हुए ऐसा नहीं किया। उसने तो भारतीयों की उन भावनाओं का अनुचित लाभ उठाना था जो १८५७ के विद्रोह के साथ सम्बद्ध हैं!

अब तक हमारे फिल्म निर्माता हमारे प्राचीन इतिहास, धर्म और संस्कृति के साथ मनमानी करते आये हैं। अब उन्होंने हमारे राजनैतिक इतिहास की ओर दृष्टि फेरी है। इसकी भी जो गत बनेगी, '१८५७' फिल्म उसका एक नमूना है। इस मनमानी को रोकने के लिए मैं समझता हूं हमारी राष्ट्रीय सरकार या कांग्रेस को फिल्म निर्माताओं पर कोई न कोई नियंत्रण रखना चाहिये। ऐसे चित्रों की कहानियों की पहले से जांच-पड़ताल हो जानी चाहिये।

प्रस्तुत चित्र में बहुत से टैक्नीकल दोष भी हैं। तो भी, यदि इसका नाम '१८५७' न हो, तो यह दिल-बहलाव के लिए बुरी नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वावलंबिनी नारी

(सुश्री महादेवी वर्मा)

(आधुनिक युग की प्रमुख कवयित्री सुश्री महादेवी वर्मा उच्चकोटि की गद्यकार भी हैं। कई वर्षों तक वे 'चांद' की संपादिका रह चुकी हैं। अपनी पुस्तक "श्रृंखला की कड़ियां" में उन्होंने नारी समस्या का विशद और विद्वत्तापूर्ण विवेचन किया है। उसके कुछ अंश यहां उद्धृत किये जाते हैं।)

स्त्री के जीवन की अनेक विवशताओं में प्रधान और कदाचित् उसे सब से अधिक जड़ बनाने वाली अर्थ से सम्बन्ध रखती है और रखती रहेगी, क्योंकि वह सामाजिक प्राणियों की अनिवार्य आवश्यकता है।

*

इस प्रकार स्त्री की स्थिति 'नितान्त परवशता' की हो गयी और पुरुष की स्थिति 'स्वच्छन्द आत्मनिर्भरता' की। यह स्थिति-वैषम्य ही नारी-पुरुष सम्बन्ध की विषमता के मूल में है।

*

वास्तव में स्त्री भी अब केवल रमणी या भार्या नहीं रही, वरन् घर के बाहर समाज का एक विशेष अंग तथा महत्व-पूर्ण नागरिक है, अतः उसका कर्तव्य भी अनेकाकार हो गया है।

*

अनेक व्यक्तियों का विचार है कि यदि कन्याओं को स्वावलंबिनी बना देंगे तो वे विवाह ही नहीं करेंगी, जिससे दुराचार भी बढ़ेगा और गृहस्थ-धर्म में भी अराजकता उत्पन्न हो जायगी। परन्तु वे यह भूल जाते हैं कि स्वाभाविक रूप से विवाह में किसी व्यक्ति के साहचर्य की इच्छा प्रधान होना चाहिए, आर्थिक कठिनाइयों की विवशता नहीं।

*

आरम्भ में प्रायः सभी देशों के समाज ने स्त्री को कुछ स्पृहणीय स्थान नहीं दिया, परन्तु सभ्यता के विकास के साथ-साथ स्त्री की स्थिति में भी परिवर्तन होता गया। वास्तव में स्त्री की स्थिति समाज का विकास नापने का मापदण्ड कहा जा सकता है। नितान्त बर्बर समाज में स्त्री पर पुरुष वैसा ही अधिकार रखता है, जैसा वह अपनी स्थावर सम्पत्ति पर रखने को स्वतन्त्र है। इसके विपरीत पूर्ण विकसित समाज में स्त्री पुरुष की सहयोगिनी तथा समाज का आवश्यक अंग मानी जाकर माता तथा पत्नी के महिमामय आसन पर आसीन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

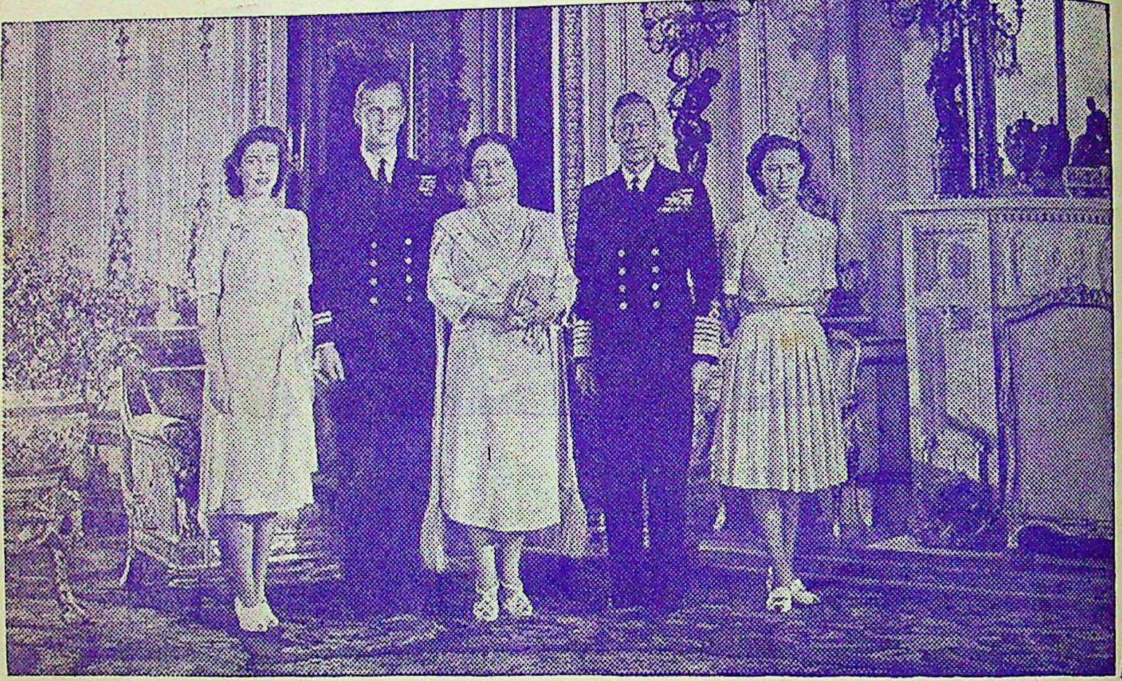

ब्रिटेन की युवराज्ञी एलिजाबेथ (बाईं ओर पहली) अपने माता पिता, पति और बहिन के साथ। इनका विवाह एक लम्बे 'रोमांस' के बाद २० नवम्बर को सम्पन्न हुआ था। देखें छोटी बहिन का विवाह कब होता है!

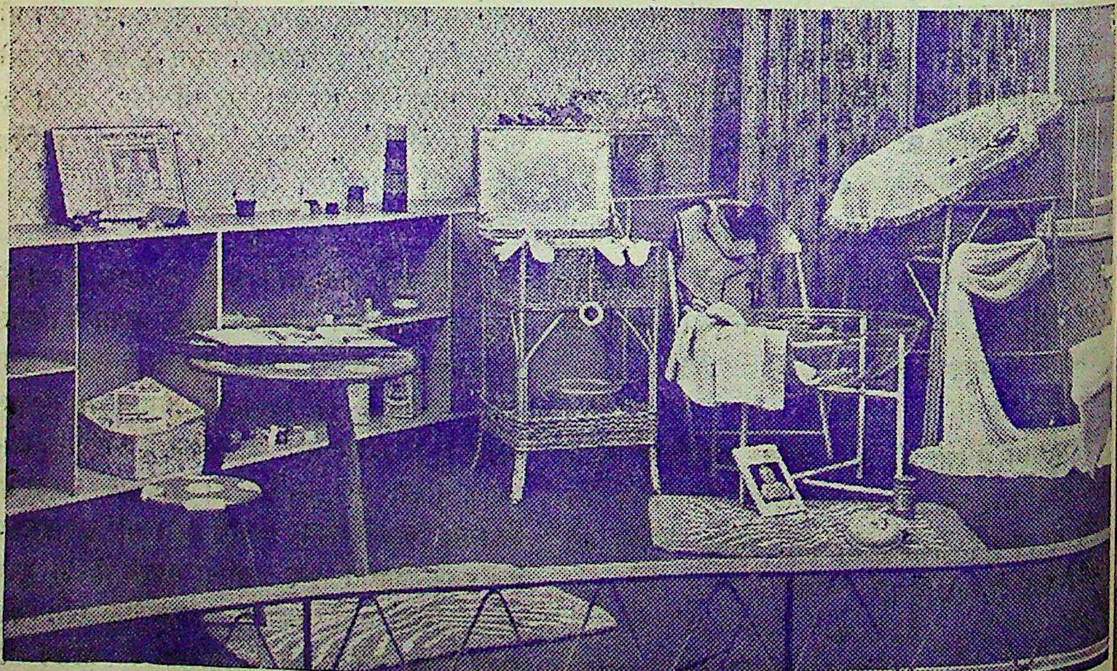

आज की यूरोपियन नारी को घर में बच्चे के पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा के लिये इन सभी वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कपड़े पहनना भी एक कला है

(इन्दुलेखा)

मानवीय जीवन-चर्या से सम्बन्ध रखने वाले अन्य विशेष कार्यों की भांति ही कपड़े पहनना भी एक कला है, जिसका ज्ञान प्रत्येक स्त्री को अवश्य होना चाहिये। अपने शरीर की गठन को ध्यान में रख कर समझदारी से पहने हुए कपड़े कुरूप स्त्री को भी रूपवती बना देते हैं—कपड़ों का बहुमूल्य अथवा तड़क-भड़क वाले होना आवश्यक नहीं।

स्त्रियां प्रायः कपड़े खरीदने और सिलवाने में एक दूसरी की नकल करती हैं। यह ठीक नहीं। यह आवश्यक नहीं कि कपड़े का जो डिजाइन या 'कट' एक के शरीर पर फबता है वही दूसरी के शरीर पर भी वैसा ही फबे। अतः चालू फैशन का अंधाधुन्ध अनुकरण करने की बजाये, उसमें से केवल वही अच्छी बातें ग्रहण करनी चाहियें जो अपने शरीर की गठन और व्यक्तित्व से मेल खाती हों।

सुचारु रूप से कपड़े पहनने की कला का एक मोटा गुर यह है कि पहनने वाले को अपनी शारीरिक गठन के दोषों और अच्छाइयों का पूरा-पूरा पता हो और कपड़े इस प्रकार के और इस ढंग से पहने जायें कि उनसे शारीरिक-गठन के दोष तो छुप जायें और अच्छाइयां उजागर हो उठें।

ये दोष और अच्छाइयां जानने का सर्वोत्तम साधन शीशा है। वह किसी के भी साथ पक्षपात नहीं करता।

यदि आभूषण, हैण्डबैग पर्स, जूते इत्यादि सहायक वस्तुयें भी कपड़ों के साथ मेल खाती हों तो सोने पर सुहागे वाली बात समझिये।

सारांश यह है कि प्रत्येक स्त्री को अपने पहनने के कपड़े सावधानी से और काफी सोच विचार कर चुनने चाहियें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर का रंग-मंच

(नीलिमा)

पत्नी — यह छींक क्या आपको आई थी ?

पति — हां। क्यों, क्या बात है ?

पत्नी — इससे पहले भी आपको छींकें आई हैं।

पति — आई होंगी।

पत्नी — होंगी क्या, आप को कम से कम तीन छींकें आई हैं।

पति — नहीं, नहीं ! जहां तक मेरा खयाल है मुझे सिर्फ दो छींकें आई हैं और दो छींकें तो शुभ होती हैं न ? (मुस्कराता है)

पत्नी — आप योंही बात को टालिये नहीं। छींकें कभी भी शुभ नहीं होतीं। ये तो जुकाम, इन्फ्लुएंजा और.......

पति — अरे, छोड़ो भी। यह तो मामूली छींक थी। आज खाने में काली मिर्च ज्यादा थी, शायद उसी के कारण......

पत्नी — आजकल की काली मिर्चों से छींक ? मैं कहती हूं, यह मिर्चें तो कोई सेर भर भी खा जाये तो मालूम न हो। देखिये, आप इन छींकों को योंही साधारण न समझें। ये तो सोलह आने जुकाम—इन्फ्लुएंजे का लक्षण है। चलिये, कमरे में चलकर बिस्तर में लेट जाइये।

पति — क्या कहा ? फिर बिस्तर में लेट जाऊं ? पागल कहीं की ! देखती नहीं हो, दस बजा चाहते हैं और मैं ने दफ्तर पहुंचना है —

पत्नी — आज मैं आपको दफ्तर नहीं जाने दूंगी। नौकर के हाथ छुट्टी की दरख्वास्त भेज दीजिये।

पति — तुम तो आज बिल्कुल बच्चों जैसी बातें कर रही हो। दफ्तर न जाऊं, क्योंकि एक छींक आई है। लोग सुनें तो...

पत्नी — भाड़ में जायें लोग। समझदारी इसी में है कि आदमी खतरे से पहले ही सावधान हो जाये।

पति — ठीक है, लेकिन कोई बात भी तो हो। एक छींक से भला क्या आफत आ जायेगी !

पत्नी — आप बार-बार मेरे मुंह से कहलवाते हैं। हो सकता है कि यह नमोनिया का चिह्न हो। रात आप तीन-चार बार खांसे भी थे न !

पति — तो उससे क्या ? खांसी तो दो-तीन सिगरेट अधिक पीने से भी आ सकती है। आज नहीं पिऊंगा।

पत्नी — आप आज की कह रहे हैं, मैं तो आपको पूरे सात दिन सिगरेट नहीं पीने दूंगी। बाहर हवा में ज्यादा देर न ठहरिये। चलिये अन्दर। मैं बिस्तर बिछाये देती हूं। दो रजाइयां तो बाहर हैं, अंदर से एक और निकाले लेती हूं। पड़ोसन के लड़के को भेजकर अभी डाक्टर को बुलाये लेती हूं।

पति — हे परमात्मा ! अच्छे-भले के लिये भी डाक्टर ! यह तो वही बात हुई कि छींकते ही नाक कटी......अच्छा, श्रीमती जी, काफी मजाक हो लिया। अब जरा घड़ी की तर्फ भी देखो। जाओ अन्दर से लपक कर मेरी फाइल उठा लाओ, मैं साइकल निकालता हूं...... (कमरे से साइकल निकालता है)

पत्नी — मेरी मानिये, आपको मेरी जान की कसम ! खतरा सामने हो तो हठ नहीं करना चाहिये। पता है आपके चाचा की......

पति — (झुंझला कर) तुम औरतों की तो आदत ही है फजूल बकने की। मेरे पास फालतू समय नहीं। मैं तो जा रहा हूँ आफिस......(कुछ सोचकर जेबें टटोलते हुए) अरे ! वह कागज तो कहीं खो गया—

पत्नी — कौन-सा कागज ?

पति — अरे वही जिस पर तुमने आज बाजार से लाने के लिये चीजें लिखी थीं...

पत्नी — ओह, वह तो मैं भूल ही गई। यह रहा वह कागज। कैसी भुलक्कड़ हूं मैं। आज आपको खा-म-खा देर हो गई। जल्दी दफ्तर पहुंचिये। और हां, मेरी चीजें लाना न भूलियेगा — जिन पर लाल निशान हैं वे जरूर आज आनी चाहियें। यह रही आपकी फाइल। आपकी साइकल में हवा ठीक है न ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौंदर्य-साधना

अंगराग

(सावित्री निगम 'बृजांगना')

आदि काल से ही नारी ने सतत प्रयत्नों द्वारा पहले तो अपने घर को 'स्वर्ग' बनाया और फिर वह अपने आपको 'उर्वशी' बनाने के प्रयत्नों में लग गई। इस दिशा में उसने शृंगार सम्बन्धी कई प्रयास और खोजें कीं। प्रत्येक युग ने जब करवट बदली, तभी स्त्री के शृंगार सम्बन्धी-प्रयासों में भी अभिवृद्धि हुई और परिवर्तन हुए। एक युग में उसने पुष्पों, लताओं और कोमल किसलयों को धारण कर उसी को सर्वोच्च सौंदर्य माना, तो दूसरे युग में रंगीन वस्त्रों के टुकड़ों को ही विशेष ढंग से अंगों पर बांध कर अपना शृंगार किया। किन्तु इस प्रकार के शृंगार से वह अपने श्यामल वर्ण को गौर न बना सकी। बाद में जब उसने चन्दन और केशर के विषय में जानकारी प्राप्त की तो वह प्रसन्नता से झूम उठी।

अब वह अपने सुकोमल गात को सहज ही में सुगंधित और गौर-वर्ण बनाने का उपाय जान गई। 'अंगराग' का लेप कर उसने अपने समस्त अंगों के रागमय होने का अनुभव किया।

कुछ लोगों का अनुमान है कि अंगराग का उपयोग करने की प्रेरणा नारी को सब से पहिले पुष्प-पराग से मिली। जब नारी ने शरीर पर अनेक प्रकार से पुष्प धारण किये तो उनका पराग उसके अंगों में लग गया और नारी को यह सौंदर्य-वर्धक प्रतीत हुआ। तभी से वह किसी न किसी वस्तु का अंगराग की भांति प्रयोग करने लगी। सम्भव है यह धारणा ठीक हो, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इस अद्भुत खोज ने नारी में अत्याधिक आत्म-विश्वास भर दिया।

परन्तु इस खोज के बाद भी वह अपने रंग की ओर से पूर्णतया संतुष्ट न हो पाई थी; क्योंकि अंगराग अस्थायी रूप से ही, कुछ समय के लिये ही रंग को गोरा बनाता था। अतः वह रंग को स्थायी रूप से गोरा बनाने और कान्ति निखारने का प्रयत्न करने लगी। अन्त में 'अंगराग' ने उबटन का रूप धारण किया।

माध्यमिक युग के आयुर्वेदिक उबटन सचमुच अत्यधिक प्रभावोत्पादक और वैज्ञानिक होते थे और रंग को स्थायी रूप से निखार कर त्वचा में गोराई, चिकनाहट, चमक और आकर्षण उत्पन्न कर देते थे। इनका लगातार प्रयोग करने से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्वचा के साथ-साथ स्वास्थ्य में भी आश्चर्यजनक उन्नति हो जाती थी।

रंग निखारने के लिये दुग्धस्नान अत्यन्त लाभ-प्रद होता है। यह पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने भी माना है। यदि स्नान के लिये प्रर्याप्त मात्रा में दूध न मिल सके तो कच्चे दूध से नियमपूर्वक केवल मुंह ही धोने से इस पर यथेष्ट चमक और कान्ति आ जाती है।

दूध में चिरौंजी तथा केसर और सन्तरे का सूखा छिलका पीस कर लेप करने से मुहांसे के दाग तथा झांई भी मिट जाती है और रंग भी एक दो 'शेड' निखर आता है।

नवजात बालिका का रंग यदि काला हो तो कड़वे तेल व साबुन का उपयोग त्याग कर मलाई का उबटन नित्य प्रति लगाना चाहिये। इससे दो वर्ष के अन्दर ही उसके रंग में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो जायेगा।

प्राचीन काल में साबुन, पाऊडर, क्रीम और ब्यूटी-लोशन इत्यादि शृंगार के सभी आधुनिक साधनों की कमी नारी उबटन, अंगराग, चन्दनलेप इत्यादि से पूरी कर लेती थी और मजा यह है कि उसके सभी शृंगार के प्रसाधन आज के प्रसाधनों से अधिक प्रभावशाली, सस्ते, सुलभ, वैज्ञानिक तथा लाभप्रद होते थे।

उबटनों द्वारा त्वचा में जो स्थायी चमक, शोखी तथा आर्कषण-शक्ति पैदा होती है वह भला साबुन पाउडर और क्रीमों से कहां उपलब्ध हो सकती है! साबुन, पाउडर और आधुनिक क्रीमों का उपयोग कृत्रिम तो है ही, यह स्वास्थ्य के लिये भी हानिकारक होता है। और फिर इनके प्रयोग से मुख का सौंदर्य अधिक समय तक नहीं बना रहता। त्वचा, खुरदरी, सूखी और सिकुड़ी हुई हो जाती है।

आधुनिक युग का प्रत्येक व्यक्ति सौंदर्य-पुजारी हो गया है। तरुण 'उर्वशी' और युवतियां 'मन-मोहन' चाहती हैं। संभवतः इसी लिये आजकल कुरूप कन्याओं के लिये योग्य वर और कुरूप युवकों के लिये योग्य-कन्याओं का मिलना असम्भव-सा हो रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ ही वर्षों में कुरूप व्यक्तियों की एक सेना समाज के सन्मुख एक समस्या के रूप में उपस्थित हो जायेगी। इस खतरे को देखते हुए प्रत्येक समझदार माता का कर्तव्य होना चाहिये कि वह अपनी कन्याओं तथा पुत्रों को देशी-आयुर्वैदिक सौंदर्य-वर्धक वस्तुओं का प्रयोग करना सिखाये।

"सौंदर्य घटक" उबटन का यदि बाल्यकाल से प्रयोग किया जाय तो विवाह-योग्य अवस्था आने पर कन्या या वर का काला रंग मां तथा पिता की चिंता का कारण कभी नहीं बन सकता। उबटन तैयार करने की विधि अत्यन्त सरल है—केशर या हल्दी ½ टंक, श्वेत चन्दन ½ टंक, लाल चन्दन १ टंक, लौंग १० दाना, संतरे का छिल्का ४ टंक, चिरोंजी ४ टंक, सोडाबाई कार्ब पाव टंक, छरीला आधा टंक, सुगन्धबाला आधा टंक, सोंठ पाव टंक, सबको पाउडर करके एक साफ शीशी में रखले और नित्य प्रातः काल दूध में घोल कर लगाने से रंग शीघ्र ही निखरने लगता है।

विवाह से पहिले लगाने के लिये "हरिताभ उबटन" बहुत अच्छा रहता है। चमेली की पत्ती का रस पाव भर, अंडी की मीगी आध पाव, दूध में उबली सरसों आध पाव, चिरौंजी छटांक भर तथा केशर या आंबा हल्दी १ तोला डाल कर बारीक पीस कर चमेली के रस में मिला कर तीन दिन तक उबटन करे, फिर स्नान करे तो रंग अंगूर के सदृश्य कान्तिमय हो जायेगा। आंबा हल्दी, लाल चन्दन और सादी हल्दी को भैंस के दूध में पीस कर वर्ष तक लगाने से रंग निखर आता है। उबटन रंग को निखार कर केवल त्वचा को कान्ति ही नहीं प्रदान करता वरन् नासिका, ओंठ, तथा मुंह के कटाव में नोकीलापन और शोखी भी लाता है।

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्म-परिचय*

(शशिकांत)

मैं डांट-डपट औ' मार लिये फिरता हूं,
मैं पिटने का अधिकार लिये फिरता हूं।
मेरे हाथों पर नील नहीं यह भाइयो!
मैं बेंतों का उपहार लिये फिरता हूं।

मैं रोज पाठशाला में पिटता रहता,
मैं घर वालों की रोज झिड़कियां सहता,
साथी कह 'मूरखराज' चिढ़ाते मुझको,
मैं जीवन की यह हार लिये फिरता हूं।

मैं इस क्लास में फेल सदा हूं होता,
मैं नहीं मनाता दुःख, कभी ना रोता;
कह ले जो भी संसार, मगर सच यह है—
मैं इस क्लास का प्यार लिये फिरता हूं।

इक दिन मैं भी हो पास बनूंगा मास्टर,
बैठूंगा लेकर बेंत इसी कुर्सी पर,
ज्यों मैं पिटता, त्यों पीटूंगा लड़कों को,
— यह सपनों का संसार लिये फिरता हूं!

* श्री 'बच्चन' की एक प्रसिद्ध रचना की पैरोडी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लघु संगीत नाटिका

सांझ सुहानी

[श्री चिरंजीत]

(साज-संगीत के साथ पर्दा उठता है। डूबते हुए सूर्य का दृश्य। सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार—दिन भर चमक दमक कर सूरज
कुंकुम-रोली का सुन्दर ध्वज—
फहराता सोने के रथ पर
जा पहुंचा है पश्चिम के घर
और उतर आई मस्तानी
सर्दी की यह सांझ सुहानी !

(अंतिम पंक्ति के समाप्त होते ही छः सात छोटे-छोटे बच्चे गाते हुए प्रवेश करते हैं)

बच्चे — सर्दी की यह सांझ सुहानी !

पश्चिम में लाली लहराई,
जैसे हो रोली बिखराई,
जादू के इस रंग-महल से
झांक रही है रजनी रानी !
सर्दी की यह सांझ सुहानी !

ढोर लिये आते हैं ग्वाले,
उड़ घर आते पंखों वाले,
औ' नीड़ों में नन्हे बच्चे
'चीं-चीं' कर करते अगवानी !
सर्दी की यह सांझ सुहानी !

सूत्रधार—सांझ सुहानी, डाल डाल पर—
मधुर पंछियों का गूंजा स्वर।
पंछी वन से चोगा लाये,
रैन-बसेरा करने आये।
पर, न अभी सोने की बेला,
गली-गली बच्चों का मेला।

बच्चे — गली-गली बच्चों का मेला,
खेल कूद की यह ही वेला,
कुछ तो खेलें चोर-सिपाही
औ' कुछ खेलें आंख-मिचानी।
सर्दी की यह सांझ सुहानी !

ज्यों-ज्यों रात उतरती आये,
त्यों-त्यों सर्दी बढ़ती जाये,
ओढ़ रजाई नानी कहती —
"आओ बचो ! सुनो कहानी !"
सर्दी की यह सांझ सुहानी !

(लाठी टेके रजाई ओढ़े बुढ़िया नानी प्रवेश करती है)

नानी — आओ बचो ! सुनो कहानी—
इक था राजा, इक थी रानी।

बच्चे — "इक था राजा, इक थी रानी,"
नानी, यह तो बात पुरानी।
हम तो आज सुनेंगे कोई
हिन्द देश की नई कहानी !
सर्दी की यह सांझ सुहानी !

(पर्दा गिरता है और काफी समय तक साज-संगीत के साथ बच्चों का स्वर गूंजता रहता है)

समाप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिखारी राजकुमार

('भैया')

वीरबाहु की अवस्था पन्द्रह वर्ष की थी, परन्तु वह बीस वर्ष का हृष्ट-पुष्ट जवान जान पड़ता था। गोरा सुगठित शरीर, ऊंचा माथा, चौड़ी छाती, तेजस्वी मुख, घुंघराले बाल—ये सब उसके भिखारी न होने की गवाही देते थे; परन्तु वह सचमुच ही भिखारी था। उसने चीथड़े पहन रखे थे और रोज गांव में भीख मांगने जाता था।

उसके माता पिता कौन थे, किस वंश के थे—इसका उसे कुछ पता न था। गांव से दूर वे एक टूटे-फूटे मंदिर में रहते थे और इधर-उधर से भीख मांग कर निर्वाह करते थे। वीरबाहु अभी बच्चा ही था कि दोनों का देहान्त हो गया। संसार में वह निस्सहाय और अकेला रह गया। पेट पालने के लिये वह भी अपने माता-पिता की तरह भीख मांगने लगा।

एक दिन जब वह गांव में भीख मांगने गया तो मार्ग में उसे एक पागल बुढ़िया ने रोक लिया और कहा—"राजकुमार होकर भीख मांगते हुए तुझे शर्म नहीं आती?" इतना कह कर वह पगली भाग गई और फिर दिखाई नहीं दी।

वीरबाहु के लिये यह एक नई बात थी। उस दिन वह भीख मांगने नहीं गया। रास्ते में से ही वह वापस लौट आया और अपने टूटे मन्दिर में आकर सोचने लगा कि पगली ने उसे राजकुमार क्यों कहा। यही सोचते २ भूखा-प्यासा वह सो गया। जब वह सो रहा था तो स्वप्न में उसने अपने स्वर्गवासी पिता को देखा और उनके मुंह से ये शब्द सुने—"बेटा, तुम सचमुच राजकुमार हो। आज ही राजगढ़ जाओ और अपना भाग्य आजमाओ। परिचय के लिये तुम्हारे गले में पड़ा हुआ कवच तुम्हारी सहायता करेगा।"

वीरबाहु हड़बड़ा कर उठ बैठा। वहां उसके पिता नहीं थे; परन्तु उनके शब्द उसके कानों में अब भी गूंज रहे थे। उसके गले में सचमुच ही एक कवच था। इसकी ओर उसका पहले कभी ध्यान नहीं गया था।

इन दोनों घटनाओं से उसे अपने राजकुमार होने का विश्वास हो गया था। अपने स्वर्गवासी पिता की आज्ञा के अनुसार वह उसी समय राजगढ़ की ओर चल पड़ा।

*

राजगढ़ में बलभद्र नामक एक राजा राज करता था। वह बहुत ही अत्याचारी और दुष्ट था। उसके बारे में यह मशहूर था कि वह पहले इसी राज्य का मंत्री था। एक बार उसने षड़यन्त्र रचा और पहले राजा को निर्वासित करके स्वयं राजा बन बैठा। अब वह बूढ़ा हो गया था। राजकुमारी रूपा उसकी इकलौती संतान थी और अपने नाम के अनुरूप ही परम सुन्दरी थी। वह अब विवाह के योग्य हो गई थी।

*

वीरबाहु जिस दिन राजगढ़ पहुंचा उसी दिन राजकुमारी रूपा का स्वयंवर था। सारा नगर खूब सजा हुआ था और बाजे बज रहे थे। ऐसी धूम-धाम वीरबाहु ने पहले कभी नहीं देखी थी। कौतूहल-वश और लोगों के साथ वह भी उस बड़े मैदान में पहुंचा जहां स्वयंवर होना था और आम जनता के साथ वह एक कोने में खड़ा हो गया। मैदान के चारों ओर लकड़ी की बाड़-सी लगी थी।

एक भिखारी बालक के ★ साहस और वीरता की ★ दिलचस्प कहानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

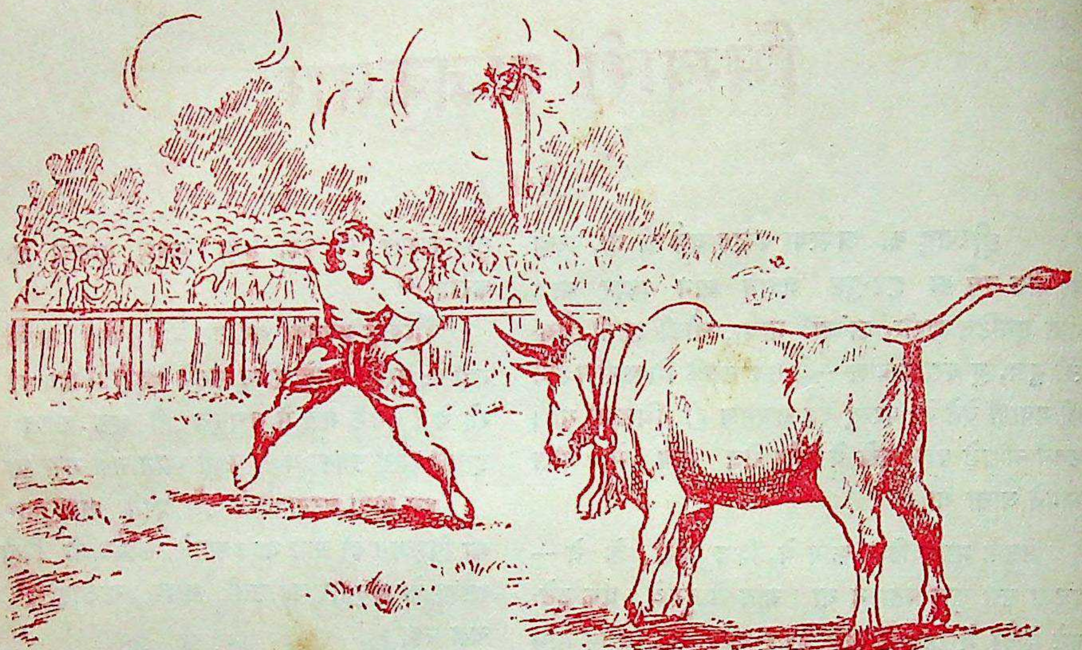

सामने एक ऊंचे मंच पर राजगढ़ का राजा बलभद्र अपनी लड़की राजकुमारी रूपा, मंत्रियों और पण्डितों के साथ बैठा था। मंच के एक ओर स्वयंवर में भाग लेने के लिये बाहर से आये हुए भिन्न-भिन्न राज्यों के राजकुमार बैठे थे। कुछ देर बाद एक विशालकाय मदमस्त जंगली सांड अखाड़े के अन्दर लाया गया। उसके गले में जरी का एक रेशमी अंगोछा बंधा हुआ था। सांड की आकृति बड़ी भयानक थी। उसके सींग रगड़ कर और भी तीखे कर दिये गये थे।

स्वयंवर का सब प्रबन्ध हो चुकने के बाद राजा बलभद्र ने उठ कर ऊंचे स्वर से घोषणा की—

"यहां पर उपस्थित राजकुमारों में से जो भी कोई इस सांड को वश में कर लेगा और उसके गले में बंधे हुए अंगोछे को खोल कर लायेगा, उसके साथ मैं अपनी सुपुत्री राजकुमारी रूपा का विवाह कर दूंगा।"

घोषणा के समाप्त होते ही नगाड़ों पर चोट पड़ी, बाजे बजने लगे और सांड को खुला छोड़ दिया गया। नगाड़ों की धमाधम, बाजों और भीड़ के शोर से वह सांड उत्तेजित हो उठा और हिंस्र पशु की तरह पागल-सा होकर इधर-उधर कूदने और दौड़ने लगा।

वहां पर बीस-तीस राजकुमार बैठे थे। उनमें से अधिकतर तो सांड के रंग ढंग से ही सहम गये और उनकी अखाड़े में उतरने की हिम्मत नहीं हुई। जो तीन राजकुमार साहस करके बारी बारी अखाड़े में उतरे भी, सांड ने उनमें से एक को तो पछाड़ कर बाहर फेंक दिया, दूसरे को सींग मार कर घायल कर दिया और तीसरे को रौंद कर अधमरा कर दिया।

इन तीनों दुर्घटनाओं से चारों ओर आतंक फैल गया। राजा बलभद्र और राजपरिवार के दूसरे लोग स्वयंवर को असफल होता देखकर चिंतित हो उठे। राजकुमारी रूपा के मुख पर उदासी छा गई।

एकाएक सब ने आश्चर्य से देखा कि एक घुंघराले बालों वाला, गोरा, सुन्दर, हृष्ट पुष्ट नौजवान लंगोट बांधे भीड़ में से बिजली की तेजी से अखाड़े में कूदा है। यह भिखारी वीरबाहु था। वह बिल्कुल निहत्था था। उसने आगे बढ़ कर सांड की पूंछ पकड़ कर एंठ दी। सांड फुंकारता हुआ गुस्सीले सिंह की तरह मुड़ कर उस पर टूट पड़ा। इससे पहले कि उसके तीखे सींग वीरबाहु के पेट को चीर दें, वीरबाहु बिजली की न्याईं फुर्ती से एक ओर हो गया और साफ बच गया। सारी भीड़ हर्ष-ध्वनि कर उठी। सांड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर दुगने वेग से उस पर झपटा, परन्तु वह फिर पैंतरा बदल कर बच गया। वीरबाहु बार-बार उसे छेड़ता और हर बार होशियारी व फुर्ती से उसके वार से बच जाता। दोनों के बीच आक्रमण-प्रत्याक्रमण का यह क्रम काफी देर तक चलता रहा और राजा, मंत्री राजकुमारी और अन्य लोग मंत्रमुग्ध-से होकर बल और साहस के इस अपूर्व प्रदर्शन को देखते रहे। थोड़े ही समय में सांड थक कर हांफने और लड़खड़ाने लगा। वीरबाहु इसी अवसर की ताक में था। उसने आगे बढ़ कर सांड के सींग पकड़ कर उसकी गर्दन ऐंठ दी। सांड थका हुआ तो था ही, झटका लगते ही धड़ाम से धरती पर गिर पड़ा और अचेत-सा हो गया। वीरबाहु ने उसके पास बैठ कर बड़े प्यार से उसके मुंह और मस्तक को सहलाया और उसके बाद बड़े आराम से उसके गले से जरी का रेशमी अंगोछा खोल लिया।

जनता ने ऊंचे स्वर से हर्ष प्रकट किया। बाजे बजने लगे और मंगल गान गाये जाने लगे।

*

अंगोछा लेकर वीर बाहु उस मंच की ओर बढ़ा जहां राजा बलभद्र, राजकुमारी रूपा, मंत्री इत्यादि बैठे थे। उसे देखकर एकाएक राजा का जादू टूटा और उसने सोचा कि स्वयंवर जीतने वाला व्यक्ति कोई राजकुमार नहीं है। राजकुमारी रूपा यद्यपि वीरबाहु की वीरता से प्रभावित हुई थी, परन्तु वह भी द्विधा में थी कि उसे जयमाला पहनाये या न पहनाये।

राजा ने वीरबाहु से पूछा—"वीर युवक, तुम किस देश के राजकुमार हो?"

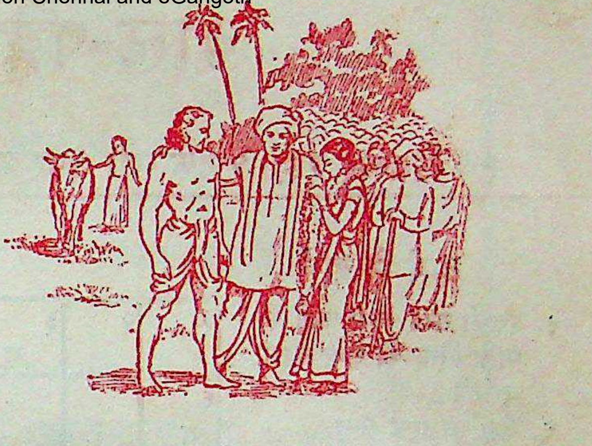

वीरबाहु सोचने लगा। अचानक उसे अपने कवच का खयाल आया। उसने कवच को उतार कर तुरन्त उसे खोल डाला। उसमें लिखा था—

'राजगढ़ के निर्वासित राजा वीरमणि का पुत्र वीरबाहु'

वीरबाहु सारी बात समझ गया। उसने मस्तक ऊंचा करके उत्तर दिया—

"मैं इसी राजगढ़ के उस राजा का पुत्र वीरबाहु हूं जिसके आप मंत्री थे!"

राजा ने कहा—"तुम झूठे हो।"

"यह पत्र मेरी सचाई का साक्षी है" — वीरबाहु ने शांत भाव से उत्तर दिया।

इस दौरान में यह बात सारी प्रजा में फैल गई कि राजगढ़ के असली राजा के पुत्र वीरबाहु ने स्वयम्वर जीता है। लोगों ने वीरबाहु की जय के नारे लगाने शुरू किये। राजा बलभद्र ने जब प्रजा के रुख को देखा तो वह घबरा गया। उसका मंत्री बड़ा समझदार था। उसने राजा को समझाया — "बेहतर यही है कि आप वीरबाहु से राजकुमारी रूपा का विवाह कर दें। आपके बाद अपने आप उसे राज्य मिल जायेगा।"

राजा बलभद्र की समझ में यह बात आगई। राजकुमारी रूपा ने आगे बढ़ कर वीरबाहु के गले में जयमाला पहनाई और चारों ओर जय-जयकार होने लगा।

विवाह के बाद राजा बलभद्र ने वीरबाहु को स्वयं ही राजपाट सौंप दिया।

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाल-पहेली नं० २

१७ दिसम्बर १९४७ तक सही उत्तर आने पर 'मनोरंजन' एक वर्ष के लिये मुफ्त

दायं से बायं

१. इसकी तरह सभी बच्चों को माता-पिता की सेवा करनी चाहिये।
६. जल का एक जन्तु।
७. इसकी गोद में सभी प्राणी सुख पाते हैं।
९. कभी-कभी यह भी शुभ होती है।
१०. रूस की एक प्रसिद्ध नदी।
१४. इसे उलटने से एक ऐसा शब्द बन जाता है जिसका अर्थ है दोष व बुराई।
१५. दो अक्षरों का एक सरल-सा शब्द जिसके कम से कम तीन अर्थ हो सकते हैं।

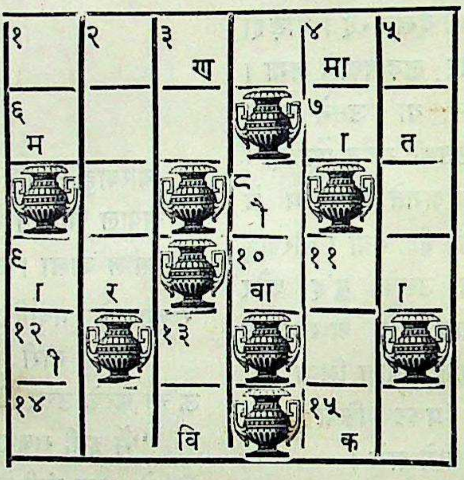

ऊपर से नीचे

१. मेहनत।
२. 'कलरव' के उलट-पुलट अक्षर।
३. उलटो तो लड़ाई।
४. मेरी मां का भाई...गया।
५. उत्सव या विहार आदि के समय लोग यह करते हैं।
८. कई बच्चे इससे भी डर जाते हैं।
११. अंगों की सुन्दर चेष्टा।
१२. नदी का.... ।
१३. इसकी पहुंच सब जगह है।

पहेली के नियम

१. उत्तर के साथ चार आने के टिकट आने चाहियें।
२. केवल १४ वर्ष की आयु तक के लड़के-लड़कियां ही इस प्रतियोगिता में भाग ले सकते हैं।
३. उत्तर 'मनोरंजन' के इसी पृष्ठ के खाके को काट कर और भरकर भेजना चाहिए। किसी और कागज पर अलग से भेजे गये उत्तर पर विचार नहीं किया जायेगा। एक व्यक्ति एक से अधिक भी भेज सकता है।
४. खानों को स्याही से सुस्पष्ट लिखे अक्षरों से भरना चाहिये। कटे-छंटे या पैंसल आदि से लिखे अक्षरों को सही नहीं माना जायेगा।
५. उत्तर १७ दिसम्बर १९४७ को शाम तक 'मनोरंजन' कार्यालय में पहुंच जाना चाहिये।
६. सम्पादक का निर्णय अंतिम होगा।

नोटः—सही उत्तर जनवरी १९४८ के 'मनोरंजन' में प्रकाशित होगा।

बाल-पहेली नं० १ का पुरस्कार

नवम्बर के 'मनोरंजन' में प्रकाशित 'बाल पहेली नं० १' का सही उत्तर १२१, नया बाजार, दिल्ली से सुरेश वर्मा ने भेजा है। उसे एक वर्ष के लिये 'मनोरंजन' मुफ्त मिलता रहेगा। सही उत्तर निम्न लिखित है:

दायं से बायं—१. मनोरंजन, ५. गवाभन, ७. पाप, ८. रथ, १०. दूसरा, १२. लप, १४. रसातल।
ऊपर से नीचे—२. नोट, ३. रंग, ४. जवाहर, ६. नल, ९. थल, १०. दूर, ११. रात, १३. पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री श्रद्धानन्द पब्लिकेशन्स लिमिटेड

आज इस प्रकाशन संस्था के तत्त्वावधान में

★ दैनिक वीर अर्जुन

★ सचित्र वीर अर्जुन साप्ताहिक

★ मनोरंजन मासिक

★ विजय पुस्तक भण्डार

★ अर्जुन प्रेस

संचालित हो रहे हैं। यह प्रकाशन संस्था सुदृढ़ आर्थिक स्थिति की है।

अधिकृत पूंजी ५,००,००० **प्रस्तुत पूंजी २,००,०००**

गत वर्षों में इस संस्था की ओर से अपने भागीदारों को अब तक इस प्रकार लाभ बांटा जा चुका है

सन् १९४४	१० प्रतिशत
सन् १९४५	१० प्रतिशत
सन् १९४६	१५ प्रतिशत

> १९४७ में कम्पनी ने अपने भागीदारों को
> १० प्रतिशत लाभ देने का निश्चय किया है!

आप जानते हैं ?

* इस कम्पनी के सभी भागीदार मध्यम वर्ग के हैं और इसका संचालन उन्हीं लोगों द्वारा होता है।
* 'वीर अर्जुन' वर्ग के पत्रों की सम्पूर्ण शक्तियां अब तक राष्ट्र की आवाज को सफल बनाने में लगी रही हैं।

आप भी इस संस्था के भागीदार बन सकते हैं।

और

* इस प्रकाशन संस्था के संचालक वर्ग में सम्मिलित हो सकते हैं।
* राष्ट्र की आवाज को सबल बनाने के लिए इन पत्रों को और अधिक मजबूत बना सकते हैं।
* अपने धन को सुरक्षित स्थान में लगा कर निश्चित हो सकते हैं।
* आप स्थिर आय प्राप्त कर सकते हैं।

इस संस्था का प्रत्येक शेयर दस रुपये का है। आप भागीदार बनने के लिये आज ही आवेदन-पत्र की मांग कीजिये।

श्री श्रद्धानन्द पब्लिकेशन्स लिमिटेड,

श्रद्धानन्द बाजार, दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वायु मार्ग द्वारा

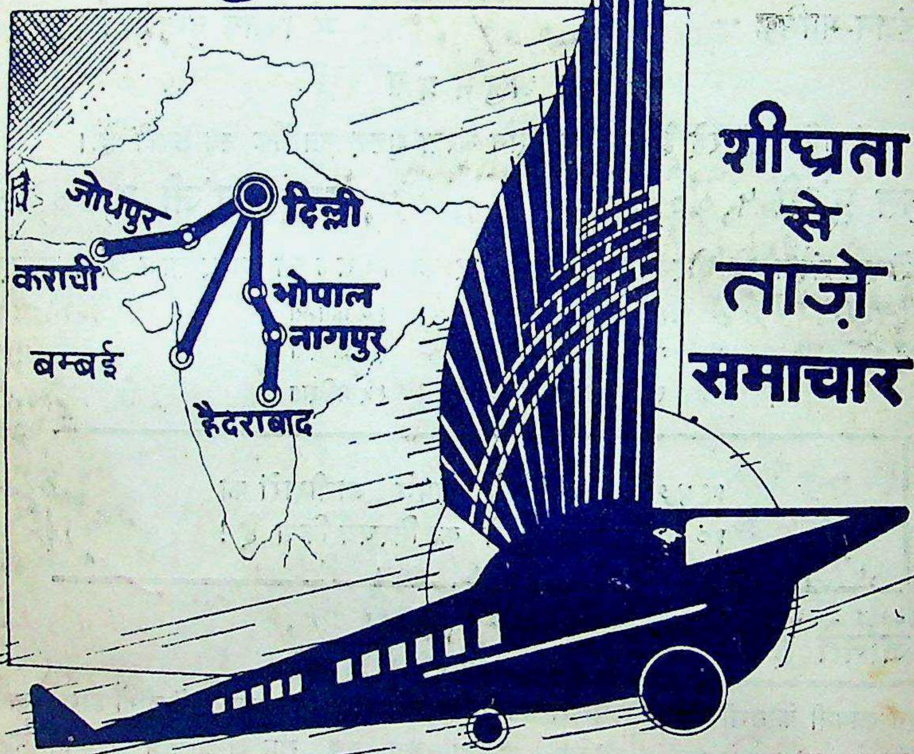

वीर अर्जुन

दैनिक व साप्ताहिक
वीर अर्जुन
देश के कोने-कोने में वायुयानों द्वारा पहुंचता है। आप अपने लिए स्थानीय एजेन्ट से पूछताछ कीजिये।
मैनेजर वीर अर्जुन, दिल्ली।

उत्तरीय भारत का सर्वोत्तम दैनिक व सचित्र साप्ताहिक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष १
संख्या ४

मनोरंजन

जनवरी
१९४८

मूल्य आठ आने

वार्षिक मूल्य ५॥)

इस अंक में

कविता

साहित्य-स्रष्टा : मैं — श्री उदयशंकर भट्ट
दो गीत — श्री आरसीप्रसाद सिंह
पलक झुकती जा रही है — श्री 'शलभ'
गीत — श्री देवराज 'दिनेश'

कहानी

चपत — श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'
तिलक — श्री महेन्द्रप्रताप 'मदन'
छलना — श्री शम्भुनाथ सक्सेना
चीते का शिकार — 'एक शिकारी'

लेख

रोरिक — श्री शंकरदेव विद्यालंकार
विश्व-रंगमंच के अभिनेता—चर्चिल — श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
यूरोप के नर-नारी — श्री सूर्यनारायण व्यास
मकान — श्री प्रभाकर माचवे
आ जा, प्यारी निंदिया आ जा ! — श्री हरिश्चन्द्र एम० ए०

विशेष स्तम्भ

हास-परिहास ३६ अद्भुत चित्रावलि
चित्र-लोक ४२ सलोनी दुनिया
बाल-मनोरंजन ५१ फुलझड़ियां

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

सम्पादक
श्री चिरंजीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य-स्रष्टा : मैं

श्री उदयशंकर भट्ट

अनुपल वृद्ध जीवनोदधि के गगन विचुम्बित—
क्रुद्ध तरंगित नव तूफान पचाकर मैंने,
क्षण-क्षण गल-गल कर,
क्षण-क्षण पल-पल कर,
प्राणों के उन्मेष सृजन के लिये अशेष,
महा मानव के—
क्षयित, शयित, अभिशप्त,
धूम के साथ प्रज्ज्वलित—
कभी-कभी उठती ज्वाला से—
जो संदेश दिये,
जो उद्घोष किये;
कल्पना के सागर में तिरकर,
और शिला की तरह पैठ कर,
और उड्डयन कर उकाब सम,
और घाव की तरह फूट कर,
ज्वालामुखी भूधरों के सम—
सतत फाड़कर अन्तरतर को,
ओजमयी वाणी में तुमको—
उठा-उठाकर पहुंचाने में—
नीचे से ऊपर को वन्दी;
नव अनुभव के साथ—
नये जीवन के साथ—
नये मानव के स्तर से—
विश्व-प्राण के—
महाप्राण के स्पन्दन से भर—
कम्पनमयी शिरा में छूकर;
तथा व्यथाएं मांग-मांग कर—
निज अनुभव को, अन्तर सुख को—
और दिगंगत सौरभ सुख भी स्पर्श, [illegible], उल्लास गा[illegible]न के,
प्रकृति प्रणय के,
नव अभिनय के,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनको क्या तुमने जाना ?
उनको क्या तुमने माना ?
नहीं, नहीं,
तुमको वह क्या है !
तुम हो अरे, समृद्ध-धनिक,
बहुभृत्य सुपूजित,
अर्चित पदरज,
कामना पूर्ण—
मोटर-महलों के, विभव-हास के,
सदय कामिनी-सोडा-फेन-स्मय अभिनन्दित—
वन्दित कल-कल,
पुलकित पल-पल,
आलिंगन चल,
रस चुम्बित सुख,
आहत दुख सुख,
आश विगर्वित,
दृस समुन्नत, उन्नत वक्षस्थल;
तुम क्या जानो बाहुपाश में—
अभिलाषा-सी
सुहासिनी के—
बद्ध ?
और खेलते केवल धन से,
मानव के विह्वल स्पन्दन से,
सदाकर्षि—
मृदु आकुंचन से,
तुम क्या जानों
लिखे रुधिर से—
अपमानों से,
और उपेक्षा से तुम सब की,
वरदानों-सी नई-नई—
साहित्य-सृष्टियां,
अभिनव कृतियां;
अवकाशों में धराकाश के—
महानाश से खेल-खेल कर !

तुम क्या जानों राजनीति की
शुष्क कुंज में नये चमकते जुगनू—
मुझ को !
तुम क्या जानों एक बार, दो बार,
अनेकों बार बन्द बन्दीगृह,
सस्पृह,
साभिलाष,
ऊंचे पद-पद के
अभिलाषी अस्थिर सुख ग्रासी,
राहु अरे, साहित्यिक शशि के ?
तुम पढ़ते हो मेरी कृतियां,
धर देते हो वहीं मेज पर,
"अच्छी है हां, सुन्दर भी है,"
और उसी के साथ गर्व से—
नीचे से ऊपर तक डाले—
कुटिल दृष्टि को,
स्वयं गर्व से फूल-फूल कर,
कर्त्ता-धर्त्ता बन जाते हो—
दीन सृष्टि के,
करुण दृष्टि के,
जिसका मैंने लिया सदा सत्पक्ष !
निरपेक्षित मानव का प्रतिनिधि—
रक्षण करता मैं जीवन का—
न्यायाध्यक्ष, तुम्हारे भक्षण से।
उत्तर देते साभिमान तुम—
कौन निराला ? हां वह कवि है; किन्तु समुद्धत !
प्रेमचन्द, अच्छा लेखक था,
जयशङ्कर, क्या वह भी कवि था ?
और पंत, भाषा अच्छी है,
बच्चन भी कुछ-कुछ गाता है,
और महादेवी, हो नाम सुना है !
कवि तो शैली, वर्ड्सवर्थ या कीट्स हुए हैं,
नाटक भी शेक्सपियर लिख गया,
या इब्सन, शा, गाल्सवर्दी ही—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभृति यही लेखक हैं केवल।
हिन्दी के लेखक ये क्या हैं,
क्या लिखते हैं ?
किन्तु हमें तो बालकृष्ण अच्छा लगता है—
राजनीति का चतुर खिलाड़ी !
देखो भाई, कांग्रेस में काम करो,
होगा सुनाम,
और तुम पूजे जाओगे,
बंगला होगा,
मोटर होगी,
नौकर होंगे !
फोटोग्राफर, समाचार-पत्रों के प्रतिनिधि,
सभी तुम्हारी सरल, तरल और वक्र दृष्टि के,
मुसकाहट के, खांसी ज्वर के,
मोटर में चलने पर भी तो कुछ थकान के,
नींद न आने के भी देंगे समाचार,
चित्रों के नीचे—
बड़े-बड़े मोटे टाइप में;
लेंगे आटोग्राफ !

× × ×

अरे नहीं, यह नहीं हमारा,
प्रगतिशील यह नहीं क्योंकि—
विश्वास नहीं इसका रशिया में,
मार्क्सवाद में,
कम्यूनिज्म में,
जो है केवलमात्र महौषधि;
भारत की भी, नहीं-नहीं,
इस व्यस्त सृष्टि की।
इसपर है विश्वास न जिसका और नहीं 'टो-टो' कह देता,
वह कैसा कवि, कैसा लेखक, कैसा वक्ता,
औ' आलोचक !
हैं कुछ ही लेखक, आलोचक,
कवि, उनके क्या नाम गिनाएं !
रह-रह कर उल्टे-सीधे या पत्रों में भी,

उनका डिड्डिम पीटा जाता—
"प्रगतिशील ये, प्रगतिशील वे !
फिर भी तप कर, गलकर, पिसकर,
दलित, उपेक्षित, घृणापात्र-सा,
नित्य नया साहित्य दे रहा :
वन उपवन में, झंखाड़ों में,
घिरे-घिरे से नव-प्रसून-सा,
मधु रस सौरभ !
बोल रहा अभिनव वाणी में,
पिक की, घन की।
स्वर देकर आंसू पीड़ा को,
प्राण व्यथा को,
पिसते हुए प्राण मानव को,
तार सप्तति-स्वाभिमान भर,
त्रिंश कोटि मानव के स्वर का—
प्रतिनिधित्व कर भास्वर स्वर में।
निर्झर के झरते प्रवाह सम,
विषम व्यथा में कुंचित होकर।
मैं विषपायी अमृत उद्गिरण 'रुद्र चन्द्र-सा'
करता रहता;
मैं हूँ केवल मानववादी,
निज संस्कृति का,
शुद्ध प्रकृति का,
महादेश का,
सदुद्देश का,
जन-कल्याण मार्ग का पन्थी,
अबल रहूंगा अपमानों में,
पीकर घृणा, उपेक्षा पीकर,
स्वाभिमान सम उन्नत भूधर,
व्यूढोरस्क हिमांचल संबल।
मेरे लिये मरण कब जन्मा,
गिरि गह्वर से उठ अविनश्वर,
अनुपल, अनुक्षण मेरा ही स्वर—
नभ के मस्तक में गूंजेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला मन्दिर

रोरिक : चित्रकार दार्शनिक और विश्वनागरिक

श्री शंकरदेव विद्यालंकार

विश्व-विश्रुत चित्रकार, कवि, दार्शनिक और शांतिवादी मनीषी काउन्ट निकोलस रोरिक गत १३ दिसम्बर १९४७ को अक्षरधाम-वासी हो गए। अवसान के समय उनकी वय तिहत्तर वर्ष की थी। सन् १९२४ में वे भारत में आ गए थे और पर्वतराज हिमालय की सुरम्य कुल्लू घाटी के 'नगर' नामक कस्बे में अपना आश्रम बना कर रहते थे। भारत को उन्होंने अपना आध्यात्मिक घर बना लिया था। भारतीय संस्कृति के प्रति उनके मन में अपार प्रीति थी और वे मानते थे कि भारत के द्वारा ही विश्व का आध्यात्मिक पुनःप्रबोध होगा। इसीलिए उन्होंने ऋषि-मुनियों की साधना-स्थली हिमालय को अपना घर बनाया था।

रूस की विख्यात विदुषी उपदेशिका मेडम ब्लेवाट्स्की ने प्रोफेसर रोरिक को भारत और उसकी चिन्तन-धारा की ओर प्रवृत्त किया था।

रोरिक ने अपना विद्यार्थी जीवन कानून-शास्त्र की पढ़ाई से प्रारम्भ किया था, पर शीघ्र ही इन की अभिरुचि चित्र-विद्या की ओर हो गई। फलतः ये सेंट पीटर्सबर्ग की कला विषयक एकेडेमी में अध्ययन करने लगे। तदन्तर कलाधाम पेरिस में जाकर इन्होंने अपनी कला-पिपासा को पूर्ण किया। चित्रकला में इन्होंने बड़ी कृतहस्तता प्राप्त कर ली थी; इसलिए रूस आने पर इनको सेंट पीटर्स बर्ग के पुरातत्व भवन और ललित कला मंदिर में प्रोफेसर बना दिया गया। दस वर्ष तक आप ललित कलाओं की विद्वत् परिषद् (एकेडेमी) के प्रधान मंत्री रहे और सन् १९१७ तक उसके संचालक पद पर आरूढ़ रहे। इस बीच में इनकी चित्र-कर्म प्रवृत्ति अबाध रूप से बढ़ती रही। दो-तीन वर्ष तक इन्होंने नोवगोरोड की खुदाई का काम भी कराया। उसके बाद इन्होंने स्वीडन, डेनमार्क, फिनलैण्ड और इङ्गलैण्ड आदि देशों में अपनी व्याख्यान-यात्रा प्रारम्भ की। इन सब प्रदेशों में वे अपने

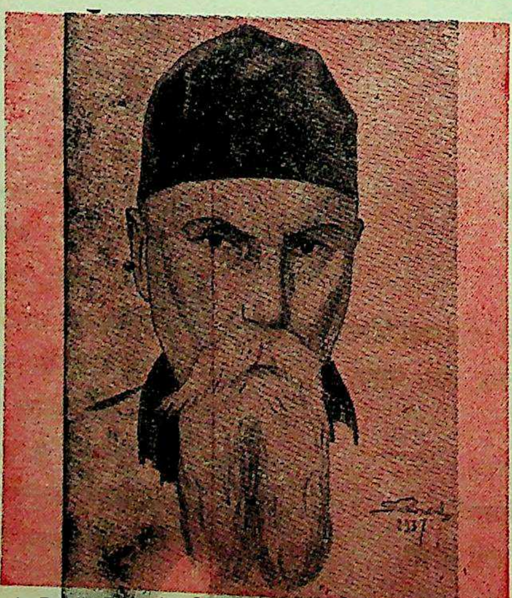

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रों की प्रदर्शिनी भी करते जाते थे । इस ज्ञान-यात्रा द्वारा सारे यूरोप में इनकी चित्रकारी और विद्वत्ता की धूम मच गई । सन् १६२० में प्रोफेसर रोरिक ने अमेरिका की कला-यात्रा की । अमेरिकन जनता इस शान्तिवादी दार्शनिक कलाकार की चित्र-कला को देखकर मुग्ध हो गई । शीघ्र ही न्यूयार्क में 'रोरिक कला-केन्द्र' और 'रोरिक चित्रशाला' की प्रतिष्ठा की गई । इनके व्याख्यानों को सुनने के लिए शिष्ट समाज उमड़ा पड़ता था । रोरिक संग्रहालय को अमेरिकन लोग 'संस्कृति का पुण्यधाम' (CATHEDRAL OF CULTURE) कहने लगे ।

सन् १६२३ में प्रोफेसर रोरिक ने मध्य एशिया की महान् अन्वेषण यात्रा प्रारम्भ की। इस यात्रामें आपके सुयोग्य सुपुत्र डाक्टर ज्यार्ज रोरिक भी सम्मिलित हुए—जोकि इतिहास, पुरातत्व और तिब्बती भाषा के पंडित हैं । सांस्कृतिक सामग्री एकत्र करने वाली इस ज्ञान-यात्रा में रोरिक दल को अपार विपत्तियों और विघ्नों का सामना करना पड़ा । चीनी तुर्किस्तान में तो यात्रा-संघ को कैद कर लिया गया—हथियार छीन लिए गए । असह्य शीत के कारण संघ के ६० जानवर और एक आदमी मर गया । इन संकटों में होते हुए भी इस ज्ञान-यात्रा में रोरिक महाशय ने साढ़े तीन सौ नए चित्र बनाए । इनमें एशिया की संस्कृति, चमत्कृति, और दन्तकथाएं समझाई गई हैं । दस हजार मील लम्बी यह यात्रा थी । ऊंची-नीची तीस पर्वत-घाटियां इन यात्रियों को पार करनी पड़ीं । इसी यात्रा में प्रोफेसर रोरिक ने अपनी प्रसिद्ध हिमाचल चित्रावली तैयार की । इन चित्रों के विषय में एक समीक्षक का कहना है कि यदि हिमालय विषयक ये चित्र तैयार न किए जाते तो आने वाले एक सहस्र वर्षों तक हिमालय के विषय में इतना मर्मस्पर्शी ज्ञान और दर्शन कराने वाले अन्य किसी तत्त्वज्ञ कलाविद् पुरुष की प्रतीक्षा करनी पड़ती । इस यात्रा के अपूर्व चित्र न्यूयार्क की 'रोरिक कलाशाला' में निहित हैं ।

इस महान् ज्ञान-यात्रा के पश्चात् ही मनीषी रोरिक ने भारतभूमि के आंचल — देवतात्मा नगाधिराज हिमालय—को अपनाया । शिमला से कोई सौ मील की दूरी पर कुल्लू की सुरम्य घाटी के "नगर" नामक कस्बे में आज प्रो० रोरिक की समस्त कार्य प्रवृत्तियों का पड़ाव पड़ा हुआ है । वहां पर "ऊरुस्वती हिमालयन रिसर्च इंस्टिट्यूट" नामक संस्था की स्थापना की गई है, जहां पर पुरातत्त्व, तत्त्वज्ञान, वनस्पति-शास्त्र, जीवविज्ञान आदि का अन्वेषण करने वाले विद्वान् रहते हैं । इस अन्वेषण-आश्रम में आयुर्वेद की सहस्रों औषधियों का पृथक्करण और गुण-दोष परिज्ञान आधुनिक रीति पर हो चुका है । खोजों का परिणाम "ऊरुस्वती पत्रिका" में प्रकट किया जाता है ।

श्री रोरिक शांतिवादी महापुरुष थे । अपनी कृतियों द्वारा उन्होंने मानव बन्धुता का प्रचार किया है। मानव-बन्धुता का प्रचार करने वाले बावन "रोरिक-संघ" विभिन्न राष्ट्रों में स्थापित हैं । सन् १६३१ में "रोरिक-शांति-पेक्ट" की प्रथम परिषद् बेलजियम में हुई थी, जिसमें संसार के सहस्रों कलाकारों, साहित्यकारों, दार्शनिकों, वैज्ञानिकों और राजपुरुषों ने सहयोग दिया था । कविवरेण्य रवीन्द्रनाथ जी, विज्ञानाचार्य जगदीशचन्द्र वसु, सर सी० वी० रमण सदृश भारतीय मेधावियों ने भी "शांति-पेक्ट" पर हस्ताक्षर किए थे ।

संसार की सांस्कृतिक वस्तुओं के संरक्षण की भावना को प्रबुद्ध करने के लिए श्री रोरिक ने "शांति-पताका" (बैनर ऑफ पीस) का निर्माण करके बहुत उत्तम कार्य किया है । संसार के समस्त मनीषियों, विचारकों, कला-स्वामियों और साहित्यकारों ने इस पताका का बड़ा स्वागत किया है । जिस प्रकार "रेड-क्रास की ध्वजा" शारीरिक संरक्षण की भावना बताती है, उसी प्रकार मानव-जाति के आध्यात्मिक आरोग्य के लिए रोरिक ने "शांति-पताका" फहराई ।

आचार्य रोरिक ने उदारतापूर्वक अपनी चित्र-कृतियां भारत कलाभवन काशी, प्रयाग संग्रहालय आदि को प्रदान की हैं । यूरोप और अमेरिका में तो उनकी पृथक् पृथक् प्रदर्शिनियां होती रहती हैं । साधक रोरिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने देशों के भौगोलिक प्रभेदों को भुलाकर मानव-जाति को अपनी कृतियों का अपूर्व उपहार अर्पित किया है। ये चित्र-कृतियां मूकभाव से रोरिक की शांति और बन्धुता की भावना को व्यक्त करती हैं।

रहस्यवादी, स्वप्नदर्शी, चित्रकार और विश्व-नागरिक श्री रोरिक हमारे जमाने की एक विशेष विभूति थे—केवल हमारे युग या हमारी शती के ही नहीं, अपितु किसी भी शती के; क्योंकि वे प्राणों के उपासक और प्राणों के प्रबोधक थे और प्राण कभी पुरातन नहीं होते। उनकी कविताओं और चित्रों में नित्य-नूतन रहने वाला प्राण और प्रेरणा भरी हुई है। भव्यता के साथ दिव्यता, सुन्दरता और मांगल्य का अभिनव सन्देश ही उनकी कृतियों की विशेषता है।

मेक्सिम गोर्की ने क्या ही सुन्दर कहा था श्री रोरिक के विषय में — "वह हमारे युग का प्रातिभ प्रज्ञा से पूर्ण महान् मनीषी है। उसकी मेधा, कविता और चित्र-चातुरी को एक दूसरा वासंरी (इटालियन कलाकार माईकेल एंजलो और लियोनार्डो विन्सी का चरित्र लेखक) ही प्रस्फुटित कर सकता है।"

आचार्य रोरिक के जीवनकाल में "नगर" एक यात्राधाम बना हुआ था—स्वप्नदर्शियों और तत्त्वचिंतकों के लिए। आज उनके तिरोभाव के पश्चात् भी वह हरिद्वार और शांति-निकेतन की तरह ज्ञान यात्रियों के लिए पुण्यधाम बना रहेगा। विश्व-बन्धुता, विश्व-शांति और प्रकृति के पुजारी इस कलाकार की स्मृति में हम भी अपने श्रद्धा-सुमन चढ़ाते हैं।

दो गीत

श्री आरसीप्रसाद सिंह

१

साधना कर रे विकल मन!
खिन्न क्यों तू हो रहा है?
धैर्य क्यों तू खो रहा है?
तप तपस्या-अग्नि में,
आराधना कर रे चपल मन!
जो कटे आनन्द में क्षण,
है उसी का नाम जीवन;
दुःख-सुख में सर्वदा सम—
भावना कर रे सबल मन!
मुक्ति हो चिर-शान्ति पाकर,
स्निग्ध अन्तःक्रान्ति पाकर;
पी अमृत कृतकृत्य हो, नव
कल्पना कर रे अमल मन!

२

बीन है निर्जीव, देता—
प्राण तो स्वरकार है!
कौन है वह इष्ट निरुपम?
कौन उसका भक्त प्रियतम?
देव प्रतिमा में न, होती—
भावना साकार है!
मेघ जो आते कभी घिर,
तड़ित् जो जाती चमक फिर,
यह प्रकृति की भूमिका,
आकाश तो अविकार है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी

चपत

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

किसी ने मेरे कन्धे को जोर से थपथपाया—"अरे चलो भी, यहां क्या व्यर्थ में समय नष्ट कर रहे हो!"

मैं डैश के इर्द-गिर्द बने हुए जंगले पर कुहनियां टिकाए, लोगों को अधिक पाने की इच्छा में थोड़ा भी गंवाते देख रहा था। धड़ाधड़ लोहे के कड़े बिक रहे थे और जंगले के बाहर से फेंके जा रहे थे। आता किसी विरले ही को था, जाता सब का था। एक मेज, उस पर लाल कपड़ा और उस पर जुड़े हुए सिक्के — चवन्नियां, अठन्नियां, रुपये इत्यादि। जो भी कड़ा ऐसे फेंके कि सिक्के पर पड़े और वह सिक्का उसे मिल जाए। परन्तु मिल कैसे जाए? यदि इस प्रकार वे डैश वाले सिक्के देने लगें तो मिनटों में वे घर की राह न लें! सिक्के लगाए ही ऐसे गए थे कि दर्जनों कड़े फेंकने पर भी उन पर कोई न अटकता, अधिकांश मेज से उछल कर परे जा पड़ते। लेकिन लोगों के असफल रहने पर भी कड़े और बिकते। कभी सौ में से एक जीत जाता, तो वह उतने ही अधिक कड़े खरीद लेता और उस समय तक पीछे न हटता, जब तक कि जेब खाली न हो जाती। उसका बस चलता तो उधार लेकर भी फेंकता, किन्तु डैश वाले उधार कड़े नहीं देते।

मैंने मुंह फेर कर देखा—बलवन्त है। मैं खीझ उठा और फिर मुंह मोड़ कर कौतुक देखने लगा।

वह चीख उठा—"कैसे सिड़ी हो। अरे कम्बख्त, वह 'चीज' हाथ लगी है कि देखी न होगी, सौ में से सौ नम्बर दे दो!"

"भाड़ में जाए तुम्हारी चीज!" मैंने जल कर कहा।

"पछताओगे, कहे देता हूं!"

"पछता लूंगा—"

"आखिर यहां रखा क्या है?" यह कह कर उसने मेरा हाथ पकड़ा और जोर से खींचने लगा। भीड़ में मेरा हैट गिरते-गिरते बचा, पतलून की क्रीज टूट गई। वह बलिष्ठ था, मैं घिसटता चला गया।

"बड़े गधे हो!"

"वह तो हूँ ही, लेकिन चलो तो सही; वह चीज है कि आंखें खुली की खुली रह जाएं—फिर है भी हाथ ही में!"

"लानत है तुम्हारी चीज पर!"

वह मेरा हाथ पकड़े भीड़ में मुझे घसीटता ले चला।

लाहौर में उन दिनों नुमायश थी; 'पटियाला हाऊस' में खूब चहल-पहल रहती थी। नुमायश थी भी अखिल भारतीय; भारत भर के व्यापारियों ने अपनी वस्तुएं बिकने के हेतु वहां भेजी थीं—फैशन की चीजें, नुमायश की चीजें और काम-काज की चीजें। फिर इस के साथ डैश भी। सौ फीट की ऊंचाई से छलांग, तार पर बाइसिकिल चलाना, कपड़ों में आग लगा कर पानी में कूदना, और भांति भांति के अन्य आश्चर्यजनक खेल — जैसे मौत का कुंआ, लड़की का बोलता सिर इत्यादि। यों तो सारा दिन भीड़ रहती, पर संध्या को लोग आग लगा कर पानी में कूदने वाले अंग्रेज का खेल देखने को धड़ाधड़ चले आते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी भीड़ हो जाती कि खवे से खवा छिलता। मुश्किल से हम खेलों के मंडप से निकल कर तनिक खुले में आए। बलवन्त ने अपने दोनों हाथ मेरे कन्धे पर रख दिए और भेद-पूर्ण स्वर में कहना आरम्भ किया—

"पाठशाल में पढ़ाती है। लड़कियों के साथ आई हुई है; कुछ सामान खरीदा जा रहा है। मुझ से दो एक बार आंखें चार हुई हैं। मैंने सोचा, चलो तुम्हें बुला लाऊं। बस तुम चुपचाप देखते जाओ, कैसे चिड़िया को जाल में फंसाता हूँ। लो, वह दूकान से चलने को तैयार है। तुम देखते जाना और हमारे पीछे रहना, लेकिन ऐसे कि उन्हें मालूम न हो।"

वह दूकान की ओर तेजी से बढ़ा और मैं भी धीरे-धीरे चल पड़ा। वे सब छः थीं—दो छोटी लड़कियां, तीन बड़ी और एक वह स्वयं। अच्छी सुन्दर स्त्री थी, बाईस-तेईस वर्ष की आयु, गोरा रंग, बड़ी-बड़ी आंखें और सुगठित शरीर। धोती यद्यपि श्वेत ही थी, पर उसके चौड़े हरे किनोर ने अजीब शान पैदा कर दी थी। सामान से भरे लिफाफे उसके दोनों हाथों में थे। एक लड़की ने कहा — "लाइए बहिन जी, मुझे दीजिए।"

"नहीं नहीं" कहती हुई 'बहिन जी' वहां से निकल कर दूसरी दूकान में दाखिल हो गई और वहां से कपड़ा खरीदा जाने लगा। बलवन्त भी बेपरवाही से दूकान में दाखिल हुआ और उनके समीप जाकर कपड़ा देखने लगा। मैं भी एक मूक दर्शक की भांति चुपचाप स्टाल के एक कोने में जा खड़ा हुआ।

एक दो बार उन 'बहिन जी' ने दुकानदार से कपड़ों का भाव पूछा, किन्तु वह दूसरे ग्राहकों की ओर निमग्न था।

बलवन्त ने फुर्ती से उसका ध्यान उनकी ओर आकृष्ट किया। इतने में छोटी लड़कियों में से एक को प्यास लगी। बलवन्त भाग कर लेमोनेड ले आया। 'बहिन जी' ने कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा, "यह आपने यों ही कष्ट किया।" और बलवन्त ने जरा-सा मुस्करा कर हंसने का प्रयास करते हुए कहा, "नहीं जी, कष्ट क्या! बच्ची को प्यास लगी थी, यहां पानी था नहीं।"

सर्दियों के दिन थे, वह छोटी लड़की भरा गिलास कैसे पीती; एक-दो घूंट उसने पीकर कह दिया 'बस'। बलवन्त ने वह गिलास दूसरी बच्ची के हाथ में दे दिया। 'बहिन जी' फिर कपड़ा देखने लगीं। एक-दो घूंट उसने भी पिये। शेष पानी बलवन्त ने फेंक दिया और गिलास वापस दे आया। उसके जाने के बाद 'बहिन जी' चौंकीं, और उसके आते ही उन्होंने कहा—"आप पैसे तो ले जाते।"

बलवन्त केवल मुस्कराया और फिर उसने धीरे से कहा, "यह भी तो आप ही के पैसे हैं।"

इतनी देर में दुकानदार ने कपड़े बांध दिए। सारे सामान की छोटी सी गठरी बन गई। पैसे देकर 'बहिन जी' इधर-उधर देखने लगीं, जैसे देख रही हों कि यहां कोई कुली मिल जायगा या नहीं।

बलवन्त ने उनका तात्पर्य जान लिया, बोला— "इतनी सी गठरी के लिए कुली की क्या आवश्यकता है; चलिए मैं ले चलूंगा।"

"नहीं नहीं, आप क्यों उठाइएगा।"—यह कह कर उन्होंने बड़ी लड़कियों में से एक की ओर देखा जो कदाचित् उनकी बहिन थी। उसने झट बढ़कर गठरी उठा ली

सब दूकान से निकलीं।

बलवन्त से और कुछ न हुआ तो छोटी बच्ची ही को गोद में उठा लिया और उनके पीछे पीछे चलने लगा।

इसके बाद और दो दूकानों से भी उन्होंने सामान खरीदा। बलवन्त ने उन दोनों बच्चियों से खासी घनिष्ठता पैदा कर ली। उन्हें रुपये-दो-रुपये के खिलौने भी ले दिये। और जब एक स्थान पर अपनी छोटी बहिन का हाथ बटाने के लिए स्वयं 'बहिन जी' ने सामान उठाना चाहा तो बलवन्त ने लड़की को उतार कर उनके हाथ से गठरी लेते हुए कहा — "लाइए न, कुछ दूर मैं ले चलता हूँ। मुझे भी उधर ही जाना है।"

"नहीं, नहीं, आप क्यों कष्ट करें!"

"वाह, इसमें कष्ट की कौन-सी बात है!" यह कहते हुए उसने गठरी ले ली।

'बहिन जी' केवल मुस्करा दीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे आगे-आगे, बलवन्त कभी आगे कभी पीछे और मैं तनिक अन्तर से, परन्तु साथ-साथ—इस प्रकार सारी प्रदर्शिनी में घूमे। उन्होंने और भी वस्तुएं खरीदीं। उनकी भी एक दो छोटी-छोटी गठरियां बनीं। वे भी बलवन्त ने हंसते-हंसते उठा लीं। जितनी देर वे छलांग देखने के लिए खड़ी रहीं, उतनी देर बलवन्त त्याग, सेवा और परोपकार की मूर्ति बना खड़ा रहा। कभी-कभी 'बहिन जी' मुस्करा कर कह देतीं—"आपको बड़ा कष्ट हो रहा है। लाइए न, एक चीज मुझे दे दीजिए।" और बलवन्त कहता — "नहीं, नहीं, कोई कष्ट नहीं; कौन बहुत बोझ है!" परन्तु इस के साथ ही गठरियां बदल लेता — भारी इस हाथ में और हल्की उस हाथ में।

कोई नौ बजे के लगभग वे लोग प्रदर्शिनी से निकले। एक लड़की को कृष्ण-गली जाना था, दूसरी को अर्जुन-नगर और तीसरी को परी-महल। दो छोटी-छोटी लड़कियों को लोहारी मण्डी और स्वयं 'बहिन जी' और उनकी छोटी बहिन को वच्छोवाली। वे सब लड़कियां उनके साथ ही आई थीं, इस लिए उनको सकुशल घर पहुँचाने का काम भी उन्हीं को करना था। वे पहले कृष्ण-गली, फिर अर्जुन-नगर, फिर परी-महल, फिर लोहारी मण्डी और फिर वच्छोवाली को आईं। एक बजने को हो गया, सड़कों पर सन्नाटा छा गया। मेरे ओवरकोट को चीर कर सर्दी अन्दर पहुंचने लगी, परन्तु बलवन्त एक शलवार, कमीज और कोट ही में मस्त चलता गया। उसकी भुजाएं ऐंठ गईं, पर क्या मजाल जो माथे पर बल आया हो; बल्कि ज्यों-ज्यों लड़कियों की संख्या घटती गई, उसका मुख प्रफुल्लित होता गया। और जब 'बहिन जी' तथा उनकी बहिन ही रह गईं तो वह उनके तनिक समीप हो गया। पर वे कुछ ऐसी बातों में निमग्न हुईं कि उन्हें बलवन्त के साथ-साथ चलने का ज्ञान ही न रहा। एक-दो बार उसने बातचीत आरम्भ करने का प्रयास भी किया, लेकिन उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया। दूर किसी घड़ियाल ने एक बजाया, उस समय 'बहिन जी' ने वच्छोवाली की एक छोटी-सी गली के दो-मंजिले मकान की सीढ़ियों का दरवाजा खटखटाया।

कोई न बोला।

'बहिन जी' ने फिर जोर से किवाड़ खटखटाया और आवाज दी।

कोई न बोला। बलवन्त का मुख दूर से आने वाले बिजली के क्षीण प्रकाश में चमक-सा उठा।

'बहिन जी' ने तीसरी बार पूरे जोर से दस्तक दी और एक साथ दो आवाजें लगाईं।

बलवन्त आगे बढ़ कर कोई प्रस्ताव करने ही वाला था कि किसी ने किवाड़ खोल दिए। 'बहिन जी' सीढ़ियां चढ़ीं। बलवन्त से उन्होंने सब सामान ले लिया, एक बार कहा "धन्यवाद!" और किवाड़ बन्द कर लिए।

किसी ने जोर से कहा — "तुम भी कमला कितनी देर कर देती हो, कौन तुम्हारे लिए इतनी देर तक बैठा रहे?"

"इतनी लड़कियों को भी तो छोड़ना था।"

"और ये कौन थे, जो इतना सामान उठा कर लाए?"

"मुफ्त के नौकर!" — एक मादक अट्टहास गूंज उठा, "हटने ही में न आते थे; लड़कियां साथ, कोई सिर हो जाता—मैंने कहा, चलो इन से ही कुली का काम ले लो।"

उस समय दूसरा कहकहा भी गूंज उठा।

बलवन्त के ऐंठे हुए बाजू कदाचित् दुख उठे; उन्हें सिकोड़ते हुए उसने मेरी ओर देखा और मैंने उसकी ओर और बिजली का क्षीण प्रकाश मानो उसकी करुण-दृष्टि को देख कर मुस्करा पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व-रंगमंच के अभिनेता

चर्चिल

समुद्र के अन्तस्तल में बहुत-सी ऐसी अच्छी-बुरी चीजें पड़ी रहती हैं, जो केवल उसी समय ऊपर की सतह पर आती हैं जब समुद्र में इतना गहरा तूफान आ जाये कि वह जल के पाताल तक को हिला दे। इसी प्रकार कई ऐसे व्यक्ति हैं जो शान्ति की दशा में संसार की दृष्टि से या तो सर्वथा ओझल हो जाते हैं अथवा यदि दृष्टि के सामने रहते हैं तो समय के प्रतिकूल और घटिया माने जाने लगते हैं। इंग्लैण्ड की टोरी (अनुदार) पार्टी के नेता मिस्टर विनसैंएट चर्चिल ऐसे ही व्यक्तियों में से हैं। जब मानवीय-समुद्र में तूफान उमड़ रहा हो तब चर्चिल को हम उसकी चोटी पर तैरता देखेंगे, परन्तु जब विप्लव शांत हो जाये तब हम विनसैंएट चर्चिल को दो में से एक जगह देखेंगे—या तो वह हारी हुई पार्टी का नेतृत्व कर रहा होगा या अफ्रीका के जंगलों में शिकार खेलकर दिल बहला रहा होगा!

संसार में प्रायः यह देखा जाता है कि ऐसे उग्र स्वभाव और शक्ति वाले व्यक्ति पराजय के धक्के को नहीं सह सकते; असफलता के साथ उनके सार्वजनिक जीवन का भी अन्त हो जाता है। परन्तु ऐंग्लो-सैक्सन जाति की यह विशेषता है कि वह बड़े से बड़े धक्के को धैर्य से बरदाश्त कर लेती है और नयी परिस्थिति के अनुसार अपने को ढाल लेती है। यह इस जातीय विशेषता का ही प्रभाव है कि जिस मिस्टर चर्चिल ने युद्ध के दिनों में प्रतिष्ठा की चोटियों पर विहार किया था, वह आज एक निर्बल और परास्त राजनैतिक दल के नेता की हैसियत से पार्लियामेंट में भाषण देकर ही सन्तुष्ट हो रहा है। यदि वह अंग्रेज या अमेरिकन न होता तो अधिक सम्भावना यही थी कि वह महायुद्ध के खण्डरात के नीचे दब कर सार्वजनिक जीवन से विलुप्त हो गया होता।

*

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

विनसैंएट चर्चिल का सारा जीवन तूफानी रहा है। उसके जीवन की जितनी विशेष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घटनायें हैं, वे सभी युद्ध से सम्बन्ध रखती हैं। भारत के साथ चर्चिल का सम्बन्ध सिपाहियाना रहा है। बहुत समय हुआ, एक बार कुछ दिनों के लिये आप सिपाही की हैसियत से भारतवर्ष की छावनियों में रहे थे। भारतीय समालोचक प्रायः यह ताना दिया करते हैं कि मिस्टर चर्चिल ने भारतवर्ष का जो नमक खाया है, उसे वे गाली देकर अदा कर रहे हैं! यह ताना उन्हें सैनिक जीवन के दिनों के बारे में दिया जाता है।

मिस्टर चर्चिल के जीवन की दूसरी घटनाओं की जो लड़ी हमारा ध्यान आकृष्ट करती है, वह दक्षिण-अफ्रीका के बोअर युद्ध से सम्बन्ध रखती है। उस युद्ध में आप समाचार-पत्रों के युद्ध-सम्वाददाता बन कर गये थे। सम्वाददाता की हैसियत से युद्ध क्षेत्र की अगली पंक्ति में जाकर आपने जो साहसिक कार्य किये, वे भी आपके तूफानी जीवन के ऐन अनुकूल ही थे। उसके पश्चात् मिस्टर चर्चिल ने गम्भीरता पूर्वक अपने पुश्तैनी पेशे—राजनीति में प्रवेश किया। आप एक प्रभावशाली वक्ता हैं। आपकी वक्तृत्व कला की विशेषता यह नहीं कि आप बहुत गम्भीर सिद्धान्तों का स्पष्ट और जोरदार शब्दों में प्रतिपादन करते हैं, प्रत्युत यह है कि आप ओजस्वी शब्दों और पैने मुहावरों से विरोधियों की धज्जियां उड़ाने और जनता को उत्तेजित करने में सिद्धहस्त हैं। आप की लेखनी भी जोरदार है, परन्तु उसका जोर भी नोक में ही है। वाणी और लेखनी की सहायता से मिस्टर चर्चिल राजनीति के क्षेत्र में उत्तरोत्तर आगे बढ़े, लेकिन चूंकि केवल वाणी और लेखनी की तेजी ही किसी व्यक्ति को राजनीति की चोटी पर नहीं पहुँचा सकती, इस कारण आप तब तक टोरी पार्टी की मशीनगन ही बने रहे, जब तक कि योरोप के महासमुद्र में तूफान नहीं आ गया। १६१४ के महासंग्राम ने मिस्टर चर्चिल को इंग्लैण्ड के राजनीतिज्ञों की अगली पंक्ति में लाकर खड़ा कर दिया। आप युद्ध के संकट-काल में इंग्लैण्ड के युद्ध-सचिव बनाये गये। उन दिनों मिस्टर चर्चिल की बड़ी लाल रंग की कार अंग्रेजों के हृदयों में उत्साह और आशा का सञ्चार करने वाली बन गयी थी। चार वर्ष के बाद योरोप का पहिला महायुद्ध समाप्त हो गया, शांति के दिन आ गये और रचनात्मक योजनाओं की चर्चा होने लगी। मिस्टर चर्चिल की तबीयत के प्रतिकूल वातावरण उत्पन्न हो गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि आप फिर टोरी पार्टी के अन्यतम नेता की हैसियत में पहुँच गये, और आपका मुख्य काम पार्टी के मोर्चों से मजदूर दल पर वाणी और लेखनी की गोलियां बरसाना था।

मिस्टर चर्चिल की यह स्थिति उस समय तक रही, जब तक कि दूसरा तूफान नहीं आया। १६३६ में दूसरा तूफान आ गया। संसार में युद्ध की अग्नि फिर प्रचण्ड हो गयी, जिसने मिस्टर चर्चिल को फिर मोर्चे के मुंहाने पर लाकर खड़ा कर दिया। इस बार आप प्रधान-मन्त्री की हैसियत से युद्ध के संचालक और इंग्लैण्ड के भाग्य-विधाता बनकर सामने आये। मिस्टर चैम्बरलेन की ठण्डी और अवास्तविकता-पूर्ण नीति से हारते और मुरझाये हुए अंग्रेजों के दिलों को उत्साह और जीवन का सन्देश देकर और अन्त में विजयी बनाकर मि० चर्चिल ने इंग्लैण्ड की जो सेवा की उसे अंग्रेज जाति कभी नहीं भुला सकती।

*

जैसे सब उपद्रव एक न एक दिन शांत हो जाते हैं, वह दूसरा महा-संग्राम भी शांत हो गया और साथ ही मि० चर्चिल भी ठण्डे पड़ गये। अभी युद्ध की चिनगारियां बुझने भी न पायी थीं कि जो अंग्रेज जाति 'चर्चिल जिन्दाबाद' के नारे लगाती नहीं थकती थी, उसी ने सुलह की चर्चा चलते ही मि० चर्चिल को हाथ से पकड़ कर हुकूमत की कुर्सी से उतार दिया। युद्ध के दिनों का महान् चर्चिल आज हारी हुई निर्बल टोरी पार्टी का बदनाम नेता बना हुआ है। अनुदार दल के सर्वसाधारण सदस्यों में यह चर्चा है कि इस व्यक्ति को लीडरी से हटा देना चाहिये, क्योंकि इसके पास कोई रचनात्मक कार्यक्रम नहीं है।

(शेष पृष्ठ १६ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक ऐतिहासिक कहानी—

तिलक

श्री महेन्द्रप्रताप 'मदन'

वह राजगायक था। गक्कर-राज्य की सारी नगरी उसकी जादूभरी वाणी पर लट्टू थी। उसके गले की मिठास, उसकी कला और उसके रूप पर नगर की अनेक लावण्यमयी सुन्दरियां मोहित थीं, पर गायक प्रीतिपाल को उनके मद भरे यौवन व रूप-लावण्य की तनिक भी चाह न थी। इस ओर कभी उसका ध्यान तक न गया था। वह अपनी कला की आराधना में ही तन्मय था।

पर, इधर कुछ दिनों से एक विचार ने गायक को विचलित कर रखा था। सभा-भवन में दायीं ओर बरामदे में लगे झालरदार रेशमी पट के पीछे से किसी की अस्पष्ट-सी छाया का उसे एक दिन आभास हुआ था। उसके पश्चात् जब वह अनेक सुन्दरियों के संग घुली-मिली वहां आकर बैठती व अन्तःपुर में जाने के लिये उठती तो गायक प्रतिपाल उसकी एक झलक पा जाता। उषा-बेला की अरुणिमा की नाईं अधरों पर मंद-मंद मुस्कान लिये जब वह आती तो ऐसा लगता मानो उसके चारों ओर सौन्दर्य उमड़ रहा हो। गायक का हृदय पुलक से भर उठता। धीरे-धीरे किसी अज्ञात प्रेरणावश वह उसकी ओर इतना आकर्षित हो गया कि जब कभी उसकी अस्पष्ट-सी छाया को रेशमी पट के पीछे न पाता तो खोया-खोया-सा रहता, गा न सकता। पर वह है कौन? यह समस्या गायक के हृदय में उलझती जा रही थी और उसे भलीभांति देखने की उत्कण्ठा बलवती होती जा रही थी। इसी लिये वह राजसभा में गायन के लिये समय से बहुत पहले ही आ जाता और उसकी उड़ती-सी आंखें व कान उस पर्दे की ओर ही लगे रहते। चूड़ियों की खनखनाहट, रेशमी वस्त्रों की सरसराहट व नूपुरों की अस्पष्ट-सी रुनझुन से उसके कान भलीभांति परिचित हो चुके थे।

गीत के समाप्त होने पर सभा-भवन में केवल उसकी गूंज भर रह गयी। झनझना कर वीणा के तार रुक गये। मस्त गायक ने आंखें खोलीं। गीत में मादकता थी, माधुर्य था। 'वाह वाह' की ध्वनि से सभा-भवन भर गया।

दुर्गपति महावीर सिंह झूम उठे।

"प्रीतिपाल, आज का गीत अद्वितीय था। हम बहुत प्रसन्न हैं, कुछ मांगना हो तो मांग लो!"

मुस्करा कर राजमंत्री भी बोले, "हां हां, गायक, मांग लो; बार-बार ऐसे अवसर थोड़े ही आते हैं।"

क्षण भर प्रीतिपाल शांत बैठा रहा। महाराज के फिर कहने पर बोला, "कल्पना और कलाकार का सम्बन्ध अत्यन्त समीप का है। कल्पना साकार बन कर सामने हो तो कला खिल उठती है। यह सब उसी का प्रभाव है। मुझे मेरी कल्पना चाहिये, महाराज!" और गायक के नेत्र रेशमी पट की ओर उठ गये।

राजसभा आश्चर्य-चकित हो गयी। सन्नाटा छा गया।

"कल्पना?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हां महाराज ! उसकी चूड़ियों की खनखनाहट को, उसके वस्त्रों की सरसराहट को, उसकी अस्पष्ट-सी छाया को शायद मैं पहचान लूं !" गायक ने फिर एक बार उसी ओर देखा । दुर्गपति समझ गये । सोचा, राजकुमारी नीलिमा की कोई सखी होगी ।

"पहचानने का प्रयत्न कर देखो"—उन्होंने कहा ।

प्रीतिपाल ने गोद में पड़ी वीणा एक ओर रख दी और रेशमी पट के समीप जा पहुँचा । पट के पीछे सनसनाहट व कंपकंपी फैल गयी । चिर परिचित चूड़ियों की ध्वनि व वस्त्रों की सरसराहट को पहचान कर गायक ने हाथ बढ़ा कर किसी सुकोमल अदृश्य हाथ को पकड़ लिया । एक चीख के साथ कई स्वर एक साथ सुनाई पड़े — "नीलिमा !"

गायक के हाथ से वह हाथ छूट गया । क्षण भर को वह सिहर उठा । सभा-भवन में काना-फूसी होने लगी—

"प्रीतिपाल पागल है !"

"गायक सठिया गया है !"

"उसे प्राण-भय भी नहीं है !"

"प्रीतिपाल"—दुर्गपति का स्वर और मुद्रा कठोर थी । सभा-भवन का दृश्य बदल गया । गायक मुड़ कर खड़ा हो गया—स्थिर, अचल, निस्पंद !

"तुमने किसका हाथ पकड़ा, मालूम है ?"

"जानता नहीं था, पर अब जान गया हूं !" गम्भीर स्वर में गायक ने उत्तर दिया ।

राजकुमार जयसिंह का हाथ तलवार की मूंठ पर जा पहुँचा । सामंत पुत्र प्रतापसिंह आवेश में खड़ा हो गया — "राजकुमारी का यह अपमान !"

"क्षमा व दया की भिक्षा मांग लो, गायक"—राजमंत्री ने सुझाया ।

क्षमा ? वह क्षमा किस अपराध की मांगे ? उसने सब कुछ आत्मा की प्रेरणा से किया है ? उसकी दृष्टि में, उसके मन में पाप नहीं है । वह अविचल खड़ा रहा । राज-सभा की आंखें उसके चौड़े ललाट, विहंसते चेहरे पर लगी थीं । उसके विशाल नेत्रों में आत्म-विश्वास झलक रहा था ।

"गायक !" महावीर सिंह कठोर स्वर में बोले । चेहरे पर की क्रोध-रेखाएं क्षण-क्षण बाद बदल रही थीं ।

"जी महाराज !"

"तुमने हमारा अपमान किया है । पर तुम्हारी सेवाओं व योग्यता का विचार करते हुए तुम्हें अवसर दिया जाता है । राजमंत्री ने क्या कहा है, यह तुमने सुन लिया होगा !"

गायक चुप खड़ा रहा ।

"अपराधी को दण्ड मिलना चाहिये," प्रतापसिंह फिर बोला । चेहरा क्रोध से तमतमा रहा था ।

"राजमंत्री, अपराधी बन्दी बन लिया जाये"—रोष-पूर्ण स्वर में दुर्गपति ने आज्ञा दी और उठ कर चले गये ।

उधर झालरदार रेशमी पट के पीछे सहेलियों के छेड़ने पर नीलिमा हंस पड़ी—"पागल है !"

गायक प्रीतिपाल को प्रेम ने बन्दीगृह में ला बैठाया । कारागार के एक कोने में बैठा हुआ वह न जाने क्या-क्या सोचता रहता । सोचते-सोचते जब थक जाता तो गा उठता और बन्दीगृह की ऊंची दीवारों से टकरा कर गीत के स्वर हवा में खो जाते ।

राजकुमारी नीलिमा के विवाह की बात-चीत सामंत-पुत्र प्रतापसिंह से चल रही थी; पर अभी कोई निश्चय नहीं हुआ था । हो सकता है कि नीलिमा उसे चाहती हो, पर ऐसा कभी भी प्रकट करने का उसने साहस न किया था, जबकि प्रतापसिंह की उसके प्रति आसक्ति छिपी न थी । दुर्गपति देश की वर्तमान अवस्था से विवश थे । समस्त देश में उथल-पुथल व गड़बड़ मची हुई थी । पल-पल पर लड़ाई व आक्रमण की आशंका थी । इससे नीलिमा के विवाह की समस्या उनके सम्मुख प्रमुखता न पा सकी ।

जिस दिन की आशंका थी, वह आखिर आ पहुँचा । रण-दुंदभी बज उठी । समस्त राज्य में एक लहर सी दौड़ गई । प्रत्येक वयस्क का युद्ध में भाग लेना अनिवार्य कर दिया गया । कुछ एक चुने हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन्दी छोड़ दिये गये। गायक प्रीतिपाल भी उनमें से एक था। स्त्रियों, बच्चों व दुर्ग की रक्षा के लिये राजकुमार जयसिंह के नेतृत्व में कुछ सेना पीछे छोड़ कर दुर्गपति महावीरसिंह गक्कर वीरों को ले लाहौर की ओर बढ़ गये।

सांझ का अन्धेरा झुक आया था। आकाश में इधर-उधर बादलों के छोटे बड़े टुकड़े तैर-से रहे थे। हवा बहुत ही धीमे-धीमे चल रही थी। अन्यमनस्क-सी नीलिमा किशोरी के संग राजभवन की छत पर टहल रही थी। तभी नीरवता को बेधते हुए किसी का गीत गूंज उठा। नीलिमा चौंक कर रुक गयी—"कौन है?"

"राजगायक प्रतीत होता है।"

"कौन राजगायक?"

"वही जिसने आपको महाराज से मांगा था"—किशोरी ने शरारत भरी आंखों से नीलिमा के सुन्दर चेहरे की ओर देखा।

"बन्दीगृह से मुक्त होने पर क्या वह युद्ध में…?"

"कहां? वीणा के तारों से खेलने वाली अंगुलियां भला कहीं तलवार पकड़ सकती हैं!" किशोरी हंस पड़ी।

नीलिमा चुप रही। शायद घृणा हो आई।

सिंधु तट स्थित दुर्ग के अधिपति महावीरसिंह के नेतृत्व में जब गक्कर वीरों ने लाहौर पर आक्रमण किया, तो उस समय गजनी का सुल्तान ग्वालियर की ओर युद्ध में फंसा था। ग्वालियर का किला छिन जाने का समाचार यहां पहुँच चुका था। इन मुट्ठी भर वीरों का विदेशियों को इस पुण्य-भूमि से खदेड़ने का शायद यह अन्तिम प्रयत्न था। प्राण हथेली पर रखे आंधी की तरह ये लाहौर पर टूट पड़े और तूफान की तरह बात की बात में तुर्क सेना को नष्ट कर दिया। गोरी ने यह समाचार सुना तो अपनी समस्त सेना के साथ आ धमका। घमासान युद्ध हुआ। तुर्क-सेना के छक्के छूट गये। उनके पैर उखड़ने ही को थे कि कुतुबुद्दीन ऐबक ने सतलज नदी पार कर ली। इस सहायता के आन पहुँचने पर तुर्क-सेना का साहस बढ़ गया। कुछ चुने हुए सवारों को लेकर सुल्तान सीधा महावीरसिंह पर टूट पड़ा। बड़ा विकट युद्ध हुआ। अनेक घाव खाकर महावीरसिंह का शिथिल शरीर गिर पड़ा।

नीलिमी ने जब युद्ध में पिता के मारे जाने का समाचार सुना तो वह तड़प कर भूमि पर गिर पड़ी। मूर्च्छा भंग होने पर मर्मान्तक पीड़ा से उसकी आत्मा का प्रत्येक कण सिहर उठा। वह न रोई, न कराही, अवसन्न सी पड़ी रही। प्रतिशोध की भावना से उसका हृदय भर उठा।

"उस छली नीच यवन के रक्त से अपने पिता की मृत्यु का तर्पण करूंगी, चाहे इसके लिये प्राण ही क्यों न देने पड़ें"—अस्फुट स्वर में उसके पतले-पतले अधर बुदबुदाये। पास बैठी किशोरी ने उसकी ओर देखा। उसके मुख पर किसी अज्ञात निश्चय का भाव था। नीलिमा के इस निश्चय का समाचार किशोरी द्वारा सब को ज्ञात हो गया।

नीलिमा झरोखे में बैठी थी। उसके लम्बे-लम्बे केशों से खेलती हुई किशोरी बोली—"नीलो!"

नीलिमा ने मुड़ कर देखा। सागर-सी नीलिमा लिये उसकी बड़ी-बड़ी आंसू भरी आंखें और राख सी सुफेदी लिये उसका चेहरा देख कर किशोरी सहम गयी।

नीलिमा ने मस्तक ऊपर उठाया और कातर नेत्रों से किशोरी की ओर देखते हुए धीमे स्वर में पूछा, "क्या है?"

"वह कैसी कु-घड़ी थी जब महाराज युद्ध के लिये गये थे। तुम्हारा विवाह……!"

नीलिमा के मुख पर विषादपूर्ण गम्भीरता छाई हुई थी। तड़प कर बोली—"जले पर नमक न छिड़को किशोरी! वह दिन बीत गये। पिता की मृत्यु के पश्चात मुझे कुछ नहीं सुहाता। मुझे न छेड़ो—" आंखों से आंसुओं की कुछ बूंदें कपोलों पर लुढक आयीं।

किशोरी वहीं उसके सामने बैठ गयी। दूर सामने वृक्षों की ओट से वह प्राचीन मंदिर दिखाई दे रहा था जिसे विदेशियों ने लूट कर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तभी प्रहरी ने आकर राजकुमार जयसिंह के आने की सूचना दी। किशोरी उठ कर द्वार के पास चली आई। नीलिमा उठ कर पलंग पर आ बैठी और झुकी हुई आंखों से लम्बी अंगुलियों में पड़ी अंगूठी को एक-टक देखने लगी।

"नीलो!"—जयसिंह ने पलङ्ग के समीप आकर पुकारा। श्वेत वस्त्रों में लिपटी नीलिमा उसे बहुत उदास लगी। सदा वेणी के रूप में गुंथे रहने वाले उसके लम्बे काले केश कन्धे पर बिखरे पड़े थे। नीलिमा के कोई उत्तर न देने पर जयसिंह ने फिर पुकारा — "नीलिमा!"

"हां, भैया!" दिल भर आया उसका। आंखें रोने को हुईं। आंखें उठा कर एक बार भाई की ओर देखा। जयसिंह के मस्तक पर पसीने की बूंदें देख कर सोच में पड़ गयी।

"नीलो, अभी-अभी समाचार मिला है कि सुल्तान सेना सहित वापिस गजनी लौट रहा है। पहर दो पहर में सिंधु के उस पार आ पहुँचेगा और रात्रि में शायद वहीं शिविर गड़े।"

नीलिमा की सागर-सी नीलिमा लिये आंखें चमक उठीं।

"सच भैया?" वह खड़ी हो गयी।

"आज की रात हमारे लिये बहुत महत्वपूर्ण है। आज हमारी वीरता की परीक्षा है। तुमसे विदा लेने आया हूं, नीलो। हो सकता है कि कल प्रातःकाल के सूर्य को मैं न देख सकूं।"

किसी अज्ञात आशंका से नीलिमा सिहर उठी।

"बोलो नीलो, जाऊं मैं?" जयसिंह ने फिर पूछा।

"मेरे प्राण सदा तुम्हारे संग रहेंगे, भैया। भगवान तुम्हें सफलता दे"—किसी प्रकार यह कह कर नीलिमा झरोखे के पास जा खड़ी हुई।

जब आकाश में धुंधलापन भर गया तो वहीं झरोखे में खड़े-खड़े नीलिमा को दूर सन्नाटे में घोड़ों की टापों की ध्वनि सुनाई पड़ी जैसे दुर्ग से बाहर नदी की ओर कोई गया हो। आंखें गड़ाकर देखा। दूर होती हुई आकृतियां धुएं की रेखाओं सदृश्य भासित हो रही थीं।

रात्रि दो पहर से अधिक बीत चुकी थी। घोर सन्नाटा था। काले-काले बादलों ने घिर-घिर कर अन्धेरे को गहरा करने में सहायता दी थी। बड़े वेग से अपने में अथाह जल लिये सिंधु नदी बह रही थी। अन्धेरे में छुपते छुपते-से कई सवार आकर नदी के किनारे उतर पड़े। उन्होंने अपने घोड़े छोड़ दिये।

सभी के लम्बे, गठीले शरीरों से वीरता झलकती थी। वे अस्त्रादि से सुसज्जित थे, परन्तु अन्धेरे ने उनकी आकृतियों को ढक रखा था। उस छोटे से दल में से कुछ आदमी निकल कर नदी के किनारे की झाड़ियों की ओट ले उस पार का दृश्य देखने की चेष्टा करने लगे। दूर-दूर पर जलती मशालों से किसी भारी लश्कर के पड़ने का आभास हुआ।

तभी किसी के तैरने की ध्वनि सुन वे लोग चौंक पड़े। ऐसा लगा मानो कोई तैरता हुआ इसी ओर आ रहा है।

झाड़ियों से कुछ दूर हट कर खड़े, ऊंचे डील-डौल वाले व्यक्ति का हाथ अपनी तलवार पर जा पड़ा।

तभी नवागंतुक पानी से निकल आया। आगे बढ़ कर धीमे, परन्तु कठोर स्वर में उसने पूछा—"कौन?"

"मित्र!" और आगुन्तक ने आगे बढ़ कर प्रणाम किया।

"मैं हूँ, जयसिंह जी! शत्रु की गति-विधि जानने के लिये उस पार गया था।"

"कौन, राजगायक प्रीतिपाल!" तनिक आश्चर्य में भर जयसिंह बोले।

"क्यों आश्चर्य हुआ! शाही डेरे की रक्षा का भार कुतुबद्दीन के सहकारी रहमतखां पर है जिसका डेरा सुल्तान के डेरे से कुछ दूर हट कर है। वहां पर अभी तक नृत्य, संगीत व सुरा का साम्राज्य था। अभी-अभी पर्दे गिरा दिये गये हैं व अधिकांश तुर्क नशे में हैं। पहरे पर लगभग दो सौ सिपाही होंगे जिनमें से कुछ डेरों पर हैं, बाकी घूम-घूम कर पहरा दे रहे हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यही अवसर है ! सम्भल कर बढ़ चलो"—जोश भरे शब्दों में जयसिंह साथियों से बोले।

एक-एक करके समस्त गक्कर वीर नदी में कूद पड़े और तेज धारा को चीरते हुए दूसरी ओर बढ़ने लगे। उस पार पहुँच कर घूमते हुए पहरेदारों पर बिजली की तरह टूट पड़े और गाजर-मूली की तरह उन्हें काटते हुए खेमों के अन्दर घुसने लगे। सारे शिविर में इस आकस्मिक आक्रमण से हो-हल्ला मच गया। सुल्तान का डेरा सामने था। कुछ वीर उसमें घुस पड़े। मखमली पलङ्ग पर अपनी विजय के रंगीन सपने देखता हुआ गजनी का सुल्तान सो रहा था। चार तातारी सुन्दरियां पंखे डुला रही थीं। सिंहों की भांति गक्कर वीर उस पर झपटे। तलवार का पहला वार प्रीतिपाल ने किया, जिससे सुल्तान की गर्दन कट कर एक ओर जा पड़ी। अन्य गक्करों ने सुल्तान के शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। भयभीत, कांपती, थरथराती तातारी सुन्दरियों को इन्होंने कुछ नहीं कहा। तभी रहमतखां की सेना ने आकर इन्हें घेर लिया। प्रीतिपाल के कन्धे पर एक गहरा वार पड़ा। लड़ता-भिड़ता वह नदी तक आ पहुँचा और रक्त से सनी तलवार को दांतों में दबा कर धारा में कूद पड़ा।

धमाके की ध्वनि सुनकर नीलिमा बाहर झपटी। सीढ़ियों पर खून से लथपथ खड़ा कोई डगमगा रहा था। हाथ में रक्त से भरी तलवार थी। इस दृश्य को देखते ही नीलिमा की आंखें फैल गयीं। वह जोर से चीखी "तुम ? राजगायक ?" और उसने उसे संभालने की चेष्टा की; किन्तु इससे पहले ही वह गिर पड़ा। तलवार हाथ से छूट कर एक ओर जा पड़ी। लपक कर नीलिमा उसके निकट जा पहुँची। तब तक और भी बहुत से लोग वहां आ गये।

प्रीतिपाल ने एक बार बुझी हुई आंखें खोल कर अपने ऊपर झुकी नीलिमा की आंखों में देखने का प्रयत्न किया, फिर धीमे से कराहते हुए बोला—"यह ··यह सुल्तान का रक्त है।······मैं······मैं·····" वह और अधिक कुछ न कह सका।

नीलिमा ने—खोई-खोई नीलिमा ने उसका मस्तक अपनी गोद में रख लिया। उसके कन्धे से गर्म रक्त बह रहा था। नीलिमा के अधर प्रीतिपाल से कुछ कहना चाह रहे थे, परन्तु कांप कर रह गये।

प्रीतिपाल ने एक बार कांपती-सी पलकें खोलकर अन्तिम बार नीलिमा को देखा। नीलिमा की गोद में सिर रखे उसे बड़ा सुख अनुभव हो रहा था—मानो उसके जीवन की यही साध थी। उसकी पलकें फिर मुंदती देख नीलिमा चीत्कार कर उठी। बावली-सी, पास पड़ी तलवार उठा कर बोली—"तनिक ठहर जाओ, मेरे गायक ! मेरा पिता का तर्पण हो गया है। किशोरी, किशोरी ! आज मेरा विवाह है। किशोरी खुशियां मनाओ, बाजे बजाओ ! आओ देखो, मैं अपने स्वामी के मस्तक पर मंगल-तिलक लगा रही हूं।" और उन्मादिनी ने अंगुलियों से तलवार पर लगा रक्त पोंछ कर प्रीतिपाल का तिलक किया।

★

[पृष्ठ ११ का शेष]

यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि मि० चर्चिल का सूर्य क्या अब सदा के लिये अस्त हो गया है या वह फिर कभी आकाश के मध्य में चमकेगा ? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये एक और प्रश्न का उत्तर जानना आवश्यक है। वह प्रश्न यह है कि क्या आगामी दो-चार वर्षों में ही योरोप का या संसार का तीसरा महायुद्ध आरम्भ हो जायेगा या नहीं ? यदि उत्तर 'हां' में है, तो इस तूफानी महापुरुष के फिर एक बार चमकने की आशा हो सकती है। परन्तु यदि उस अवश्यम्भावी महायुद्ध के फूटने में अधिक देर लगी तो सम्भव है मि० चर्चिल की पहले ही थकी हुई शारीरिक और मानसिक शक्तियां इतनी क्षीण हो जायं कि समय आने पर साथ न दें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पलक झुकती जा रही है !

(श्री 'शलभ')

क्यों अजाने सांझ ही में
बढ़ चली है खोल लंगर,
कल्पना का पाल फैला,
भव-सागर उच्छलित पर,
स्मृति-लहर पर प्राण-नौका डगमगाती जा रही है !
पलक झुकती जा रही है !

कह रहा था मैं कहानी—
रे युगों से जो अधूरी !
"तुम सुनाते ही रहो—
जब तक न वह हो जाय पूरी !"
—यह मधुर मनुहार निर्मल नयन में मुसका रही है !
पलक झुकती जा रही है !

छेड़ दी सरगम हृदय ने
गीत गाने को तुम्हारा !
वह सुनाने को कभी जो—
साधना से स्वर सँवारा !
स्वाँस क्यों मेरी न जाने अब उखड़ती जा रही है !
पलक झुकती जा रही है !

स्कंध से पर मैं न थक कर
वीण यह नीचे धरूंगा !—
स्नेह का आधार कहता,
विष धरा का सब हरूंगा !
व्यालिनी-सी यह अंधेरी रात बढ़ती जा रही !
पलक झुकती जा रही है !

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूरोप के

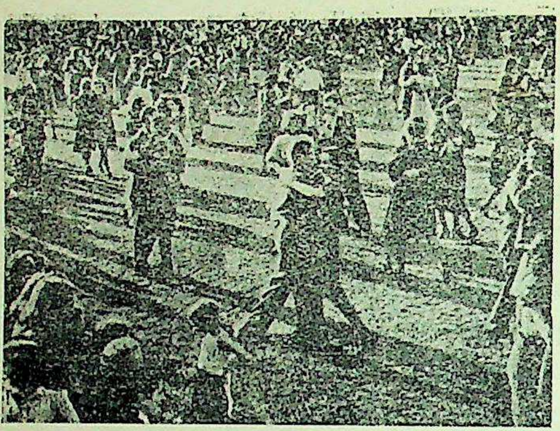

एक नृत्य गोष्ठी

यूरोप का अधिकांश भाग निमुच्छों से भरा हुआ है। 'अधिकांश' में से बनार्ड शा या स्टालिन आदि को निकाल दिया जाए तो मुच्छ-मत-गणना के प्रसंग पर प्रबल बहुमत निमुच्छों का ही रहेगा। यदि यूरोप के 'मुच्छस्तान'-वादी अल्पमत-मानवों की कोई पाकिस्तान जैसी समस्या खड़ी हो जाय तो शायद उन्हें एशिया के पास कोई छोटा-सा उजबेक या कजाकिस्तान जैसा एकाध टुकड़ा (भूखण्ड) ही नसीब हो! फिर 'अधिकांश' भी कहने की जरूरत नहीं पड़े। रूसी लोग प्रायः दाढ़ी-मूंछ के धनी होते हैं, इसी लिये वे कृषि-जीवी हैं, मजूर हैं। परन्तु 'सफाई' की हवा वैसे वहां भी कम नहीं फैली है। सम्भवतः यह पर-राष्ट्र का प्रभाव ही है। (भले ही देख लीजिये पर-राष्ट्र मंत्री मोशिये-मोलोटॉव को!) किन्तु इन 'कुछेक' को छोड़ दीजिए तो रूसी-मुच्छ-गणना में स-मुच्छों का ही भाग बहुत बड़ा होगा। फ्रांस, इटली, जर्मनी, इग्लैंड इन महान-राष्ट्रों की बात जुदा है। ये प्रगति-पंथी ठहरे, इन्हें 'मूंछ' की क्या पूंछ? दाढ़ी तो कभी काढ़ी ही नहीं! इन राष्ट्रों के ग्रामों में, रूढ़िवादियों, पुराण-पंथियों में भी यही प्रथा पनपती जा रही है।

इन राष्ट्रों की नजाकत, बनावट, शान-शौकत और स्वभाव-प्रविष्ट मार्दव (स्त्रीत्व) एवं मुच्छ-मुण्ड-महा-मण्डल को देख मैंने १९३७ के अपने पश्चिम-प्रवास में यह नतीजा निकाला था कि इन देशों के पुरुष विलासिता की विशाल-परिधि को लांघ कर अपना 'पुंसत्व' खो रहे हैं और 'स्त्रीत्व' की ओर द्रुतगति से अग्रसर हो रहे हैं। 'स्त्रीत्व' की मृदुल-भावना की ओर प्रबलता से प्रगति करते रहने के कारण ही पुरुषत्व के चिन्ह शनैः शनैः लुप्त हो रहे हैं। हिटलर ने यूरोप में प्रविष्ट 'स्त्रीत्व' के कीटाणुओं को नर की नब्ज में जांचकर जर्मनी में उसका इलाज शुरू कर दिया था और अपने राष्ट्र के पुरुषत्व को 'फ्रांस' की फैली हुई स्पर्शजन्य 'वायु' से बचा लिया था। इस विकृत-वायु को पेरिस में मैंने कृत्रिमता के 'चरम' को स्पर्श किये हुए

देखा था। एक भोजनालय में मेरे पड़ौस ही में एक प्रणयी-युगल बैठा हुआ था। दोनों की भौंहें तक मुंडी हुई सफाचट थीं, दोनों ने एक बढ़िया, काली (रंग की) लकीर कान तक खींच कर अपने को कर्णायताक्ष बना रखा था, दोनों के अधर अरुण-राग-रंजित, दोनों ही पेंट-पोश। दोनों की एकरूपता, अभेद-भावना देख कर मैं तो अद्वैत-वाद के चक्कर में पड़ गया था। परंतु पेरिस की प्रचलित-प्रथा का यह जोड़ा महज प्रतीक था।

मुझे पेरिस में यह बार-बार खयाल हो आता था कि काश, हमारे नए-नाजुक-नौजवानों और नए-युग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नर नारी

—श्री सूर्यनारायण व्यास

के कवियों को एक बार पेरिस के इन प्रणयिजनों की परिचर्या में पहुँचा दिया जाता !

और इंग्लैंड...? यह तो निपट नीरस, रूखा, शासन के गुरुतर भार से दबा हुआ, कूटनीति का निकेतन तथा गर्वोन्मत्त-राष्ट्र रहा है। जहां फ्रांस लावण्य-भार से भरित, सर्वाङ्ग-सुन्दर, कुसुम-कमनीय, सर्वाभरणालंकृत लजीली-षोडशी बाला है, वहां इंग्लैंड पुरुष-राष्ट्र अवश्य है; परन्तु यह पुरुष सहृदय नहीं, बल्कि सर्वग्रासी-हृदय-हीन है ! वैज्ञानिक-युग ने यूरोपीय मानव को हृदय-हीन मानव-मशीन बना डाला है।

जब मैंने पेरिस की निमुच्छता, स्त्रैण-मृदुता के दर्शन किये थे, तब जर्मनी की घुटी चांद, सफाचट-भ्रू-भंगिमा को पुरुषत्व की रुखाई से मिला लिया था;

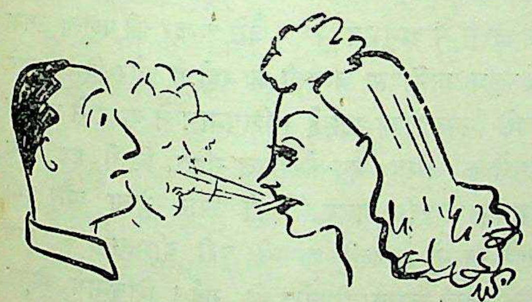

पर फ्रांस की नारी को उन्मादिनी, विलासिनी मानते हुए भी लन्दन की ललना-'लताओं' को कभी 'लजीली' नहीं माना है। वे जमाने की दौड़ में पुरुष से किसी भी तरह पीछे नहीं रहना चाहतीं। हर क्षेत्र में नर से आगे ही बनी रहने को आतुर रहती हैं। ७० फी-सदी स्त्रियों को ऑफिसों में, दूकानों में, जहाज, एरोप्लेन, जासूसी विभाग, जर्नेलिजम, प्रवास, होटेल, शस्त्रागार, मशीन-मैनी, राजनीति, घुड़सवारी, तैराकी, कुश्ती, कसरत, कलाबाजी, उद्योग, घुमक्कड़ी आदि साहसी कार्यों में प्रविष्ट पाया जा सकता है। पुरुष की अपेक्षा अधिक फुर्तीलेपन से वे हर विभाग में घुस कर काम कर रही हैं। इन्हें सब जगह समान-रूप से काम करते देख यही कहा जा सकता है कि इंग्लैंड की नारी 'नरत्व' से होड़ लगा रही है।

वैसे सामान्यतया यूरोप के अधिकांश प्रदेशों की स्त्रियों में से नारी-सुलभ कोमलता, मृदुता, ममता, वात्सल्य-भाव भाग कर विदा ले रहे हैं। कोई स्त्री दिन रात पुरुष-वेश में रहे, पुरुषोचित कार्य करे, पुरुषों के ही सहयोग में (स्त्रीत्व को सर्वथा भुला कर) रहे, उसे अपने 'स्त्रीत्व' को याद करने का भी अवसर न मिले, वह यदि क्रमशः स्त्रीत्व से हट कर पुरुषत्व में परिणत होती चली जाये, (और किसी दिन उसमें पुरुषत्व के चिह्न भी विकसित होने लगें) तो अस्वाभाविक नहीं है। यूरोप, खास कर लन्दन की नारी 'अबला' न रहकर 'चंडिका' बनती जा रही है। यूरोप और उससे बाहर भी यह स्पष्ट मान्यता है कि 'इंग्लिश-स्त्री' योग्य गृहिणी नहीं हो सकती। वह पुरुष को 'दास' समझ कर चलती है। यूरोप के अन्य देशों की अपेक्षा इंग्लैंड की नारी तो सुन्दरी भी कम होती है।

फ्रेंच नारी चाहे एनेमिक (रक्तहीन) टी० बी० की मरीज भले ही लगती हो, परन्तु रंगीन कागजों में लिपटे बासी फलों की भांति पावडर, पेस्ट, स्नो-क्रीम पोत-चुपड़ कर वह सौन्दर्य-सम्राज्ञी बन जाती है !

स्विटजरलैंड और उसकी सीमा से सटे हुए इटली के ग्राम्य-प्रदेश प्राकृतिक सौन्दर्य के लिये प्रसिद्ध हैं। अतः वहां के पुरुषों में स्वस्थ-पौरुष है, स्त्रियों में नारी-सुलभ स्वास्थ्य और पवित्र, सरल सौन्दर्य है। इन प्रकृति-सुषमा-समन्वित सुन्दर प्रदेशों से सम्पर्क रखते हुए भी यूरोप के अन्य नर-नारी पता नहीं क्यों कृत्रिमता की उपासना करते जा रहे हैं ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रात अन्धेरी थी और आकाश में संशयात्मक मन-से काले-काले बादल घुमड़ रहे थे। कभी-कभी विचारों के प्रवाह-सी विद्युत-रेखा क्षितिज के एक सिरे से दूसरे सिरे तक कौंध जाती थी। प्रबल वायु के सन''सनन करते झोंके पीपल के सूखे पत्तों से टकरा कर एक ऐसा भयावह चीत्कार करते कि स्थिर मन का सम्बल भी लोल लहरों पर डोलती तरणी-सा डोल जाता—अवयव विकम्पित हो उठते। तूफान की आशंका थी। जिस प्रकार ज्वालामुखी फूट निकलने के पूर्व धीरे-धीरे लावा एकत्रित होता रहता है, उसी प्रकार बादल घने होते जा रहे थे और पूर्वी-हवा में वेग आता जा रहा था; बिजली का कौंधना बढ़ता जा रहा था। लेकिन शिवनाथ इस तूफान से भरी रात में दृढ़ता से कदम उठाये विक्षिप्त-सा खोया-सा शहर के बाहर चला जा रहा था। जिस अन्तर्जगत की भावना में वह लीन था, उसमें प्रकृति का यह बाह्य रौद्र रूप गौण था। शिवनाथ के चलने में जो दृढ़ता लिये हुए तेजी थी वह इस बात की द्योतक थी कि वह एक प्रण के साथ आगे बढ़ रहा है और उसे आगे ही बढ़ते चले जाना है। सहसा पानी की एक फुहार उसके बदन पर आ गिरी। वह सिहर उठा। लेकिन चलने की गति वैसी ही बनी रही। वह शहर से बाहर हो गया था। चलते-चलते वह एक टीले पर खड़ा हो गया और उसने लौट कर शहर की ओर देखा जहां बिजली का प्रकाश अब भी हो रहा था—

श्री रघुनाथ सक्सेना

जहां आकाश-चुम्बन करती इमारतें अब भी अपनी नीरव-आस्था का मौन सन्देश देती खड़ी थीं। शिवनाथ ने जुगनू से टिमटिमाते शहर के बिजली के बल्बों की ओर देखा, जिनसे क्षीण प्रकाश प्रसारित हो उसकी आंखों के सामने एक टेढ़ा-मेढ़ा रजत-मार्ग सा बना रहा था। शिवनाथ ने उन क्षणों में अनुभव किया, जैसे अन्दर की पशुता उसपर एकच्छत्र आधिपत्य जमाती जा रही है और विवेक उसके हाथसे निकला जा रहा है। शिवनाथ ने शहर से घूम कर सामने की नीरव, जन-कोलाहल रहित, किसी हद तक भयानक जंगली पगडण्डी की ओर देखा और तभी उसके सामने बिजली अपनी पूरी बीभत्सता के साथ राक्षसी-दांत चमकाती लोप हो गई। शिवनाथ विवेक रहित संतप्त पागल-सा अट्टहास कर उठा। उसकी ऊंची आवाज विंध्य-शैल-माला के सिलसिलों से टकराई और फिर भौंरे के गुंजन-सी मद्धिम पड़ तिरोहित हो गई। शिवनाथ उस समय प्रेत छाया-सा एक टीले पर खड़ा रहा। शिवनाथ का उन्माद दूध के पहले उफान-सा निकल गया था—सोचने की शक्ति उसमें तेजी से लौट रही थी और जिस भावना को लेकर वह इस भयानक अन्धेरी काल-सी विकराल रात में आगे बढ़ आया, उसके सिंहावलोकन की प्रवृत्ति उसमें जागरूक हो उठी। एक बड़ा-सा बोझ उठा कर किसी निर्दिष्ट स्थान पर पहुंचने के पश्चात् जिस प्रकार थकान उभर आती है और अवयव शिथिल पड़ जाते हैं, शिवनाथ वैसी ही थकान अपने अन्दर अनुभव कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा था। उसके हाथ-पैर जवाब दे रहे थे और मन बैठ कर स्वस्थ होने की प्रेरणा दे रहा था। शिवनाथ पुनः शहर की ओर घूम कर टीले पर बैठ गया। शिवनाथ सोच रहा था—

दृढ़ विश्वास की बुनियाद पर उसने अपनी आशाओं की जो इमारत तैयार की थी वह तो एक क्षण में धराशायी हो गई। जिस समय उसके विश्वास की हत्या और आशा का ध्वंस हो रहा था, उस समय वह सोच नहीं पा रहा था कि ऐसा सब क्यों हो रहा है—किस त्रिकुटी के कारण उसे जीवन में यह असह्य असफलता मिल रही है? उसे लगा जैसे सचमुच किसी ने अणु-बम डाल कर कल्पना की सार्थकता को स्वाहा कर दिया है और अब अवशेष बचा है जीवन भर का क्रन्दन—और कटुता से भरा हुआ भयावह यथार्थ! और वह कांप उठा था। तब ही पराजयवाद ने उसमें घर कर लिया था और वह शहर में, जहां उसकी आशाओं का श्मशान बन चुका था, अधिक ठहर नहीं सका था—पराजित सेना के रणक्षेत्र से उखड़े हुए पैरों-सा वह भी भाग खड़ा हुआ था। शिवनाथ सोचते-सोचते रुका। उसने अपनी आंखें सामने के शून्य में गड़ा दीं; फिर अवसाद से घिरे उसके चहरे पर मुस्कान की एक क्षीण रेखा अंकित हो गई। उस मुस्कान में मूर्तिमती विवशता थी—असफलताओं की ओर एक ऐसा विद्रूपात्मक संकेत था जो दूसरों को शिवनाथ की ओर देखने, सहानुभूति प्रगट करने के लिये अवश्य प्रेरणा देता। शिवनाथ सोचने लगा—

गांव से अपने जिस निजत्व को लेकर आज से पांच वर्ष पूर्व मैं शहर में आया था, उसका अन्त तो शहर की रंगीनियों में हो गया। और शहर के जिस वातावरण में उसके नव-निजत्व का निर्माण परिस्थितियों के सहारे हुआ था, उसका विनाश आज की परिस्थितियों में हो गया। आज जब वह शहर से भयाक्रान्त होकर लौटा है तो वह पाने की जगह बहुत कुछ खोकर लौटा है—यहां तक कि अब वह किस आस्था और विश्वास को अपना निजत्व, अपना अभिमत बतलाये — यही बतलाना या उसके विषय में सोचना उसके लिये असम्भव और किसी हद तक अप्रीतिकर है!

शिवनाथ चौंका—

जीवन के लम्बे पांच वर्ष! विश्वास और आशा का पांच वर्ष का इतिहास! और इस विचार के साथ ही उस भयानक अन्धेरी, तूफान से भरी रात और निर्जन-नीरव जङ्गल में उसके सामने मनोरमा साकार होगई थी—ठिगना कद, बबूल की फलियों जैसे छल्ले बने हुए घुंघराले बाल, आसव-सिक्त मादक आंखें, यौवन के उभार से गदराया हुआ शरीर और विहंसता चेहरा! इसी मनोरमा से शिवनाथ ने शहर में आकर प्रेम किया था — अपने अस्तित्व को तिल-तिल मिटाकर, अपनी वास्तविकता और अपने उद्देश्य को, जिसे लेकर वह गांव से शहर में आया था, उसे भुला कर ऐवज में मदहोशी लेकर प्रेम किया था — विश्वास और आशा की भावनाओं में संजो कर उसने भविष्य का निर्माण एक नये तरीके से किया था। आज उन सब भावनाओं और कल्पनाओं में कहां सार रहा है—कहां·······?

शिवनाथ अपने गांव से पढ़ने के लिये जब शहर में आया था तो वह अपनी परिस्थितियों से अच्छी तरह परिचित था। जिस विपन्न और साधन-रहित वातावरण में वह पला था, उसमें रोमांस की कतई गुंजाइश नहीं थी — सम्भवतः इसकी कभी उसने कल्पना भी नहीं की थी। आरम्भ से ही उसे अपने भविष्य का अपने हाथों निर्माण करना पड़ा था। माता और पिता का साया बचपन में ही उसके सिर पर से उठ गया था। उनकी मृत्यु के बाद उसे कुछ दिन अनाथ बने डोलते बिताने पड़े थे। तभी एक दूर के सम्बन्धी ने उसे गांव में अपने पास रख लिया और इस तरह शिवनाथ परिस्थितियों के अस्थिर पालने में डोलता विद्याध्ययन की ओर बढ़ा—गांव की पाठशाला, तहसील के मिडिल स्कूल, हाईस्कूल और फिर जिले के इण्टर कॉलिज की दीवारों को लांघता शहर की यूनीवर्सिटी में आ पहुँचा था। और यहीं से शिवनाथ का नव-निर्माण हुआ था — नई आकांक्षाओं ने आगे-आगे बढ़ कर उसे प्रेरणा दी थी और सफलता ने उसका स्वागत किया था। शहरी-जीवन के प्रथम और द्वितीय वर्ष उसके लिये विशेष महत्व के नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे थे — पढ़ना और पढ़ाना और पढ़ने से यदि मन ऊबे तो शहर से बाहर एकान्त में टहलने निकल जाना। उसके मित्रों की संख्या नहीं के बराबर थी। कारण कुछ संकोच था और कुछ एकाकी प्रवृत्ति। शिवनाथ अपने इस एकाकी, शान्त जीवन से सन्तुष्ट था और जिस उद्देश्य-पूर्ति के लिये गांव छोड़ कर वह शहर की एक गन्दी, सीलभरी कोठरी में आ बसा था, उस ओर दृढ़ता से आगे बढ़ा चला जा रहा था। कभी-कभी वह अपने संघर्षों से भरे जीवन के विषय में सोचता था और मुस्करा देता था। कभी २ आत्म-चिन्तन के क्षणों में वह अपने दैनिक जीवन की तुलना श्रीसम्पन्न विद्यार्थियों के दैनिक जीवन से भी करने लगता था। उन क्षणों में उसे अपनी कर्मण्यता से सन्तोष मिलता था — पढ़ना, ट्यूशन करना और टहलना। शिवनाथ अपने जीवन से सन्तुष्ट था।

× × ×

उस वर्ष बी० ए० की परीक्षा में शिवनाथ सर्व-प्रथम रहा और इस कारण उसका आर्थिक संकट कुछ कम हो गया। उसने एम० ए० 'ज्वाइन' किया और नये जीवन में नई उमंगों के साथ प्रवेश किया। विद्यार्थी गण उसकी वेशभूषा की ओर देखते थे और हंसते थे—गंवारू कपड़े, उटंगा-सा पाजामा, हाथ से धुला हुआ गाढ़े का कुर्ता, मैली, धुमैले रंग की टोपी और नंगे पैर! लेकिन इस सादगी के अन्दर भी जो उसका व्यक्तित्व था — सुन्दर चेहरा, गेहुँआ रङ्ग, बड़ी-बड़ी दीप्त आंखें, प्रशस्त ललाट और स्वस्थ शरीर — उससे प्रभावित हुए बिना देखने वाला नहीं रह सकता था। उसकी आंखों में एक सम्मोहन शक्ति थी, जो दूसरे को निकट खींचती थी और बातचीत करने के लिये विवश करती थी। लेकिन अपने ध्येय की पूर्ति में संलग्न शिवनाथ अपनी इस शक्ति से अनभिज्ञ था। इसी बीच कॉलिज में उसका परिचय मिस मनोरमा से हुआ। मिस मनोरमा से परिचय भी कुछ विचित्र ढंग से हुआ था। एक दिन वह क्लास में नहीं आया था और उसकी सीट पर मिस मनोरमा ने पेन्सिल से खिंचा हुआ उसका एक स्केच आलपीनों से फिट कर दिया था। उस चित्र के नीचे शीर्षक दिया हुआ था — 'जेल की आबाद बस्ती से छूटा हुआ!' दूसरे दिन शिवनाथ ने टेबिल पर से उस पेन्सिल स्केच को उतार लिया, बोला कुछ नहीं। एक दिन शिवनाथ के एक सहयोगी ने बतलाया कि वह पेन्सिल स्केच मिस मनो-रमा का बनाया हुआ है और उसे चाहिए कि वह मिस मनोरमा से इस बदतमीजी के लिये क्षमा प्रार्थना करवाये। लेकिन शिवनाथ मौन ही रहा। इसके बाद भी मिस मनोरमा शरारतों से बाज न आई—कई बार अपनी सहेलियों के सामने उसने शिवनाथ की नकल उतारी। लेकिन वह शान्त ही रहा—एकदम तटस्थ! मिस मनोरमा को शिवनाथ की इस खामोशी से पश्चा-त्ताप हुआ हो, ऐसी बात नहीं। हां, उसे एक खीझ शिवनाथ के इस शान्त व्यवहार से अवश्य हुई। अभी तक उसने देखा और अनुभव किया था कि बिना बात के युवक उसके पीछे पीछे भागते हैं — सहयोगी उससे बातचीत के लिये अवसर ढूंढते हैं और कुछ अधिक मनचले युवक उसे देख कर कवि बनने या प्रेमाग्नि में तड़पते प्रेमी का स्वांङ्ग भी भरने लगते हैं। इन्हीं सब बातों की आशा एक बार शिवनाथ के शान्त सागर-से जीवन में हिलोरें पैदा करने — उसे उद्वेलित करने के लिये उसने की थी। लेकिन उसे सफलता न मिली थी और यही उसने अपना अपमान अनुभव किया था। उसने शिवनाथ को घमण्डी कहा था — यहां तक कि उसे गंवार कहने से भी नहीं चूकी थी।

लेकिन वह आज यहां एकान्त में बैठ जब अपने विगत का सिंहावलोकन कर रहा है, वह मनोरमा के विषय में यूं नहीं सोचता। वह सोच रहा है मिस मनोरमा के शब्दों को लेकर — उसके वचनों को सामने रख कर! मिस मनोरमा से उसने प्रेम किया था, अपना अस्तित्व उसमें विलीन कर दिया था। आरम्भ में मिस मनोरमा ने इस छेड़छाड़ से आगे बढ़ कर स्वयं शिवनाथ से बातचीत की थी और वह अप्रत्याशित रूप से शिवनाथ की ओर आकृष्ट भी हुई थी। मिस मनोरमा सम्पन्नता के जिस वातावरण में पली थी और रहती थी, उसमें ऐसा नहीं कि शिव-नाथ जैसे सुन्दर या मेधावी युवक उसके सम्पर्क में न आये हों, लेकिन शिवनाथ के व्यक्तित्व में जो एक [illegible] की [illegible] छाप थी, एक विशेष आकर्षण था,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी अवहेलना उसके बस से बाहर की बात थी। शिवनाथ के सम्पर्क में आकर मिस मनोरमा अपनी पहली पराजय को भूल गई। उधर शिवनाथ ने मिस मनोरमा के सम्पर्क में आकर सब कुछ नया अनुभव किया। उसने महसूस किया कि उसके दृष्टिकोण में भारी परिवर्तन होता जा रहा है और कल वाला उसका निजत्व तेजी से नष्ट हो रहा। वह चौंका, लेकिन सम्हल नहीं सका। उसके सादा जीवन और वेशभूषा में परिवर्तन आ गया। उसके सामने भावनाएं प्रभात वेला में नई खिली विहंसती कलियों-सी विकसित हो उठीं और वह सिहर उठा। एकाकीपन की प्रवृत्ति डोल गई और वह किसी के संसर्ग की अधिकाधिक चाह करने लगा। उसे लगा कि उसका आज तक का विगत बह गया है। जहां उसकी पोशाक में परिवर्तन हुआ, वहां उसका स्वभाव भी बदल गया। इस परिवर्तित शिवनाथ को मिस मनोरमा ने देखा और मुस्करा दी। यह उसकी विजय का दिन था। आरम्भ में मनोरमा शिवनाथ की ओर खिंची थी, लेकिन अब शिवनाथ मनोरमा की ओर खिंचने लगा। दिन पंख लगा कर उड़ने लगे — कल्पना सावन की रिमझिम में नाचते मोर-सी थिरक उठी, प्रेम का वेग बढ़ा और दोनों बेसुध बह चले। एक दिन शिवनाथ ने मनोरमा के दोनों हाथ अपने हाथों में लेते हुए कहा — 'तुम मेरे जीवन की गति हो!'

और मनोरमा ने शिवनाथ के और निकट आते हुए मुस्करा कर कहा था — 'तुम मेरे जीवन के कम्पन हो!'

तब शिवनाथ ने उसे अपने में समेट लिया।

× × ×

एम० ए० का प्रथम वर्ष निकल गया। दोनों की भावनाएं बल पकड़ती गईं। शिवनाथ डूबता गया। लेकिन सुख और आनन्द के उन दिनों को उसने किसी निराशा या पतन का द्योतक नहीं समझा; शायद उन परिस्थितियों में ऐसा सोचने की कभी उसने जरूरत महसूस नहीं की थी।

लेकिन मिस मनोरमा के प्रेम में वह आवेग न था। वह सतर्क थी और अपनी परिधि में चल रही थी। शिवनाथ को लेकर वह अपने भविष्य का न तो कोई चित्र खींचना चाहती थी और न उसके मन में कभी ऐसी कल्पना ने ही जन्म लिया था। शिवनाथ उसके लिये 'वर्त्तमान' था, 'भविष्य' नहीं। और उसके आगे वह उसके विषय में सोचना भी नहीं चाहती थी। मिस मनोरमा के स्वभाव में धनिक-वर्गोचित एक लापरवाही थी और थी अहंमन्यता, सम्मान लिप्सा और विलासिता! शिवनाथ आरम्भ में मिस मनोरमा के स्वभाव को पढ़ नहीं सका और जब उसे यह बातें दृष्टिगोचर हुईं तो वह बहुत आगे निकल चुका था, जहां से कम से कम शिवनाथ जैसे कल्पनाशील, भावना-प्रधान व्यक्ति के लिये लौटना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य था।

× × ×

शिवनाथ ने टीले पर पड़े एक गोल-मोल पत्थर को उठा लिया और हृदय पर अनुभव होते बोझ को हल्का करने के लिये पत्थर को अन्धेरे में फेंक दिया। दूर शहर की रोशनी मद्धिम पड़ गई थी और कुछ थोड़े से ही बल्ब उसके सामने अब टिमटिमा रहे थे—अनाकर्षक, धुन्धले! एक-दो-तीन—उसने एक के बाद दूसरा पत्थर उठाया और अन्धेरे में फेंकता रहा। लेकिन वह हृदय में उठते भावों को दबाने में असमर्थ रहा। मन कह रहा था—'अरे शिवनाथ, तुम्हारा कल वाला निजत्व नष्ट हो चुका है। कल की घटनाएं आज विगत हैं और अब तक तुम निज की इतनी पूंजी खो चुके हो कि भविष्य तुम्हारे लिये सूना हो गया है—तुम दिवालिया हो गये हो। शिवनाथ, तुम अपने कल पर न सोचो, क्या रखा है अब सोचने में। वह एक जुआ था, जिसमें तुमने अपना सर्वस्व लगा दिया और तुम हार गये।'

शिवनाथ के चेहरे पर अवसाद आकाश पर छाई हुई घटा से भी घना होकर फैल गया। वह बुदबुदाया—'मैं पागल था—मैं पागल हूँ। मैंने जीवन में खोया ही खोया है, पाया कुछ भी नहीं।'

फिर वह अन्धकार में एक टक देखने लगा और उसे प्रतीत हुआ—सोचना अब असह्य होता जा रहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। लेकिन मनोरमा—कल की घटनाएं—कल्पनाएं—भविष्य !

उसे आशा नहीं थी कि उसे विश्वास और प्रेम के बदले में इस कटुता का—इस अपमान और इस निराशा का सामना करना पड़ेगा।

उसी शाम की बात थी। शिवनाथ ने मिस मनोरमा के सामने विवाह का प्रस्ताव रखा था। उसने मिस मनोरमा के गले में अपनी बांहें डालते हुए कहा था—

'मिनी, हमें अपनी मित्रता को पवित्र सामाजिक बन्धन द्वारा दृढ़ कर लेना चाहिये।'

मिस मनोरमा ने धीरे से शिवनाथ की बांहों को गले से छुड़ाते हुए ग़ौर से एक बार उसकी ओर देखा। शिवनाथ की आंखों में निश्चय था और अपने प्रश्न का उत्तर पाने की आतुरता थी। मिस मनोरमा को अपने कर्तव्य का निश्चय करने में विलम्ब नहीं लगा। उसने मधुर मुस्कान अपने चेहरे पर बिखेरता हुए कहा—

'मिस्टर शिवनाथ, अभी हम एक दूसरे को पहिचान ही कहां पाये हैं। और फिर अभी इतनी जल्दी भी क्या है ?'

शिवनाथ उसके अभिप्राय को नहीं समझ सका। उसने फिर आग्रह किया—

'नहीं मिनी, हमें जिस समाज में रहना है उसके नियमों का पालन आवश्यक है। विवाह हमारे मिलन को पवित्र बना देगा। मैं समझता हूँ अब यह हमारे लिये आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है।'

मिस मनोरमा यह बातें सुनने और उत्तर देने के लिये पहले से तैयार खड़ी थी। उसने पैनी चुभती आंखों से एक बार शिवनाथ के हृदय की तह तक पहुँचने की कोशिश की। फिर सम्हल कर बोली—'मिस्टर शिवनाथ, विवाह के सम्बन्ध में मेरे निराले विचार हैं। तुम मेरे मित्र हो, मैं समझती थी कि तुम सदा मेरे साथ एक मित्र बन कर ही रहोगे। लेकिन मैं देखती हूं, तुम में दूसरों को गुलाम बनाने की प्रवृत्ति प्रबल है। सुनो, मैं विवाह को गुलामी समझती हूं।'

शिवनाथ अवाक् रह गया। उसे विश्वास न हो रहा था कि यह सब कुछ वही मनोरमा कह रही है जिसे वह स्नेह व करुणा की देवी समझे हुए था।

मिस मनोरमा ने अपनी मुद्रा को दृढ़ बनाये हुए फिर कहा—

'देखो मिस्टर शिवनाथ, मुझे गलत मत समझना। मैं जानती हूं कि इन बातों से तुम्हारे हृदय को भारी धक्का लगा होगा, लेकिन मैं इसके लिये विवश हूँ—मुझे तुम्हारे प्रति हार्दिक सहानुभूति है।'

शिवनाथ इसके उत्तर में क्या कहता—कह भी क्या सकता था ? प्रेम तो दो हृदयों की भावना के मेल का नाम है। लेकिन जहां विचारों में मौलिक भेद हो, वहां क्या प्रेम और क्या उसके प्रति आस्था !

शिवनाथ मुँह लटकाये चुपचाप मिस मनोरमा के यहां से चला आया। अपने कमरे में उसका मन नहीं लगा। जितना वह सोचता था, उसकी भावनाएं रीती और सूनी होती जा रही थीं; विवेक उसका इस आघात से तिमिराच्छन्न हो गया था। निराशा की प्रवृत्ति उसे मृत्यु की ओर धकेल रही थी। शिवनाथ तब और शहर में टिक नहीं सका था; अज्ञात शून्य में लीन होने के लिये वह शहर से डग भरता हुआ यहां इस नीरव, बीहड़ स्थान पर आ पहुँचा था।

× × ×

शिवनाथ ने देखा, प्राची में हल्की लालिमा फैल चली है। चिड़ियां चीं—चीं—चीं करतीं फुर—फुर कर उड़ने लगी हैं और काले-काले बादल परास्त हुए सैनिकों से विपरीत दिशा में सर पर पांव रख कर भागे चले जा रहे हैं। उसने सोचा, रात के बाद दिन और दिन के बाद रात, यह प्रकृति का एक शाश्वत नियम है। प्रकृति का पाठ कर्मण्यता है और इसके सिवा सब कुछ निरर्थक है। शिवनाथ के अन्दर फिर एक प्रेरणा काम करने लगी थी—

'मैं गांव से मनोरमा के लिये नहीं, अपने विकास के लिये आया था और वह कार्य अभी अधूरा है। मनोरमा क्या·······ऊंह !'

और वह फिर डग भरता हुआ शहर की तरफ चल दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीत

श्री देवराज 'दिनेश'

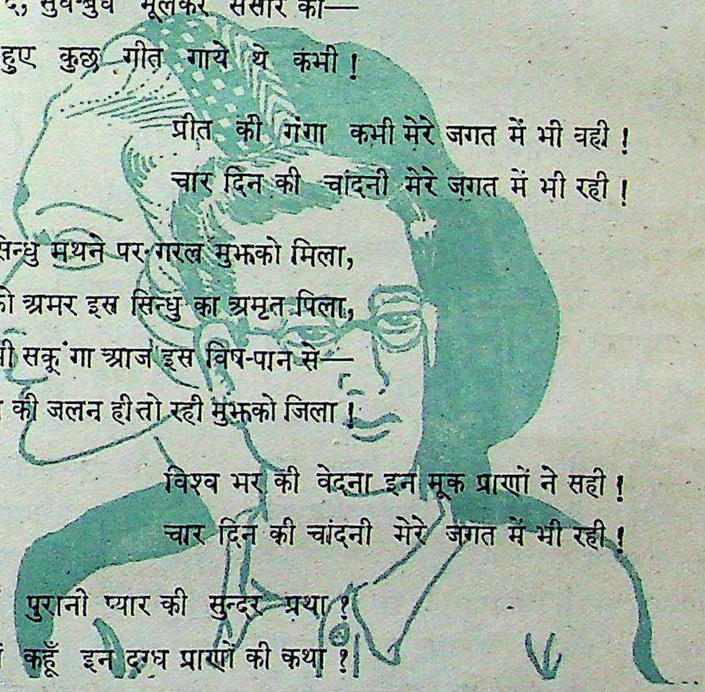

चार दिन की चांदनी मेरे जगत में भी रही !

एक दिन तुम चांद बनकर मुस्कराये थे कभी,
हृदय-सागर में अनूठे ज्वार आये थे कभी,
है मुझे यह याद, सुध-बुध भूलकर संसार की—
प्यार में डूबे हुए कुछ गीत गाये थे कभी !

प्रीत की गंगा कभी मेरे जगत में भी बही !
चार दिन की चांदनी मेरे जगत में भी रही !

प्यार का यह सिन्धु मथने पर गरल मुझको मिला,
कर दिया तुमको अमर इस सिन्धु का अमृत पिला,
मर न पर, मैं भी सकूंगा आज इस विष-पान से—
क्योंकि इस विष की जलन ही तो रही मुझको जिला !

विश्व भर की वेदना इन मूक प्राणों ने सही !
चार दिन की चांदनी मेरे जगत में भी रही !

तोड़ मैं क्यों दूं पुरानी प्यार की सुन्दर प्रथा ?
मैं किसी से क्यों कहूँ इन दग्ध प्राणों की कथा ?
आज जीवन में प्रबल तूफान भी, चिर शान्ति भी,
धर रही है होलिका का रूप अब मेरी व्यथा;

पर न मैंने आज तक अपनी व्यथा जग से कही !
चार दिन की चांदनी मेरे जगत में भी रही !

★

CC-0. In Public Domain: Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

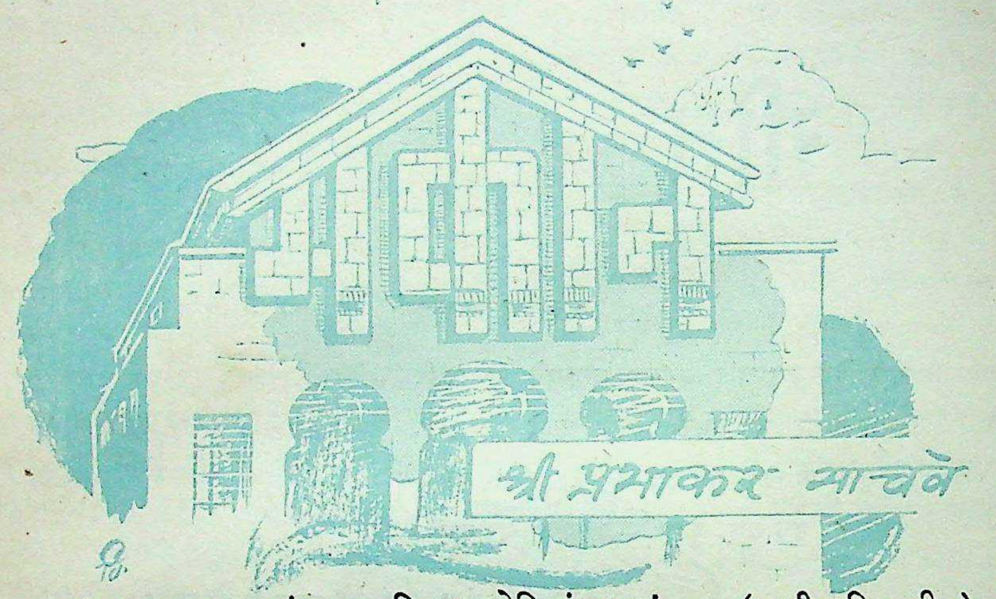

'···मकानम् लामकां बाशद, निशानम् बेनिशां बाशद' (सूफी कवि रूमी)

खरगोश के सींग ? मिल सकते हैं। बालू से तेल ? मिल सकता है। हिन्दी-साप्ताहिकों में प्रेस की अशुद्धियों का अभाव ? मिल सकता है। पूंजीपति जो समाजवादी हो ? मिल सकता है। परन्तु दिल्ली में—या भारत के किसी भी बड़े शहर में मकान ? नहीं मिल सकता। सुनते हैं नेपोलियन के शब्दकोश में 'असम्भव' शब्द नहीं था; परन्तु नेपोलियन यदि १९४७–४८ के भारत में होता, और बेटे को अगर कहीं शरणार्थी बनना पड़ता तो···

इसलिये आजकल मैं शिष्टाचार के रूढ़ परम्परागत प्रश्न नं० २ को व्यक्तिगत अपमान समझने लगा हूं। प्रश्न नं० १ तो आप सब जानते ही हैं — 'आपका नाम ? या इस्मशरीफ़ ?' या 'कूंण गोत हो जी ?' या 'हल्लौ, हू आर यू ?' और इसके बाद झट से टपक पड़ने वाला, परदेसी, अजनबी, नवागंतुक अतिथि को पूंछा जाने वाला वैसा ही पराया पराया सा सवाल — 'आप कहां रहते हैं ?' जी में आता है कि टका-सा जवाब देकर छुट्टी पा लूं कि 'रहते हैं जहन्नुम में, आपको मतलब ?' परन्तु फिर दबी ज़बान से गला साफ़ कर, कहना पड़ता है — [क्योंकि मुमकिन है प्रश्नकर्त्ता भी मकान-मालिक या उपमकान-मालिक (यह नवीन जाति हाल में पैदा हुई है; इनका काम अपने हिस्से के किराये के कमरों में से एक दो या डेढ़-ढाई कमरे 'सब-लेट' करना है।) हो, और कुछ काम बन जाय] — अतः कह देता हूँ — 'जी, क्या पूंछी आपने ? अभी तो अपने एक रिश्तेदार/मुलाकाती के यहां ठहरा हूं, या सराय में हूं — मकान की ही तलाश में हूँ···'

और प्रश्नकर्त्ता बजाय अपनी प्रश्न-मालिका के पुष्प आगे पिरोकर उसे लंबा बनाने या बढ़ाने के, खिड़की से बाहर बाग़ की बहार देखने लगता है; या शून्य दृष्टि से रहस्यवादी की भांति सामने पड़े मूढ़े में गूढ़ अर्थ खोजने में व्यस्त चुप मूढ़ सा बन जाता है; या फिर 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में, जिसे वह तीन बार पढ़ चुका है, चौथी बार कुछ और विज्ञापन रस प्राप्त करने का निरर्थक यत्न करता है। बातचीत का 'तार' यहीं टूट जाता है — और बाद में पता लगता है कि यह तार काटने वाला, कम्बख्त 'सैबैट्यूर,' पंचम-स्तम्भीय, 'मकान' शब्द है ! 'मकान' का नाम लेते ही पुराने दोस्त दुश्मन बन जाते हैं; वातावरण में एक तनाव पैदा हो जाता है; धरती फट जाय, आसमान गिर पड़, ऐसा कुछ लोगों को लगता है। क्योंकि अन्न की कमी पर तो क्षुधितों की पल्टनें (हंगर-मार्च) बन सकती हैं, पत्राभाव में एक वकील अपनी बीवी की साड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहन कर कोर्ट में जा सकता है; परन्तु मकानों का अभाव कैसे और क्या कहें ? मकान—यह व्यक्तिगत सम्पत्ति है, और कोई भी सरकार अथवा शासन-व्यवस्था इस बात का प्रबन्ध नहीं कर सकती कि सबको एक-एक स्नानगृह, रसोईघर, अध्ययनकक्ष और प्रकोष्ठादि प्राप्त हो ! यह कैसे सम्भव है ? वैसे परमपिता परमात्मा ने आकाश की छत बहुत खूबसूरत बनाई है; उसमें सितारों के झाड़-फानूस लटक रहे हैं और ऊंचे-ऊंचे वृक्षों के स्तम्भ हैं। फुटपाथ या नालियों के पास सड़क की पटरी जैसी शाहाना-शय्या और कहां मिलेगी ? उस दिन मैंने सुना तो मैं हैरत में रह गया कि दिल्ली, बम्बई,. कलकत्ता जैसी महानगरियों में हज़ारों इन्सान बे-मकान हैं : एकदम सूफ़ी जलालुद्दीन रूमी के अनुयायी — 'मकान पूछो तो मैं ला-मकां हूं; पता पूछो तो मैं बे-पता हूँ !'

मकान-मालिक को अंग्रेजी में 'लैंड-लार्ड' और मकान-मालकिन (या 'मल्का') को 'लैंड-लेडी' क्यों कहा गया है, यह आपकी समझ में तब आयगा, जब आप दिन भर मकान की खोज में थक गये हों और वही सार्वजनिक मकान — फुटपाथ—का प्रश्रय ले रहे हों; जबकि उन मालिक-महाराज की एक ही शहर में चार कोठियां खाली पड़ी हों (या उनमें चीनी, गेहूं, चावल आदि भरा पड़ा हो !) आदमी की जिन्दगी से अधिक मूल्यवान चीनी-चावल, कपास, अलसी या जूट की जिन्दगी है ! आदमी बिला-मकान फुटपाथ पर पड़ा-पड़ा ठिठुर रहा है और चोरी से छिपाया हुआ अनाज या अन्य माल (कपड़ा आदि) मजे से खुर्राटे भर रहा है ! हमारी सभ्यता इस स्तर पर आ चुकी है ! बंगाल के अकाल में खरीददार ही नहीं बच रहे थे; परन्तु चावल के दाम चढ़ा-चढ़ाकर मुनाफाखोर प्रसन्न हो रहा था। गांधी कण्ट्रोल हटाने की बहुत बात कहते हैं; उनके कहने से अगर सचमुच कण्ट्रोल हट गये तो मुनाफाखोरी बिना-कण्ट्रोल बढ़ जायगी। देश के व्यापारी-वर्ग की नैतिकता के सम्बन्ध में गांधी अभी काफी मुगालते में हैं। वे समझते हैं कि व्यापार भी एक 'कला' है। वह हो न हो, पर आजकल मकान प्राप्त करना

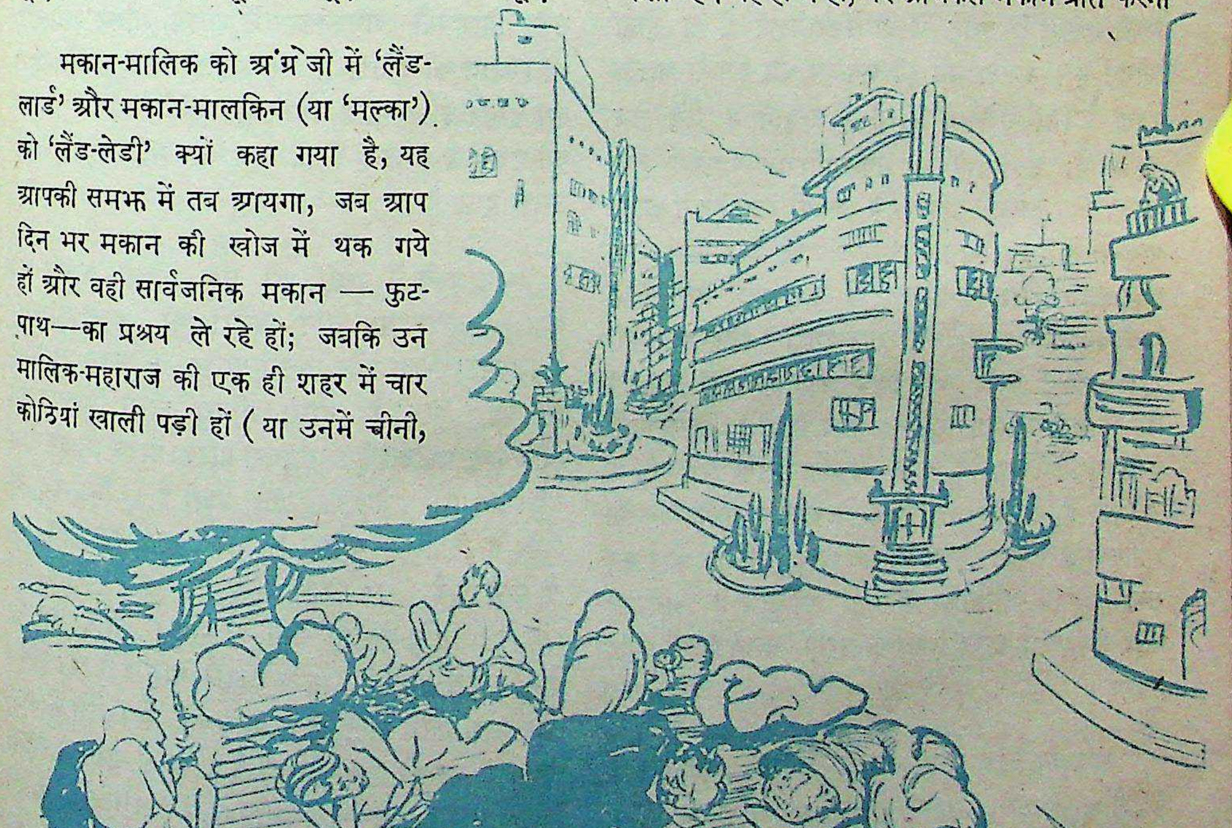

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक 'कला' ही क्या, ललित कला, प्रकला है ! आपको 'पगड़ी' (यानी 'रिश्वत') अलग देनी पड़ती है; दलालों की खुशामद अलग करनी पड़ती है; मकान-मालिक के पचासों आर्डिनेन्स अलग बर्दाश्त करने पड़ते हैं — जैसे 'रात के नौ बजे के बाद बत्ती नहीं जलेगी;' 'जी हां, नहीं जलेगी !' 'नल का पानी नीचे से तीसरी मंजिल पर ले जाना होगा,' 'जी हां, ले जायेंगे !' 'छः कुटुम्बों के फ्लैट में पाखाना एक ही 'कामन' है, उसे काम में लाना होगा'; 'जी हां, काम चला लेंगे !' और बाथरूम ''' इत्यादि इत्यादि । 'नायिका-भेद' की भांति मकानमालिकों के भी अनन्त भेद हमें मालूम करने चाहिएं । परन्तु उन्हें लिखने वाला कोई देव या मतिराम अभी पैदा नहीं हुआ । उसका कारण है : आजकल दुनिया दो वर्गों में बंट गई है — एक वे जिनके निजी मकान हैं; दूसरे वे जो किरायेदार हैं या होना चाहते हैं । इनका वर्ग युद्ध एकदम घोर रूप से चलता रहता है । किरायेदारों के भी ट्रेड-यूनियन जैसे संघ बनते हैं; परन्तु व्यर्थ । मकानाधिपति एकदम नल काटकर या बिजली बन्द करके आपको ऐसा हैरान करना शुरू करते हैं कि 'संघ-वंघ' टूट जाते हैं । फिर एक और बात है; मकानमालिक में कुछ कुछ जर्मनी के डिक्टेटर हिटलर जैसी तानाशाही हिकमत होती है — यानी उसकी बात आप काट ही नहीं सकते । वह जो कुछ कहता है, वह सच है ही । अगर आप कांग्रेसी किरायेदार हैं और मकानमालिक डा० खरे के पक्ष का है, तो वह चाहे गांधी नेहरू पटेल एण्ड कं० को गालियां ही बकता चला जाय, आप प्रतिवाद नहीं कर सकते । आप जानते हैं, प्रतिवाद का अर्थ है 'नोटिस' और मकान के बाहर (सड़कों पर) चलते फिरते नजर आना !

मकानमालिक रूपी संस्था से यह बड़ा फायदा है कि अनुशासन, आज्ञाकारिता, आदेशपालन आदि जो बड़े बड़े नीति-वचन कहे जाते हैं, उन्हें आप अनजाने ही सीख लेते हैं—उन्हें पालने लगते हैं । मैंने यहां तक सुना कि एक बेचारे अविवाहित ने मकान प्राप्ति के इस घोर कार्य में सफलता पाने के लिये मकानमालिक की कुरूपा, भोंडी, चेचक के दागों वाली, लंगड़ी, ऐंचकतानी, अपने से उम्र में बड़ी, अनब्याही लड़की से ब्याह करना मंजूर किया । मकान तो मिला; लड़की का क्या ? रजिस्टर्ड पद्धति से सिविल मैरेज थी; तलाक बाद में दिया जा सकता था । मकान प्राप्त करने के लिये लोग क्या-क्या नहीं करते ? एक किरायेदार ने मकानमालिक का फोटो छापकर उनकी बीवी की तारीफ में एक लेख छापने का वादा किया; दूसरे धर्मवीर ने अपना प्रगतिशील अधार्मिक मत छोड़कर सनातनी मकानमालिक को खुश करने के लिये जनेऊ, चोटी, चन्दन, भस्म आदि धारण करने का अभिवचन दिया; और तीसरे ने तो स्वयं कट्टर 'परहेजगार' होते हुए भी मकानमालिक से दोस्ती गांठने के लिये उसे विलायती मधुशाला से शराब लाकर पिलाई थी । आज की दुनिया में जो कुछ हो जाय, थोड़ा है । एक हमारे दोस्त भुतहे मकान में रहने लगे, यह अभूतपूर्व घटना है । उन्हें किसी भूत ने नहीं छेड़ा, ऐसा उनका दावा है ।

एक बच्चे ने परसों हमें एक पहेली बूझने को कहा—बताओ वह तीन अक्षरों का शब्द कौन-सा है जिसका पहिला और तीसरा अक्षर मिलकर जो चीज बने वह 'एक' है; दूसरा तीसरा अक्षर मिलकर जो चीज बने वह 'दो' है और दूसरा-पहिला अक्षर मिलकर जो चीज बने वह अनेक या 'कई' होती है । मैंने झट से उत्तर दे दिया — मकान । 'मन' नाहीं दस बीस, वह तो एक ही है । ··· कवि कह गये हैं — 'मन को मन से तौलिये, दो मन कभी न होय !' और कान दो हैं ही । वैसे साँप के सुना हजार कान होते हैं, होंगे । और काम करने वालों के लिये कई हैं । वैसे निष्काम व्यक्तियों के लिये एक भी नहीं है । बर्नर्ड शॉ का कहना है कि 'Those who can, do; those who cannot, preach.' वैसे 'काम' के दूसरे अर्थ में, यानी कामदेव के अर्थ में यहां जाने का उचित स्थल-काल नहीं । वह तो मनोज है । सो मकान में मेरा मन लगा हुआ है, सतत मैं लेख लिखने का कर रहा हूँ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कान पड़ोस के मकानमालिक और किरायेदारों की लड़ाई पर लगे हैं। हो गया न मैं पूरा शतावधानी!

मैं कहना यह चाहता था कि मकानों की भी कई किस्में होती हैं। महल और मचान की बात करके मैं आपका ध्यान वर्ग-कलह की ओर नहीं ले जाना चाहता। मैं तो सीधे मध्यमवर्गीय, शहराती मकानों की ही किस्में बतलाता हूँ: चांदनी वाले, बिना चांदनी वाले; जिन मकानों में धूप आ सकती है, जिनमें नहीं आती; प्रकाशित-तमासावृत; हवादार, कुंद; खुले दिल और दिमाग के, संकुचित गली-कूचे वाले; गैरेज वाले, बेगैरेजवाले; ऐसे जिनमें गाय (या भैंस या बकरी आदि) बंध सके, जिनमें न बंध सके; छज्जे वाले, बिना छज्जे के; पक्की नींव के, कच्ची नींव वाले इत्यादि इत्यादि। वैसे एस्किमो लोग चाहे गोल-गोल गुफाओं में रह लें, हमारे यहां तो वेदान्ती सन्यासी, पहुँची हुई आत्माओं को भी बाकायदा फर्श जड़े हुए, पक्के मकान जरूरी होते हैं। उन्हीं में बैठ कर 'दुनिया रैन-बसेरा है' का उपदेश दिया जाता है। अधिकांश मध्यम-वर्गीय मकानहीनों की [इस समास में मकान (उर्दू) और हीन (हिन्दी) का कुछ अजब सा मिलाप हो रहा है। भाषा-सम्बन्धी इस हिंदू-मुस्लिम एकता के लिये द्विराष्ट्रवादी क्षमा करें। बलवती महत्त्वाकांक्षा होती है—बस पेन्शन के वक्त एक बढ़िया सा निजी या 'निजू' मकान हो, छोटा सा बगीचा हो और एक 'कार' हो—और क्या चाहिये? और वैसे 'और और' का ओर न छोर है। 'कार' रखने की यह बेकार लोगों की इच्छा खास बुरी नहीं है; मगर सवाल इतना ही है कि अगर हर एक बाबू अपना एक-एक मकान सब से अलहदा कटा हुआ, बंगलानुमा बनाने लग जाय (और ऐसा मकानदार बाबू बनना कौन नहीं चाहेगा?) और बकोल समाजवादियों के, अगर हर एक किसान-मजूर भी बाबूनुमा बन गया तो इस विराट भारत देश बेचारे का क्या होगा? इस में तो सिर्फ २० लाख मुरब्बा मील (यह अचार मुरब्बे में से कोई नये किस्म का खाद्य न समझें!) जगह है। उसमें से पहाड़-पहाड़ी, तालाब-झील-नदी, जंगल वगैरह जाकर जो रहने लायक जमीन बचेगी उसमें से भी अब बहुत-सा भाग 'पाकिस्तान' में चला गया है—तो उस पांच छः लाख मुरब्बा मील में अगर ये तेंतीस करोड़ देवता अपना-अपना 'एक बंगला बने न्यारा' बनाने लगें तो अनर्थ हो जायगा! जैसे-जैसे लोक-संख्या में वृद्धि हो रही है, वैसे यदि बंगलों की संख्या में भी वृद्धि हो तो बस खेती के लिये जमीन ही न बचेगी। फिर आप बंगला ही खाइये और बंगला ही ओढ़िये। असल में बंगले हैं इसी बलबूते पर कि कई लोग बे-बंगले वाले हैं जो खेतों में मर-खप कर गेहूं कपास आपके लिये पैदा करते हैं। इसलिये बंगले का—अपने-अपने 'निजू' और खास बंगले का ख्वाब गलत है। श्री अ० डांगे, जो हाल ही में रूस से लौटे हैं, अपने एक लेख में लिखते हैं कि मास्को में ३०) महावार किराये पर साढ़े तीन बड़े कमरे, बिजली, गर्म-ठंडा पानी, रेडियो, फर्नीचर के साथ मिल जाते हैं और रूस की सरकार कोशिश करती है कि प्रत्येक नागरिक को वह मिले। वहां पैसा सड़कों को कोलतार की पक्की बना कर व्यापार के आयात-निर्यात को पक्का बनाने पर खर्च नहीं होता, आदमियों को—श्रमिक मात्र को (क्योंकि जो किसी प्रकार का श्रम नहीं करता वह आदमी ही नहीं, ऐसा वहां माना जाता है) रहने लायक मकान मिलें, इस बात पर खर्च होता है। हमारे यहां की 'जनता की सरकार' कही जाने वाली वर्तमान शासन-व्यवस्था इस ओर क्या कदम उठा रही है?

बंगलों के नाम भी अजीब-अजीब होते हैं। 'रैन-बसेरा' नाम खासे पक्के, पुख्ता आलीशान कोठी को कहते हैं; 'स्वप्नलोक' नाम ईंट-चूने कंकरीट के प्रत्यक्ष, कठोर, कठिन ढूह को कहते हैं; 'विश्राम' में बहुत अशांति, हलचल दिखाई देती है, तो 'एकांत' ठीक सरे बाजार चहल पहल से घिरा रहता है; 'लता-कुंज' के आस पास हरियाली का एक पत्ता भी नज़र नहीं आता और 'परमधाम' में कोई परमता तो दूर निकटता भी खास नजर नहीं आती। 'शांतिनिकेतन' में ननद-भौजाइयों की तू तू मैं-मैं होती रहती है और 'भारती निवास' में लक्ष्मी के उपासक रहते हैं जिन्हें काला अक्षर भैंस बराबर हो। अंग्रेजी नामों का फैशन अधिक है। कोई 'मैन्शन' और 'विला';

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और 'शैतू' बनाकर, उतने समय के लिये ही क्यों न हो, लंडन, पैरिस, वियेन्ना आदि में रहने का आनन्द उठा लेते हैं। मेरा ऐसा विश्वास होता जा रहा है कि मकानों के भी, आदमियों की तरह, नाम यों ही, बे समझे-बूझे रखे जाते हैं। मालिक-मकान का वैसा ही नाम बड़ा होता है (बदनाम भी होंगे तो क्या नाम न होगा?) या फिर कहीं नाम नहीं होता—इसलिये मकान पर उसे बड़े-बड़े अक्षरों में लिखकर विज्ञापित किया जाता है। कई बार मकान-मालिक के नाम से नहीं, परन्तु उसके आस-पास की किसी विशेष घटना, चमत्कारिक दृश्य या रचना के कारण मकान का नाम पड़ जाता है; उसे एक तरह का 'निक-नेम' (उपनाम) कह लें। 'अरे, वो दर्जी वाला मकान', या 'पीपल वाला मकान' या 'दहीबड़े वाला मकान'—ऐसे नाम पड़ जाते हैं और वे सुविधाजनक सिद्ध होते हैं। बजाय 'कुंकुम-भुवन' या 'माचिस वाला चाल' के, झट से कह दिया 'इमली के पास वाला मकान!' अशिक्षित, ग्राम-जन इसी प्रकार मकानों को पुकारते हैं।

वास्तु-शास्त्र के जानकार एक हमारे मित्र प्राचीन गृह-निर्माण कला में क्या-क्या सामान आवश्यक था, मकान किस दिशा में, किस मुहूर्त्त पर बनाये जाते थे, उनकी वास्तु-शान्ति ब्राह्मणों को खिला देने से कैसे हो जाती थी—इसके सम्बन्ध में गूढ़, रहस्यमय, संशोधनपूर्ण व्याख्यान दे सकते हैं; ग्रन्थ लिख सकते हैं। आज जान पड़ता है, वे सब बन्धन-नियम टूट गये हैं, जबकि भारतवर्ष की 'इंपीरियल एग्रीकल्चर रिसर्च सोसायटी' का दफ्तर एक बाथरूम में फैल गया है; स्थाना-भाव से विधान-परिषद् के सदस्यगण एक-एक कमरे में पांच-सात ठूंस दिये जाते हैं; 'अखिल भारतीय देशी राज्य लोक-परिषद्' का दफ्तर तो स्थाना-भाव से एक तम्बू में ही था। ऐसे समय कैसा वास्तु-विज्ञान और कैसी मंत्र-शांति? मैंने हाल में एक ऐसे मकान का हाल सुना है जो पूरा लोहे के पत्रों का बना हुआ है और उसे चाहे जब खींच कर खड़ा किया जा सकता है। उसी में ऐसी व्यवस्था है कि कुर्सी, मेज, बिस्तर, मेज, सब कुछ बन जाता है। वह 'पोर्टेबल' है, यानी एक जगह से दूसरी जगह आसानी से ले जाया जा सकता है; एक छोटी-सी सन्दूक में वह समा जाता है। मकान क्या है अलादीन के चिराग से बनने वाली या मयासुर की कला का नमूना है। मुझे ऐसा मकान पसन्द है: चाहे जहां खड़ा कर लिया, चाहे जब तोड़ दिया, फिर चलने लगे। यह पुराने खानाबदोशों और बिसाती-बनजारों के जीवन का परिवर्द्धित संस्करण है। 'टुक हिर्स-हवा की सोच मियां; जब लाद चलेगा बनजारा, क्या बधिया, मुरगी और शुतुर···।' आजकल सिनेमा के गीतों में भी यह मकान-वाद चल पड़ा है। 'घर ले लिया है मैंने तेरे दर के सामने!' 'और बिस्तर बिछा दिया है तेरे घर के सामने' आदि आदि महान काव्यों का रस कभी-कभी थियेटर के भोंपू आपकी अनिच्छा होते हुए भी आप के कानों में उंडेल देंगे। हमारे एक साहित्य-समालोचक मित्र ने आधुनिक हिंदी साहित्य में साहित्यकारों की 'घर-लौट प्रवृत्ति' का विशद वर्णन किया है।

लेख लम्बा हो जायगा, इसलिये अपना 'मकान-पुराण' एक चुटकले से समाप्त करता हूं। एक विज्ञापन हाल में पढ़ने को मिला। "चाहिये: एक तिमंजला मकान, जिसकी तीसरी मंजल खाली हो, बिचली मंजिल धक्-धक् करती हो और जिसकी नींव चलती-फिरती हो।"

★

समस्त परिवार के मनोरंजन
के लिये
मनोरंजन
खरीदिये और पढ़िये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

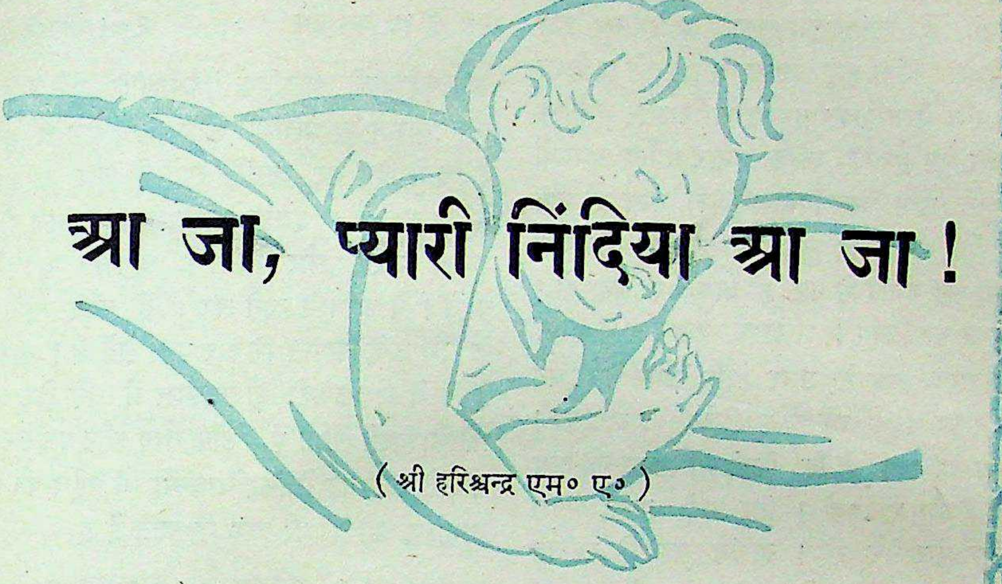

आ जा, प्यारी निंदिया आ जा !

(श्री हरिश्चन्द्र एम० ए०)

वास्तव में नींद अत्यन्त प्यारी वस्तु है। यह भगवान की बहुमूल्य देन है —इतनी बहुमूल्य कि रुपये-पैसों में इसका मूल्य आंका नहीं जा सकता। कौन ऐसा प्राणी होगा जो इसकी सुखद आह्लादमयी स्फूर्तिदायक गोदी में बैठकर दारुणतम वेदनाएं व कष्ट न भूल जाता हो ? लोग कहते हैं कि भगवद्भक्ति से अलौकिक आनन्द मिलता है। क्या गाढ़ निद्रा का उपभोग करने वाला उससे कहीं कम आनन्द प्राप्त करता है ?

प्रश्न उठता है कि विधाता ने हमारे लिये नींद इतनी आकर्षक और प्रिय वस्तु क्यों बनाई है ? सुनिये। वैज्ञानिकों का मत है कि मनुष्य के जीवन का संचालन दो अलग प्रकार के स्नायुमंडलों (Nervous Systems)द्वारा होता है—एक प्रकार का स्नायुमंडल तो दिन में हमारी जाग्रतावस्था में अपना कार्य करता है और दूसरा रात्रि के समय जब हम नींद के कारण अचेतावस्था में होते हैं। पहले को केन्द्रीय स्नायुमण्डल कहते हैं और दूसरे को स्वयं चालितस्नायुमण्डल। दोनों प्रायः अलग-अलग समयों में काम करते हैं। जब एक अपना कार्य बंद कर देता है तो दूसरा आरम्भ कर देता है।

स्वयंचालित-मण्डल के व्यापारों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है—सब से प्रथम, खाये हुए भोजन को पचाना, पचे हुए भोजन का संग्रह करना और इस प्रकार की रासायनिक प्रक्रियाओं को जन्म देना कि जिनसे शरीर का निर्माण हो सके। स्पष्ट है कि इन क्रियाओं से शरीर और मस्तिष्क की वृद्धि और पुष्टि होती है।

स्वयं संचालित मण्डल का दूसरा कार्य हमारे शरीर की मशीनरी के घिसे हुए पुर्जों की मरम्मत करना है। जब हम देखने-सुनने, चलने-फिरने, भागने-दौड़ने का काम करते हैं या किसी और प्रकार का शारीरिक अथवा मानसिक श्रम करते हैं तो हमारे भिन्न भिन्न अङ्ग-प्रत्यङ्गों में शिथिलता आ जाती है। इसकी क्षति-पूर्ति करना अनिवार्य हो जाता है; वरना हमारे शारीरिक अवयव अपना कार्य भली प्रकार से करने के अयोग्य हो जाते हैं।

शरीर के निरर्थक द्रव्य, मलादि को पृथक् करना स्वयंसंचालित मण्डल का तीसरा कार्य है। यह कार्य न हो तो शरीर में हर समय अनेकों प्रकार के रोग अपना सिर उठाते रहें और हमें कभी चैन न लेने दें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह तीनों प्रकार के महत्त्वपूर्ण कार्य्य उस समय पूरे वेग से होते हैं जबकि हम लोग नींद में चूर होते हैं। स्पष्ट है कि निद्रा हमें नाना प्रकार से कृतकृत्य करती है। नींद में न केवल हमारा शरीर और मस्तिष्क ही बढ़ते और पुष्ट होते हैं, बल्कि हमारे सर्वस्व अवयवों की क्षति-पूर्ति तथा मल विमोचन का कार्य भी इसी समय होता है। पर यदि कुछ रोज के लिये निद्रादेवी किसी कारणवश हमारे से रुष्ट हो जाय, तो क्या हो? हमारा बढ़ना रुक जाय। मस्तिष्क जवाब दे दे। हम पागलों की तरह इधर से उधर और उधर से इधर घूमा करें। न दिन को चैन मिले, न रात को। थकावट का यह हाल हो कि किसी भी काम को हाथ लगाने की हिम्मत न पड़े। सिर दर्द, कब्ज, अपच आदि अनेकों रोग घेरे रहें। सारांश यह कि तबीयत यह चाहे कि आत्मघात करके शान्ति-लाभ करें।

वैज्ञानिकों ने कतिपय प्रयोगों के आधार पर यह सम्मति दी है कि उच्चकोटि के जीव बिना खाये-पीये तो मास भर जीवित रह सकते हैं, किन्तु यदि वे एक सप्ताह भी बिना सोये जिन्दा रहना चाहें तो यह उनके लिये असम्भव है।

बालकों के लिये नींद विशेष महत्व रखती है। कारण यह है कि वे वृद्धिशील होते हैं। उनके शरीर और मस्तिष्क को सर्वरूपेण पनपना होता है। अतः अपनी आवश्यकता के अनुसार उन्हें पूर्णतया नींद मिलनी चाहिये, जभी उनका विकास और वृद्धि अबाध रूप से हो सकती है।

डब्ल्यू वी ड्रमंड नामक एक लब्धप्रतिष्ठ मनोवैज्ञानिक ने विभिन्न अवस्थाओं के बच्चों के लिये नींद के घण्टों के निम्नलिखित परिमाण दिये हैं—

आयु	निद्रा-काल
जन्म से १ मास तक	२० से २२ घण्टे तक
१ से ६ मास तक	१६ से १८ घण्टे तक
६ से १२ मास तक	१४ से १६ घण्टे तक
१ से २ वर्ष तक	१२ से १४ घण्टे तक
२ से ६ वर्ष तक	१२ घण्टे
६ से १० वर्ष तक	११ घण्टे
१० से १५ वर्ष तक	९-१० घण्टे

कई बच्चे अत्यधिक क्रियाशील होते हैं। सांसारिक-अनुभव का प्रलोभन उन्हें ऐसा उन्मत्त कर देता है कि वे दिन भर जागते रहते हैं और रात्रि को भी देर से सोते हैं। इसका परिणाम बहुत बुरा होता है। उनका शरीर और मस्तिष्क समुचित रूप से नहीं बढ़ते। वे अस्वस्थ रहने लगते हैं और नाना प्रकार के रोग उन्हें अपना शिकार बना लेते हैं। यही कारण है कि वे बालक जो शैशवकाल में बड़े होनहार और प्रतिभाशाली लगते हैं, ठीक तरह और पूर्णरूप से नींद न लेने की वजह से किशोरावस्था में पहुंच कर बिल्कुल साधारण बालकों की तरह रह जाते हैं।

माता-पिता का कर्त्तव्य स्पष्ट है। उन्हें इस प्रकार का वातावरण बनाना चाहिये कि उनका बालक गहरी और पूरी नींद का आनन्द प्राप्त कर सके। यह सत्य है कि बच्चों को ज़बरदस्ती नहीं सुलाया जा सकता। दूध अथवा दवाई पिलाने में तो कुछ ज़बरदस्ती हो भी सकती है, लेकिन नींद किसी पर कैसे ठोंसी जा सकती है? हां, माता पिता अनुकूल परिस्थितियां पैदा कर सकते हैं जिन से प्रभावित होकर बालक सोने की ओर शीघ्र प्रवृत्त हो जाये। उदाहरण के लिये — शान्त और निस्तब्ध वातावरण जिसमें खड़खड़, शोरगुल का अभाव हो; सोने का कमरा ऐसा जिसमें स्वच्छ और ताज़ा वायु प्रवेश कर सके और जहां तेज प्रकाश न हो; सोने के समय से कम से कम चौथाई घण्टा पूर्व बच्चों को उत्तेजनात्मक खेलों में हिस्सा न लेने देना; मुलायम बिस्तरा, कसी हुई चारपाई और इस प्रकार का ओढ़ना कि बालक स्वतन्त्रता-पूर्वक हिलडुल सके; सुलाते समय मां का इस प्रकार का व्यवहार कि बालक को सुरक्षा की अनुभूति हो (हाथों का कोमल स्पर्श, थपकी इत्यादि उसके अन्दर सुरक्षा की भावना पैदा करते हैं); बालक के दैनिक-कृत्यों के क्रम को नियमित करना।

कई माताएं इस ख्याल से कि सोये हुए बालक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को मक्खियां तंग न करें, उसके मुँह को जाली की बजाए साधारण कपड़े से ढक देती हैं। ऐसा करने से बच्चा स्वतन्त्रता-पूर्वक शुद्ध वायु में सांस नहीं ले सकता। परिणामस्वरूप उसकी नींद उचट जाती है। इसके अतिरिक्त भूख, प्यास, अधिक गर्मी अथवा गीला बिस्तरा होने के कारण भी प्रायः बच्चों की नींद उचट जाया करती है। माता पिता को इस ओर खूब सावधान रहना चाहिये।

माता-पिता की ही गलतियों के कारण कुछेक शयन-सम्बन्धी बुरी आदतें बच्चों में पड़ जाती हैं, जिनसे आगे जाकर बच्चों का जीवन कई अंशों में कष्टपूर्ण बन जाता है और माता पिता को भी अनेकों कष्ट भोगने पड़ते हैं।

पहली गलती है बालक को झूला झुलाकर सुलाना। बाल-विज्ञान-शास्त्री दो कारणों से इस झूले या पालने का विरोध करते हैं। उनका कहना है कि इससे एक ओर तो बच्चे को पूर्णतया आराम नहीं मिलता और दूसरी ओर वह पालने (पिंघूरे) और अपने सोने का परस्पर सम्बन्ध इतना घनिष्ट बना लेता है कि उसके बग़ैर वह सो ही नहीं सकता। अतः उपयुक्त यही है कि बच्चे में आप से आप सोने का स्वभाव पड़ जाय। वह किन्हीं कृत्रिम साधनों का दास न बन पावे।

माताएं दूसरी भूल यह करती हैं कि वे बच्चे को अकेले नहीं सुलातीं। पास सोते रहने से रात्रि में कई बार बच्चे की नींद उखड़ जाती है और वह पूरी तरह से सो नहीं पाता। बार-बार चिल्लाता है जिससे घर के दूसरे लोगों की नींद भी भंग हो जाती है। माता को उसे चुप कराने के लिये सोये हुए ही बार-बार उसे दूध पिलाना पड़ता है जिससे कि बच्चा अजीर्ण का शिकार हो जाता है। इससे दूसरी हानि यह होती है कि बड़ा होकर बालक अकेला सोने से घबराता है। मां को उस समय बड़ी कठिनाई होती है जब उस बालक की छोटी बहिन अथवा भाई का जन्म होता है। अतः आरम्भ से ही बच्चों में कई घण्टे लगातार अकेले सोने का स्वभाव डालना चाहिये। इस प्रकार अन्य लाभों के साथ यह भी लाभ होगा कि बालक में स्वावलम्बन की भावना जागृत हो जायगी।

दण्ड के रूप में बालक को दिन में सोने के लिये विवश करना बड़ी भारी भूल है। इसका बहुत बड़ा दुष्परिणाम निकलता है। बच्चा सोने से घृणा करने लग जाता है और बाद में अनिद्रा-रोग का शिकार हो जाता है।

संक्षेप में, नींद विधाता की एक विलक्षण और अनुपम देन है जिस के द्वारा प्राणियों की मानसिक तथा शारीरिक शक्ति की वृद्धि होती है, विषैले द्रव शरीर और मस्तिष्क से दूर हो जाते हैं और अङ्गों की क्षति पूर्ति होने से बदन में दुबारा स्फूर्ति आती है। अतः गहरी और अवस्था के अनुसार पूरी-पूरी नींद लेना प्रत्येक नर-नारी, विशेषतया बालक के लिये नितान्त आवश्यक है।

★

मनोरंजन

का

वार्षिक मूल्य

५॥) रु०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीते का शिकार

शेर चीते आदि हिंस्र जंतुओं के शिकार का मुझे एक प्रकार से व्यसन-सा है। जब भी मुझे अवकाश मिलता है, मैं किसी मित्र के साथ और कभी-कभी अकेला ही, जंगल में पहुँच जाता हूं।

पहले मुझे केवल हिरन-खरगोश इत्यादि के शिकार का ही शौक था। कुछ वर्ष हुए अनजाने ही एक रात मुझे हिंस्र जंतुओं के शिकार की भी दीक्षा लेनी पड़ गई। उस रात जो घटना घटित हुई, उसकी स्मृति से आज भी मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

मैं अपने मित्र मनमोहन के पास छुट्टी काटने के लिये मेरठ गया था। मेरी ही भांति मनमोहन को भी हिरनादि के शिकार का शौक था। एक दिन हम दोनों ने बन्दूक और राइफल ली और शिकार की खोज में कई मील निकल गये। दुर्भाग्यवश उस दिन कोई भी शिकार हमारे हाथ न लगा। हमें निराश लौटना पसन्द नहीं था। भटकते भटकते रात हो गई और हमें अब वापस लौटने की चिन्ता हुई।

सूर्य अस्त हो चुका था। आकाश में कहीं-कहीं एक दो तारे उदय हो गए थे। चांद ने भी अपना धीमा-धीमा प्रकाश फैलाना प्रारम्भ कर दिया था। यद्यपि आकाश निर्मल था, तथापि चन्द्रमा की ज्योति इतनी मद्धिम थी कि हमें बहुत दूर की वस्तुएं साफ-साफ दिखाई नहीं देती थीं। जंगल में चारों ओर सन्नाटा छाया था। बीच-बीच में कभी-कभी सूखे पत्तों की सरसराहट इस निस्तब्धता को और भी अधिक भयानक बना देती थी। ये हल्की-सी आवाजें भी हमारी ज्ञानेन्द्रियों में सहसा बिजली सी दौड़ा देती थीं। आवाज सुनते ही हम चौकन्ने होकर इधर-उधर देखने लगते थे और किसी अदृश्य खतरे के डर से सर से पांव तक कांप उठते थे।

— एक शिकारी

मैं अपने साथी मनमोहन से बार-बार कह रहा था कि वह वृक्षों के निकट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंस्र जन्तुओं का शिकार करते समय एक विशेष प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है। यह आनन्द दो प्रकार की घटनाओं से प्राप्त होता है — एक तो उन घटनाओं से जिनकी कल्पना पहले से कर ली गई हो और दूसरे उन घटनाओं से जिनकी सम्भावना पहले से न हो। शिकारी के लिये दूसरे प्रकार की घटनायें अधिक आनन्द-प्रद होती हैं।

ही रहे। चलते-चलते हम एक ऐसे स्थान पर पहुँचे, जहां घास छोटी-छोटी थी और पेड़ भी बहुत घने नहीं थे। फिर भी हम इस बात का विशेष रूप से ध्यान रख रहे थे कि जहां तक हो सके हम पेड़ों के निकट से होकर निकलें। हमारा आशय यह था कि यदि सहसा कोई आपत्ति आ खड़ी हो तो हम झट से निकटतम पेड़ पर चढ़कर अपने प्राणों की रक्षा कर सकें।

चलते-चलते हम काफी दूर निकल आए। चन्द्रमा की रोशनी अब तीव्र हो गई थी। विशाल नीले गगन में निर्मल, देदीप्यमान तारे ऐसे लग रहे थे मानो किसी विशाल झील में असंख्य कमल खिले हुए हों। सहसा हमारी बाईं ओर एक खड़का-सा हुआ और एक हिरन बड़े वेग पूर्वक चौकड़ी भरता हुआ एक ओर से दूसरी ओर निकल गया। मनमोहन ने तुरन्त कन्धे पर से राईफल उतारी। परन्तु मैंने उसे रोकते हुए कहा, "भले आदमी, यह क्या करते हो? इस समय एक साधारण हिरन के लिए अपनी राईफल को खाली कर डालना नितान्त मूर्खता होगी। सम्भव है हमें इसकी आवश्यकता पड़ जाए।" मेरी बात मनमोहन की समझ में आ गई और उसने राईफल फिर कन्धे पर रख ली।

मैं चल रहा था, परन्तु साथ ही यह सोचता जा रहा था कि हिरन क्यों इस प्रकार घबराया हुआ-सा भागा चला गया। मुझे हठात् बुंदू नौकर की बात का स्मरण हो आया। जब हम दोपहर के समय हिरन के शिकार के लिये निकले थे तो उसने कहा था कि उस जंगल में कुछ दिनों से एक चीता आया हुआ है। वह कहता था कि उसने स्वयं उसे देखा है। वजीरा की गाय की बछिया भी एक दिन से लुप्त थी। परन्तु फिर मुझे ध्यान आया कि बुन्दू तो बड़ा गप्पी है। कदाचित उसने हमें भयभीत करने के लिए यह बात गढ़ी हो।

मैंने मनमोहन पर दृष्टिपात किया—वह मुझ से चार पांच गज दूर, माथे से पसीना पोंछता हुआ चल रहा था। उससे दो तीन गज़ की दूरी पर कई विशाल-काय पेड़ थे।

सहसा एक भयानक गरज ने सारे जंगल को कंपायमान कर दिया। ऐसा प्रतीत हुआ मानो कोई हिंस्र पशु अपने शिकार पर झपटा हो। परन्तु कहां? किधर? हम कांप उठे। एक क्षण के लिए तो ऐसा प्रतीत हुआ मानो हमारे हृदय की गति रुक गई हो और हम चेतना-शून्य हो गए हों। मैंने सचेत होकर कहा, —"मनमोहन, जल्दी करो; अपने पास वाले पेड़ पर चढ़ जाओ।" हम दोनों बिजली जैसी तेजी के साथ पास ही के दो पेड़ों पर चढ़ गए। दस-पन्द्रह फुट की ऊंचाई पर चढ़ कर हमारे दम में दम आया।

जिधर से हम आये थे उधर संकेत करते हुए मनमोहन बोला,—"वह देखो, अपने पीछे की ओर; चीता एक हिरन को खा रहा है।" मैंने घूमकर देखा। सचमुच चीता हमारे पेड़ों से केवल पचास गज की दूरी पर एक हिरन को फाड़ रहा था। इतनी दूर से भी चीते का आकार स्पष्टतया बहुत बड़ा दिखाई दे रहा था।

मैंने मनमोहन की ओर देखा। उसका चेहरा चांद की भांति पीला पड़ा हुआ था। कदाचित मेरे चेहरे का भी यही हाल होगा। मैंने बहुत धीरे से उससे कहा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह बन्दूक तुम ले लो और अपनी राइफल मुझे दे दो। मैं शायद तुम्हारी अपेक्षा अधिक अच्छा निशाना लगा सकता हूँ। तुमने आज कई कारतूस खराब कर डाले, परन्तु एक भी हिरन नहीं मारा।"

मनमोहन ने उत्तर दिया,—"यह तो ठीक है; परन्तु मैं तुम्हें राइफल दूं कैसे ? तुम उस पेड़ पर, मैं इस पर।" मैंने कहा,—"तुम इस शाखा पर धीरे-धीरे चले आओ जो मेरे वाले पेड़ को छू रही है। मैं भी उधर ही बढ़ता हूँ।" इस तरकीब से हमने बन्दूक और राइफल को बदल लिया। उसके बाद हमने अपने-अपने पेड़ों पर सुरक्षित स्थान ढूंढ लिए और वहां डट कर बैठ गए।

थोड़ी देर के पश्चात् चीता हमारी ओर आने लगा। मनमोहन ने मुझे चेतावनी दी—"देखो भाई ! सम्भल कर बैठ जाओ। जब चीता बिल्कुल पास आ जाए तब निशाना लगाना। ऐसा न हो कि चूक जाओ; राईफल में दो गोलियां भरी हुई हैं और दो तुम्हारे पास हैं।" मैंने उसे आश्वासन दिया और हम दोनों चीते की प्रतीक्षा करने लगे।

चीता प्रतिक्षण निकटतम आता जा रहा था और इधर मेरे औसान छूट रहे थे। मुझे ऐसा लग रहा था मानो पेड़ की शाखा जिस पर मैं बैठा हुआ था, मेरे पांव के नीचे से खिसक रही है। मैं उस समय क्या सोच रहा था ? शायद कुछ भी नहीं। उस समय विचार-शक्ति मेरा साथ छोड़ चुकी थी। मुझे इस प्रकार बैठे हुए शायद कुछ ही क्षण व्यतीत हुए होंगे, परन्तु मुझे ऐसा लगा मानो युग बीत गए हों। मेरा अंग-अंग कांप रहा था। मुझे चिन्ता हो रही थी कि मेरे कांपते हुए हाथों में से कहीं राइफल छूटकर न गिर पड़े। मैंने तो आज तक हिरनों का ही शिकार किया था, परन्तु आज............!

मैं अपने होश बस में लाने का प्रयत्न करता रहा और यह सोचता रहा कि गोलियां किस समय प्रयुक्त करूं। चीता पेड़ से २० गज की दूरी पर आकर रुक गया। उसने अपने चारों ओर दृष्टिपात किया और फिर जोर से गरजा। उफ कितनी भयानक गरज थी वह ! जंगलों में जानवरों ने शोर मचाना शुरू कर दिया। मेरी चीख निकलते-निकलते रह गई। इतने में एक जोर का धमाका हुआ। मनमोहन ने, न जाने क्यों, गोली चला दी ! कितनी बड़ी भूल कर डाली उसने !

उसका वार खाली गया। चीते ने इतनी देर में रुद्र रूप धारण कर लिया, मानो उसने हमें देख लिया हो। वह क्रोध से दुम हिलाता हुआ आगे बढ़ा और दस गज़ की दूरी पर आकर फिर रुक गया। अब वह अगले पंजे उठा-उठा कर गरजने लगा। ऐसा प्रतीत होता था मानो वह पेड़ पर छलांग लगाने का प्रयत्न कर रहा हो। अपने को इस आपत्ति में फंसा हुआ देखकर मैंने पेड़ के तने पर पूरा बल लगाकर अपने पांव जमा लिये और तने पर छाती टिकाकर और एक हाथ उसके नीचे से निकालकर राइफल को सहारा दिया। मैं उस समय शायद पूरे तौर पर होश में नहीं था। मैंने चीते के सिर का निशाना बांधकर गोली चला दी।

गोली छूटने की आवाज़ सारे जंगल में गूंज उठी और साथ ही एक गगन-भेदी भयानक चीख सुनाई दी। चीता मेरे पेड़ से कुछ आगे निकल कर फिर सहसा वापिस मुड़ा और देखते-देखते उसने मनमोहन के पेड़ पर छलांग लगादी। पेड़ के तने को हस्तगत करने का उसने प्रयास किया, परन्तु सफल न हो सका और फिर भूमि पर आ गिरा। उसके गिरते ही मैंने उस पेड़ के उस स्थान पर दृष्टिपात किया जहां मनमोहन बैठा हुआ था। वह अब वहां नहीं था। मैंने तुरन्त नीचे की ओर नजर डाली। वहां जो कुछ मैंने देखा उसको देखकर हठात् मेरी चीख निकल गई।

चीता मनमोहन के ऊपर था और मनमोहन ने उसके मुँह में अपनी बन्दूक अड़ा रक्खी थी। मैंने घबराहट में, बिना देखे भाले, शीघ्रता से दूसरी गोली चला दी। चीते ने एक दर्दभरी गुर्राहट की और तीन चार गज़ परे जा पड़ा। मैंने फिर राइफल भरी। परन्तु इससे पहले कि मैं गोली चलाऊं, चीता मेरे वाले पेड़ के नीचे पहुँच चुका था। वह उस समय अत्यन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकराल प्रतिहिंसा की मूर्ति लग रहा था। मैंने गोली चलाई, परन्तु वार खाली गया। वह फिर मनमोहन की ओर लपका। मैंने चौथी गोली भी दाग़ दी। चीता एक दीर्घ तथा गहरी कराह के साथ मनमोहन के निकट जा गिरा। मेरी गोलियां समाप्त हो गई थीं। मैं अब किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा कुछ क्षणों तक गतिहीन बैठा रहा और मनमोहन के उठने की प्रतीक्षा करता रहा। परन्तु जब काफ़ी देर तक दोनों में से कोई भी नहीं उठा तो मेरे मस्तिष्क में हठात् यह विचार उत्पन्न हुआ कि शायद वे दोनों मर गए हैं। इस विचार के आते ही मेरे शरीर का रोम-रोम कांप उठा और मुझे एकदम पसीना आ गया।

मैंने पेड़ की छोटी-छोटी शाखाएं तोड़कर चीते पर फेंकीं। उनमें से कई उसके शरीर पर लगीं, परन्तु वह फिर भी नहीं हिला। यह देखकर मैं पेड़ से नीचे उतरा और मनमोहन के पास पहुँचा। उसकी सांस चल रही थी। फिर मैंने चीते की ओर देखा। उसकी जिह्वा बाहर निकली हुई थी और वह बिल्कुल निश्चल पड़ा हुआ था। इस अवस्था में भी वह अत्यन्त भयानक दिखाई पड़ रहा था।

मैंने मनमोहन के शरीर को हिलाया और उसका नाम लेकर पुकारा। उसने आंखें खोल दीं। यह देखकर मेरी जान में जान आई। वह केवल घायल हुआ था; उसके घुटने व रान से रुधिर बह रहा था।

"मेरे घुटने में बहुत पीड़ा हो रही है," उसने बड़ी कठिनाई से कहा। मैंने सहारा देकर उसे बिठाया। वह चीते को देखकर कहने लगा, "उफ़! कितना भयानक है! परन्तु यह मरा कैसे? मुझे तो केवल इतना याद है कि यह मेरे ऊपर खड़ा था और मैंने अपनी बन्दूक को दोनों हाथों में पकड़ कर इसके मुंह में अड़ा दिया था। इसके बाद क्या हुआ, मुझे पता नहीं।"

मैंने मुस्कराते हुए कहा,—"लेकिन, भले आदमी, तुम्हें गोली चलाने की क्या सूझी थी?" उसने उत्तर दिया,—"भई, होश तो ठिकाने थे नहीं। मुझे यह खयाल रहा कि मेरे हाथ में राइफल है। इसी भूल में मैं बन्दूक चला बैठा।"

कुछ देर बाद सवेरा हो गया और कुछ ग्रामीणों की सहायता से मैं मनमोहन को और चीते को लेकर मेरठ की ओर चल पड़ा—उसकी रान में काफ़ी गहरा घाव आ गया था।

मेरठ के सिविल सर्जन ने बड़ी योग्यता तथा कोशिश से उसका इलाज किया जिससे वह एक महीने के अन्दर अन्दर ठीक हो गया।

इस घटना के पश्चात् मेरा भय दूर हो गया और मुझे शेर-चीतों के शिकार का एक प्रकार से व्यसन-सा हो गया जो अब तक चल रहा है। अब मैं हिरनादि निरीह जंतुओं के शिकार को कायरता समझता हूं। चीते के शिकार में मुझे विशेष रुचि है। इससे मुझे आनन्द-लाभ तो होता ही है, परन्तु जान को हथेली पर रखकर। कई बार मैं काल का ग्रास बनते-बनते बचा हूं। ऐसी एक रोमांचकारी घटना अब तक मेरे स्मृति पट पर ज्यों की त्यों अंकित है।

कई वर्ष की बात है, एक भयानक चीता घाटी के पशुओं को प्रतिदिन मार ले जाता था। अतः एक पेड़ से मेमना बन्धवा कर मैं स्वयं वृक्ष पर दुबक कर बैठ गया। मेरा अनुभव था कि मेमने का चीत्कार सुनकर चीता अवश्य आवेगा। कोई आधा घण्टा बीता होगा कि पत्थरों के गिरने की ध्वनि सुन कर मैंने जो सामने की ओर देखा तो—उफ़......। चीता बड़े वेग से तीर की नाईं घाटी की ओर बढ़ा चला आ रहा था। उसका सम्पूर्ण शरीर, सिर, धड़ तथा दुम एकदम तनी हुई थी। आंख झपकते में उसने मेमने पर आक्रमण किया और वह बेचारा चक्कर खाता हुआ धड़ाम से नीचे आ रहा। तुरन्त ही मैंने बन्दूक चलाई—सम्भवतः वह बुरी तरह घायल हुआ—परन्तु वह तो यह जा और वह जा। मैं देखता ही रह गया।

शिकार के नियमानुसार हिंस्र जन्तु को घायल करने के पश्चात् लगभग बीस मिनट मुझे रुकना चाहिये था, ताकि वह रुक जाता तथा उसका शरीर अकड़ जाता और वह आगे न दौड़ सकता अथवा निर्जीव होकर वह स्वयं गिर पड़ता। किन्तु मुझे जल्दी थी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि अन्धकार शीघ्रता से चारों ओर फैलता चला जा रहा था और मैं प्रातःकाल पुनः आना नहीं चाहता था। अतः मैं भी पीछे पीछे हो लिया। साथ वाले ग्राम के दो मित्र भी मेरे साथ थे—उनमें से एक को मैंने अपनी बड़ी राइफल दे दी; दूसरे सज्जन के पास एक छोटी-सी लाठी थी। मैं दुनाली बन्दूक को उठाए बढ़ा चला जा रहा था और वे तमाशा देखने के ध्येय से कोई तीस गज पीछे-पीछे आ रहे थे। चीता घाटी की ओर से चढ़ा था, अतः मैं सावधानी से चारों ओर देखता हुआ आगे बढ़ा जा रहा था कि यदि वह कहीं अधमरा पड़ा हो तो मैं उसका काम तमाम ही कर दूं।

लगभग सौ गज चलने के पश्चात अकस्तमात् मेरी दृष्टि पृथ्वी पर गिरे ताजा लहू पर पड़ी। घायल चीता ऊपर ही चढ़ा है, यह तुरन्त मैंने अनुभव कर लिया। अब साफ था कि वह मेरे बहुत समीप है। किन्तु मुझे कुछ नहीं दीख पड़ा। इक्के दुक्के वृक्षों के अतिरिक्त टीला ऊपर से नीचे तक नग्न सा दीखता था। हां, मेरे बिल्कुल सामने मामूली घास का एक छोटा सा झाड़ था। पशुओं ने इसको खा रक्खा था, अतः इसमें एक खरगोश का दुबककर बैठना भी सम्भव न था। बन्दूक को सावधानी से थामे मैं उत्सुकता से चारों ओर शीघ्रता से लोप होते हुए प्रकाश में देखने लगा। शरीर का एक-एक रोम मुझ से कह रहा था, 'हो न हो शत्रु अवश्य ही समीप है!' सहसा गुर्राने की ध्वनि गूंज उठी। अब भी मुझे कुछ दिखाई नहीं दिया। क्षण भर में न जाने कहां से चीते का सिर निकला—मुझसे केवल दो फुट दूर। उसका मुख आधा खुला था। फड़कते होंठों तथा दहकती अंगारा-सी आंखों से यह प्रत्यक्ष था कि वह क्रोध से कितना उत्तेजित है। इतना क्रोध आज तक न तो मैंने देखा है और न ही देखने की इच्छा है। चीता डूबते हुए सूर्य की रोशनी में टीले की घास के पीछे छुपा पड़ा था। गुप्त रहने की विद्या में चीता शत प्रतिशत निपुण होता है। तदनन्तर मेरे जीवन का एक-एक पल मुझे एक-एक वर्ष सा प्रतीत हुआ। आगे जो कुछ हुआ, वह केवल झलकियों के समान था। पहला चित्र था उसका क्रोधित मुख तथा दहकती हुई लाल-लाल आंखें। मैंने दो फायर किये, किन्तु चीता तो बन्दूक की नाली के बहुत समीप था। मैं उसे छुरे से ही मार सकता था। दूसरा चित्र था कि वह बुरी तरह मुझ पर झपटा तथा मैंने केवल एक हाथ से आत्म-रक्षा का प्रयत्न किया। तीसरे चित्र में हम दोनों गुत्थम-गुत्था थे। क्रोध के वेग में मैंने उसे पीछे को धकेलने के लिए उसके मुख पर लात दे मारी। फिर मैंने अनुभव किया कि कोई वस्तु मेरे ऊपर से जा रही है—मानो मैं घोड़े पर सवार खाई पार करता हुआ सहसा धड़ाम से नीचे गिर पड़ा हूं और घोड़ा मेरे ऊपर से होता हुआ खाई फांद रहा हो।

मेरा मन शिथिल हो गया था। मैं अपने प्राणों की रक्षा के लिये लड़ रहा था, मेरा मन यह अनुमान कर रहा था कि मेरी हत्या हो चुकी है। मेरा आगामी तथा अन्तिम चित्र कुछ धुन्धला सा था। मेरा ख्याल है, चीते ने पिछली दोनों टांगों पर खड़े होकर पंजों से मुझ पर प्रहार किया जिसे मैंने निहत्थे रोकने का प्रयत्न किया और मैंने अनुभव किया कि उसने मुझे पंजों से फाड़ डाला।

अन्तिम चित्र था कि चीता लोप हो गया। निश्चय जानिये यह सब कुछ १५ सैकिंड के अन्दर-अन्दर हुआ। मेरे मित्रों ने चीते को घास के पीछे से उचक कर मुझ पर टूटते देखा और फिर उन्हें दीख पड़ा कि मैं घातक चीते से कुश्ती लड़ रहा हूं तथा तीन बार उसे पछाड़ गिराया। वास्तव में वह तीन बार मेरे कन्धों पर झपटा। किन्तु मेरी पहली गोली से उसकी अगली टांग टूट जाने के कारण वह हर बार नीचे गिर गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

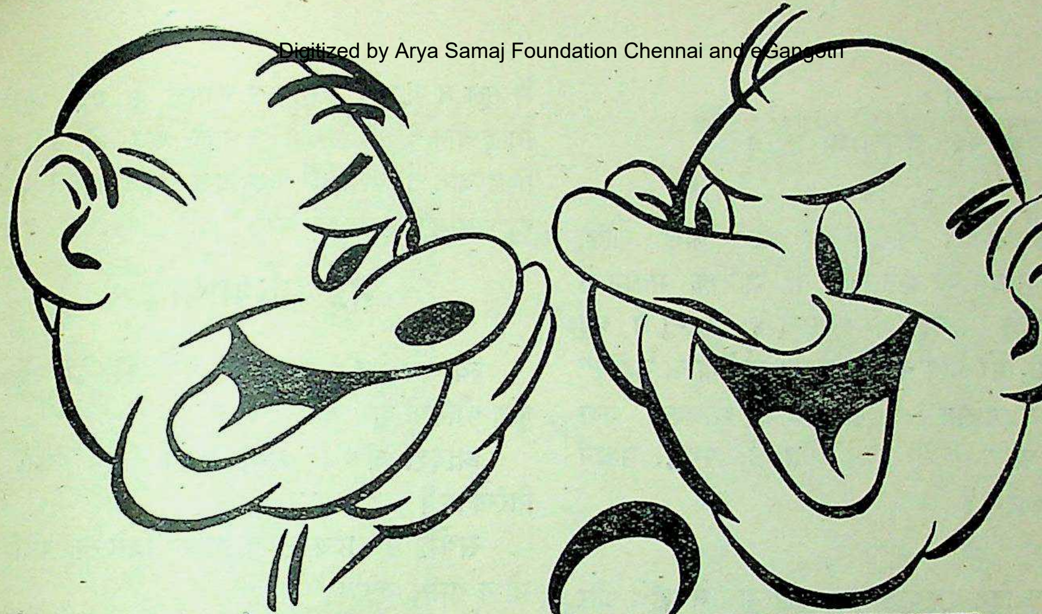

हास परिहास

एक अफसर पागलखाने का निरीक्षण करने गया। एक पागल ने उससे बड़ी शिष्टता से बात-चीत की और कहा—"अब मैं बिल्कुल अच्छा हूँ। कृपया मजिस्ट्रेट से कह कर मुझे रिहा करा दीजिये।"

अफसर को पागल के स्वस्थ होने का विश्वास हो गया। उसने उत्तर दिया—"मैं तुम्हें अवश्य रिहा करा दूंगा।"

पागल—"कृपया भूल न जाइयेगा।"

अफसर—"नहीं, हर्गिज नहीं।"

पागल—"मैं आपका आजीवन आभार मानूंगा।"

अफसर—"तुम अब अच्छे हो, मैं तुम्हें रिहा कर दूंगा।"

यह कह कर वह अफसर आगे बढ़ा। पागल ने पीछे से उसके सिर पर एक धौल जमाई और गाली देकर कहा—"अगर तू भूल गया तो याद रख, जान से मार डालूंगा।"

*   *   *

डाक्टर—श्रीमान् जी, कृपया आप अपने वकील को भी बुला लीजिये अगर आपको अपना वसीयत-नामा वगैरा तैयार कराना हो।

सेठ—तो क्या मेरी हालत इतनी नाजुक है?

डाक्टर—बिल्कुल नहीं; परन्तु मैं चाहता हूँ कि जिस तरह इतनी रात गये बुलाकर आपने मुझे बे-आराम किया है, उसी तरह कोई और भी तो बे-आराम हो!

*   *   *

रात को सोते हुए वह अपनी प्रेयसी का नाम बड़बड़ाता रहा था। सुबह पत्नी ने पूछा—"यह लक्ष्मी कौन है, जिसका नाम तुमने रात को कई बार लिया?"

पति ने उत्तर दिया—"अरे हां, वह तो 'रेस' की उस घोड़ी का नाम है जिस पर मैंने शर्त लगाई है। अगर जीत गया तो तुम्हारे लिये नई साड़ियां और जेवर खरीदूंगा।"

शाम को जब वह घर पहुँचा तो पत्नी ने कहा—"तुम्हारी घोड़ी ने तुम्हें टेलीफोन किया था!"

*   *   *

अवांछित मेहमान—भई, तुमने तो बड़ा अजीब-सा क्लाक लगा रखा है कमरे में!

गृहस्वामी—हां, है तो अजीब ही। हमने इसका नाम 'मेहमान' रखा हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेहमान—क्यों ?

गृहस्वामी—यह चलता जो नहीं !

* * *

एक स्त्री जब किराये पर उठने वाले खाली मकान को देख चुकी तो मालिक मकान से बोली—"मुझे तो यह मकान पसन्द है; परन्तु मैं कह नहीं सकती, मेरे पति को यह पसन्द आयेगा या नहीं।"

मकान मालिक—"देख लीजिये। आजकल नया पति तो आसानी से मिल जाता है; परन्तु मकान मिलना कठिन है !"

* * *

एक दिन एक मुल्ला जी कब्रिस्तान में पहुँचे और एक कब्र पर सिर रख कर लगे धाड़ें मार-मार कर रोने। पास से गुजरते हुए एक राहगीर ने सोचा कि शायद इस बेचारे का जवान बेटा मर गया है। संवेदना प्रकट करने के लिये उसने मुल्ला जी से कहा—"मालूम होता है कि यह कब्र आपके फ़रजन्द (सुपुत्र) की है।"

मुल्ला जी ने उत्तर दिया—"नहीं भाई, यह कब्र मेरी बीवी के पहले शौहर की है। न वह मरता, न मैं मुसीबत में फंसता !"

* * *

कालिज में छुट्टी हो चुकी थी। प्रोफेसर साहब बड़े परेशान-से कमरों में कोई चीज ढूंढ रहे थे। एक मित्र ने परेशानी का कारण पूछा। प्रोफेसर साहब बोले—क्या कहूँ, एक मुसीबत में पड़ गया हूँ।

मित्र—आखिर बात क्या है ?

प्रोफेसर—भई बात यह है कि मेरा रूमाल खो गया है।

मित्र—क्या कोई रेशमी रूमाल था ?

प्रोफेसर—नहीं यार। यों ही सादा-सा मलमल का था।

मित्र—अरे, दो टके के रूमाल के लिये इतना परेशान हो रहे हो ? खूब !

प्रोफेसर—बात यह है कि मेरी बीवी ने आज मुझे एक चीज लाने को कहा था और इस ख्याल से कि मैं भूल न जाऊं, उसने मेरे रूमाल के एक कोने में गिरह बांध दी थी। वही रूमाल अब खो गया है। मिल जाय तो बीवी की फरमाइश याद आये। हैरान हूँ, क्या मुंह लेकर घर जाऊं !

नई परिभाषायें

त्याग—येन केन प्रकारेण धन की ढेरी जमाकर कुछ कौड़ियां दान में दे देना।

आदर्श जीवन—मन, वचन, कर्म तीनों में तिरंगापन।

सर्वोत्तम काव्य—वह कविता जिसे स्वयं रचयिता भी न समझ सके।

खादी—वह मायावी परिधान जिसकी ओट में पाप भी पुण्य हो जाता है।

तपस्या—धर्म या देशभक्ति का नाम लेकर गरीबों का खून चूसना।

अनुभवी व्यक्ति—जिसने जीवन में सब से अधिक भूलें की हों और असफलताओं का मुंह देखा हो।

आलोचक—प्रतिहिंसा अथवा ईर्ष्या की भावना से अभिभूत असफल कवि अथवा लेखक।

प्रोफेसर—वह डिग्रीधारी व्यक्ति जो अपने विद्यार्थियों को जीवन के जटिल प्रश्नों का हल बताता है—उन प्रश्नों का हल जिन से बचने के लिये ही वह प्रोफेसर बना है।

विवाह—दो व्यक्तियों के बीच होने वाले अत्यन्त निजी सम्बन्ध की सार्वजनिक घोषणा।

अखाड़िया कवि

बार-बार कुल्हड़ों से कण्ठ सींच-सींच कर
कवि महाराज जब कविता सुनाते हैं,
मैना, कीर, कोकिल, सिनेमा-तारिकायें तक
आपकी बराबरी न कोई कर पाते हैं;
नासिका के स्वर से कराहते-से बोलते हैं,
रोते तो नहीं हैं, कुछ 'मर्सिया' सा गाते हैं;
प्रेयसी के द्वार से खदेड़े हुए ऐसे जीव
सीधे काव्य-मञ्च से ही आके टकराते हैं।

—श्री हृषीकेश चतुर्वेदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

★

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अद्‌भुत चित्रावलि

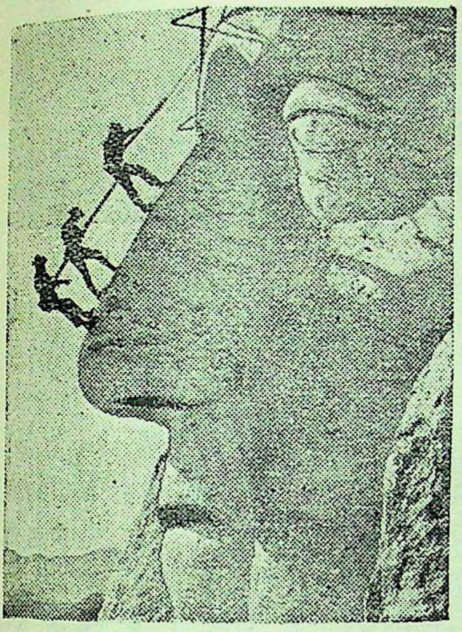

अमरीका का विशालकाय चतुर्मुख राष्ट्रीय स्मारक जिस पर अमरीका के चार प्रमुख प्रधानों के मुख बने हुए हैं। नाक पर तीन मूर्तिकार काम कर रहे हैं।

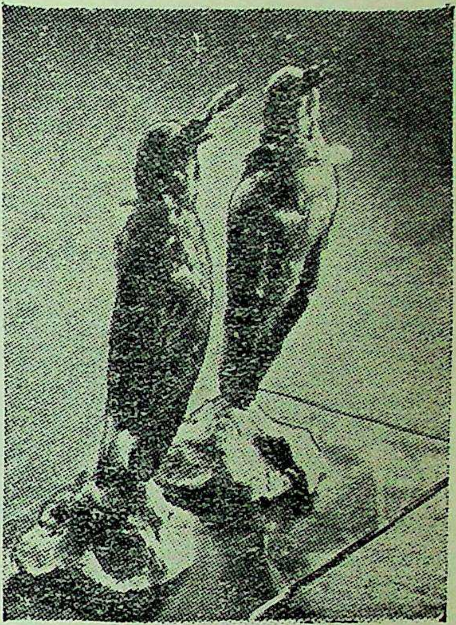

शैटलैण्ड द्वीप के प्राचीन निवासी इस प्रकार के पक्षियों को मार कर और उनके मुंह में रेशम की बत्ती डाल कर दीपक का काम लेते थे।

अमरीका के टैक्सा प्रदेश में चमगादड़ों को ऐसे घरों में बसाया जाता है, क्योंकि वे मच्छरों को खाकर मलेरिये की रोक थाम करती हैं।

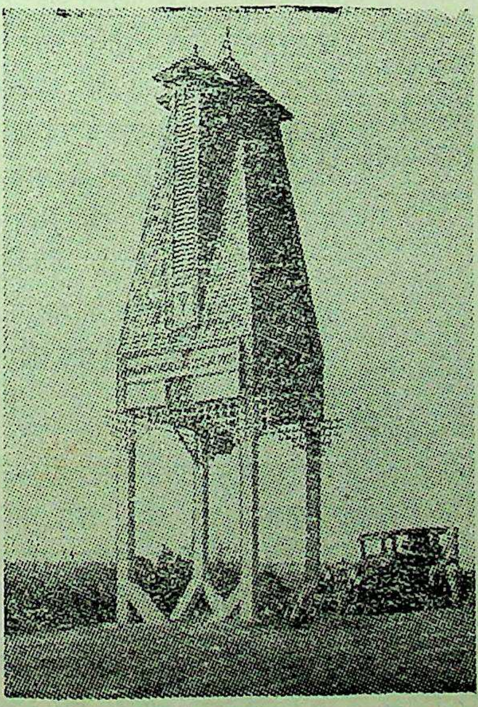

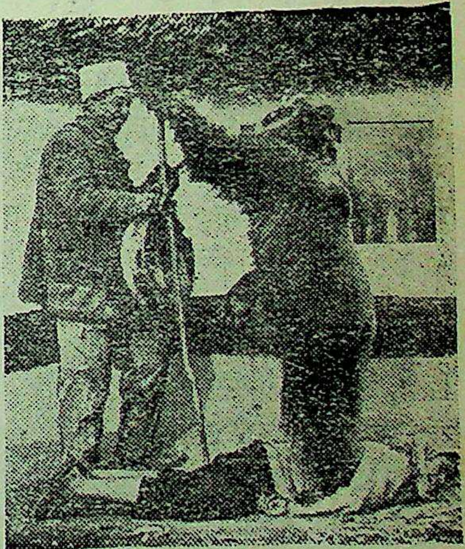

कई लोगों का यह विश्वास है कि इस तरह रीछ को कमर पर चढ़ाने से कमर-दर्द दूर हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रलोक

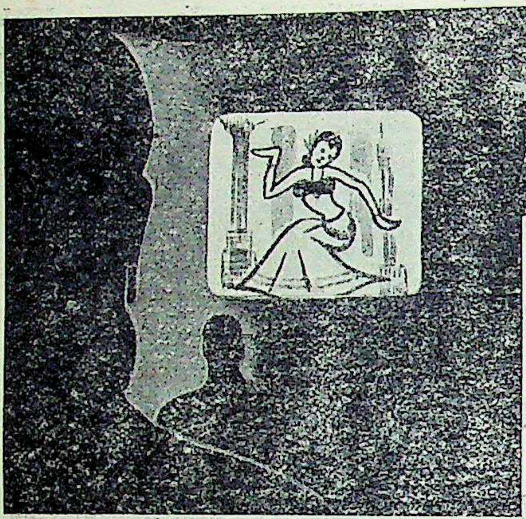

श्री कलाधर

मीरा

निर्माता—चन्द्रप्रभा सिनेटोन
निर्देशक—श्री एल्लिस आर० डंगन
मुख्य कलाकार—श्रीमती एम० एस० शुभलक्ष्मी

प्रेम-दीवानी मीरा के पवित्र भक्तिमय जीवन को लेकर निर्मित होने वाला कदाचित् यह पांचवां भारतीय चित्र है। इससे पहले न्यू थियेटर्स कृत 'राजरानी मीरा,' सागर मूवीटोन कृत 'मीराबाई,' भारत लक्ष्मी कृत 'मतवाली मीरा' और शालीमार पिक्चर्स कृत 'मीराबाई' भारतीय रजतपट पर प्रदर्शित हो चुके हैं। प्रस्तुत चित्र पहले चारों चित्रों से सर्वथा भिन्न है—इस दृष्टि से भिन्न है कि यह पूर्ण रूप से संगीत चित्र है और मीरा की भूमिका में जिसने काम किया है वह श्रीमती सरोजिनी नायडू के शब्दों में स्वयं साक्षात् मीरा है। यहां हमारी मुराद दक्षिण भारत की सुप्रसिद्ध गायिका श्रीमती शुभलक्ष्मी से है जिसके शुद्ध भारतीय व भावपूर्ण संगीत की महात्मा गांधी व पं० जवाहरलाल नेहरू व सरोजिनी नायडू जैसे बड़े-बड़े नेता मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा कर चुके हैं।

यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो यह चित्र केवल शुभलक्ष्मी के संगीत-कौशल को प्रदर्शित करने के लिये ही निर्मित किया गया है। समूचे चित्र में लगभग १६ गाने हैं जिन्हें शुभलक्ष्मी ने क्लासिकल राग-रागनियों में बड़ी उत्कृष्टता और तन्मयता से गाया है। ये गाने थोड़े-थोड़े वक्फे के बाद या यों कहिये कि कथोपकथन के छोटे-छोटे टुकड़ों के बाद आते जाते हैं और चित्र समाप्त हो जाता है। इनमें से अधिकांश गाने मीरा के ही मूल-पद हैं; केवल दो तीन गाने संभवतः श्री नरेन्द्र शर्मा के लिखे हुए हैं और मीरा के मूल पदों के मुकाबले में काफी खटकते हैं, क्योंकि इनकी भाषा में कृत्रिमता साफ झलकती है। पता नहीं, इन गीतों को चित्र में रखने की क्यों आवश्यकता पड़ी। मीरा और राणा द्वारा गाये गये 'डुएट' की उपयुक्तता भी हमारी समझ में नहीं आई। मीरा के अपने भी एक-दो पद ऐसे हैं जो अधिक लोकप्रिय नहीं हैं। इन सब बातों के बावजूद भी यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि चित्र के सब के सब गाने शुभलक्ष्मी ने अश्रुतपूर्व योग्यता से गाये हैं और कई स्थलों पर उसके कण्ठ के माधुर्य और गायकी की भाव-प्रवणता ने संगीत निर्देशक की कमजोरी को भी छुपा दिया है।

चित्र में गानों का ही बाहुल्य होने के कारण कथावस्तु की ओर कम ध्यान दिया गया। सच तो यह है कि मीरा के जीवन सम्बन्धी मूल कहानी बहुत कम और संक्षिप्त ही चित्रित की गई है।

यह चित्र पहले तामिल भाषा में निर्मित हुआ था। इस हिन्दी भाषा के चित्र में सब के सब वही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

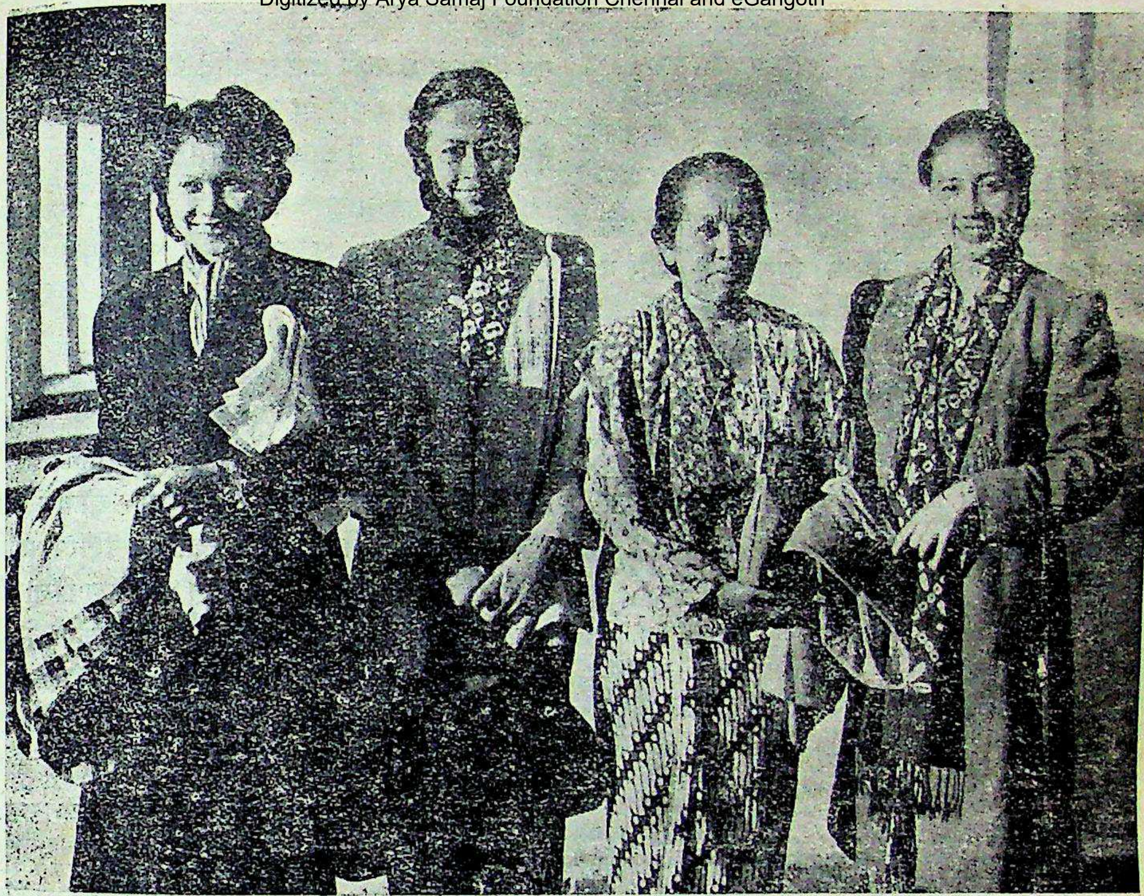

ऊपर—अखिल भारतीय महिला सम्मेलन के मद्रास-अधिवेशन में भाग लेने के लिये आई हुईं चार इन्डोनेशियन प्रतिनिधि महिलायें

दाईं ओर—ग्रामीण नृत्य का एक सुन्दर दृश्य ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ काम की बातें

(कुमारी शैलबाला)

साड़ी व बलाऊज के रंग

आजकल साड़ी व बलाऊज पहनने का ही अधिक रिवाज है। परन्तु कभी-कभी रंगों का चुनाव ठीक न होने के कारण अच्छी व बढ़िया साड़ी भी देखने वाले पर न तो यथोचित प्रभाव डालती है और न शरीर पर अच्छी तरह फबती है। मोटा नियम यह है कि दोनों के रंगों में विशेष प्रकार की विभिन्नता होनी चाहिये। शारीरिक-सौन्दर्य न होने पर भी इससे व्यक्तित्व में आकर्षण का समावेश हो जाता है। साड़ी व बलाऊज के निम्नलिखित रंग आपस में खूब मेल खाते हैं और भले लगते हैं :—

साड़ी	बलाऊज
हरी	जामुनी
नीली	लाल
भूरी	गुलाबी
गहरी लाल	पीला
काली	नारंगी
पीली	श्वेत

कम्बल धोने की विधि

लगभग डेढ़ पाव पानी में दो बड़े चम्मच पिसे हुए सुहागे के डालिये। जब वह अच्छी तरह घुल जाये तो इस पानी को साबुन-घुले गर्म पानी में मिला दीजिये। फिर इसमें कम्बल को डालकर हाथों से खूब मलिये और बाद में उसे दो बार स्वच्छ जल में धोइये और अच्छी तरह निचोड़ कर छाया में सूखने के लिये डाल दीजिये। स्मरण रहे कि कम्बल धूप की अपेक्षा छाया में अच्छा सूखता है।

गुलदस्ते के फूल

प्रायः स्त्रियों को घर में गुलदस्ते रखने का शौक होता है। गुलदस्ते के फूलों को देर तक ताजा रखने के लिये तीन बातों पर अमल करना चाहिये—

१. जिन फूलों का गुलदस्ता बनाना हो, उन्हें प्रातः सूर्य निकलने से पहले डन्ठल समेत पौधे से काटिये।

२. पौधे से काटने पर तुरन्त ही उन्हें ताजे पानी से भरी हुई बाल्टी में डाल दीजिये।

३. फूलदान में फूलों को सजाने से पहले डन्ठल के उस भाग से पत्ते उतार दीजिये जो नीचे पानी में रहेगा।

बच्चों के दांत निकलना

दांतों का निकलना दवा पर नहीं, बच्चों के स्वास्थ्य पर निर्भर है। यदि बच्चा स्वस्थ है तो दांत जल्दी निकलेंगे, नहीं तो देर होगी। उसे ऐसी औषधि या भोजन दें जिसमें चूने का अंश अधिक हो। 'सिरिप हाइपो फास्फेट आफ लाइम' दे सकती हैं। यह दवा किसी भी अंग्रेजी दवाखाने से मिल जायगी। कभी-कभी ऐसा होता है कि मसूड़े सख्त होने से दांत नहीं निकलते। उस दशा में 'चौकिया सोहागा' तवे पर भून कर, फिर बारीक पीस कर दिन में कई बार शहद के साथ थोड़ा-थोड़ा बच्चे के मसूड़ों पर रगड़ें। इससे मसूड़े मुलायम होंगे और दांत निकल आवेंगे। यह दवा हाजमा भी दुरुस्त करती है, अतएव इसके बच्चे के पेट में जाने से उसे कोई हानि नहीं होती।

सुन्दर बाल

केशों को भली-भांति स्वच्छ रखने के लिये उन्हें सप्ताह में एक बार तो अवश्य ही धोना चाहिए। अधिकांश स्त्रियां आजकल साबुन से सिर धोती हैं। यही कारण है कि जहां साबुन का अधिक चलन है, वहां बालों की सुन्दरता लगभग लुप्त-सी हो गई है। मुख पर लगाने वाला कोई भी साबुन बालों के लिए कभी भी उपकारक सिद्ध नहीं हो सकता। बाल धोने के लिये शिकाकाई, बेसन, आंवला तथा दही सर्वोत्तम हैं। इन से धोने से बाल स्वच्छ तथा सुन्दर रहते हैं।

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[सन्ध्या का समय। बैठने का कमरा जिसका एक दरवाजा रसोई में खुलता है। एक सोफे के सामने छोटी-सी मेज रखी है। सोफे पर गृहस्वामी के एक मित्र बैठे अनमने-से पुस्तक पढ़ रहे हैं—उनकी दृष्टि बार-बार रसोई की ओर उठ जाती है जहां गरमा-गरम पकौड़ी बन रही हैं। एकाएक रसोई से बच्चे के रोने की आवाज आती है और फिर पति-पत्नी के झगड़ने का अस्पष्ट-सा स्वर। कुछ देर बाद गृहस्वामी बच्चे को गोद में उठाये कमरे में प्रवेश करते हैं]

लेखक श्री कृष्णचन्द्र विद्यालङ्कार

गृहस्वामी—(अपने मित्र को जैसे सुनाते हुए, कुछ झेंपे हुए-से) अजीब आफत है! दिन भर आफिस में काम करो, थके मांदे घर आओ और यहां भी फुरसत नहीं—आराम नहीं। बच्चे को उठाओ, तब जाकर दो टुकड़े रोटी खाने को मिलें।

मित्र—(हंसकर) तो क्या विवाह करते समय आपने यह नहीं सोचा था? तब तो भाभी का सुन्दर मुखड़ा देखकर रीझ गये और अब ···जब ऊखल में सिर दिया फिर·····।

(दोनों की बात-चीत सुनकर रसोई से गृहिणी भी आंखें पोंछती हुई कमरे में आ जाती है)

गृहस्वामी—मैं तो विवाह करना नहीं चाहता था, यही मेरे गले आ पड़ी!

गृहिणी—हां, हां, मैं गले आ पड़ी। क्या तुम्हीं लम्बी-चौड़ी फौज लेकर मुझे लिवाने मेरे घर नहीं आये थे? विवाह के लिये तुम—आप अधिक उत्सुक थे या मैं?

गृहस्वामी—(हंसकर) हां भई, मैं ही तुम्हें लेने गया था; लेकिन यह तो मालूम न था कि तुम यह सब बला भी (बच्चे की ओर संकेत करते हुए) मेरे सिर मढ़ दोगी—यह रोना-धोना, पेशाब·····

मित्र—(बीच में पड़ते हुए) वाह लाला, 'मीठा-मीठा गप्प, कड़वा-कड़वा थू' वाली बात दीखती है! विवाह केवल हंसी खेल नहीं है, इसके साथ इसकी जिम्मेदारियां भी तो हैं!

गृहिणी—भाई साहब, आप क्या पूछते हैं—मैं रोटी पकाऊं या बच्चे को चुप कराऊं! आखिर इसे कुएं में तो फैंका नहीं जा सकता। जरा इन से कह दूं कि बच्चे को उठा लो तो बस·····आप तो देख ही रहे हैं। आखिर बताइये कि मैं अकेली जान क्या-क्या करूं?

गृहस्वामी—(उत्तेजित होकर) लेकिन मैं जो दिन भर का थका-मांदा पांच मील का सफर करके घर आया हूँ, आराम करने को दो मिनट भी, न मिलें? आखिर, (आवाज को तनिक नरम करते हुए) आखिर, कभी आराम करने का मौका भी दोगी, या दिन भर चक्की में पिसता ही रहूँ?

मित्र—हां, बात तो ठीक है, घर का काम गृहिणी का और बाहर का काम पति का। पहले भी तो·······

गृहिणी—(तुनक कर) बच्चे की जिम्मेदारी क्या सिर्फ मेरी है? क्या बच्चा इनका कुछ नहीं लगता?

गृहस्वामी—हां हां, बच्चा मेरा भी कुछ लगता है। इसके लिये कुछ लाना हो, कपड़ा सिलाना हो, खिलौने लाने हों, डाक्टर को दिखाना हो — ये सब मेरे कार्य हैं। लेकिन जब बच्चा रो रहा हो, पेशाब टट्टी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर रहा हो, मिट्टी से मुंह सना हो, तब तुम्हारी जिम्मेदारी है—तुम्हारी। क्यों गोपाल, ठीक कह रहा हूँ न ?

गृहिणी—मैं इससे इन्कार कब करती हूँ; लेकिन सवाल तो यह है कि जब आपको एक ओर भूख लगी हो, आपके लिये चाय नाश्ते या रोटी की तैयारी करनी हो और बच्चा रोता हो, तब मैं क्या करूं ? बच्चे को चुप कराने लगूं तो रोटी आप पकायेंगे क्या ? मेरे हाथ तो केवल दो हैं—अष्टभुजा देवी तो न जाने कब हुई थी !

गृहस्वामी—नौकर रख लो न, कई दफा कह चुका हूं। बच्चे को वह संभाल लिया करेगा।

मित्र—न भाई, कभी ऐसी भूल न करना। नौकर के हाथ बालक बिगड़ जाता है।

गृहस्वामी—तब बच्चे को कौन संभाले ?

मित्र—तुम, और कौन ? तुम दफ्तर से थके हुए आते हो, यह मैं मानता हूँ; लेकिन बच्चे की मां भी तो दिन भर काम करती रहती है, क्या तुम यह नहीं जानते। बच्चा तो तुम दोनों का है। पहले का समय और था। लड़का विवाह करते ही अपने माता पिता से अलग नहीं होता था—संयुक्त परिवार की प्रथा थी न। घर भरा पूरा रहता था। मां होती थी, बहनें, भाभियां आदि सब रहती थीं—एक रसोई बनाती थी तो दूसरी बच्चों को संभालती थी; परन्तु अब परिस्थिति बदल गई है। इच्छा अथवा अनिच्छा से पति-पत्नी को अपना घर अकेले ही बसाना पड़ता है। इसमें लड़की को तो बहुत ही असुविधायें रहती हैं, इसलिये पति को घर के काम-काज में उसका हाथ बंटाना ही चाहिये और······

(गृहिणी खिल उठती है)

गृहस्वामी—अरे, तुम तो लेक्चर देने लगे, गोपाल ! जान पड़ता है चाय और पकौड़ी के लोभ में भाभी की तरफ़दारी कर रहे हो !

गृहिणी—ओः, बातों-बातों में मैं तो पकौड़ी लाना भूल ही गई। आप दोनों बैठिये, मैं अभी पकौड़ी और चाय लाई। (पति से) देखिये न, मुन्ना कितना खुश है आपकी गोद में !

(मुस्कराती हुई रसोई की ओर जाती है)

सौन्दर्य-साधना

बांहें यदि काली व कुरूप हों तो उन पर पके हुए टमाटर को काट कर मलिये और हथेलियों से उसके रस की अच्छी तरह मालिश करिये। कुछ देर तक रस को अपने आप सूखने दीजिये; फिर स्वच्छ जल में थोड़ा-सा सुहागा मिलाकर बांहों को धो डालिये और तौलिये से अच्छी तरह पोंछ कर उन पर 'कोल्ड-क्रीम', ग्लैसरीन या गुलाब-जल मल दीजिये। प्रतिदिन दो या तीन बार ऐसा करिये; बांहें गोरी व सुन्दर हो जायेंगी।

नाखून यदि बेरंगे अथवा धब्बेदार हों तो लगभग आध सेर गर्म पानी में एक चमच नीबू का रस घोल कर उसमें उन्हें भिगोते रहिये; रंग निखर आयेगा। गुनगुने पानी या मीठे तेल में नाखूनों को भिगोते रहने से वे मुलायम हो जाते हैं।

शरीर के जिस स्थान से गन्दा व बदबूदार पसीना छूटता हो उसे गर्म पानी से धोकर उस पर Eau-de-Cologne लगाइये और फिर कपड़े पहनिये।

मुंहासे दूर करने के लिये मुंह पर रोज नींबू की फांक मलिये और रस को कुछ घण्टों तक लगा रहने दीजिये; फिर उसे स्वच्छ जल और साबुन से धो डालिये।

हाथों को सुन्दर बनाये रखने के लिये उन्हें रोज अच्छे साबुन से धोइये, तौलिये से खूब जोर से पोंछिये, दिन में कम से कम दो बार नाखूनों को ब्रुश से साफ़ करिये। यदि हो सके तो दिन में एक बार उन पर कोई-सा "हैण्ड-लोशन" मलिये।

पांवों की ओर से भी उदासीन नहीं रहना चाहिये। रात को सोने से पहले अच्छी तरह मालिश करके इन्हें धोना चाहिये। ब्रुश से नाखून साफ रखिये और एड़ी को क्रीम अथवा जैतून का तेल मल कर मुलायम रखिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाल मनोरंजन

गीत *

शशिकांत

दिन जल्दी जल्दी ढलता है।

सारा दिन खेल गंवाया रे!
टुक घर का ध्यान न आया रे!
अब शाम लगी जब होने को मुन्नू भी घर को चलता है।
दिन जल्दी जल्दी ढलता है।

माता पथ ताक रही होगी,
खिड़की से झांक रही होगी,
यह ध्यान पांव में मुन्नू के भरता कितनी चंचलता है।
दिन जल्दी जल्दी ढलता है।

कुर्ता पहना जो आज नया,
लड़ते-लड़ते फट हाय, गया!
बापू के सोंटे के डर से मुन्नू का हृदय दहलता है!
दिन जल्दी जल्दी ढलता है!

★

* श्री 'बच्चन' के एक प्रसिद्ध गीत की पैरोडी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उलझा ऊन

श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिनहा

अरे, अरे, तुम म्याऊं म्याऊं करती हो पूसी, रूबी !
ऊन हमारा एक पहेली-सा उलझाया, यह खूबी ?
देखो तो यह ऊन पुराना, तुम लोगों ने गजब किया,
उलझा कर यह एक तमाशा-सा तुमने तो अजब किया !
ऐसे में तो कोई महिला नहीं बैठ सकती पल भर,
दूर रहा फिर शान्ति-चैन से बुनना बढ़िया-सा स्वेटर !
अम्मा जब देखेंगी तो शर्तिया कहेंगी, "सच है यह—
जो बिल्ली के बच्चे पाले उसको फल मिलता है यह !"

चुहिया देवी का काम

इतना काम श्रीमती चुहिया देवी को घर में रहता—
बच्चों को नहलाना, "खाना दो जल्दी," कोई कहता;
कहीं सफाई, कहीं पढ़ाई, कहीं सहेली-घर जाना,
इसी तरह से तनता उनकी बड़ी गृहस्थी का ताना;
बिस्तर बिछा सुलाना सब को, तनिक नहीं फुर्सत पातीं,
जरा देर को मिला समय तो स्वेटर बुनने लग जातीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रमेश ने उस रात क्या देखा ?

('भैया')

रमेश के घर में कुंआ खुद रहा था। रमेश की खुशी का कोई ठिकाना न था। स्कूल से वापस आकर वह घण्टों बैठा मजूरों को कुंआ खोदते हुए देखता रहता और रोज उनसे पूछता कि पानी कब निकलेगा। सूखी धरती से पानी निकलता हुआ देखने का उसे कौतूहल भी था और चाव भी।

कुएं की खुदाई में रमेश को जो इतनी दिलचस्पी थी, उसका एक और कारण भी था। दादी और नानी से उसने सुन रखा था कि धरती के नीचे एक और लोक भी है—पाताल लोक। उसका ख्याल था कि कुंए में पाताल लोक का अवश्य ही कोई न कोई चिन्ह मिलेगा।

एक सांझ को जब मजूर जाने लगे तो रमेश ने पूछा—"क्यों मातादीन, पानी कब निकलेगा ?"

मातादीन बोला—"बाबूजी, आज सूखी पर्त लगभग खत्म हो गई है। आशा है, कल पानी निकल आयेगा।"

रमेश बहुत प्रसन्न हुआ। कल वह कुंए में पानी देखेगा और शायद पाताल-लोक का कोई चिन्ह भी !

रात के लगभग नौ बजे थे। रमेश अपने मित्र मोहन से कोई पुस्तक लेकर घर आया। जब वह कुंए के पास से गुजर रहा था तो उसे लगा जैसे कुंए के अन्दर कोई हलचल-सी हो। तो क्या पानी अपने आप फूट रहा है ? नहीं, कुछ और बात है। उसके पांव वहीं के वहीं रुक गये। उसके हाथ में टार्च थी जिसकी रोशनी उसने तुरन्त कुंए के अन्दर डाली।

रमेश का मन आश्चर्य और भय से भर गया जब उसने देखा कि कुंए के अन्दर अनगिनत छोटी-छोटी चीजें इधर-उधर घूम रही हैं। परन्तु ये चीजें हैं क्या ? चूहे ? नहीं, चूहे नहीं। चूहे भला दो टांगों पर कब चलते हैं। रमेश ने जरा और ध्यान से देखा। अरे, इनका आकार-प्रकार तो बिल्कुल मनुष्यों जैसा है—जैसा नहीं—यह तो बिल्कुल ही मनुष्य हैं। परन्तु इन का कद है केवल बालिश्त-बालिश्त भर का। तो क्या ये 'बालिश्तिये' हैं ?

'बालिश्तियों' का विचार आते ही रमेश को उस यात्री का स्मरण हो आया जो बालिश्तियों के देश में जा पहुँचा था और उसके साथ अद्भुत घटनायें घटी थीं। रमेश ने जब उस यात्री का हाल एक पुस्तक में

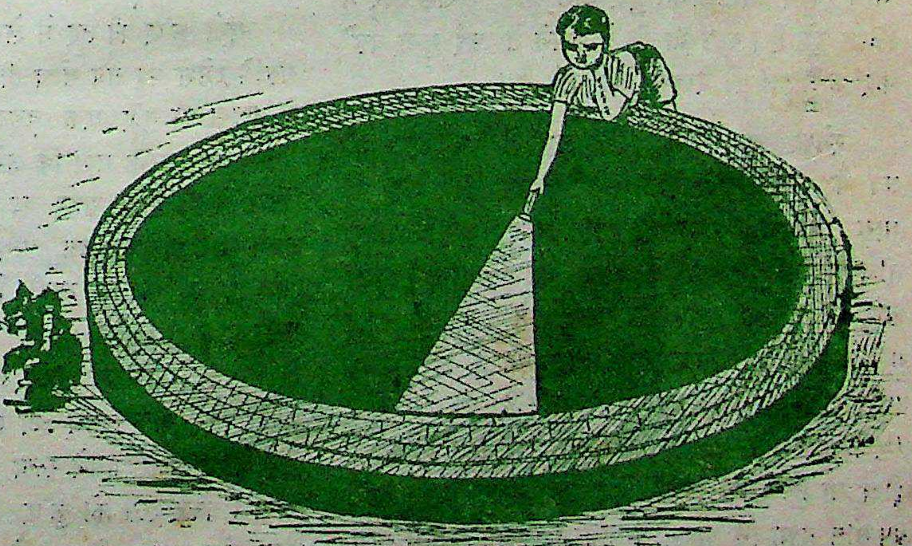

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ा था तो वह मारे हंसी के लोट-पोट हो गया था — एक ओर साढ़े छः फुट का आदमी और दूसरी ओर बालिश्त-बालिश्त भर के सहस्रों प्राणी! उन बालिश्तियों ने उस साढ़े छः फुट के आदमी पर नन्ही-नन्ही कमानों से तीर चलाये थे और फिर उसे गिरफ्तार कर लिया था।

कुंए के किनारे खड़े-खड़े रमेश यह सब बातें सोच गया। नीचे कुंए में सचमुच ही बालिश्तिये थे। 'टार्च' के प्रकाश में उनके शीशे की गोलियों जितने छोटे-छोटे चेहरे साफ़ दिखाई दे रहे थे। प्रकाश पड़ने से लगता था कि वे घबरा गये हैं और उनमें भगदड़ मच गई है।

रमेश के मन में एकाएक यह विचार उठा—क्यों न मैं कुंए में नीचे उतर कर इन बालिश्तियों को अच्छी तरह देखूं और हो सके तो इनका देश भी देख आऊं। मनमें यह विचार उठते ही उसने एक रस्सा लिया। उसका एक सिरा तो ऊपर एक खूंटे से बांध दिया और दूसरा सिरा नीचे कुंए में लटका दिया। रमेश के माता-पिता सो चुके थे। उसने निडर होकर हाथ में टार्च लिये रस्से के सहारे नीचे कुंए में उतरना शुरू किया। लेकिन जब वह उतर रहा था तो उसने देखा कि सभी बालिश्तिये नीचे कुएं में बने हुए एक सुराख में से होकर भाग रहे हैं और भागते हुए धीमे और बारीक स्वर में चिल्ला रहे हैं। स्पष्ट था कि वे अपने से कई गुना बड़े कद के प्राणी को देखकर डर गये हैं।

रमेश जब कुंए की तह में पहुँचा तो सब के सब बालिश्तिये उस सुराख की राह से भाग चुके थे। रमेश को बड़ी निराशा हुई। उसने नीचे लेटकर सुराख में टार्च की रोशनी डाली और देखा कि दूर तक नन्हे-मुन्ने मकानों और गली-बाजारों का एक शहर-सा बसा हुआ है और उसमें बालिश्तियों की बहुत बड़ी भीड़ जमा है जो छोटे-छोटे तीर-कमानों और तलवारों से लैस है। सुराख इतना छोटा था कि रमेश उसमें घुस नहीं सकता था। उसे अफसोस हुआ कि वह नीचे उतरते समय अपने साथ फावड़ा क्यों नहीं ले आया।

सूखे कुंए की तह में लेटा हुआ, सुराख में दृष्टि गड़ाये रमेश यह सब सोच ही रहा था कि दूसरी ओर से सुराख का मुंह एक बहुत बड़े पत्थर से बन्द हो गया। वह समझ गया कि उसे रोकने के लिये बालिश्तियों ने ही अपने शहर का रास्ता बन्द कर लिया है। उसने हाथ डालकर उस पत्थर को छुआ तो मालूम हुआ कि वह काफी भारी है और बड़ी दृढ़ता से अड़ा हुआ है।

रमेश निराश-सा होकर उठ खड़ा हुआ। कुंए के अन्दर चारों ओर उसने टार्च की रौशनी डाली; वहां कुछ भी न था। उसने रस्सा पकड़ा और ऊपर चढ़ आया। फिर रस्से को कुंए में से निकाल कर उसने एक ओर डाल दिया और आप अपने कमरे में आ गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने कमरे में पहुंच कर रमेश ने बिजली जलाई। सोने से पहले जब वह कपड़े उतारने लगा तो उसने अनुभव किया कि कोई चीज उसकी गर्दन पर सरक रही हैं। उसने जल्दी से उस चीज को पकड़ लिया। उसके आश्चर्य का कोई ठिकाना न था जब उसने देखा कि उसके हाथ में बालिश्त भर का एक आदमी है जो उसे छोटी-छोटी भयभीत आंखों से देख रहा है। रमेश को लगा जैसे उसके हाथ में छोटी-सी जीती-जागती गुड़िया हो। परन्तु, यह बालिश्तिया आया कहां से ? रमेश समझ गया कि जब कुंए में से और सब भाग गये थे तो यह पीछे रह गया होगा और रमेश के शरीर पर चढ़ कर उसके साथ ही बाहर आ गया।

वह बालिश्तिया रमेश की हथेली पर खड़ा हो गया और फिर सामने पानी से भरे एक जग की ओर देखने लगा। रमेश समझ गया कि यह पानी में रहना चाहता है। रमेश ने उसे जग में डाल दिया। रमेश को अब नींद आ गई थी। अतः पानी के जग को मेज पर रखकर वह सो गया।

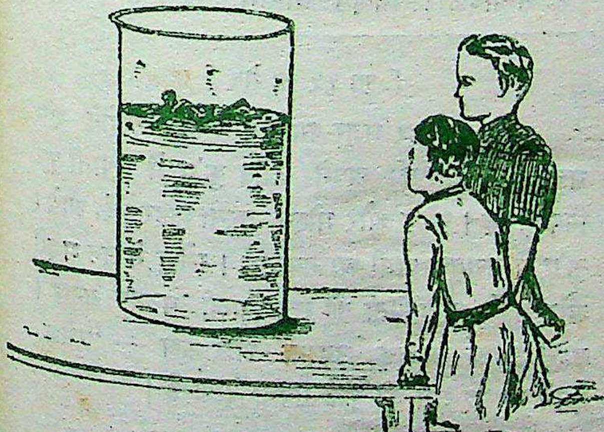

दूसरे दिन रमेश के जागने से पहले ही उसका मित्र मोहन उसके कमरे में पहुँच गया था और पानी के जग में पड़े बालिश्तिये को देखकर हैरान हो रहा था। रमेश ने उठकर रात की सारी घटना उसे सुनाई।

(शेष पृष्ठ ५६ पर)

बाल-पहेली नं० ३

१७ जनवरी १९४८ तक सही उत्तर आने पर 'मनोरंजन' एक वर्ष के लिये मुफ्त

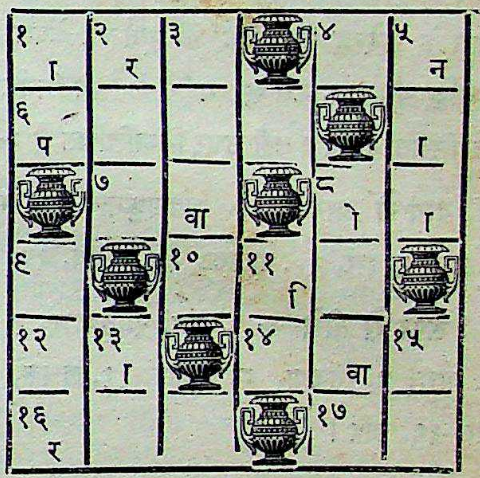

बायें से दायें

१. इस शब्द के पहले यदि 'महा' लगा दिया जाये तो एक धर्म-ग्रन्थ का नाम बन जाता है। ४. रुपया बजाने से जो शब्द होता है। ६. एक ऐसी वस्तु के नाम के उलट-पुलट अक्षर जो पूर्वी बंगाल में अधिक पाई जाती है। ७. मनुष्य को कभी-कभी इसकी भी आवश्यकता पड़ती है। ८. नया। १०. बिना। १२. एक रङ्ग जो आंखों को भला लगता है। १४. इसे उलटने से एक ऐसी वस्तु का नाम बन जाता है जिसकी विद्यार्थियों को आवश्यकता पड़ती है। १६. भेद की बात। १७. इसे दोहराने से हरे-भरे का अर्थ निकलता है।

ऊपर से नीचे

१. इसमें भी शक्ति होती है। २. मोर्चे पर लड़ने वाली सेनाओं को यह भेजी जाती है। ३. इसमें यदि 'ट' के स्थान पर 'ल' कर दिया जाये तो एक हथियार का नाम बन जाता है। ५. प्राचीन काल के युद्धों में इसका खूब प्रयोग होता था। ८. गुण्डे इससे डरते हैं। ९. गांव के लोगों का इससे बहुत हित होता है। ११. (किसी के) लाभ के हेतु। १३. इसे भूलकर बच्चे बड़े परेशान होते हैं। १५. उलटो और सीमा पर पहुँचो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाल-पहेली नं० २ का पुरस्कार

दिसम्बर १६४७ के 'मनोरंजन' में प्रकाशित 'बाल-पहेली नं० २' की जो पूर्तियां हमारे पास पहुँचीं उनमें से कोई भी पूरी की पूरी सही नहीं निकली। देवास के **सुरेन्द्र पुराणीक** की पूर्ति में केवल एक अशुद्धि थी, अतः उसे छः महीने के लिये 'मनोरञ्जन' मुफ़ मिलता रहेगा। सही उत्तर निम्नलिखित है :—

दायं से बायं — १. श्रवणकुमार, ६. मकर, ७. रात, ६. हार, १०. वालगा, १४. रकावि, १५. कर।

ऊपर से नीचे — १. श्रम, २. वकलर, ३. णर, ४. मारा; ५. रतजगा, ८. कौवा, ११. लचक, १२. तीर, १६. कवि।

श्री सुरेश वर्मा

जिन्होंने पिछले महीने 'बाल-मनोरञ्जन पहेली नं० १' का सही उत्तर भेजकर पुरस्कार प्राप्त किया था। इनकी अवस्था १३ वर्ष की है और ये ६ वीं श्रेणी में पढ़ते हैं। दिल्ली के प्रसिद्ध पत्रकार श्री रामलाल वर्मा के ये सुपुत्र हैं और अपने पिता की तरह यह भी पत्रकार बनना चाहते हैं।

पहेली के नियम

१. उत्तर के साथ चार आने के टिकट आने चाहियें।
२. केवल १४ वर्ष की आयु तक के लड़के-लड़कियां ही इस प्रतियोगिता में भाग ले सकते हैं। आयु के सम्बन्ध में माता-पिता अथवा स्कूल के अध्यापक का प्रमाण-पत्र भी उत्तर के साथ आना चाहिये।
३. उत्तर 'मनोरंजन' में छपे खाके को काट कर और भर कर भेजना चाहिए। किसी और कागज पर अलग से भेजे गये उत्तर पर विचार नहीं किया जायेगा। एक व्यक्ति एक से अधिक पूर्तियां भी भेज सकता है।
४. खानों को स्याही से सुस्पष्ट लिखे अक्षरों से भरना चाहिये। कटे-छंटे या पैंसल आदि से लिखे अक्षरों को सही नहीं माना जायेगा।
५. उत्तर १७ जनवरी १६४८ को शाम तक 'मनोरंजन' कार्यालय में पहुँच जाना चाहिये।
६. सम्पादक का निर्णय अन्तिम होगा।

[पृष्ठ ५५ का शेष]

इतने में बाहर मजूर आ गये थे और उन्होंने शोर मचाया कि रात को अपने आप कुंए में पानी फूट निकला है। रमेश और मोहन तुरन्त बाहर चले आये। कुंए में सचमुच पानी आ गया था। रमेश ने उन मजूरों और अपने माता-पिता को रात वाली घटना सुनाई। सबने उसका मजाक उड़ाया और कहा — "रमेश, तुमने शायद रात को कोई सपना देखा है!"

अपनी बात की सच्चाई सिद्ध करने के लिये रमेश सब को अपने कमरे में बुला लाया। परन्तु यह क्या! पानी का जग मेज से नीचे गिर कर टूट चुका था और उस बालिश्तिये का कहीं पता न था। अतः किसी को भी रमेश की बात पर विश्वास नहीं हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फुलझड़ियाँ

इस अंक से 'मनोरंजन' नये वर्ष में प्रवेश करता है—अपने नये वर्ष में नहीं, अंग्रेजी कैलेण्डर के नये वर्ष में ! आम परिपाटी के अनुसार हमें अपने पाठकों को नये वर्ष की बधाई देनी चाहिये और शुभ कामनायें प्रकट करनी चाहियें, क्योंकि हो सकता है कि १५ अगस्त १९४७ के बाद भी कतिपय लोगों के दिलो-दिमाग में पूर्ववत् अंग्रेजियत आधिपत्य जमाये बैठी हो। अपने ऐसे पाठको को हम नया वर्ष (सन् १९४८) प्रारम्भ होने पर हार्दिक बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि उनके दिलो-दिमाग पर से अंग्रेजियत, भारत में अंग्रेजी-सत्ता की भांति, शीघ्र ही समाप्त हो जायेगी !

नये वर्ष के प्रारम्भ होने पर यह भी एक परिपाटी है कि पत्र-पत्रिका के अतीत तथा भविष्य पर एक नजर डाली जाये । 'मनोरंजन' के सम्बन्ध में हम कह सकते हैं कि इसका अतीत—भले ही वह तीन-चार मास का है—बहुत ही आशाप्रद रहा है । इन तीन-चार महीनों में ही 'मनोरंजन' अत्यन्त लोकप्रिय हो गया है, दिनों दिन इसकी मांग बढ़ रही है और हिन्दी के मासिक पत्रों में इसने अपना विशेष स्थान बना लिया है । इसका भविष्य बहुत उज्ज्वल !

× × ×

कुछ लोग ऊपर की पंक्तियां पढ़कर हम पर आत्म-विज्ञापन व आत्मश्लाघा का आरोप लगा सकते हैं । हम इसका प्रतिवाद नहीं करेंगे, क्योंकि इस युग में आत्म-विज्ञापन तथा आत्मश्लाघा कोई बुरी चीज नहीं—इससे शत प्रतिशत लाभ ही होता है । दूर न जाकर हम हिंदी साहित्य के क्षेत्र पर ही नज़र डालते हैं और देखते हैं कि जो व्यक्ति सब से अधिक अपनी डुगडुगी पीटता है (या अपने मित्रों तथा सगे-सम्बन्धियों से पिटवाता है) वही सब से बड़ा साहित्यकार बन जाता है !

× × ×

कविवर श्री उदयशंकर भट्ट ने अपना या अपने मित्रों का डिण्डिम पीटने वालों पर अपनी कविता "साहित्य स्रष्टा" में करारी चोट की है । देखें इस चोट से कौन-कौन तिलमिलाता है !

परन्तु हमें डर है कि प्रतिपक्षियों में से कोई यह न कह दे कि भट्ट जी ने "साहित्य-स्रष्टा" के आगे "मैं" जोड़ कर अपना ही डिण्डिम पीटा है !

× × ×

विज्ञापन-बाजी का मुख्य उद्देश्य है दूसरों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करना । ध्यान आकृष्ट करने के लिये कई तरीके प्रयोग में लाये जाते हैं—कभी अपनी प्रशंसा की जाती है और दूसरों की खिल्ली उड़ाई जाती है और कभी अपनी दयनीय दशा का चित्रण किया जाता है । श्री प्रभाकर माचवे ने अपने लेख "मकान" में इन सब विधियों का प्रयोग किया है । हम समझते हैं कि यदि उज्जैन के किसी मकान-मालिक ने इनका यह लेख ध्यानपूर्वक पढ़ लिया तो शायद वह इन्हें रहने को मुफ्त ही मकान दे दे !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री प्रभाकर माचवे की जानकारी के लिये यहां यह बताना अप्रासंगिक न होगा कि पाकिस्तान में किराये के मकान इतने दुर्लभ नहीं जितने कि हिन्दुस्तान में। सुनते हैं कि पाकिस्तान में हिन्दू सिखों द्वारा छोड़ी हुई बड़ी २ भव्य कोठियां १०-१५ रुपये में मिल जाती हैं। अतः हमारा यह सुझाव है कि जिन्हें हिन्दुस्तान में मकान नहीं मिलते वे पाकिस्तान सरकार से लिखा-पढ़ी करें !

× × ×

"चपत" शीर्षक कहानी में पता नहीं श्री उपेन्द्र नाथ 'अश्क' ने अपने किस साहित्यिक मित्र का विज्ञापन किया है ! आत्म-विज्ञापन तो हो नहीं सकता ! वैसे यह जरूर है कि कई साहित्यिकार ऐसे ही साहसिक (?) कार्यों के कारण साहित्य-जगत में प्रसिद्ध हो गये हैं !

× × ×

२७-३१ दिसम्बर को बम्बई में महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के सभापतित्व में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन हुआ जिसमें हमारे छोटे-बड़े कई साहित्यकारों को प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से अपना-अपना डिड्मिम पीटने का अवसर मिला — भाषण, अभिभाषण, वक्तव्य इत्यादि द्वारा अपने व्यक्तित्व अथवा मत-मंतव्य का विज्ञापन ही तो किया जाता है।

सुना है कि राहुल जी के सभापति होने से वामपक्षीय साहित्यिक बड़े प्रसन्न थे !

पता नहीं साहित्य-परिषद् के सभापति श्री चन्द्रबली पाण्डे को क्या सूझी कि अपने अभिभाषण में उठाकर प्रगतिवादियों को ही रगड़ डाला। सम्भवतः उन्हें सम्मेलन के अध्यक्ष के प्रगतिवादी होने का पता नहीं होगा !

× × ×

महापण्डित राहुल सांकृत्यायत ने अध्यक्ष-पद से भाषण देते हुए कहा कि वह समय भी नजदीक आयेगा जब कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापति कोई हिन्दी का धुरन्धर साहित्यकार मुसलमान होगा। यदि उनकी यह भविष्यवाणी सचमुच ही ठीक निकले तो शायद महात्मा गांधी पुनः साहित्य-सम्मेलन के सदस्य बन जायं !

× × ×

हां तो, हम आत्म विज्ञापन की सर्वव्यापी प्रवृत्ति की चर्चा कर रहे थे। सच तो यह है कि साहित्यकारों की अपेक्षा राजनैतिक नेताओं में यह प्रवृत्ति कहीं अधिक होती है। यदि वह नेता सत्तारूढ़ हो तो फिर कहना ही क्या ! मजा यह कि उसके आत्मविज्ञापन का लोग आदर करते हैं। शायद इसी चीज को देखकर श्री उदयशङ्कर भट्ट ने अपनी कविता में कांग्रेस में काम करने का सुझाव रखा है !

१५ अगस्त के बाद से कांग्रेस में काम करने के तो अनेकों लाभ हैं, जैसे नौकरी प्राप्त करना, कोई धन्धा चलाना, चोर-बाजारी करते हुए भी कानून की गिरफ्त से बचे रहना इत्यादि इत्यादि !

गांधी बाबा इसे भ्रष्टाचार की संज्ञा देकर कांग्रेसियों की आलोचना करें भी तो कौन सुनता है। इसी भ्रष्टाचार के लिये ही तो हमने स्वाधीनता प्राप्त की है और हम समझते हैं कि बिहार के कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल में फैले भ्रष्टाचार से खिन्न होकर श्री जयरामदास दौलतराम को गवर्नर-पद से त्याग-पत्र नहीं देना चाहिये था !

★

'मनोरंजन'
का
मार्च १९४८ का अंक
होली-अंक
होगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशित हुआ ! प्रकाशित हुआ !

× उत्तम व्यंगचित्र × फोटो × मुलाकातें

इस अङ्क में, उत्कृष्ट छाया चित्रकार श्री यशवन्तराव पुरव की मुलाकातें, सुप्रसिद्ध व्हनगार्ड स्टुडियो का परिचय, फोटोग्राफी सोसाइटी ग्राफ इण्डिया व ग्रन्य संस्थाग्रों की जानकारी पढ़िये। साथ ही केमरे का चुनाव, फोटो लेना, डेवलपिंग, फिक्सिंग, प्रिंटिंग, माऊंटिंग ग्रादि सम्बन्धी विस्तारपूर्ण सचित्र जानकारी सरल भाषा में दी गई है।

रेलवे स्टालों व सभी एजेन्टों के पास उद्यम के ग्रङ्क मिलते हैं। मांग की ग्रधिकता है। ग्रतः ग्राज ही उद्यम का वार्षिक चंदा ७ रु० भेजकर फोटोग्राफी विशेषांक व खेती, उद्योगधन्धे, मितव्ययिता ग्रारोग्य ग्रादि विषयों की जानकारी देनेवाला उद्यम मासिक मँगवाइये।

उद्यम मासिक, धर्मपेठ, नागपुर।

कोमलता से सुगंधित किया गया वेस्लीन ब्ल्यू सील पोमेड बालों की रक्षा करता है, उन्हें स्वस्थ और चमकीला रखता है। प्रतिदिन थोड़ा प्रयोग में लाइये।

वेसलीन ब्ल्यू सील पोमेड पर ही जोर दीजिये।

सभी दूकानों पर

Copyright:

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विजय-पुस्तक भण्डार की सामयिक पुस्तकें

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति लिखित

स्वतन्त्र भारत की रूप रेखा

इस पुस्तक में लेखक ने भारत एक और अखण्ड रहेगा, भारतीय विधान का आधार भारतीय संस्कृति पर होगा, इत्यादि विषयों का प्रतिपादन किया है। मूल्य १।।) रुपया।

जीवन में विजय प्राप्त करने के लिये
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति लिखित

'जीवन संग्राम'

का

संशोधित दूसरा संस्करण पढ़िये। इस पुस्तक में जीवन का सन्देश और विजय ललकार एक ही साथ हैं पुस्तक हिन्दी भाषियों के लिये मनन और संग्रह के योग्य हैं। मूल्य १) डाक व्यय ।-)

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति की

'जीवन की झांकियां'

प्रथम खण्ड—दिल्ली के वे स्मरणीय बीस दिन, मूल्य ।।)

द्वितीय खण्ड—मैं चिकित्सा के चक्रव्यूह से कैसे निकला? मूल्य ।।)

दोनों खण्ड एक साथ लेने पर मूल्य ।।।)

सामाजिक उपन्यास

सरला की भाभी

[ले०—श्री पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति]

इस उपन्यास की अधिकाधिक मांग होने के कारण पुस्तक प्रायः समाप्त होने को है। आप अपनी कापियें अभी से मंगा लें, अन्यथा इसके पुनः मुद्रण तक आपको प्रतीक्षा करनी होगी।

मूल्य २)

हिन्दू संगठन हौआ नहीं है

अपितु

जनता के उद्बोधन का मार्ग है।

इसलिये

हिन्दू-संगठन

[लेखक—स्वामी श्रद्धानन्द संन्यासी]

पुस्तक अवश्य पढ़ें। आज भी हिन्दुओं को मोहनिद्रा से जगाने की आवश्यकता बनी हुई है, भारत में बसने वाली प्रमुख जाति का शक्ति सम्पन्न होना राष्ट्र की शक्ति को बढ़ाने के लिये नितान्त आवश्यक है। इसी उद्देश्य से पुस्तक प्रकाशित की जा रही है। मूल्य २)।

पं० मदनमोहन मालवीय

[श्री रामगोविन्द मिश्र]

महामना मालवीय जी का क्रमबद्ध जीवनवृत्तान्त। उनके मन का और विचारों का सजीव चित्रण। मूल्य १।।) डाक व्यय ।=)

नेता जी सुभाषचन्द्र बोस

नेता जी जन्मकाल से सन् १९४५ तक, आजाद हिन्द सरकार की स्थापना, आजाद हिन्द फौज का संचालन आदि समस्त कार्यों का विवरण। मूल्य १) डाक व्यय ।=)

पण्डित जवाहरलाल नेहरू

[श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति]

जवाहरलाल क्या हैं? वे कैसे बने? वे क्या चाहते हैं और क्या करते हैं? इन प्रश्नों का उत्तर इस पुस्तक में आपको मिलेगा।

मूल्य १) डाक व्यय ।=)

प्राप्ति स्थान—विजय पुस्तक भण्डार, श्रद्धानन्द बाजार, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारी माल ढोने के लिये

डनलप जायण्ट

DK 301

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दि कोमिल्ला बैंकिंग कारपोरेशन लि०

(स्थापित—१९१४)

रजिस्टर्ड आफिस—क्लाइव घाट स्ट्रीट कलकत्ता।

बैंक हर प्रकार का बैंक सम्बन्धी कार्य करता है

शाखायें समस्त भारत में

विदेशी एजेण्ट—

लन्दन—वेस्टमिन्स्टर बैंक लिमिटेड।
अमरीका—बैंकर्स ट्रस्ट कम्पनी आफ न्यूयार्क।
आस्ट्रेलिया—नेशनल बैंक आफ आस्ट्रेलिया लिमिटेड।
कनाडा—बैंक आफ मांट्रियल।

चन्द्रनगर (फ्रांसीसी भारत) में शीघ्र ही हमारी शाखा खुलने वाली है।

बी० के० दत्त
डिप्टी मैनेजिंग डायरेक्टर

एन० सी० दत्त
मैनेजिंग डायरेक्टर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सलफेरिक एसिड

बनसपती

नाइट्रिक एसिड

हाइड्रोक्लारिक एसिड

क्लोरो सल्फानिक एसिड

अलमुनिया फेरिक

ग्लूज

दर्री रेड आयरन

सुपरफास्फेट्स और मिश्रित खाद

एलम सफेद व गुलाबी

साबुन व क्रिमिनाशक

यह पूर्वपरीक्षित ऊँचे पैमाने के रसायन बजार भाव पर खरीदिये

ऊँचे पैमाने का उत्पादन करने के लिये वैसे ही रसायन की जरूरत है। डी० सी० एम० केमिकल वर्क्स आधुनिक तरीकों से बनाये हुये उच्च कोटि के रसायन सस्ते दामों पर बेचते हैं। सर्वोत्तम रसायनों के लिये डी० सी० एम० को याद रखिये।

डी.सी.एम

केमिकल वर्क्स

पो. बो. नं० २११ नजफगढ़ रोड दिल्ली

पूर्वपरीक्षित ऊँचे पैमाने के रसायन-निर्माता

...ection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नान की गरिमा ६

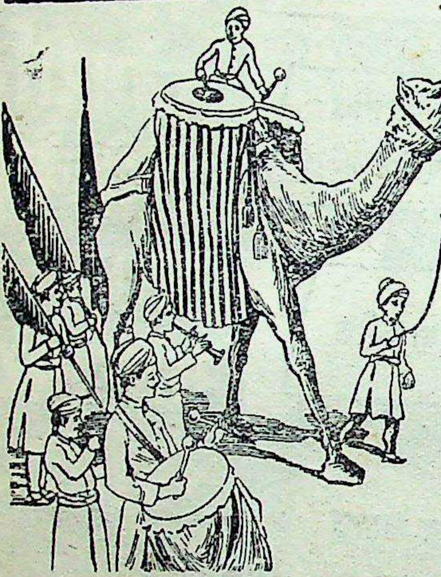

संस्कार सम्बन्धी स्नान

विवाह एवम् इस प्रकार के अन्य उमंग-पूर्ण सम्कारों से पूर्व लोग अपने पुरजन तथा परिजनों के साथ विशेष साज-समाज सहित भारतवर्ष की प्रमुख नदियों में संस्कार निर्विघ्न समाप्त होने के लिए स्नान करते हैं तथा इन नदियों की पूजा करके प्रसाद इत्यादि वितरण करते है।

इस प्रकार का स्नान उनके वांछित फल-प्राप्ति में कहां तक सहायक होता है यह तो उनके विश्वास का विषय है पर स्नान की महत्ता सर्वदा निर्विवाद है, विशेषकर जब स्नान "प्रीफेक्ट" साबुन से किया जाता है जो शरीर को न केवल स्वच्छ एवम् शान्त बनाता है वरन् स्नान के बाद भी अपनी स्निग्ध सुबास से त्वचा को प्रफुल्लित एवम् सुबासित रखता है।

प्रिफेक्ट

टॉयलेट सोप

विशुद्ध वनस्पति तेलों से निर्मित

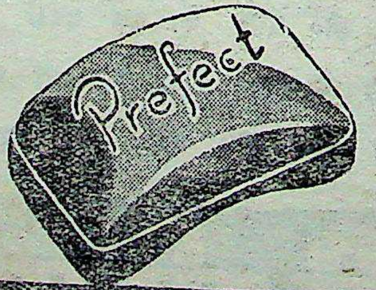

मोदी सोप वर्क्स, मोदीनगर, यू॰पी॰

स्थानीय डिपो—मेसर्स मोदी इण्डस्ट्रीज डिपो, दरयागंज दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

प्रिंटर पब्लिशर श्री दुर्गाप्रसाद शर्मा द्वारा, अर्जुन प्रेस देहली से छप कर प्रकाशित।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वायु मार्ग द्वारा

शीघ्रता से ताज़े समाचार

दैनिक व साप्ताहिक

वीर अर्जुन

देश के कोने-कोने में वायुयानों द्वारा पहुंचता है। आप अपने लिए स्थानीय एजेन्ट से पूछताछ कीजिये।

मैनेजर वीर अर्जुन, दिल्ली।

वीर अर्जुन

उत्तरीय भारत का सर्वोत्तम दैनिक व सचित्र साप्ताहिक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री श्रद्धानन्द पब्लिकेशन्स लिमिटेड

आज इस प्रकाशन संस्था के तत्त्वावधान में

★ दैनिक वीर अर्जुन
★ सचित्र वीर अर्जुन साप्ताहिक
★ मनोरंजन मासिक
★ विजय पुस्तक भण्डार
★ अर्जुन प्रेस

संचालित हो रहे हैं। यह प्रकाशन संस्था सुदृढ़ आर्थिक स्थिति की है।

अधिकृत पूंजी ५,००,००० **प्रस्तुत पूंजी २,००,०००**

गत वर्षों में इस संस्था की ओर से अपने भागीदारों को अब तक इस प्रकार लाभ बांटा जा चुका है

सन् १९४४	१० प्रतिशत
सन् १९४५	१० प्रतिशत
सन् १९४६	१५ प्रतिशत

१९४७ में कम्पनी ने अपने भागीदारों को
१० प्रतिशत लाभ देने का निश्चय किया है !

आप जानते हैं ?

* इस कम्पनी के सभी भागीदार मध्यम वर्ग के हैं और इसका संचालन उन्हीं लोगों द्वारा होता है।
* 'वीर अर्जुन' वर्ग के पत्रों की सम्पूर्ण शक्तियां अब तक राष्ट्र की आवाज को सफल बनाने में लगी रही हैं।

आप भी इस संस्था के भागीदार बन सकते हैं।

और

* इस प्रकाशन संस्था के संचालक वर्ग में सम्मिलित हो सकते हैं।
* राष्ट्र की आवाज को सबल बनाने के लिए इन पत्रों को और अधिक मजबूत बना सकते हैं।
* अपने धन को सुरक्षित स्थान में लगा कर निश्चित हो सकते हैं।
* आप स्थिर आय प्राप्त कर सकते हैं।

इस संस्था का प्रत्येक शेयर दस रुपये का है। आप भागीदार बनने के लिये आज ही आवेदन-पत्र की मांग कीजिये।

श्री श्रद्धानन्द पब्लिकेशन्स लिमिटेड,
श्रद्धानन्द बाजार, दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Do

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष १ संख्या ५

मनोरंजन

फरवरी १९४८

दिल्ली

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

सम्पादक
श्री चिरंजीत

इस अंक में

कविता

गीत ('मिलन यामिनी' से)	श्री 'बच्चन'	१
निशान्त	श्री 'अंचल'	८
गीत	श्री निरंकारदेव सेवक	१७
तुम से	'परदेशी'	१८
तुम को प्राण, भुलादूं कैसे ?	श्री हरिश्चन्द्र वर्मा	२४

कहानी

जिन्दाबाद ! जिन्दाबाद !!	श्री रामचन्द्र तिवारी	२
विश्व का शिव	श्रीमती उषादेवी मित्रा	१३
१३वां आश्चर्य	श्री 'रावी'	२२
''का आत्म-परिचय	श्री वागीश्वर विद्यालंकार	२५
चूरनवाला	श्री अनिलकुमार	२६
अब मैं कहां जाऊं ?	श्री राजाराम शास्त्री	३७

लेख

हिन्दी के पुजारी	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	५
हमारा काश्मीर ?	श्री रामगोपाल विद्यालंकार	६
मनोरंजन : एक मनोवैज्ञानिक आवश्यकता	प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए०	१६
विदेशों में भारतीय पहलवानों की जय-पताका	श्री रतनलाल बंसल	३३
'पृथ्वी-थियेटर्स' कृत 'पठान'	श्री महावीर अधिकारी	४१

विशेष स्तम्भ

हास-परिहास	३६	चित्र-लोक	४४
अद्भुत चित्रावलि	४६	सलोनी दुनिया	४७
बाल-मनोरंजन	५१	फुलझड़ियां	६०

मूल्य आठ आने

वार्षिक मूल्य ५॥)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीत

बच्चन

प्यार की तो भूल भी अनुकूल मेरे !

फूल मिलते रोक ही रखते, रिझाते,
शूल हैं प्रति पल मुझे आगे बढ़ाते,
इस डगर के शूल भी अनुकूल मेरे,
प्यार की तो भूल भी अनुकूल मेरे !

खोजते मकरंद जा पहुँचा मरुस्थल,
किंतु मेरी आंख का सुख सार परिमल—
बन चुकी थी रास्ते की धूल मेरे,
प्यार की तो भूल भी अनुकूल मेरे !

जिन्दगी भर मानता कांटे बटोरे,
क्या नहीं स्वागत मुहब्बत के निहोरे,
पंखुरी से होड़ लेते शूल मेरे,
प्यार की तो भूल भी अनुकूल मेरे !

जग मुझे टेढ़ी नजर से देखता है,
और, लो, पाषाण मुझ पर फेंकता है,
जो उसे पत्थर वही तो फूल मेरे,
प्यार की तो भूल भी अनुकूल मेरे !

★

'मिलन-यामिनी से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी

जिन्दाबाद ! जिन्दाबाद !!

माला ने दृष्टि धीरे-धीरे सड़क की ओर बढ़ते कबाइली की ओर उठाई। उसकी चौड़ी पीठ ! उसे देखकर कौन कल्पना कर सकता है कि यह एक ऐसे हृदय की रक्षा करती है जो नृशंसता से परिपूर्ण है !

वह कांप उठी। क्या बदा है उसके भाग्य में ? हे रब, तू हम नारियों पर रहम कर ! पाकिस्तानी मोटर की टायरों में छेद हो जायें ! उनका पेट्रोल खतम हो जाये ! हमारी सुन ले, हे अल्लाह !

और तब उसने अनुभव किया कि उसके पीछे बंधे हुए हाथों की कलाइयां बुरी तरह पीड़ा करने लगी हैं, खुरदरी रस्सी कोमल कलाइयों में धंस गई है। वह तड़प उठी। इस दारुण व्यथा से तो मौत क्यों नहीं आ जाती ! हे अल्लाह !

और उसके नयनों से आंसू निकल पड़े।

रहती ने अपनी बन्दिनी साथिन की ओर देखा। उसके हाथ भी पीछे बंधे हुए थे। वह उसकी ओर सरकी। माला के कंधे को अपने कंधे से स्पर्श किया। अपना मुख माला के निकट ले गई।

"रो मत, मेरी सखी। दिल को कड़ा कर, हम अपने मुल्क की आजादी की लड़ाई में कैद हुई हैं। हम नेशनल कान्फ्रेंस की सैनिका हैं। जब तक अवसर न मिले, हमें शांत रहना चाहिये।"

"क्या है ?" एक भयानक कबाइली ने बन्दिनी काश्मीरी नारियों की फुसफुसाहट सुन कर डांटा। "चुप रहो !"

"अच्छा खान !"

"रज्जाक !" दूसरा कबाइली बोला, "इनसे कह दो कि अपने मुल्क को ध्यान से देख लें। हमारा लारी आता ही होगा। इन्हें अब हमारी कौम का खिदमत करना होगा। क्यों रज्जाक, यह काफिर इतना खूबसूरत कैसे होता है ?"

श्री रामचन्द्र तिवारी

रज्जाक ने अंगड़ाई ली, निकटवर्ती खाई के दूसरी ओर की पहाड़ी पर दृष्टि डाली और अपनी संगीन चढ़ी राइफिल को एक वृक्ष के सहारे टिका दिया। उस गढ़े में घास पर बैठी चारों युवतियों की मन ही मन उसने आलोचना की।। वे सुन्दरियां थीं। अल्लाह ने उन्हें उनकी बांदी बनाया था। वे उनकी गुलाम थीं। हां, वे सुन्दरियां थीं। वह गम्भीर विचार में मग्न हो गया। फिर यकायक बोल उठा—"मंसूर, खूबसूरत औरत को शैतान ने बनाया है !"

"तुम्हारी बात में सचाई हो सकती है, रज्जाक। पता नहीं हमारा लारी अभी तक क्यों नहीं आया ?"

तभी रज्जाक के नयनों में एक नशा उमड़ा। वह उठा। आगे बढ़कर उसने माला का आंसुओं-भरा मुख ऊपर उठाया। नारी के अश्रुओं ने उसमें करुणा का संचार नहीं किया। दया उसमें नहीं द्रवी। वह खिलखिला कर हंस पड़ा और फिर वज्र गम्भीर हो गया। अल्लाह काफिर को सजा दे रहा है !

"तुम रोता है ?" उसने डांटा।

"नहीं खान"—अत्यन्त बलपूर्वक माला ने भयभीत उत्तर दिया।

"नहीं, तुम रोता है। हमने तुम्हारे बाप को मारा, तुम्हारी मां को मारा और तुम्हारा जान बख्श दिया। तुम रोता है। हम तुम्हें मारेगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और तब उसने अपने दोनों हाथों में लेकर माला के मुख को निर्दयतापूर्वक मसल डाला। माला का मुख पीला पड़ गया। लालिमा उसकी ओर दौड़ी पर ठिठक कर रह गई।

शारदा और कांता ने उसकी ओर दयार्द्र दृष्टि से देखा। सुन्दर और सुकुमार होने के अपराध में वह दण्डित की जा रही थी।

पहाड़ी पर से आहट आई।

मंसूर उठा। उसके नेत्र खुल गये, कान खड़े हो गये। हमारा लारी अभी तक क्यों नहीं आया ? अगर हिन्द का सिपाही आगया तो ?"

रज्जाक ने कहा, "यह नामुमकिन है। हिन्द का सिपाही इतना जल्दी नहीं आ सकता। हम इस्लाम का खिदमत अंजाम दे रहा है। अल्लाह हमारी मदद करेगा। वह हिन्द के सिपाही को नहीं आने देगा। तुम डरो मत !"

"हम डरता नहीं है, गधे का बच्चा ! पर हमारा लारी क्यों नहीं आया ?"

"रमजान !" रज्जाक ने जोर से पुकारा।

"जोर से मत बोलो !"

"हिश, डरो मत। रमजान !"

"आता होगा। घबराओ मत। रज्जाक, हिन्दुस्तान का सिपाही भी अच्छा निशाना मारता है। उसने हमारा अच्छा-अच्छा आदमी बहुत मार डाला है। उनका हथियार भी अच्छा है।"

"हे रब, तू हम नारियों पर रहम कर !"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुम डरो मत, अल्लाह अपने बन्दों की मदद करेगा !"

"रमजान ! रमजान !" रज्जाक ने सड़क की ओर बढ़कर जोर से आवाज दी।

रहती ने शारदा की ओर नयन उठाये। दोनों की दृष्टि मिली। वह कह रही थी—"इन कबाइली डाकुओं को हिन्द की सेना से भय है। हे भगवान, वे कहीं निकट ही हों !" और शारदा के नयन अचानक गीले हो गये। उसके सम्मुख अपने परिवार का हृदय-विदारक दृश्य उपस्थित हो गया। उसके पिता को गोली मार दी गई। उसका घर जला दिया गया और उसकी मां तथा छोटी बहिन को उस समय जीवित छोड़ा गया जब छुपी हुई शारदा ने अपने को निकाल कर भेंट स्वरूप कबाइलियों के सरदार के सम्मुख उपस्थित किया, और उसके पश्चात् निरंतर अपमान, शारीरिक पीड़न, यातनायें और·······

ठीक है, वह हिन्दू थी। पर माला, रहती और फाता तो मुसलमान हैं। यह जो हो रहा है, उसकी समझ से बाहिर है। हिन्दू मुसलमान विभागों में उसे नहीं बांटा जा सकता। यह तो बाढ़, महामारी और अनावृष्टि की भांति एक प्रकोप है। और तब अचानक उसके सम्मुख उसका विभीषिकापूर्ण भविष्य आकार ग्रहण करने लगा। वह क्या करे? एक बार उसके प्राण कांपे, पर दूसरे क्षण ही वे दृढ़ हो गये।

नहीं, अब वह भयभीत न होगी। उसके बलिदान से उसके परिवार का अल्पांश अवशेष रह गया है और वह अब इन कबाइलियों की पहुँच से दूर है। उसके व्यवहार से अब उन्हें कष्ट न पहुँच सकेगा। वह आत्महत्या करेगी। और उसने मंसूर की संगीन की ओर देखा। अपने पीछे कसे हुए हाथों की विवशता अनुभव की। यदि वह उस संगीन की नोक को किसी प्रकार अपनी छाती के बीच में लेकर उस पर अपना समस्त बल लगा सकती! क्या उसका भाग्य इतना प्रबल है? उसने लोलुप दृष्टि से उस संगीन की चमक की ओर निहारा। भगवान करे लारी न आये!

पहाड़ पर से फिर पत्थर लुढ़कने का स्वर सुनाई दिया।

माला ने पहाड़ की ओर दृष्टि उठाई—वही दृष्टि जो पपीहा आकाश की ओर उठाता है, जिस पर उसके प्राण टंगे होते हैं। और उस समय यकायक चारों के मन में एक ही विचार आया कि वे सब एक साथ चीख उठें। उन्होंने आक्रान्ताओं के मुख से भारतीय सैनिकों के निकट होने की बात सुनी थी। चारों की दृष्टि मिली। रहती ने चुप रहने का संकेत किया। गांव की नेत्री अब बन्दिनी दल की नेत्री स्वीकार करली गई।

रहती ने वृक्ष के सहारे खड़ी रज्जाक की संगीन देखी। उसके मन में एक विचार उठा। रज्जाक दूर चला गया है। पर उसके हाथ हैं कि बंधे हैं। उसने दांतों पर दांत जमाकर अपना बंधन ढीला करने की चेष्टा की। पर यह असम्भव था। कठोर रस्सी कलाइयों में धंसती चली गई। यदि मेरे हाथ खुले होते, खुल जाते·····

"रमजान !" रज्जाक पुकार रहा था। रहती ने देखा कि रज्जाक की कमर से तलवार शांत भाव से लटक रही है। वह रमजान का पता लगाने में संलग्न है। ऐसा स्वर्ण-अवसर! उसका मस्तिष्क वेग से कार्य कर रहा था। उसने निकट पड़े पत्थरों की ओर देखा, वृक्षों के तनों की सम्भावनाओं पर दृष्टिपात किया और फिर जैसे निराश होकर आंखें नीची कर लीं। अचानक वह चौंक पड़ी। लगा कि कोई लारी उनकी ओर सड़क पर आ रही है।

बन्दिनी-समूह में से एक गहरी सांस निकल गई। अब उनका भाग्य समाप्त हो गया है। उनके लिये नारकीय जीवन के कपाट विधाता ने खोल दिये हैं। हे अल्लाह! हे भगवान! क्या यह लारी आकर ही मानेगी। क्या तू इस विधान को·······

फाता के मुख से निकल गया—"अल्लाह, अब क्या होगा?"

मंसूर उसकी ओर देखकर मुस्कराया और फिर एक गन्दी गाली का प्रयोग कर अपनी योग्यता पर

(शेष पृष्ठ ५७ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी के पुजारी

★

लेखक—

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

संसार के सब अच्छे आन्दोलनों की तरह, हिन्दी का आन्दोलन भी तीन युगों में से होकर गुजरा है। पहिला प्रारम्भ-युग, जिसमें वर्त्तमान हिन्दी लोकप्रिय भाषा के रूप में जन-साधारण के सामने लायी गयी। वह आचार्यों का और गुरुओं का युग था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा उनके समकालीन लेखक वर्त्तमान हिन्दी के जन्मदाता कहे जा सकते हैं। उन्हें आप हिन्दी-मन्दिर के संस्थापक भी कह सकते हैं। उन्होंने हिन्दी को कवियों तथा लेखकों और घरों से संग्रह करके और व्यावहारिक रूप में लाकर एक आराध्य देवता के रूप में भारतवासियों के हृदय-मन्दिर में स्थापित कर दिया। उन आचार्यों ने हिन्दी में जो ग्रन्थ लिखे, उनका उद्देश्य अर्थ-संग्रह नहीं था। उन्होंने हिन्दी की सेवा अपना धर्म समझ कर की। धर्म के उद्भावकों के हृदयों में जो अपने आपको भुला देने वाला तीव्र उत्साह होता है, प्रारम्भ युग के आचार्यों में हम उसी का आभास पाते हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी की सेवा में अपनी सब पैतृक-सम्पत्ति भी लुटा दी। उनके समय के अन्य आचार्य भी आर्थिक कठिनाइयों का सामना करते हुए हिन्दी की सेवा करते रहे। उन लोगों ने अपनी आर्थिक स्थिति को बिगाड़ कर वर्त्तमान हिन्दी-साहित्य की नींव रक्खी। प्रत्येक लोक-हितकारी सुधार और आन्दोलन का प्रारम्भ इसी प्रकार होता है। जो महापुरुष उन्हें आरम्भ करते हैं, वे अपने को बिगाड़ कर उन्हें बनाते हैं।

प्रत्येक अच्छे आन्दोलन के जीवन में दूसरा युग तब आता है जब उसके प्रथम आचार्य आन्दोलन की बागडोर अपने शिष्यों और अनुयायियों के हाथों में छोड़कर कार्य-क्षेत्र से अलग हो जाते हैं। सम्भव है, यहां यह प्रश्न किया जाय कि हिन्दी तो एक भाषा है, उसकी प्रगति को मैं 'आन्दोलन' का नाम क्यों दे रहा हूँ? वर्त्तमान हिन्दी की यह विशेषता रही है कि वह प्रारम्भ से ही राष्ट्रीयता का एक पुर्जा बन कर मैदान में आयी है। जन्मकाल से ही उसमें जनता की मनोवृत्ति से प्रभावित होने और उसे प्रभावित करने की अद्‌भुत शक्ति रही है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लेकर सन् १९४८ के जनवरी मास के नवीनतम कवि या कथा-लेखक की रचनाओं में हम राष्ट्रीय-जीवन की स्फूर्ति ओत-प्रोत पाते हैं। इस कारण वर्त्तमान हिन्दी का इतिहास आन्दोलन के इतिहास के समान ही चला।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में लेखक व पत्रकार के रूप में श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति का अपना एक ऊंचा स्थान है। हमारा अनुरोध मानकर उन्होंने अपने लम्बे साहित्यिक जीवन के संस्मरण लिपि-बद्ध करना स्वीकार किया है। ये संस्मरण लेख-माला के रूप में समय-समय पर 'मनोरंजन' में प्रकाशित होते रहेंगे। 'हिन्दी के पुजारी' इस लेखमाला का पहिला लेख है। —सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस आन्दोलन के दूसरे युग को हिन्दी का पुजारी-युग कह सकते हैं। उसमें जिन कवियों और लेखकों ने ग्रन्थ या सामयिक पत्र लिखे तथा प्रकाशित किये, वे प्रायः हिन्दी-देवता के पुजारी थे। उन्हें हिन्दी की धुन थी। उनके लिये हिन्दी एक ऐसा धर्म था, जिसके पैगम्बर या आचार्य भारतेन्दु हरिश्चन्द्र थे। उनकी आराध्य देवी हिन्दी थी, जिसकी आराधना में वे परिश्रम करके दरिद्रता का जीवन व्यतीत करने में अपना अहोभाग्य समझते थे। वे हिन्दी-देवता के सच्चे पुजारी थे।

'मनोरंजन' के उत्साही सम्पादक ने मुझे सुझाया है कि मैं उनके पत्र के लिये अपनी कुछ साहित्यिक स्मृतियां लिखूं। मैंने उनके सुझाव को स्वीकार कर लिया, परन्तु जब मैंने उस सुझाव को कार्यरूप में परिणत करने के लिये अपने स्मृतियों के खजाने को टटोलना आरम्भ किया, तो उसमें बहुत कम सामान मिला। यों घटनाओं और व्यक्तियों को याद रखने के लिये मेरी स्मृति बहुत समर्थ है। साहित्यिक संस्मरणों की सामग्री की कमी का कारण दूसरा ही है। वह यह है कि मैं गत ३० वर्षों से हिन्दी साहित्य से सम्बद्ध रहता हुआ भी साहित्यिकों के सम्पर्क में बहुत कम आता रहा हूं। इसका एक कारण तो यह था कि शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् बहुत शीघ्र मैं पत्र-सम्पादन और राजनैतिक आन्दोलन के संघर्ष में ऐसा बुरी तरह उलझ गया कि लगभग २५ वर्षों तक मुझे अन्य किसी चीज़ की होश नहीं रही। यह तो १९४२ में अधिक रोगी हो जाने की बुराई का शुभ परिणाम समझिये कि मुझे फिर से हिन्दी-साहित्य की सेवा करने और साहित्यिकों के थोड़ा-बहुत सम्पर्क में आने का अवसर मिला है। इस मुख्य कारण के अतिरिक्त एक और भी कारण हुआ, जिसने मेरे अन्दर साहित्यिकों की गोष्ठी के प्रति अरुचि पैदा कर दी। उस कारण का विवरण मैं इस लेख-माला के किसी अगले लेख में दूंगा। वह मेरे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रारम्भिक संस्मरणों से सम्बन्ध रखता है। यहां तो मुझे इतना ही बतलाना था कि कुछ कारणों से साहित्य संसार से सम्बन्ध रखने वाली मेरी स्मृतियों का कोष बहुत बड़ा नहीं है।

साहित्यिक स्मृतियों के उस छोटे-से संग्रह में से पहिली जो स्मृति सामने आती है, वह प्रयाग की मासिक पत्रिका 'सरस्वती' की है। बहुत बचपन में, लगभग ४७ साल पूर्व, जालन्धर में 'सरस्वती' के कुछ अङ्क देखे थे। उसमें एक 'शाही लकड़हारे' की कहानी पढ़ी थी तथा कुछ वैज्ञानिक और अन्य चित्रों को पसन्द किया था। उस समय इतना ही अनुभव किया था कि 'सरस्वती' की छपाई बहुत सुन्दर है, कहानियां खूब मनोरंजक हैं और चित्र आकर्षक हैं। उसके पश्चात् गुरुकुल में प्रविष्ट हो जाने के कारण आधुनिक साहित्य से कोई सम्बन्ध नहीं रहा। उस समय हम थे और हमारी अष्टाध्यायी, काशिका, सांख्यकारिका और उपनिषदें थीं। वह गुरुकुल का प्रारम्भ-काल था। उस समय न पुस्तकालय था, न वाचनालय। धीरे धीरे, पांच-छः साल में सब कुछ होगया। पिता जी ने अपना सारा पुस्तकालय गुरुकुल को देकर पुस्तकालय की बुनियाद रख दी। पुस्तकालय भी बन गया और पत्र-पत्रिकायें भी आने लगीं। पत्रिकाओं में जो सबसे पहले मंगवायी गयी, वह 'सरस्वती' थी। तब तक हिन्दी-संसार में 'सरस्वती' की धूम मच चुकी थी। रूप-रंग में निरन्तर उन्नति हो रही थी। पृष्ठ-संख्या में वृद्धि हो जाने से पाठ्य सामग्री बढ़ गयी थी। प्रति मास लेखकों की सूची में अनेक बी. ए., एम. ए. और एम. एस-सी. महोदयों के नाम होते थे। इन सबसे बढ़कर बात यह थी कि पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी पत्रिका के सम्पादक बन चुके थे। द्विवेदी जी का 'सरस्वती' के सम्पादक बनना हिन्दी साहित्य और साथ ही द्विवेदी जी के अपने इतिहास में एक बहुत ही महत्वपूर्ण पर्व हुआ इस घटना ने जहां हिन्दी साहित्य को विशेष प्रगति प्रदान की, वहां साथ ही द्विवेदी जी की उन अन्तर्हित योग्यताओं को विकसित और प्रकाशित करने का अवसर दिया, जिन्होंने उन्हें अपने समय में हिन्दी के अन्तरिक्ष का सबसे उज्ज्वल नक्षत्र बना दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विवेदी जी उन साहित्य-सेवियों के एक प्रमुख अगुआ माने जा सकते हैं, जिन्हें मैंने इस लेख के आरम्भ में 'हिन्दी के पुजारी'—इस विशेषण से विशेषित किया है। आयु के लिहाज से यही सम्भव था कि मेरा प्रथम परिचय हिन्दी के उन लेखकों से होता जो हिन्दी की सेवा करना अपना धर्म समझते थे। उनकी अन्तरात्माओं में अर्वाचीन हिन्दी के जन्मदाताओं की दी हुई ज्योति प्रज्वलित थी; उनके लिये हिन्दी की सेवा धर्म था, रोजगार नहीं। द्विवेदी जी का स्थान उस श्रेणी के साहित्य सेवियों में बहुत ऊंचा — शायद सबसे ऊंचा—है। हां, तो मैं कह रहा था कि उन दिनों 'सरस्वती' मुझे और मेरे अन्य सहपाठियों को बहुत ही रोचक और शिक्षाप्रद प्रतीत होती थी। भाग्यवश उन्हीं दिनों पं० पद्मसिंह शर्मा संस्कृत के अध्यापक बनकर गुरुकुल कांगड़ी में आगये। अभी शर्मा जी की विहारी-सतसई-सम्बन्धी लेखमाला 'सरस्वती' में प्रकाशित नहीं हुई थी, और फलतः वे प्रसिद्ध भी नहीं हुए थे। परन्तु उनका हिन्दी-साहित्य से प्रेम तब भी उमड़ा पड़ता था। वह खाली समय में प्रायः आश्रम के चौक में खड़े होकर हिन्दी लेखकों की आलोचना और चर्चा किया करते थे। उस समय बहुत से अध्यापक और छात्र उनके चारों ओर घिर जाया करते थे। मुझे अच्छी तरह याद है कि शर्मा जी उस बात-चीत में द्विवेदी जी की खूब प्रशंसा और उनके प्रतिस्पर्धियों की भरपूर निन्दा किया करते थे। 'सरस्वती' के आकर्षण और शर्मा जी के आन्दोलन का यह परिणाम हुआ कि हम द्विवेदी जी के परम भक्त बन गये। उन दिनों गुरुकुल की ऊंची श्रेणी के ब्रह्मचारियों की संस्कृत कविता-निर्माण में प्रतिस्पर्धा हुई। 'वन्देमातरम्' यह समस्या दी गयी थी। सब समस्यापूर्तियां परीक्षा के लिये द्विवेदी जी के पास भेजी गयीं। जब उनका भेजा हुआ परीक्षा परिणाम हम लोगों को सुनाया गया, तो हमने उनका लिखा पत्र देखने की उत्सुकता प्रगट की। बचपन में और यौवन के प्रारम्भ में मनुष्य के अन्दर महापुरुषों के प्रति भक्ति की भावना बहुत अधिक रहती है। नोट-बुकों में महापुरुषों के हस्ताक्षर लेने की प्रथा का जन्म उसी भावना से होता है। इस दृष्टि से हमारी प्रार्थना को स्वाभाविक समझ कर अधिकारियों ने द्विवेदी जी का पत्र हमें दिखा दिया। द्विवेदी जी के अक्षर स्पष्ट और सुगढ़ तो थे ही, हमारी भक्ति-भावना ने उन्हें और भी सुन्दर बना दिया। हमें वह पत्र आदि से अन्त तक बहुत ही भव्य और अनुकरणीय प्रतीत हुआ। पत्र के प्रारम्भ में गुरुकुल के आचार्य को 'श्रीमन्महोदय' इस सम्बोधन से सम्बोधित किया गया था। उससे पूर्व हम आर्यसमाज के वातावरण में पलने के कारण 'मान्य महाशय जी' और 'प्रियवर महाशय जी' – इनके सिवाय और कोई सम्बोधन नहीं जानते थे। द्विवेदी जी के पत्र में लिखा हुआ सम्बोधन हमें इतना नया और सुन्दर प्रतीत हुआ कि प्रायः सभी बड़ी श्रेणी के छात्रों ने उस समय से उसे अपना लिया।

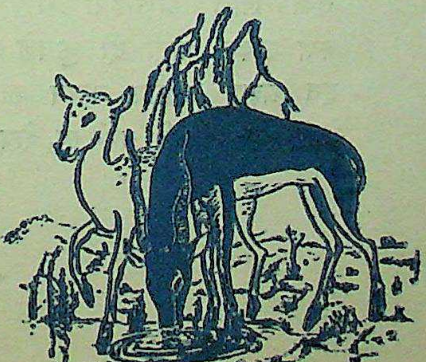

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निशान्त

अंचल

रोती रात चली सपने-सी, शेष न अब तक हुई कहानी,
और न क्रन्दन ही चुक पाया — द्रोह भरे जीवन की वाणी!

फिर अंगार प्रलय के साजे चला मिलन का पर्व अपावन,
देख सकोगी जुगनू वाली ! मेरी ज्वाला का भूकम्पन ?
इन विशीर्ण रूखी अलकों में गूंथे इतना बड़ा अमंगल—
आज सलिल-मंथन के रव-सा फाड़ बिछा दोगी क्या हिय-तल?
किस अतीत के महा प्रात से उठ आया यह क्षुब्ध बवण्डर?
रोती रात चली सपने-सी, खत्म हुआ रोने का अवसर ।
बीत चले जय-ध्वनि नक्षत्रों की ज्यों महाकाश पञ्जर में,
रुकी धमनियां जातीं मेरी चीत्कारों से भरी डगर में ।
यह भी कैसा व्यंग ! मिलें हम लेकर पानी भरी निशानी,
और विलग हो जायें अपनी लिये अधूरी कचट कहानी !

लज्जत भरे दर्द की बातें काश ! अगर मैं भी कह पाता,
सच कह दूं, मेरे अन्तर में तो फिर ऐसा नशा न छाता ।
इस बहते पानी-सी निशि में बांध हिचकियों के' तुम बन्धन—
आग लगा दोगी क्या चोली में ज्वलन्त ओ हूक भरे तन?
क्या सम्भव था कह पातीं तुम एक रात में सारा जीवन,
कैसे लेता छीन तुम्हारा नैश-गगन सब अन्तर्वेदन ?
यदि भिखारिनी का संचित धन अन्तिम क्षण में लुटने आता,
तो फिर अकल्याण की रानी ! मैं निर्मम भूखा ही जाता ।
सूजी लाल अँखड़ियों में यह जीवन-व्यापी तृष्णा-ज्वाला,
क्या उंड़ेल पातीं दो कुचले सपनों की चिर विकृति कराला?
इस अपूर्ण मानव जीवन की पूर्ण न होने की कुर्बानी !
रोती रात चली सपने-सी, शेष न अब तक हुई कहानी !

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा काश्मीर ?

श्री रामगोपाल विद्यालङ्कार

अब से तीन मास पूर्व तक काश्मीर के विषय में जन-साधारण की कल्पना केवल इतनी थी कि वह देश सेब, नाख, ग्लास, बग्गूगोशा आदि फलों और मेवों का; केसर, मधु, बनफ्शा आदि वनौषधियों का और रेशम, ऊन आदि मूल्यवान वस्त्रों का भण्डार होने के अतिरिक्त प्राकृतिक सौंदर्य की लीलास्थली भी है। इसीलिये वहां सम्पन्न लोग ग्रीष्म ऋतु में विहार करने जाते हैं। बहुत हुआ तो रसिकों की गोष्ठियों में काश्मीर की चर्चा छिड़ने पर पुराने कवियों की इस प्रकार की उक्तियां सुनाकर वहां के प्राकृतिक सौन्दर्य-वर्णन की पराकाष्ठा समझ ली जाती थी कि वहां के तो गधे भी केसर की क्यारियों में चरते हैं अथवा "अगर फिरदौस बररूए जमीं अस्त, हमीं अस्तो हमीं अस्तो हमीं अस्त।" परन्तु तीन मास पूर्व पाकिस्तानी आक्रान्ताओं ने अकस्मात् विलास-रसिकों की इस विहार-स्थली पर आक्रमण करके केवल कल्पनाओं से सन्तुष्ट रहने वालों का स्वप्न भंग कर दिया और उनकी आंखों में अंगुली गड़ा कर उन्हें बतला दिया कि काश्मीर निरे प्राकृतिक सौन्दर्य की लीलास्थली ही नहीं, इस रोग-शोक-समस्यामय संसार का एक भाग भी है, और वहां का जीवन भी वैसा ही संघर्षमय है जैसा कि संसार के अन्य सब देशों का। आज काश्मीर का नाम लेते ही जो समस्यायें आकर खड़ी होती हैं उनके कारण हमारे सामने काश्मीर के स्वप्नमय रूप का नहीं, घोर संकटग्रस्त कठोर वस्तुस्थितिमय रूप का चित्र आकर उपस्थित होता है। और आज की स्थिति में इस चित्र की उपेक्षा करके काम चल ही नहीं सकता। अतः इन पंक्तियां में काश्मीर के इसी पहलू पर अधिक विचार करना अभिप्रेत है।

आज हमें काश्मीर पर पाकिस्तानियों का आक्रमण कुछ अनहोनी और अभूतपूर्व-सी घटना जान पड़ता है। उसका बड़ा कारण यह है कि लगभग एक शताब्दी तक काश्मीर भारत का एक अंग बन कर,

भू-स्वर्ग काश्मीर के दरिद्रवासी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत के ब्रिटिश शासकों की रक्षा में रहकर, बाहर के आक्रमणों से बचा रहा। इसलिये हम उसके पुराने इतिहास को भूल-से गये और हमें उस पर पड़ौस से अथवा अन्य किसी दिशा से आक्रमण होना अभूतपूर्व-सी बात लगने लगी। ऐतिहासिक सत्यता इसके सर्वथा विपरीत है।

कठोर ऐतिहासिक सत्य यह है कि काश्मीर प्रायः सदा ही अपने पड़ौसियों से आक्रान्त होता रहा है और इन आक्रमणों में बहुधा आक्रान्ता ही सफल होते रहे हैं। सम्भवतः काश्मीर की प्राकृतिक अवस्थायें ही आक्रान्ताओं के लिये अनुकूल और रक्षकों के लिये प्रतिकूल हैं। तातारों, पठानों, मुगलों, सिक्खों और प्राचीन काल में बौद्धों ने भी काश्मीर पर आक्रमण किये थे और उनमें वे सफल हुए थे। काश्मीर के सुन्दर स्त्री-पुरुषों का आक्रान्ताओं द्वारा अपहरण और लुटना भी इस सुरम्य देश के लिये अघटित घटना नहीं है। प्रायः सभी आक्रांता इस प्रलोभन का शिकार बनते रहे हैं। प्रसिद्ध तातार आक्रान्ता जुल्फी कादिरखां सन् १३२२ में पचास हजार ब्राह्मण दास-दासियों को काश्मीर से पकड़ कर ले गया था और वे बुखारा तथा बलख की गलियों में भेड़-बकरियों की भांति बेचे गये थे। काश्मीर के विविध राजाओं में एक ललितादित्य ही ऐसा प्रतापी राजा हुआ है जो अपने काल में आक्रान्ताओं को परास्त करने में सफल हुआ था, वरना इस अभागे प्रदेश में प्रायः आक्रान्ता ही रक्षकों की तुलना में बलवान सिद्ध होते रहे हैं।

वर्तमान युग की सेनाओं के हाथ में किसी भी प्राकृतिक बाधा को अलंध्य न मानने वाले साधन आने

काश्मीरी ललनायें

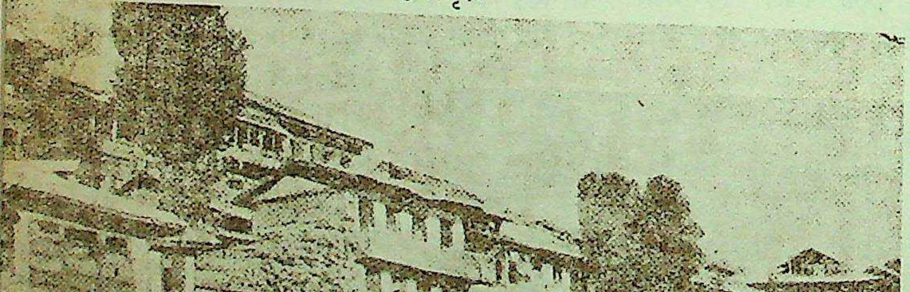

काश्मीर की राजधानी श्रीनगर का एक सुंदर दृश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से पूर्व तक, अर्थात् उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक, काश्मीर पर आक्रमण प्रायः उत्तर, उत्तरपश्चिम और दक्षिण दिशाओं से ही होते रहे। काश्मीर के पश्चिम और पूर्व की सीमायें नदियों और पर्वतों आदि के कारण प्रायः आक्रान्ताओं के लिये अलंध्य ही रहीं। परन्तु पाकिस्तानियों का वर्तमान आक्रमण काश्मीर पर पश्चिमी सीमा की ओर से ही हो रहा है। और वह भी किसी एक मार्ग से अथवा किसी एक विशिष्ट स्थान पर नहीं, पश्चिमी सीमा के कई सौ मील लम्बे प्रदेश में, अनेक स्थानों पर, एक साथ हो रहा है। इससे वर्तमान आक्रान्ताओं की नवयुगीन साधनों से सम्पन्नता की कल्पना भली भांति हो सकती है। यद्यपि यह ठीक है कि काश्मीर के वर्तमान रक्षक भी नवीन साधनों से सज्जित हैं, परन्तु यदि रक्षक आक्रमण न करके अपने आपको केवल रक्षा तक ही सीमित रक्खे तो उसका कर्म प्रायः बहुत कठिन हो जाता है, और एक आक्रान्ता का दमन करने के लिये १० से २० गुणा तक रक्षकों की आवश्यकता पड़ जाती है। डाकुओं के एक गिरोह को पकड़ने के लिये बहुधा जिले भर की पुलीस को जिस प्रकार दिन-रात एक कर देने पड़ते हैं, उससे यह बात भली भांति स्पष्ट हो जायगी। जर्मन समर-विशेषज्ञों ने इस व्यावहारिक अनुभव को ध्यान में रखकर ही 'ब्लिट्ज' नामक समर-कला का सिद्धान्त निकाला था। 'ब्लिट्ज' का अभिप्राय है—शत्रु के आक्रमण की प्रतीक्षा न करके अथवा अपनी शक्ति को रक्षा में न उलझा कर शत्रु पर बिजली की भांति एक दम इस प्रकार तीव्र आक्रमण कर देना कि वह किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो जाय। काश्मीर के सम्बन्ध में भारत सरकार ने अपनी जो राजनीतिक स्थिति रखी है, उसके कारण उसे अपनी सब शक्ति सिर्फ रक्षा पर व्यय करनी पड़ रही है और इसी लिये उसका रक्षा-कर्म बहुत कठिन हो गया है। भारत सरकार अभी काश्मीर को स्थायी रूप से हिन्द-यूनियन का अङ्ग नहीं मान रही। उसने घोषणा कर दी है कि रियासत में परिस्थितियां शान्त होने पर इस प्रश्न का निर्णय काश्मीर के जन-मत द्वारा ही किया जायगा कि वह स्थायी रूप में

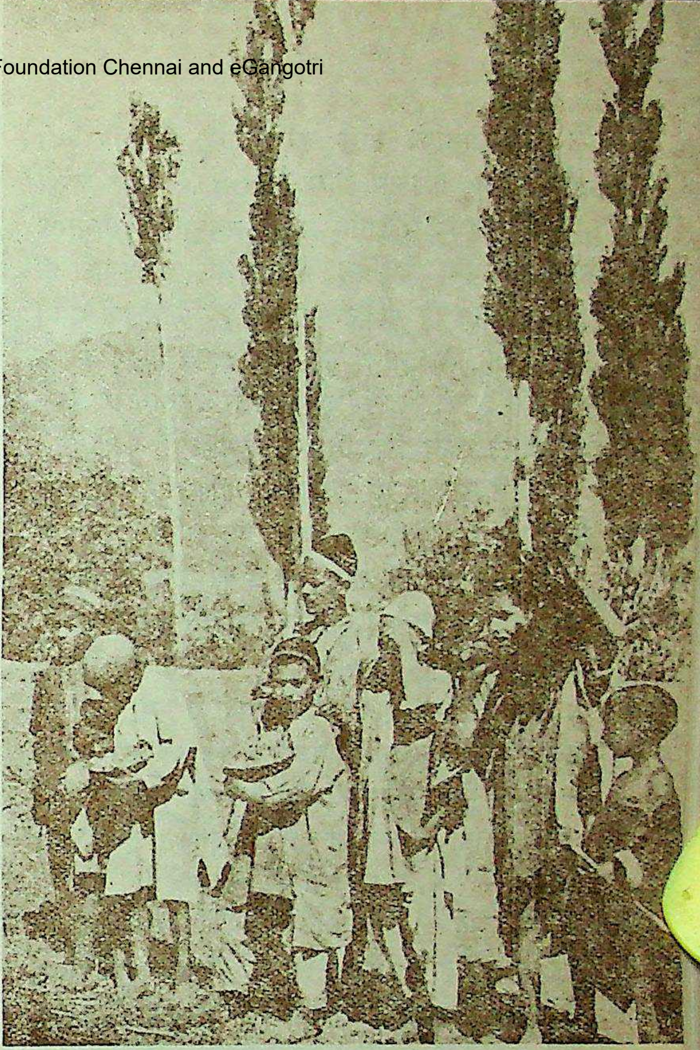

प्राकृतिक सौंदर्य की लीलास्थली के सुंदर बच्चे

भारत का अङ्ग हो अथवा पाकिस्तान का। इस नीति के कारण आक्रान्ता लोग तो पाकिस्तान से निकल कर, काश्मीर में घुसकर, आक्रमण, लूट-मार, अग्निकाण्ड, अपहरण आदि करके, पाकिस्तान में लौट कर सुख पूर्वक विश्राम करने और अगले आक्रमणों की तैयारियां करने लगते हैं; और भारतीय रक्षक-सैनिक यही सोचते रह जाते हैं कि यदि हम आक्रान्ताओं का पीछा करते हुए पाकिस्तान की सीमा में घुसे तो हम सीमोल्लंघन के अपराधी हो जायेंगे। भारत सरकार की इस नीति के कारण वर्तमान परिस्थितियों में, भारतीय सेना के नवयुगीन साधनों से सम्पन्न होते हुए भी, काश्मीर की रक्षा एक विषम समस्या बन गयी है।

इस राजनीतिक परिस्थिति के अतिरिक्त, काश्मीर की प्राकृतिक और आर्थिक परिस्थितियां भी रक्षा के लिये अनुकूल नहीं हैं। पठानकोट से लेकर गिलगित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक पाकिस्तान को स्पर्श करने वाली काश्मीर की दक्षिणी तथा पश्चिमी सीमा ४००-४५० मील लम्बी तो है ही, वह मोटर आदि भारी नवयुगीन सामरिक वाहनों के प्रयोग के लिये भी तब तक अनुपयुक्त ही रहेगी, जब तक कि वहां उत्कृष्ट मार्ग न बना लिया जाय। इन मार्गों को बनाने में प्रचुर समय और धन के अतिरिक्त.इनकी रक्षार्थ वहां निरन्तर असाधारण जन-बल तैनात रखने की आवश्यकता पड़ेगी।

आज काश्मीर पर आक्रमण पाकिस्तान की ओर से हो रहा है, इस लिये बहुधा पारस्परिक चर्चा में केवल पाकिस्तान के साथ लड़ाई की दृष्टि से विचार किया जाता है। परन्तु काश्मीर की सीमा के उत्तर में रूस और अफ़गानिस्तान तथा पूर्व में चीन और तिब्बत से भी स्पर्श करती है। इन दिशाओं में भी रक्षा की उत्कृष्ट व्यवस्था रखनी ही पड़ेगी। इस बड़ी और पर्वतों के कारण दुर्गम सीमा की रक्षा के लिये कितने अधिक जन-बल तथा साधन-बल की आवश्यकता होगी, यह कल्पना कोई भी सुगमता से कर सकता है।

काश्मीर की आर्थिक-स्थिति अभी ऐसी नहीं है कि वह केवल रक्षा पर इतना अधिक व्यय कर सके। उस के आर्थिक स्रोत प्रधानतया वहां उपजने वाले फल-मेवे, ऊनी व रेशमी वस्त्र, वानस्पतिक औषधियां और वहां के कारीगरों का लकड़ी आदि का काम ही हैं। केवल इनके सहारे काश्मीर इतनी बड़ी और प्राकृतिक दृष्टि से कठिनता-पूर्वक रक्षणीय सीमा की रक्षा का प्रबन्ध नहीं कर सकता। तब क्या भारत हानि उठाकर भी उसकी रक्षा का भार अपने सिर लेगा? यदि उसने ऐसा किया तो उसकी स्थिति पश्चिमी सीमाप्रांत के कबायलियों से उलझने वाले ब्रिटिश शासकों की अपेक्षा भी अधिक चिन्तनीय हो जायगी।

इहयुगीन सामरिक कला की दृष्टि से काश्मीर के रक्षकों को एक और भी बाधा का सामना करना पड़ता है और वह है आक्रान्ताओं पर वायुयानों द्वारा आक्रमण में असमर्थता। काश्मीर पर आक्रमण करने वाले प्रायः निम्न भूमि में से आक्रमण करेंगे और काश्मीर के रक्षक वायुयानों को उन पर बम आदि अस्त्रों का प्रहार ऊँचे पहाड़ों पर से करना पड़ेगा। फलतः आक्रान्ता सुगमता से पहाड़ों की ओट में छिपे रहेंगे और रक्षकों की चोट से बचे रहेंगे। रक्षकों के अस्त्र साधारणतया उनकी अपनी ही दिशा के पहाड़ी ढलानों पर गिरेंगे, आक्रान्ताओं की दिशाओं के ढलानों पर नहीं। और इस लिये काश्मीर की रक्षा की दृष्टि से वहां के युद्धों में आजकल के सबसे बड़े शस्त्र वायुयान का प्रयोग सदा बाधायुक्त ही रहेगा।

यदि जनमत इत्यादि की विधि के पश्चात् काश्मीर स्थायी रूप से हिन्द यूनियन का ही अङ्ग बन गया और भारत पर ही उसकी रक्षा का बोझ आ पड़ा, तो एक कठिनाई यह भी होगी कि काश्मीर की सहस्रों मील लम्बी सीमा के रक्षार्थ उसके पास सैनिक यातायात का मार्ग बोतल की तंग गर्दन की भांति केवल पठान-कोट-कठुआ की सड़क रहेगा। आक्रमण सहस्रों मील की सीमा पर होंगे और रक्षक केवल इस मार्ग से काश्मीर में प्रविष्ट हो सकेंगे।

इन सब बाधाओं के होते हुए भी काश्मीर का भार उठाना भारत के लिये व्यवहार-नीति-संगत केवल तभी हो सकता है जब कि काश्मीर की भूमि निकट भविष्य में ही असाधारण मूल्यवान––रत्न-धातु-तैलादि-गर्भा सिद्ध हो। इसकी अनेक सम्भावनायें की जा रही हैं, परन्तु आज वे सब अनिश्चित हैं। इसके अतिरिक्त इस सम्भावित प्राकृतिक धन-धान्य को भूगर्भ में से निकाल कर उपयोग में लाने के लिये जो यन्त्र और द्रव्य-सम्पदा आवश्यक है, उसका भी भारत के पास अभाव है।

काश्मीर की आबादी निर्विवाद रूपेण मुस्लिम-बहुल है। संस्कृति और परम्परा की दृष्टि से यह सम्भावना सदा बनी ही रहेगी कि वहां के मुस्लिम निवासी अपने सधर्मियों के देश पाकिस्तान में मिलना पसन्द करें। यदि उन्होंने अपने धार्मिक पक्षपात को छोड़कर अपने व्यापारिक लाभ के लिये भारत के साथ मिलने का निश्चय किया, तो भी भारत को यह विचार करना होगा कि वह ऊपर वर्णित कठिनाईयों से युक्त देश की रक्षा का भार अपने सिर पर लें अथवा नहीं। इस विषम प्रश्न का उत्तर, हम चाहते हैं कि, प्रत्येक पाठक स्वयं देने का यत्न करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी

सन्यासिनी दीप-मालिका का मठ। भोर-वेला में जीवन की हरियाली तब चूने लगी थी। उस वेला में नदी तट पर जाकर खड़ी हुई मालिका—जैसे यौवन की पूर्ण देन को विपुल वैराग्य से अस्वीकार कर। उदासीन-सी वह खड़ी-खड़ी नदी के उस पार की उस अस्पष्ट मनुष्य-मूर्ति को देखने लगी। देखते-देखते भौंहें सिकुड़ गईं, विरक्ति की वक्र रेखा ने आकृति के सुकुमारत्व को, अपूर्व श्री को ग्रस कर विद्रोह की चिताग्नि को मानो मूर्तिमान कर दिया।

हां, पुरुष ही तो है वह सामने। घृणा, विराग से भरी-भरी विचारने लगी—वही पुरुष जिसके अमानुषिक अत्याचार का कालिख आज बंगाल और पंजाब पर लिपा हुआ है, जिसके अत्याचार ने आज करोड़ों नारियों को अनाथ-आश्रयहीन कर दिया है, करोड़ों सती धर्म को लुटाकर संसार में आज आवर्जना स्वरूप हो रही हैं, पतिताओं की संख्या बढ़ाने को बाध्य की गई हैं, जिनसे की गई भयानक निष्ठुरता की कथा को सुन-सुन कर उसकी रात्रि की निद्रा समाधिस्थ हो गई है।

मिथ्या है? अतिरंजित है? परन्तु सो भी कैसे? आज हजारों अत्याचार-पीड़ित, लूट ली गई अभागिनियों से आश्रम पूर्ण हो रहा है, मठ में तिल-मात्र स्थान भी नहीं बच पाया है। क्या वे सब ही अतिरंजित बातें अथवा मिथ्या कहने में पटु हैं। उन बातों के स्मरण से मालिका के नेत्र क्रोध व घृणा से आरक्त-श्री सम्पन्न हो उठे।

भोर वेला में नित्य की भांति नदी-स्नान करना वह आज भूल गई; भूल गई पूजा-अर्चना करना। मठ में आई पीड़ित-स्त्रियों से सुनी हुई अत्याचार की कहानी मानो जीवन प्राप्त कर उसकी खुली हुई आंखों के सामने आकर चित्रवत् घूमने लगी। विद्रोह की ज्वाला ने हृदय की नारी के ममत्व, स्नेह, कोमलता को ग्रस लिया, एक अद्भुत दृढ़ता से उसके ओष्ठ परस्पर आबद्ध हो गये।

नित्य की भांति श्वेत बगुला आकर नदी किनारे बैठ गया और कदाचित् अपने स्नान की साथिन सन्यासिनी को पुकारने के लिए पंख फड़फड़ाने लगा।

दीप-मालिका का विक्षिप्त चित्त सब ओर से सिमट कर उस श्वेत बगुले पर केन्द्रीभूत हुआ। मुख पर स्नेह-स्निग्ध हास्यरेखा विकसित हो उठी।

कई वर्षों की कथा! नहीं, कहां? उसे तो लगता है जैसे अभी उस दिन की कोरी-सी कथा है जिस दिन दुनिया को खोकर खोई-सी वह हठात् ही इस आश्रम में पहुँच गई थी, और मृत्यु-पथ यात्री मठ के ऋषि-सम प्रधान सन्यासी ने अपने कम्पित हाथों से उसके ललाट पर तिलक लगा कर उसे आश्रम की प्रधान सन्यासिनी का आसन सौंप दिया था।

उस दिन, हां, उस दिन नदी-तट पर यही बगुला था उसका साथी, समवेदक, बन्धु, मित्र — सब कुछ ही न। परम स्नेह से मालिका ने बगुले की ओर देखा, फिर नदी में उतर पड़ी। बगुला भी उसके साथ उतरा और तैरता हुआ निकट पहुँचा।

उस पार तट पर खड़ा जो मनुष्य इस स्नेह-मिलन को कदाचित् विस्मित आतुरता से देख रहा था, उस को मालिका शायद भूल गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोर के कागों की पुकार से आकृष्ट हो मालिका ने एक बार आंखें उठाकर आकाश की ओर देखा। हां, देर हो गई है आज उसे! लौटती हुई दृष्टि ने उस पार खड़े मनुष्य को ढूंढ पाया। घृणा-विरक्ति मुख पर व्याप्त हुई। मालिका स्नान शेष कर तट पर उठी।

—२—

आश्रम के लौह-द्वार पर पहुँच कर सिक्तवसना मालिका की दृष्टि जिस पर पड़ी, वह कोई भूत-प्रेत नहीं, मनुष्य ही था। नदी-तट का गेरुआ वस्त्रधारी वही युवक सन्यासी ही तो है न यह—पहिचाना मालिका ने उसी क्षुद्र मुहूर्त में—वही नीच अभद्र, असभ्य, जो कि नारी का स्नान कदाचित् लुब्ध नेत्रों से ही देख रहा था।

गीले वस्त्र को वक्ष-स्थल में समेट कर, कठोर किन्तु संयत स्वर से उसने पूछा—"आप किसे ढूंढते हैं?"

"मैं?"—उसने मालिका को देखा, देखा और पुनः देखा। वेदना-मिश्रित तृप्ति की आभा मुख पर व्याप्त हुई। "मैं?" मुंह फेर कर वह बोला—"दिन भर के लिए आश्रम में·····"

"यह सन्यासिनियों का आश्रम है, पुरुष प्रवेश नहीं कर सकता, महाशय!"

"और सन्यासी?"

"किन्तु पुरुष तो वह भी है न।"

"फिर यों कहो कि सन्यासिनी को भी सुरक्षा की जरूरत है—आत्म-विश्वास आत्म-बल का अभाव हुआ करता है।"

मालिका के नेत्रों में क्रोध साकार हुआ — "मैं आपसे तर्क वितर्क नहीं कर सकती।"

शान्त स्वर में सन्यासी ने कहा — "तर्क ही सही रास्ता दिखलाता है, देवि! आप तो चिढ़ती हैं—"

"चिढ़ती हूँ, दुर्मुख? अत्याचारी पुरुष के १६४७ के अत्याचार की कहानी, बर्बरता की कथा, कलंक की गाथा दुनिया के पर्दे पर छपी हुई है, छपी रहेगी! युग-युगान्तर तक उस कथा को सुनकर बन के पशु-पक्षी, पेड़ पौधे तक घृणा से मुंह फेर लेवेंगे और तुम्हारी ही सन्तान तुम्हारी इस पशु-कीर्ति पर थूकेगी। तुम मुसलमान नहीं, हिन्दू हो; किन्तु हो तो वही पुरुष ही—जिस पुरुष ने पंजाब और बंगाल ही नहीं, वरन् संसार के कोने-कोने में मनुष्य को अनाथ कर दिया है, खून की नदी बहा दी है, नारी-माता को रिक्त व सर्वशांत कर धूल में मिला दिया है—हो तुम वह पुरुष ही न! जाओ, चले जाओ। दिन की परछाईं को रौंदने का तुम्हें अब कोई अधिकार नहीं है। जाओ, यहां तुम्हारे लिये जगह नहीं है!"

"और अगर मैं न जाऊं?"

"जबरदस्ती?"—वह हँस उठी एक विद्रोह-पूर्ण हँसी।

"ऐसी ताकत अब तुम में बच नहीं रह पाई है—नारी को अपमानित कर, मनुष्य का खून पीकर वह ताकत मर मिटी है। समझे? नारी अब अबला नहीं, सबला है। हम लेवेंगी बदला—खून का बदला, अपमान का बदला, लुट जाने का बदला, बदला! बदला!!"

"लेवेंगी हम बदला," पचासों कण्ठों से पुकार उठी—"बदला! बदला!!"

सन्यासी रुद्र-दमन ने आंख उठा कर देखा—पचासों सन्यासिनियों ने लाठियां लिए हुए उसे घेर लिया है। आश्रम से कब वे निकलीं, कब उसे घेरा, यह सब रुद्र कुछ भी तो नहीं जान पाया था।

रुद्र मुस्कराया—"बदला!"

"हां बदला, मन्दिर तोड़ने का बदला, अनाथ होने का बदला, अन्याय का बदला, खून का बदला, बदला, बदला!"

रुद्र पुनः मुस्कराया, फिर सब के प्रति हाथ उठा कर नमस्कार कर चल पड़ा—धीर गति से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

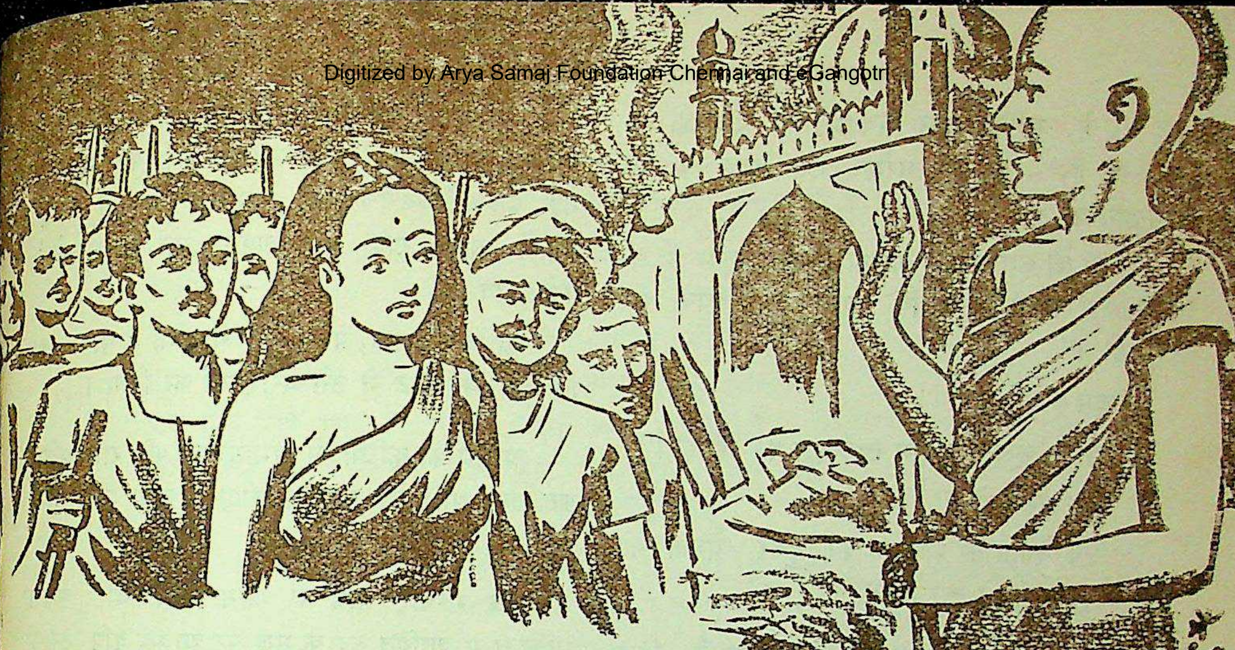

"नहीं देवि, मंदिर और मसजिद मात्र विश्व-देवता का निवासस्थान है।"

—३—

रात्रि तब जा चुकी थी। दिन का प्रकाश कुमकुम भरी थाल सँभारे उतर पड़ा था विश्व-प्राङ्गण में। शहर में मृत्यु का आतंक व्याप्त था। बलवान निर्बल को मार रहा था। मन्दिर और मसजिद तोड़े जा रहे थे। कहीं किसी मुहल्ले में आग लगा दी गई थी, कहीं धांय-धांय बन्दूकें चल रही थीं, कहीं भगदड़ मची थी।

तब आश्रम में शंख, घण्टा बज उठा, सैंकड़ों सन्यासिनियां तथा आश्रम की शरण में आई असहाय स्त्रियां आश्रम-स्थित शक्ति-मूर्ति का वन्दना-गान करने में जुटी हुई थीं।

"देवि, सोमनाथ जी का मन्दिर तोड़ डाला!"

मालिका के हाथ की आरती की थाली कांप कर गिर पड़ी।

मन्दिर-द्वार पर अस्त्र-शस्त्र सज्जित मकरन्द खड़ा था। आंखों से उसके खून-सा चू रहा था।

मालिका ने श्रद्धा-भक्ति से शक्ति-मूर्ति को देखा; देखती हुई वह गम्भीर स्वर से कह उठी — "बदला, बदला, खून का बदला, अपमान का बदला, हम भी लेंगे बदला!"

सब एक स्वर से चीत्कार कर उठीं—"हम भी लेंगी बदला! तोड़ो मसजिद, लो बदला!"

हिन्दू मुहल्ले के छोर पर मसजिद। मसजिद पर हजारों साबल आदि औजार पड़ रहे थे। झनझन, खनखन, चीत्कार और जयोल्लास का घोर निनाद। आश्रमवासी हजारों स्त्री-पुरुषों के साथ अग्रणी रूप से मालिका का हाथ एक-सा चल रहा था—न विश्राम था, न विराम। मसजिद का एक अंश टूट चुका था।

तभी उस ध्वंस-लीला में पहुँच गया वह तरुण सन्यासी रुद्र—रुद्र की तरह नहीं, अपितु करुणा का पात्र लिए, धीर-शान्त, अपने आप में भरा-भरा-सा!

"ठहरो भाइओ, ठहरो बहिनों!"—उस अविनीत दृश्य के मध्य में अपनी बलिष्ठ भुजाओं को उठा कर रुद्र आकर खड़ा हो गया।

एक अवहेलना से जनता ने उसे देखा।

अग्रवर्तिनी मालिका ने पूछा—"तुम? ठहरें? किन्तु क्यों? ठहरें क्यों?"

"क्योंकि ठहरना ही धर्म है, विवेक और बुद्धि है!"

"धर्म!" — विद्रोह-पूर्ण हास्य से वह स्थान गूंज उठा — "धर्म? जबकि बंगाल और पंजाब लुट रहे थे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लुट रहे हैं, मन्दिर और देव-प्रतिमायें टूट रही थीं, टूट रही हैं, तब कहां धरोहर रख आए थे इस धर्म-ज्ञान को ?"

"वह थी समझ की गलती। भूल भूल ही की सृष्टि किया करती है, जो कि आज तुम स्वयं कर रही हो।"

"हम ? भूल ?"

"हां हां, भूल-भूल, तुम स्वयं भूल कर रही हो।"

"क्या कहते हो ?"

"एक देवता का अपमान कर दूसरे देवता को पूजना भूल नहीं तो क्या है ?"

"यह हिन्दू नहीं, मुसलमान है, नकली है, हिन्दू कभी हो ही नहीं सकता। मारो मारो, इसे मार डालो"—कोई बोला। अपार जन-समूह रुद्र पर टूट पड़ा।

"ठहरो!"—मालिका ने हाथ उठाया, रुद्र के निकट पहुंच कर कहा — "यह मन्दिर नहीं, मसजिद है; फिर इसे क्यों न तोड़ें ?"

"मसजिद है, सो सही है, ठीक है; परन्तु है देवता का निवास-स्थान ही। चाहे अल्लाह का हो, चाहे ईश्वर का, अथवा जिशुक्राईस्ट का, है देवता का निवास-स्थान ही—वही देवता जिसे एक दिन किसी मनुष्य ने पूजा था, हृदय की श्रद्धा-भक्ति अर्पण की थी, ईश्वर कह कर माना था। चाहे वह मनुष्य मुसलमान ही क्यों न रहा हो; लेकिन था तो मनुष्य ही न। एक श्रद्धेय वस्तु, जिसे एक बार कोई ईश्वर मान कर पूज चुका हो, उसी पूजित पावन-वस्तु को मनुष्य जाति ही द्वारा अपमानित किया जाना परिहास नहीं तो क्या है ?"

"किन्तु—"

"नहीं, अब किन्तु-परन्तु नहीं देवि, मन्दिर और मसजिद मात्र विश्व-देवता का निवास-स्थान है, है मनुष्य के भक्ति-सम्मान की श्रद्धांजलि का एक केन्द्र—उसे अपमानित करना यदि ठीक समझो तो करो।"

"क्या ?"

"हां, अपने मन के प्राण से पूछो। भूलो नहीं, यह कोई व्यक्ति-विशेष या जाति-विशेष की मसजिद नहीं, बल्कि विश्व-देवता का निवास स्थान है। अच्छा तो, मैं चला; अब तुम अपने मन से समझौता करो, देवि!"

रुद्र चलने लगा, परन्तु वह चल भी न पाया था कि लाठी की चोट ने उसे धराशायी कर दिया।

—४—

आश्रम की कुटिया में अमावस्या की रात्रि-प्रवेश कर स्तब्ध थी। तैल-दीप का क्षीण प्रकाश उन दोनों पर पड़ रहा था।

उस गम्भीर रात्रि में जाग रही थी केवल मालिका। शायित रुद्र के मुख पर आबद्ध दृष्टि उसकी क्रमशः विस्फारित होने लगी।

"विश्व मन्दिर के पुजारी!"

सन्यासी ने आंखें खोलीं। मालिका को देखा—शायद पहचाना, न पहचाना, कहा—"मैं कहां ?"

"आश्रम में।"

"क्यों ?"

"तुम्हें चोट लगी हुई है।"

"मैं यहां ?"

"हां।"

"किन्तु सन्यासिनियों के आश्रम में पुरुष का प्रवेश निषिद्ध है न ?"

मालिका ने मुंह फेर लिया।

"क्यों देवि, इस नियमोल्लंघन का प्रायश्चित्त भी सोचा है या नहीं ?"

"किन्तु किसी एक दिन के बंध चुके नियम को मैं आज कैसे लांघती ?"

चौंक कर रुद्र ने मालिका की ओर देखा, और अपलक नेत्रों से देखते हुए पुकारा—"कल्याणी!"

मालिका के मुख पर विषाद-खिन्न हँसी भर उठी—"पहचाना, सो भी इतनी देर के बाद ?"

(शेष पृष्ठ २४ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीत

श्री निरंकारदेव सेवक

मैं किसी की पुतलियों में स्वप्न बन छाने लगा हूं !

भावना में उड़ क्षितिज के पार जाना व्यर्थ है अब,
कल्पना के स्वर्ग सुन्दरतम सजाना व्यर्थ है अब,
फूल कलियों और पत्तों से कहीं निर्जन विपिन में--
दूर जग से प्रेम की कुटिया बनाना व्यर्थ है अब।
एक दिन मेरे लिए थी सृष्टि नश्वर, जन्म निष्फल,
किन्तु अब संसार में भी सार कुछ पाने लगा हूँ!
मैं किसी की पुतलियों में स्वप्न बन छाने लगा हूं!

प्यास जो मन में जगी थी और अधरों तक न आई,
आग जो तन में लगी थी, पर न जग को दी दिखाई,
चाह जो अभिशाप जीवन का बनी, जिसकी वजह से—
बिन खिले कुम्हला गईं कलियां हृदय से जो लगाईं।
वासना मेरी रही अनुराग की प्रतिद्वंद्विनी जो,
मैं उसे अब प्यार का आधार समझाने लगा हूँ।
मैं किसी की पुतलियों में स्वप्न बन छाने लगा हूँ!

बार कितनी उंगलियों ने तूलिका रक्खी-उठाई,
पर नहीं जिस रूप को रेखा कभी पहिचान पाई,
शब्द चढ़ते औ' उतरते हो गए जिस पर कुसुम-से,
अर्चना जिस भाव की सीमा न फिर भी जान पाई।
वेदना जिसको कठिन था बांधना गति लय स्वरों में,
मैं उसे मन-बीन पर अब गीत में गाने लगा हूं!
मैं किसी की पुतलियों में स्वप्न बन छाने लगा हूं!

यह घटा उठकर तुम्हें उज्जवल बनाने को चली है,
यह मलय मारुत तुम्हारी स्वांस सौरभ में पली है,
यह तुम्हारे स्वच्छ तलवों में रची रवि-रश्मियां हैं,
यह तुम्हारी मंजु-अलकों में गुंथी तारावली है।
तुम विचरती हो मनोहर कल्पना बन मन-गगन में,
मैं तुम्हें हर रूप में अब प्राण, अपनाने लगा हूँ!
मैं तुम्हारी पुतलियों में स्वप्न बन छाने लगा हूँ!

प्यार करता है मुझे कोई, नहीं अपराध इस में,
मैं किसी को चाहता हूँ, विश्व को क्यों बाध इसमें!
मैं मनुज हूँ, चाह के तूफान को कब तक संभालूं?
फूट बहना चाहता है मन छिपी है साध जिसमें।
हां, जगत में जबकि सोते हैं सभी सुख-नींद अक्सर,
रात में छिप कर किसी के स्वप्न में जाने लगा हूँ!
मैं किसी की पुतलियों में स्वप्न बन छाने लगा हूँ!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम से

'परदेशी'

मैं तारे गिन रहा, तुम्हें भी नींद न आती होगी !

अम्बर की नीली शैय्या पर चांद आज अलसाया,
किरणों का दल सागर तल से प्यार लहर का लाया,
बन में हंसती नई कली का मादक यौवन खिलता—
प्रथम बार मिल भौंरों से जो सिहर-सिहर शरमाया;
मुझको पिछली याद आ रही, तुमको आती होगी !
मैं तारे गिन रहा, तुम्हें भी नींद न आती होगी !

किसी सुहागिन ने शुभ बेला दीपक नया सँजोया,
आज जगा है उसके मन का स्पन्दन सोया सोया !
दूर गांव का पथिक बावला लौट पड़ा अनजाने,
प्रेयसि के घर पाहुन आया आज सजन वह खोया !
खिली चांदनी तारों-सी बूंदें भर लाती होगी !
मैं तारे गिन रहा, तुम्हें भी नींद न आती होगी !

धीमे धीमे जलती मेरे शयन-कक्ष की बाती,
पिया विदेसी बने, कहां से 'स्नेह' हाय, यह लाती ?
"तेरी राधा जरे विरह में, लौट अरे निरमोही"—
दूर गांव की गैल अकेली एक गुजरिया गाती।
मैं करवट ले रहा, चांदनी तुम्हें जलाती होगी !
मैं तारे गिन रहा, तुम्हें भी नींद न आती होगी !

दृग को आधे मूंद, नापता शशि से अपनी दूरी,
और चाहता उस दिन जो निज बातें रहीं अधूरी—
उन्हें किरण के पंथ चांद तक पहुँच सुना मैं आऊं,
किन्तु बीच पर्वत तारे, हों कैसे चाहें पूरी !
जीवन की यह घात रात भर तुम्हें रुलाती होगी,
मैं तारे गिन रहा, तुम्हें भी नींद न आती होगी !

मैं 'निर्मम' ही रहा, किन्तु तुमने तो अपना माना,
और सहज ही तुमने दुख भी मेरे जी का जाना;
सुने न चाहे इन्दु, लहर की व्यथा वही समझेगी,
बहती सरि के उर की पीड़ा को किस ने पहचाना !
रोते चातक की सिसकी क्या तुम्हें जगाती होगी ?
मैं तारे गिन रहा, तुम्हें भी नींद न आती होगी !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरंजन : एक मनोवैज्ञानिक आवश्यकता

आज के व्यस्त और जटिल जीवन को सरस बनाने में मनोरंजन व आमोद-प्रमोद का प्रमुख स्थान है। प्रस्तुत लेख में विद्वान लेखक ने विभिन्न पहलुओं से मनोरंजन की आवश्यकता और उसके प्राचीन-अर्वाचीन व देशी-विदेशी साधनों पर विचार किया है। सं०

प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए०

यह युग बड़ा तीव्रगामी है। आधुनिक मनुष्य का जीवन अत्यन्त व्यस्त बन गया है। उसे अपने दैनिक कार्यों की जटिलता से अवकाश नहीं प्राप्त होता। प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक वह "नून तेल लकड़ी" के चक्र में फंसा रहता है। उसे पल मारने का भी अवकाश नहीं। बम्बई अथवा देहली ऐसे बड़े नगरों में साधारण व्यक्ति सोचता है—मानों सब शहरी कहीं तीव्रगति से आग बुझाने भागे जा रहे हों। आज का व्यक्ति थका-मांदा रात्रि में घर आता है और पुनः दूसरे प्रभात वही कार्य प्रारम्भ कर देता है।

यदि हम इसी प्रकार जीवन की सामग्री जुटाने में ही सम्पूर्ण दिन व्यतीत कर दें और जीवन का आनन्द न उठा सकें, तो हमारे जीवन में शेष रह ही क्या जायगा। जीवन जिंदादिली, उत्फुल्लता एवं मनोरंजन से सरस बनता है। रुपया-पैसा नौकरी-व्यापार सब का महत्व इसी बात में है कि ये मानव जीवन की सर्वाङ्गीण उन्नति में सहायक बनें। ये साधन हैं, साध्य है सरस जीवन। जीवन को सरस बनाने में मनोरंजन का प्रमुख स्थान है।

व्यस्त मानव-जीवन

मानव-जीवन में मनोरंजन की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता है। सारे दिन का थका-मांदा मजदूर, कचहरी में नीरस मुकदमे सुनने और पैरवी करने वाला मजिस्ट्रेट, वकील, पेशकार, दूकान पर बैठा हुआ व्यापारी, घर में सुबह से शाम तक जी तोड़ परिश्रम करने वाली नारियें—काम करते-करते थक कर सभी यह चाहते हैं कि कोई ऐसा साधन मिले जिससे हृदय की मुरझाई हुई कली पुनः उत्फुल्ल हो उठे, मन पुनः सक्रिय व सतर्क बन जाय। परिश्रम से चकनाचूर होकर या घात प्रतिघात से व्यथित होकर मानव-मन स्वभावतः मनोरंजन चाहता है। प्राचीन काल में मानव जीवन इतना जटिल न था; जीवन-यापन के साधन सर्व-सुलभ थे। अतः तब मनोरंजन की उतनी आवश्यकता न थी जितनी आज है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनन्दमय जीवन व्यतीत करने के लिए धन, विद्या, अच्छा सहयोग, स्वास्थ्य इत्यादि की आवश्यकता है, परन्तु ऐसा न समझना चाहिए कि इन वस्तुओं के होने से ही जीवन आनन्दमय बन सकता है। प्रत्येक परिवार को अपनी हैसियत के अनुकूल कुछ न कुछ मनोरंजन का साधन अवश्य मिल सकता है। हम मानते हैं कि समय और रुचि-परिवर्तन के साथ-साथ मनोरंजन भी बदले हैं, किन्तु उनके थोड़े से परिष्कार से वे आजकल के समय के अनुकूल बन सकते हैं। प्राचीन यूरोप के कुछ मनोरंजन वास्तव में बड़े विचित्र

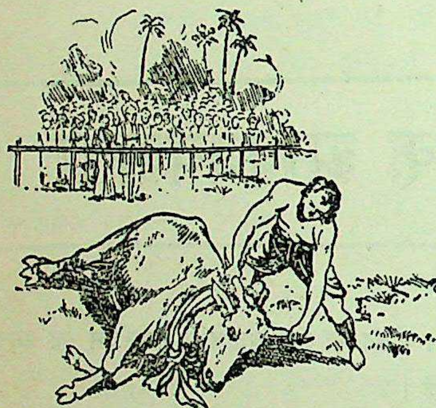

रहे हैं। रोम में भैंसों की लड़ाई, मनुष्य और हिंस्र पशुओं के संघर्ष, गुलामों की सिंह के पिंजरों में लड़ाई, शिकार इत्यादि का विशेष प्रचार रहा। भारत में आखेट, नाच, गीत, द्यूत, सवारी, मेले, इत्यादि जनता के प्रिय मनोरंजन रहे। रंगमंच, आल्हा, अभिनय, हल्के संगीत-प्रधान स्वांगों, कठपुतलियों के तमाशों का विशेष स्वागत हुआ। भजन-कीर्तन इत्यादि के सरस प्रवाह में जीवन की कठोर वास्तविकता को भूलने की चेष्टा की गई। धार्मिक व सामाजिक उत्सवों की योजनाएं बनाई गई।

आज युग बदल गया है। इस युग की तन्मयता गत महासमर ने नष्ट करदी है। युगकी रुचि में भिन्नता आ गई है। पहिले जो मनोरंजन बड़े-बड़े धनिकों को उपलब्ध थे, वे आज साधारण व्यक्तियों को मिल सकते हैं। उनमें व्यय कम से कम होता है। आज के युग में स्वांग, कठपुतली, नाच, नौटंकी इत्यादि का प्रचार कम है। निम्न-स्तर के व्यक्ति ही इन साधनों द्वारा मनोविनोद करते हैं। हाकी, फुटबाल, वालीवाल, क्रिकेट इत्यादि खेल शिक्षित समुदाय के मनोविनोद के साधन हैं। विद्यार्थी जगत् प्रायः इन्हीं के द्वारा सक्रिय मनोरंजन प्राप्त करते हैं।

विज्ञान और मनोरंजन

विज्ञान ने हमें मनोरंजन के तीन साधन दिये हैं — ग्रामाफोन, सिनेमा, और रेडियो। बीस वर्ष पहिले ग्रामाफोन एक आश्चर्यजनक चीज समझा जाता था। इने-गिने व्यक्तियों के ही पास यह मशीनें थीं। रेकार्ड भी साधारणतः मध्य वर्ग और निम्नवर्ग के मनोविनोद के लिए थे। धीरे-धीरे जनता में सुरुचि और कला का विकास हुआ, लोग संगीत के कलात्मक पक्ष से परिचित हुए। अभिनय की ओर भी रुचि उत्पन्न हुई। सिनेमा मनोरंजन की वस्तु बन गया। प्रारम्भ में, फिल्म उछल-कूद से भरे होते थे, उनमें हल्का रोमांस प्रेम तथा कहीं कहीं कुरुचि भी थी। चार आने वाले मजदूरों के लिए अनेक गन्दे गानों से भरी हुई फिल्में बनीं। अब सिनेमा के मनोरंजन का कलात्मक विकास हो गया है। कुछ अच्छे समाज-सुधार की अभिरुचि से पूर्ण फिल्म भी बने हैं।

सिनेमा का दुरुपयोग

किन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि अधिकतर सिनेमा का दुरुपयोग ही हो रहा है। सिनेमा के भद्दे गाने आज गलियों में बच्चे बच्चे की जबान पर हैं, सिनेमा में अर्द्ध-नग्न नृत्य करने वाली वेश्याओं के गर्हित चित्र विद्यार्थी समुदाय की नेत्रों की शोभा बढ़ा रहे हैं; सीधे-सादे भोले नासमझ बालकों में 'रोमांस' और 'एडवेन्चर' की झूठी भावना फैल रही है, मानव जीवन के पाप-पूर्ण एवं मिथ्या पहलुओं को प्रकाश में लाया जा रहा है, समाज में विलासिता, गृहस्थ जीवन में असन्तोष, माता-पिता के नियंत्रण से भागने की चेष्टा, बुरी आदतें और फैशन —ये सब सिनेमा के कुफल हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

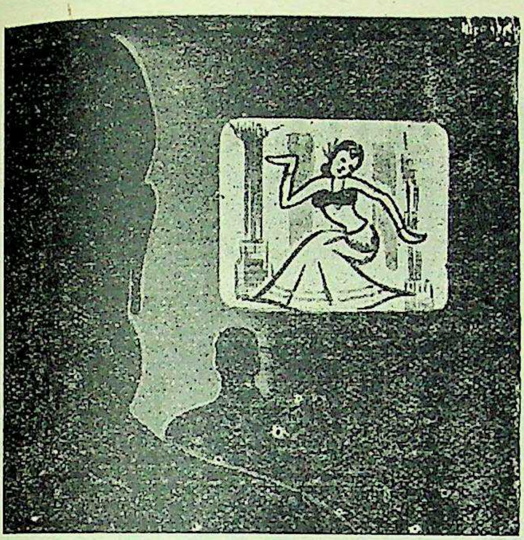

सिनेमा मनोरंजन का साधन है ? कुत्ता सूखा हड्डी को चबाते समय मुंह से निकले हुए रक्त को हड्डी से निकला हुआ समझ कर अतीव आनन्द प्राप्त करता है, दाद का रोगी दाद को पुनः-पुनः खुजला कर बड़ा प्रसन्न होता है, काले काले नन्दे सुअर कीचड़ और गन्दगी में लोट लोट कर सुख का अनुभव करते हैं। सिनेमा का जहरीला मनोरंजन भी कुछ ऐसा ही है। परिश्रम से चकनाचूर मजदूर जैसे शराब को बुरी समझते हुए भी अपना लेता है, वैसे ही आज जन-साधारण ने बुरा समझते हुए भी सिनेमा को अपना लिया है। प्राचीन काल के मनोरंजन कहीं अधिक स्वस्थ, सुरुचिपूर्ण और सभ्य थे। भारत में अखाड़ों की मिट्टी बोलती थी, तम्बूरों और सितारों के साथ हरि-कीर्तन में हमारे दिल हँसते और रोते थे, तब शारद चन्द्रिका में ठाकुर जी का सिंहासन लिए नावें तैरती थीं, स्वास्थ्य-प्रद शीतल मन्द समीर के झकोरों में हम स्वर्गीय सुख लूटते थे! रामयण और महाभारत की कथाएं, गीता के श्लोक और आल्हा की कड़ियां हमारी नाड़ियों में रक्त बन कर दौड़ती थीं। मीराबाई के हृदयोद्गार, तुलसी सूर के भजन हमें मनोरंजन के साथ साथ सन्मार्ग प्रदर्शित करते थे। इन स्वास्थ्य-प्रद मनोरंजनों की जगह अब सिनेमा की नर्त्तकियों का अधिकार है। हम सिनेमा से लौटते हैं बारह एक बजे—एक कामातुर और विषयी मनुष्य का चेहरा लिए हुए। क्या हम इसे वास्तविक मनोरंजन कह सकते हैं ?

जो परिवार खरीद सकते हैं, उन्हें रेडियो अवश्य खरीदना चाहिए। अपने अच्छे प्रोग्रामों के कारण रेडियो मनोरंजन का सर्वप्रिय साधन बन गया है। बच्चों औरतों और बड़े आदमियों के लिए अलग-अलग प्रोग्राम ब्राडकास्ट किये जाते हैं। निकट भविष्य में ऐसा समय आयेगा जब रेडियो का मनोरंजन कम आय वाले लोगों के लिए भी सुलभ हो जायगा। कुछ दिन हुए भारतीय आविष्कारक हंसराज ने दस रुपये में रेडियो बनाने की बात कही थी।

शारीरिक व बौद्धिक मनोरंजन

मनोरंजन का नियम यह होना चाहिए कि जो व्यक्ति मानसिक परिश्रम करते हैं—विद्यार्थी, अध्यापक, क्लर्क, बाबूलोग, दूकानदार आदि वे शारीरिक सक्रियता के मनोरंजन प्राप्त करें। क्रिकेट, हाकी, फुटबाल, टेनिस, वालीबाल या अन्य भारतीय देशी खेल खुली हवा में खेलें। इनसे मनोरंजन के साथ २ उचित व्यायाम भी मिल जायगा। मजदूर लोग पुस्तकालयों में जा कर नई नई पत्रिकाएं पढ़ें, कहानी, नाटक, समाचार-पत्र उपन्यासों में सुख लूटें। इनके लिए पुस्तकें और पत्र-पत्रिकायें आराम के साथ ज्ञान-वर्द्धन भी कर सकती हैं। इससे मजदूरों का जीवन सुसंस्कृत, कलामय और साहित्यिकता से पूर्ण बनेगा।

घरेलू मनोरंजन नर नारियों के लिए विशेष लाभदायक हैं। स्त्रियों को नृत्य, संगीत, पत्र-पत्रिकाओं, नई-नई वस्तुओं के निर्माण, ताश, कैरम, चौपड़, कटाई-बुनाई, घरेलू खेलों से मनोरंजन करना चाहिए। प्रत्येक परिवार सप्ताह में एक दिन छुट्टी करे, घर से बाहर सैर के लिए किसी उद्यान या सरिता तट पर जाय, कैम्प-जीवन का आनन्द ले। तैरना, कूदना, वृक्षों पर चढ़ना, बागबानी करना, पक्षी पालना, पत्र-पत्रिकाओं का पढ़ना मनोरंजन के उत्कृष्ट साधन हैं। हमारे त्योहार एक प्रकार के समारोह होने चाहिएं। प्रत्येक परिवार को परिस्थिति और हैसियत के अनुकूल मनोरंजन की सामग्री जुटानी चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१३वां आश्चर्य

श्री 'रावी'

साठ हजार वर्ष हुए, स्वर्गलोक में एक 'आश्चर्य-सम्मेलन' की स्थापना कुछ देवताओं और मनुष्यों ने मिल कर की थी। इस पृथ्वी के मनुष्यों के सम्बन्ध में सबसे बड़े आश्चर्य की खोज करना इस सम्मेलन का उद्देश्य है। सम्मेलन का अधिवेशन हर पांच हजार बरस बाद होता है जिसमें सबसे बड़े प्रचलित आश्चर्य का निर्णय किया जाता है।

गत वर्ष के सम्मेलन में जो १३वां आश्चर्य प्रस्तुत और स्वीकृत हुआ, उसकी खोज की कथा इस प्रकार है :

एक देवता अपने एक मनुष्य मित्र के साथ भारतवर्ष के एक बड़े नगर की सैर कर रहा था।

नगर की चौड़ी सड़क पर उस समय कुछ ही लोग चल रहे थे। अकस्मात् आमने-सामने से आने वाले दो आदमियों के शरीर आपस में टकरा गये और उनमें से एक सड़क पर गिर पड़ा। उसका नंगा पैर दूसरे आदमी के भारी जूते से दब कर चोट भी खा गया था।

"देखकर नहीं चला जाता!" गिरने वाले आदमी ने सम्हल कर उठते हुए कहा।

"अंधा कहीं का, सिर पर ही चढ़ा आता है और ऊपर से अकड़ दिखाता है!" दूसरे मनुष्य ने तिरस्कार-पूर्वक उत्तर दिया।

"अंधा मैं हूं कि तू! आया कहीं का लाट का बच्चा!" पहले आदमी का भी अब क्रोध बढ़ गया।

दूसरे आदमी ने अपने हाथ की छड़ी उसके कन्धे पर जमा दी।

पहले ने उसकी छड़ी छीन कर दूर फेंक दी और दोनों में लात-घूंसों के साथ गुत्थम-गुत्था हो गई।

एक तीसरा मनुष्य जो इस दृश्य को शुरू से ही देख रहा था, बीच में आ खड़ा हुआ और उसने दोनों को अलग कर दिया। वह उन दोनों से अधिक बलिष्ठ था और दोनों के मुकाबले में कुछ बड़ा आदमी भी जान पड़ता था। "आपको शर्म आनी चाहिए, भाई साहब!" उसने दूसरे आदमी को लक्ष्य कर कहा, "बेचारे गरीब का पैर कुचल कर आपने उसे गिरा दिया और ऊपर से आप ही उस पर हमला कर रहे हैं!"

"आप देखते नहीं, इसने मेरे कपड़ों पर कितनी धूल झोंक दी है और ठोकर से मेरा घुटना छील दिया है? अन्धों की तरह चलता है...!" दूसरे आदमी ने इस तीसरे का कुछ लिहाज करते हुए कहा।

"आप ठीक कहते हैं!" तीसरे ने शान्त भाव से मुस्कराते हुए कहा, "लेकिन यह आखिरी बात तो आपके बारे में भी कही जा सकती है, और फिर आप तो ज्यादा पढ़े-लिखे शरीफ आदमी हैं; अगर गलती [illegible] तो भी आपको इससे क्षमा-पूर्वक नर्मी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य दूसरों का बहुत अच्छा न्याय कर सकता है, लेकिन वैसी ही बात अपने ऊपर पड़ने पर अपनी उस न्याय-बुद्धि को गंवा बैठता है……

मनुष्य भलाई-बुराई को समझता है, लेकिन अपनी उस समझ का उपयोग दूसरों के लिये ही कर पाता है, अपने लिये नहीं।

से पेश आना चाहिए था, जबकि चोट इसके ही ज्यादा आई थी और इसने जान-बूझ कर कोई गलती नहीं की थी। सज्जनता का व्यवहार तो यह है कि ऐसे मौके पर दूसरे की सोलह आने भूल के सामने अपनी चार आने भर की भूल स्वीकार कर ली जाय और जिसे दुःख पहुँचे उसका दुःख दूर किया जाय—इंसानियत यही मांगती है।"

वह देवता और मनुष्य इन घटनाओं को प्रारम्भ से ही बड़ी दिलचस्पी के साथ देख रहे थे।

"यह तीसरा आदमी बहुत सुलझा हुआ और समझदार जान पड़ता है। मैं समझता हूँ, यह एक ऊंचा कोटि का मनुष्य है" — देवता ने अपने मनुष्य मित्र से कहा।

"ऊंची कोटि का नहीं, यह बिल्कुल मध्य कोटि का मनुष्य है; बल्कि हर तीन आदमियों के पीछे इस जैसे दो आदमी आपको आजकल की दुनिया में मिल जायंगे"— मनुष्य-मित्र ने कहा।

देवता को अपने मित्र की इस बात पर विश्वास नहीं आया। लेकिन उसने कुछ कहा नहीं और अपने मित्र के साथ-साथ सड़क पर चलता रहा।

वे तीनों आदमी अपने-अपने रास्ते पर अलग-अलग हो गये थे और ये दोनों उस तीसरे आदमी के पीछे-पीछे चल रहे थे। धीरे-धीरे सड़क पर भीड़ काफी बढ़ गई थी। तांगों, मोटरों, बाइसिकलों और पैदल चलने वालों की भीड़ इतनी हो गई थी कि उस देवता को अपने मित्र के साथ की वजह से कहीं-कहीं अटक कर रुक जाना पड़ता था।

अचानक एक जगह इन दोनों ने देखा कि सामने से एक साइकिल तेजी से दौड़ती हुई आई और इधर से जाती हुई एक मोटर की टक्कर बचाने के लिए सम्हलते-सम्हलते अपने सवार के साथ सड़क पर जा गिरी। गिरने वाले सवार का धक्का एक दूसरे राहगीर को भी थोड़ा-सा लग गया।

"अंधा गंवार कहीं का! साइकिल चलानी नहीं आती तो साइकिल पर चढ़कर चलता ही क्यों है, सुअर!" इस राहगीर ने उस गिरे हुए सवार पर लात और घूंसों की मार बरसाते हुए कहा।

देवता और उसके मनुष्य मित्र ने पास पहुँचकर देखा, वह राहगीर और कोई नहीं, पिछले झगड़े का बीच-बचाव करने वाला वह तीसरा आदमी ही था।

"इसमें कोई अस्वाभाविक या अनहोनी बात नहीं है। अपने और दूसरों के सम्बन्ध में इस तरह का अन्तर मनुष्य के व्यवहार में रहता ही है। वह दूसरों का बहुत अच्छा न्याय कर सकता है, लेकिन वैसी ही बात अपने ऊपर पड़ने पर अपनी उस न्याय बुद्धि को गंवा बैठता है"— मनुष्य मित्र ने अपने देवता-मित्र के कौतूहल का समाधान किया।

इसी घटना के आधार पर उस देवता ने स्वर्ग-लोक के पिछले वर्ष हुए आश्चर्य सम्मेलन में प्रस्तुत किया—

"मनुष्य भलाई बुराई को समझता है, लेकिन अपनी उस समझ का उपयोग दूसरों के लिए ही कर पाता है, अपने लिए नहीं!"

यही खोज १९वां आश्चर्य स्वीकृत हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम को प्राण, भुलादूं कैसे ?

श्री हरिश्चन्द्र वर्मा

मैं भी मानव, मानव जग का,
तुम को प्राण, भुलादूं कैसे ?

कब लहरों की पीर मिट सकी
सरिता के तट से टकराकर !
कब शलभों की प्रीति जल सकी
स्वर्ण-ज्योति पर प्राण जला कर !

समवेदन के इन आंसू से
तब निज ज्वाल बुझादूं कैसे ?
मैं भी मानव, मानव जग का,
तुम को प्राण, भुलादूं कैसे ?

एक वेदना से ही गिरि-भू—
अम्बर भी तड़पा करते हैं,
एक बूंद के प्यासे चातक
शून्य गगन देखा करते हैं;

चिर मचले अरमानों को तब
मैं ही प्राण, भुलादूं कैसे ?
मैं भी मानव, मानव जग का,
तुम को प्राण, भुलादूं कैसे ?

पाकर पावन स्पर्श तुम्हारा
आज हृदय बरबस लहराया,
नई चेतना की किरणों ने
चिर सोया अनुराग जगाया;

आज जागरण की वेला में
सुधि का दीप बुझादूं कैसे ?
मैं भी मानव, मानव जग का,
तुम को प्राण, भुलादूं कैसे ?

★

विश्व का शिव

(पृष्ठ १६ का शेष)

"और तुमने कल्याणी ?" रुद्र मालिका का हाथ अपने हाथों में लेकर धीरे-धीरे सहलाने लगा।

"क्या करोगे उस बात को जानकर, विश्व-मन्दिर के पुजारी !"

"नहीं, कहो, मैं सुनने के लिए आतुर हो रहा हूं।"

"विश्व-मन्दिर के पुजारी में यह आतुरता शोभा नहीं देती।"

"कल्याणी, कल्याणी, मुझे क्षमा करो ! मेरी गलती को, दोष को भूल कर मुझे पल भर के लिए क्षमा करो !"

"और दूसरे पल ?"

"कल्याणी !"

"परन्तु दूसरे पल यदि घर से निकाली हुई वधू घूंघट की आड़ से झांकने लगेगी तो उसे क्या देकर, क्या कह कर समझा दोगे ? भूल गये क्या ? और इतनी जल्दी ? एक दिन विश्व-मन्दिर के पुजारी ने एक विवाह मण्डप की सम्राज्ञी को जिस मन के बल पर ठुकराया था—"

"नहीं-नहीं, बस करो कल्याणी, मैं और सुनना और जानना नहीं चाहता, देवि ! आज मैं जानता हूँ, पहचानता हूं बस कल्याणी को, पाना चाहता हूँ आज कल्याणी को !"

रुद्र की उत्थित बांहों को सम्मान के साथ दूर हटा कर मालिका उठ कर खड़ी हो गई—"क्षमा करो, विश्व-मन्दिर के पुजारी ! तुम अपने को संकीर्णता में, बन्धन में मत बांधो। उस दिन के विवाह मण्डप की नव-वधू घूंघट की आड़ में समाधिस्थ हो चुकी है, अब उसे खोजना, ढूंढना व्यर्थ है।"

रुद्र उठकर खड़ा हो गया — "नहीं-नहीं, क्या विश्व-मन्दिर का पुजारी उस मन्दिर की पुजारिनी की पूजा करने का अधिकारी भी नहीं ? कैसे और क्यों ?"

सो मालिका ? वह वहां से हट न सकी। उसकी आंखों के सामने थी मौरधारी वर के दो स्वप्निल नयनों की लुटी हुई परछाईं !

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

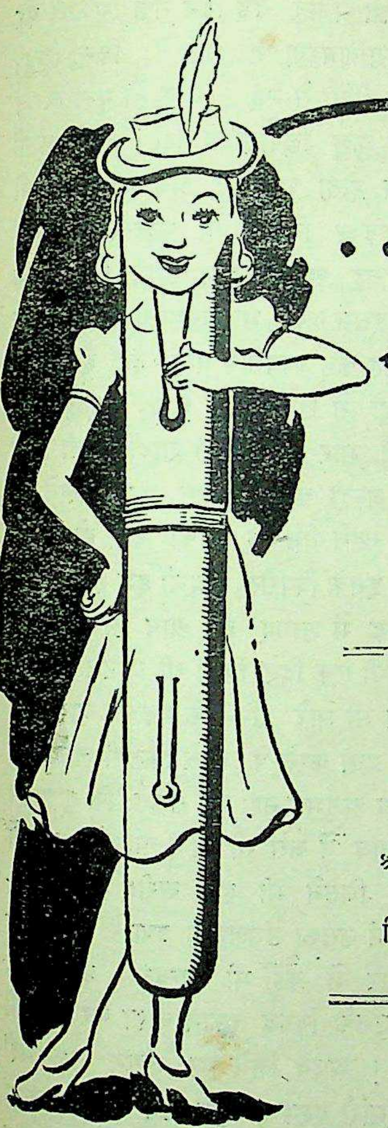

.....की आत्म-परिचय

लेखक

★

श्री वागीश्वर

विद्यालङ्कार

मेरा स्वास्थ्य बिल्कुल ठीक हो चुका था। मैं अस्पताल से विदा होने की तय्यारी कर रही थी कि डाक्टर साहब आ गये। उन्होंने मुझे मेरे आरोग्य-लाभ पर बधाई दी और मैंने उनका धन्यवाद किया। डाक्टर साहब कहने लगे—"अच्छा, तो आप जा रही हैं!"

मैंने कहा—"जी हां।"

वे बोले — "हमारा व्यवसाय ऐसा है कि हम किसी को फिर आने के लिये नहीं कह सकते। मैं आपके लिये यही मंगल-कामना करता हूँ कि आपका फिर हम लोगों से वास्ता न पड़े!"

कुछ देर रुक कर वे फिर कहने लगे — "मैंने अभी तक आपसे कुछ परिचय तो प्राप्त किया ही नहीं। यदि आप बुरा न मानें तो मुझे आपका वृत्तान्त सुन कर सचमुच बड़ी खुशी होगी। मैं अपने सभी रोगियों से, जब वे अच्छे होकर जाने लगते हैं, यह आग्रह किया करता हूँ। इससे मुझे एक विशेष प्रकार का आनन्द मिलता है।"

मैंने कहा—"इसमें बुरा मानने की क्या बात है? इस अन्तिम दुर्घटना को छोड़ कर, जिसके परिणाम-स्वरूप मुझे आपके यहां चिकित्सा के लिये आना पड़ा, मेरा जीवन प्रायः घटना-शून्य सा ही है। तो भी यदि आप सुनना ही चाहते हैं तो सुनिये।

"यह तो आप जानते ही हैं कि मेरा जन्म आज से कई वर्ष पूर्व विलायत के एक बड़े नगर में हुआ था। मेरे माता-पिता बहुत धनी-मानी व्यक्ति हैं। वहां हमारा मकान बहुत बड़ा है। परिस्थिति-वश मुझे बचपन में ही यहां आ जाना पड़ा, इसलिये वहां का मुझे अब कुछ विशेष ध्यान नहीं। सच पूछो तो मैंने यहां आकर ही होश सम्हाला है। मुझे आपका देश बहुत पसन्द है। यहां की प्राकृतिक शोभा देखते ही बनती है। यहां के सुनील अन्तरिक्ष में उषा और सन्ध्या हंसती हुई देव-कन्याओं की तरह सिन्दूर की होली खेलती हुई आती हैं और चली जाती हैं। रात भर चन्द्रमा चांदी का घड़ा लिये दूध की धाराओं से पृथ्वी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अभिषेक किया करता है। प्रातःकाल होते ही सूर्य भगवान अपने सहस्र-सहस्र करों से सुवर्ण लुटाने लगते हैं। आकाश, पर्वतों की चोटियां, वृक्षों के शिखर, मीलों तक लहलहाते खेत, नदियों के जल—सब सुनहले हो उठते हैं। इतना स्वर्ण !

"मेरा जन्म भले ही विलायत में हुआ हो, किन्तु मैं उस संकुचित देश-भक्ति या वर्ण-विद्वेष का शिकार नहीं हूँ जिसके कारण एक जाति दूसरी जाति के लोगों को एक आंख नहीं सुहाती। मुझे आश्चर्य होता है कि किस प्रकार देश भक्ति के नाम पर अपील करते ही एक पढ़ा-लिखा समझदार मनुष्य हिंस्र पशु से भी अधिक क्रूर हो जाता है! आखिर देश है क्या ? एक कल्पित भौगोलिक रेखा से घिरा हुआ भूमि का छोटा-सा टुकड़ा। फिर, वह रेखा भी तो समय-समय पर आगे पीछे हटती रहती है। युद्ध घोषित होते ही उस रेखा के इधर रहने वाले अपने तथा उधर रहने वाले पराये हो जाते हैं।

"आप देखते हैं कि मैं कुछ पर्दा करती हूँ। पहले हम में यह प्रथा न थी। किन्तु नई पीढ़ी इसे पसन्द करती है। आपको यह बात कुछ विचित्र-सी लगेगी कि स्वाधीनता के युग में यह उलटी गंगा कैसी ? परन्तु आप जानते ही हैं कि फैशन लौट-लौट कर आया करते हैं। दूसरी बात यह है कि स्त्रियां सौन्दर्य के लिये काफी कष्ट भी सह सकती हैं। घुंघराले बाल बनवाने तथा मोटे शरीर को पतला करवाने के लिये क्या-क्या नहीं किया जाता ? सौन्दर्य की दृष्टि से पर्दे का कुछ कम महत्त्व नहीं है। इसके हलके आवरण में से झलकता हुआ रूप छायावाद की कविता की तरह अधिक सुन्दर, अधिक सुकुमार, अधिक आकर्षक प्रतीत हुआ करता है। उसके प्रति कितनी उत्सुकता रहती है, यह किसी से छिपा नहीं। अन्तिम किन्तु सबसे मुख्य बात यह है कि इस पर्दा-प्रथा से पहले हमें घरों में ही कैद रहना पड़ता था। साथ ही हमें खाने-पीने का इतना व्यसन था कि हम हर घड़ी दो-चार घूंट पीये बिना काम नहीं कर सकती थीं; किन्तु इस पर्दे के साथ अब हम अपने स्वामियों के साथ सब जगह घूमती फिरती हैं। दुनिया को अपनी आंखों से देखती हैं और अब हम एक ही बार खा-पी कर कई दिन तक गुजारा कर लेती हैं। हमारा पाणिग्रहण तो होता है; किन्तु हिन्दू, मुस्लिम या ईसाई रीति से नहीं। बात तो कुछ लज्जा की है, किन्तु अब कुछ छिपाऊंगी नहीं। आप लोगों में भी कन्या-विक्रय होता रहा है। अब लड़के बिकने लगे हैं। जो लड़का जितना ही पढ़ा-लिखा और कुलीन होता है, वह अपना दाम उतना ही अधिक लगाता है और इसमें जरा भी शरमाता नहीं। कुछ नवयुवक तो विवाह को व्यवसाय बना लेते हैं। एक विवाह किया, वहां से खूब रुपया ऐंठा, कुछ समय बाद उस बीबी को मार कर दूसरी शादी करली। वे इसी तरह जल्दी-जल्दी कई शादियां कर डालते हैं और उनके पास खाने पीने को काफी पैसा हो जाता है। हमारे यहां, इसके विपरीत, अभी हम ही बिकती हैं। समय की दौड़ में शायद हम आप से कुछ पीछे रह गई हैं। मैं भी एक दिन बिकी थी। उस दिन की याद कर मैं आज भी मारे शरम के गड़-सी जाती हूं। हम योग्य स्वामी प्राप्त करने के लिये कितनी लालायित रहती हैं, यह आप अनुभव नहीं कर सकते; किन्तु अपने जीवनसंगी के चुनाव में जरा भी मुंह खोलने का हमें अधिकार नहीं। जिसने भी हमें खरीद लिया, भेड़-बकरी की तरह हमें उसकी उंगली के इशारे पर चलना पड़ता है। संसार में कहीं भी अन्याय, अत्याचार, अनर्थ हो, हम उसके विरुद्ध तूफान खड़ा कर डालती हैं। किन्तु हाय ! अपने लिये हम जबान तक नहीं हिला सकतीं। हमारी दशा सचमुच उन दरिद्र पत्रकारों जैसी है जो संसार व्यापी शोषण के विरुद्ध सदा आवाज उठाते रहते हैं, आन्दोलन करते रहते हैं; किन्तु अपने ही कंजूस व्यवस्थापकों तथा स्वामियों के विरुद्ध चूं तक नहीं कर सकते। जो दीपक सबको प्रकाशित करता है, उसके अपने सिर पर अंधेरा ही रहता है—पहले दिये तले अंधेरा होता था, अब समय बदल गया है न! मालूम होता है कि अंधेरे ने भी कसम खा रक्खी है कि वह रहेगा जरूर—कभी ऊपर, कभी नीचे, कभी आगे, कभी पीछे। मनुष्य अनादि काल से 'तमसा मा ज्योतिर्गमय'—'प्रकाश, अधिक प्रकाश !' की पुकार मचाये है, पर यह भी हाथ धोकर उसके पीछे पड़ गया है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि वाह, ऐसा अंधेर कैसे हो सकता कि संसार में अंधेर ही न रहे !

"दूर क्यों जाते हैं ? अपने अस्पताल को ही देख लीजिये। कैसी दयनीय दशा है ! समाज के अत्याचार से पीड़ित मेरी कितनी बहनें यहां पड़ी कराह रही हैं। लोगों ने इनके प्रति कैसा २ दुर्व्यवहार किया है ! भला हो आप सरीखे कुछ परोपकारी जीवों का जिनकी कृपा से इनमें से कुछेक फिर से नव-जीवन प्राप्त कर लेंगी। पुरुषों की हृदय-हीनता का ध्यान कर फिर संसार में जाने की इच्छा नहीं होती। सोचिये तो सही, शुरू में ये लोग कितने चाव से, कितने शौक से, कितने चोंचलों से हमें ले जाते हैं, हमें हर समय हृदय से लगा कर रखते हैं, हमारा मुंह देखते हैं, हमारी बात पूछते हैं; किन्तु कुछ दिन बाद ही यह उपेक्षा, यह रुखाई, यह कठोरता ! हृदय कांप उठता है। परन्तु अब चारा भी क्या है ? एक बार बिक कर सदा को गुलाम हो गये !

"डाक्टर साहब, बारह वर्ष हो गये हैं; किन्तु आज भी वह क्षण मेरी आंखों के सामने नाच रहा है जब वे पहले पहल मुझे पसन्द करने तथा लेने आये थे। मैं विलायत से बम्बई और वहां से सीधी लाहौर आई थी। मालरोड पर एक शानदार भवन हमें रहने को मिला। जगह खूब खुली और साफ सुथरी थी। दरवाजों और खिड़कियों में बड़े-बड़े शीशे लगे हुए थे। उनमें से ही हम आने जाने वालों की सैर देखा करती थीं। सायंकाल होते ही चहल-पहल बढ़ जाती थी। बिजली की बत्तियों से बाजार जगमगा उठता था। हमारे प्रेमियों के आने का कोई निश्चित समय नहीं था, इसलिये हमें सदा ही सज-धज कर तैयार रहना पड़ता था। सभी पढ़े-लिखे लोगों की बगल में अपनी किसी बहिन को देखकर हमें बड़ी प्रसन्नता होती थी कि देखो अब हमारी प्रतिष्ठा कितनी बढ़ गई है ! हमारे बिना कोई व्यक्ति 'अप-टु-डेट' ही नहीं समझा जा सकता। इसी मनोदशा में कभी-कभी हम भी अपने भावी जीवन के सुनहले स्वप्न देखने लगतीं। संसार नन्दन-वन मालूम होने लगता जिसमें अमृत की फुहारों के नीहार पर बने हुए इन्द्र-धनुषों की तोरण-माला के नीचे पारिजात की शाखाओं में देव-बालाएं अपने प्रेमियों के साथ सूर्य-रश्मियों के झूलों पर झूल रही हैं, उनके अमारुण गौर-गालों पर झलकती मोतियों की लड़ी को मन्द-मलयानिल चुपके से चुरा ले जा रहा है। कल्पना के तूंबों पर उमंगों के तार चढ़ा उनसे प्रेम का संगीत गाया जा रहा है, जिसकी लहरों में मस्त हो विमुग्ध मंजरियां झूम रही हैं।

"इन्हीं दृश्यों को देखती-देखती मैं बहुत दूर आ निकली। अचानक एक ओर कुछ विशेष प्रकाश-सा देख मैं उधर बढ़ी। देखा कि कुछ देवियां परस्पर आमोद-प्रमोद कर रही हैं, जिनकी सूरत-शक्ल तो हमारी पुराना-ढर्रा-पसन्द बहिनों की-सी सादी, पर सुन्दर है; किन्तु शरीर हमारी तरह भौतिक न होकर केवल प्रकाशमय है। उनकी आयु का अनुमान कर सकना कठिन था, तथापि यह मालूम होता था कि उन्होंने बहुत जमाना देखा है। साहस करके मैंने उनमें से एक के निकट जा कर नम्रता पूर्वक उसका परिचय पूछा तो उसने कहा—'तुम्हें शायद विश्वास तो न हो, जो नाटक तुम शेक्सपीयर के नाम से पढ़ती हो, उनमें मस्तिष्क कवि का है, किन्तु अक्षर मेरे हैं।' मेरी प्रसन्नता और आश्चर्य का ठिकाना न रहा। अब तो मैंने एक-एक का परिचय पूछना शुरू किया। संसार के बड़े से बड़े कवियों, लेखकों, कलाकारों, ऐतिहासिकों आदि की सहचरियों और प्रणयिनियों के दर्शन कर मैं वस्तुतः कृतकृत्य हो गई। उन्होंने कहा कि योग्य स्वामियों के हाथ में पहुँचकर वे अमर हो गई हैं। यद्यपि मर्त्यलोक में उन्हें कोई नहीं जानता, उनकी पूजा कोई नहीं करता; किन्तु यहां स्वर्गलोक में उन्हें उनके योग्य सम्मान प्राप्त हुआ है। यहां वे अपने यशोमय शरीर से विहार करती फिरती हैं। मन में आया कि क्या मुझे भी कोई इनका-सा ही योग्य स्वामी मिल सकेगा ? यही सोचती-सोचती मैं थक कर एक जगह बैठ गई। दिल-बहलाव के लिये मैंने हरी घास पर बिखरे हुए रंग-बिरंगे मोतियों को बीन कर ऊषा की अलकों के एक सुनहरे तार में पिरो लिया। हार को लेकर मैं चलने को ही हुई थी कि सामने इन्हें देखा। कहने लगे—'यह हार किस के लिये है ?' मैंने कुछ उत्तर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न देते हुए वह हार तुरन्त इनके गले में पहना दिया। सहसा स्वप्न टूट गया। देखा कि सामने कुछ नवयुवक खड़े हैं और हमें ध्यान से देख रहे हैं। पहचानने में देर न लगी। अरे, बिल्कुल वे ही तो हैं! ये इस मर्त्यलोक में कहां? किन्तु मारे संकोच के कुछ पूछ न सकी, एक ओर को दुबक गई। दिखाने वाले ने बहुत कहा कि यह खास माल है, कोई नवाब साहब पहले पसन्द कर गये हैं, यह उनके लिये सुरक्षित है इत्यादि; पर ये न माने। मुंह मांगा दाम देकर इन्होंने मुझे ले लिया। रुद्ध कण्ठ से सखी सहेलियों ने विदा दी। जैसी एक दिन अनसूया-प्रियंवदा ने शकुन्तला को दी थी। मन में आया—'स्वाधीनता से सदा के लिए हाथ धो लिए, पर बदले में क्या मिला?' परन्तु अब यह सोचना तो पानी पीकर जात पूछना है। घर पर बड़े उत्साह से मेरा स्वागत हुआ। सब ने मुझे बहुत पसन्द किया। विलायत से आई लेबल लगी खास शीशी मेरे लिये खोली गई। उसमें से मैंने कुछ थोड़ा सा पीया। अगले दिन प्रातःकाल ही उनकी परीक्षा थी। मैं साथ गई। पर्चे लिखने में मैंने इनकी खूब सहायता की। औरों की मैं जानती नहीं, किन्तु मेरी सुहाग-रातों के ये दिन घोर परीश्रम में बीते। सच पूछो तो सेठानियों की तरह हाथ पर हाथ रख कर बैठे रहना मुझे पसन्द भी नहीं। कुछ दिनों बाद सब को यह प्रसन्नता हुई कि ये उतीर्ण हो गये हैं। मेरी प्रतिष्ठा और भी बढ़ गई। मेरी सपत्नी अब परित्यक्ता की भांति जीवन व्यतीत करने लगी। उसे अशुभ समझा जाता था, क्योंकि वह इन्हें परीक्षा में उत्तीर्ण न करवा सकी थी।

"अंधे को क्या चाहिये? दो आंखें। मेरी महत्वाकांक्षा शुरू से ही साहित्यिक जीवन व्यतीत करने की थी। ये निकल पड़े कहानी-लेखक। एक दिन हम दोनों ने मिलकर एक कहानी तैयार की। प्रतियोगिता में उसे प्रथम पुरस्कार मिला, प्रतिष्ठा हुई सो अलग। हमारा उत्साह खूब बढ़ा। मासिक पत्र-पत्रिकाओं से मांग पर मांग आने लगी। सम्पादक लिखते कि पाठकों का तकाजा है कि प्रत्येक अंक में कम से कम एक कहानी आपकी कलम से अवश्य होनी चाहिये। अपनी इतनी प्रतिष्ठा होती देख मुझे प्रसन्नता तो होती ही थी, किन्तु किसी भावी अनिष्ट की आशंका से भय भी लगता। परन्तु ईश्वर की कृपा से हमारा वह संयुक्त साहित्यिक जीवन वर्षों तक निर्विघ्न चलता रहा, हम एक क्षण को भी पृथक् न हुए।

"मैं पहले ही कह चुकी हूं कि इनकी सब सफलताओं मैं ही का रहस्य, समझी जाती थी। जिस दिनसे इनके घर में मेरा आना हुआ, उसी क्षण से इनके दिन बदलने लगे थे। इनकी तरह और दूसरे भी इस भेद को समझते थे। साहित्यिक क्षेत्र में जो जी-जले इनसे बहुत पीछे छुट गये थे, उन्होंने षडयन्त्र करने शुरू किये। सोचा—न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी। अन्त में, अवसर देख, एक दिन कुछ दुष्ट मेरे अपहरण में सफल हो ही गये। मूर्खों ने बहुत यत्न किया कि मैं उन पर रीझ सकूं; पर यह न हुआ। मैंने उनसे कहा कि मेरी जगह तुम यदि उनकी अप्रकाशित रचनाएं ही चुरा लाये होते तो शायद तुम्हें कुछ लाभ हो जाता। मुझ से तुम्हें कुछ न मिलेगा। मैंने अन्न-जल तक त्याग दिया। बहुत डांट-डपट, मिन्नत-मनौवल, लल्लो-चप्पो की गई; पर मैं भी टस से मस न हुई। बल प्रयोग भी व्यर्थ गया। किन्तु इस सब का परिणाम यह हुआ कि मेरा स्वास्थ्य बिल्कुल नष्ट हो गया। पानी तक हजम करने की शक्ति मुझ में न रह गई। सोचा गया कि मेरा इलाज करवा के कहीं बेच दिया जाये, जिससे कि कुछ पैसे ही वसूल हों। बस मुझे आपके यहां दाखिल कर दिया गया। मैं नहीं चाहती थी कि इस जीवन में फिर स्वास्थ्य-लाभ हो और मैं संसार में जाऊं, किन्तु एक बार उनके दर्शनों की साध अवश्य थी। ईश्वर की कृपा से वह पूरी हुई। उस दिन जब मैं बरामदे में बैठी धूप सेंक रही थी, ये अचानक सामने से निकले। आंखें चार हुईं। ये ठिठक गये। मैं सकुचा गई। अन्त में इन्होंने आप से पूछ ही लिया मेरे विषय में। अब मेरा भविष्य आप पर निर्भर करता है कि आप मुझे किसके सुपर्द करते हैं।"

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चूरनवाला

श्री अखिल कुमार

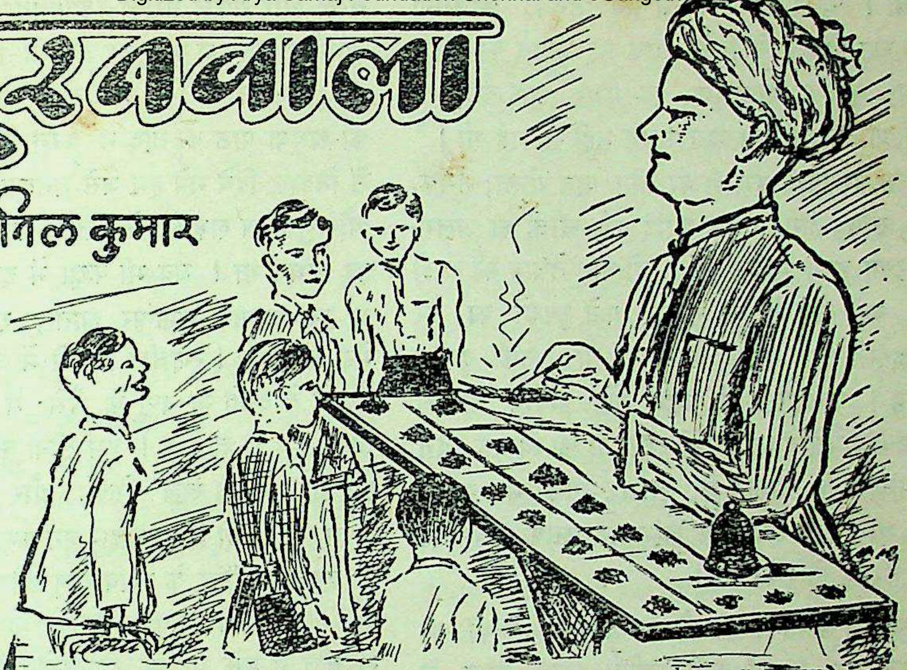

नित्य की तरह उस दिन भी मैं किताबों की दुनिया से निकल कर धीरे-धीरे व्यवहार के यथार्थ-लोक में प्रवेश कर रहा था। जीवन की डाल में लगे अमरूद की तरह प्रत्येक दिन को मीठा फल मान लेने पर मेरे जीवन क्रम में उसके दो टुकड़े हो जाया करते हैं — एक टुकड़ा कल्पना की कोयल कुतर कर खा जाती है और दूसरा व्यवहार का व्याल निगल जाता है। वह संध्या का समय था। उस क्षण उदासी मेरे हृदय पर अपनी सांवली छाया डाल चुकी थी। उस छाया के ओर-छोर का अनुसंधान करने में मैं व्यस्त था—धीरे-धीरे विचारों में वेसुध विश्राम-स्थल की ओर सरक रहा था।

आवागमन की हुल्लड़ ने मुझे सड़क के किनारे पहुँचा दिया तथा विचारों ने मन को मुक्त कर दिया। तब मेरी बाहर की आंखों ने मुझे अतीत की मधुर स्मृति के दर्शन कराये।

मेरे सामने रामलाल की परिचित मूर्ति थी। उसने देखकर भी मुझे नहीं पहिचाना और परिचय देने पर भी वह नहीं पहिचान सका। घुटनों तक मोटी मैली धोती, काली कमीज, तेल के गन्दे कनस्तर की तरह गोल-विद्रूप भरा हुआ मुख-मण्डल और सामने कुछ खोजती हुई-सी आंखों वाला रामलाल चूरनवाला सुख-दुखों की कितनी ही कहानियों को झकझोरता हुआ मेरी ही बगल में उसी दिशा की ओर जा रहा था जिधर मैं। वेदना की आग पर उबलते हुए जीवन के अस्थिर क्षणों का विश्वस्त सहचर, उसका युवा-साथी—वह चूरन का खोमचा उस समय भी उसके सिर पर राजा के आभूषण राजमुकुट की भांति शोभित था। खोमचे का आसन—टीन की पट्टियों से गुंथी हुई डमरू के आकार की चोंगी भी उसके बायें हाथ में आसानी से झूल रही थी। बच्चों की प्राथमिक पाठशालाएं, लड़कियों के मदरसे, या मिडिल व हाईस्कूल की इमारतों के सामने, उन्हीं की छाया में उसके खोमचे की चोंगी खड़ी हो जाती है—रामलाल के अस्थिर व्यवसाय को निश्चित समय के लिये स्थिर करने को!

पचीस साल से वही खोमचा उसका साथ दे रहा है। उड़ती जवानी के छोर से दो सुकुमार बालकों का जीवन बांधकर उसकी बाल-विवाहिता गृहस्वामिनी सदा के लिये उससे विमुख होकर कूच कर गई। उस समय जीवन की तत्कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये इसी खोमचे की कल्पना ने उसको आकर्षित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया था। चूरन का खोमचा तब उसका आकर्षण भले ही रहा हो, उसके लिये आज वह जीवन का कठोर सत्य था; क्योंकि आकर्षण का मधुर आह्लाद या सुख की शीतल-परितृप्ति अब उसमें नहीं रह गई थी।

सिल पर पिसी इमली का तीन पाव गोला; नमक, धनिया, सौंफ, हींग, शक्कर आदि कई चीजों का अलग-अलग रखा हुआ महीन चूर्ण; दो-तीन तेजाब की गन्दी बोतलें, रद्दी कागजों के बराबर कटे टुकड़ों का ढेर और मुहर्रमी सूरत वाला वह—यह था उसकी दूकान का चित्र। पाठशाला में पढ़ने वाले अबोध बालकों को रोज-रोज पैसे देकर उनकी आदतों को बिगाड़ देने वाले मां-बाप के अज्ञान का लाभ उसकी भी दूकान उठाती थी। इसी अज्ञान के लाभ पर उसके जीवन का प्रयास सम्भव हो सका था।

शहर में कम नहीं तो सौ से अधिक बालकों की पाठशालाएं थीं। वह कभी महीनों किसी स्कूल के बारामदे में जमा रहता; कभी रोज ही अपनी दूकान बदलता रहता। अध्ययन के प्रारम्भिक दिनों में पाठशाला का पूर्ण परिचय मुझे चूरनवाले के साथ ही हुआ था। जब अपनी कक्षा के सभी लड़कों को चूरनवाले की दूकान पर खट्टी, मीठी, नमकीन चूरन का स्वाद चख कर चटाचट जीभ चटकाते हुए पाता, तब बल-पूर्वक रोकने पर भी मेरे मुंह से राल टपक ही पड़ती थी। मैं गरीब पिता का विवश पुत्र था। पर उस समय मुझे अपनी विवश परिस्थिति का अनुमान नहीं था। रोज-ब-रोज लड़कों को अपने घर से पैसे लाकर चूरनवाले के साथ व्यापारी रिश्ता कायम करते देख कर मेरी हिम्मत का बांध टूटने लगता। हठ, जिद्द और मजबूर करने पर झुंझलाहट के साथ मुझे सप्ताह दो सप्ताह में एकाध तांबे का टुकड़ा मिल भी जाता था। बस यही गोल सिक्का मेरे और रामलाल के परिचय का माध्यम बन गया। मेरे लालच के अश्व की गति के साथ दौड़ने की पिताजी की आर्थिक क्षमता न थी, पर चूरन का स्वाद और रामलाल की दूकान का आकर्षण दिन-दिन तीव्र होता ही गया। तब दूसरे लड़कों की देखा-देखी मैंने भी अपनी लिखने की कापियों को रद्दी के रूप में चूरन के लिये बेचने का सरल और सस्ता तरीका अपनाया। इस ढंग ने मेरे अध्ययन काल में मुझे कई तरह से परास्त भी किया था।

मास्टरजी के दिये हुये सबक तैयार न कर सकने की अथवा पाठ को याद न करने की सजा पाकर कक्षा से निकाल दिये गये हम जैसे मनहूस, बदनाम, शरारती और गुस्ताख लड़कों के लिये रामलाल मन-बहलाव का साधन था। जब भी कक्षा में इस तरह का अच्छा या बुरा अवसर मुझ पर आता, रणजीत और बप्पू मेरा साथ देते। रणजीत के पैसे में बप्पू और मैं, मेरे पैसे में वे दोनों या बप्पू के पैसे में मैं और रणजीत साझी बन ही जाते थे। हम तीनों का अभेद्य गुट था। हम हार-जीत के खेल खेलते और जीतने वाले पर चूरन की खरीदी में साझीदार बन कर लद जाते थे।

एकबार परीक्षा के समय बप्पू और रणजीत दोनों मेरे दायें-बायें बैठे थे। सवाल दिखाने के बदले में बप्पू और रणजीत ने मुझे परीक्षा के तीनों दिन खूब नमकीन चूरन खिलाने का वादा किया था। मेरी तो खूब बनने वाली थी। अपने परीक्षा स्थान पर आने के लिये मैं रामलाल को कई बार कह चुका था। उसने भी हर बार सम्मति-सूचक गर्दन हिलाकर हामी भरी थी। किन्तु ठीक परीक्षा के दिन से ही वह गायब हो गया। तब मेरी तितली की तरह फुदकती रंगीन आशा निराश होकर काली पड़ गई। मुझे रामलाल पर गुस्सा भी खूब आया।

एक दिन रोनी सूरत लेकर वह पहले से कुछ बदला हुआ-सा फिर आ पहुँचा। उसका बड़ा लड़का एकाएक कुएं में गिरकर मर गया था, इस कारण वह उन दिनों कई दिन तक न आ सका था। अकेले में हम तीनों के सामने उसने न आ सकने का सबब सिसक-सिसक कर बताया था और सुनकर हम भी आंसू पोंछने लगे थे। उस समय का उदास-करुण चित्र आज भी उभर कर मुझे उसके हृदय तक पहुंचा देता है। हलचल की इसी घड़ी ने रामलाल को हमारे अधिक निकट ला दिया था। उसने उस दिन हमसे चूरन के पैसे नहीं लिये और मुझे याद है कि उसने हमारे सिर, पीठ और गालों पर स्नेह से हाथ फेर कर दुलार भी किया था।

तब से अब मैं कितना बदल गया हूं! मुझमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उतना ही परिवर्तन हो गया है कि जितना ग्राम के नन्हें पौधे में विशाल वृक्ष बन कर हो जाता है। पर रामलाल तो बिल्कुल अपरिवर्तित है—वही वेश, वही रूप, वैसी ही रोनी सूरत !

मैं इन चित्रमय स्मृतियों के प्रवाह में बहते हुये कितनी दूर तक चला आया हूं। मुझमें विचारों की लहरें उठ-उठ कर गिर रही हैं। उनमें भी प्रतिक्षण परिवर्तन हो रहा है। रामलाल भी अब तक मेरी बगल में मेरे ही रास्ते चला जा रहा है। पर न उसकी गति में फर्क है, न मार्ग में परिवर्तन ! लेकिन क्या वह रोज की तरह इन क्षणों में भी नहीं सोच रहा होगा—

'कल उस स्कूल से दूसरी जगह जाना चाहिये। अब वहां आमदनी कम होने लगी है। इमली खलाश हो रही है। समभू के यहां से फिर उधार सौदे लाने पड़ेंगे; न जाने अब की बार देगा या नहीं ? एक ठो लौंडा है, उसने भी नाकों दम कर दिया है; नहीं तो क्यों किसी के आगे बार-बार दांत निपोर कर हाथ पसारने की नौबत आती। दुख की भाड़ में भुनकर कमाऊं मैं और ऐश करे वह, चैन की बंसी बजाये उसकी बीबी ! दो सीधी बातों तक के लिये कोई पूछता नहीं। ऐसे लड़के भी किस काम के !

'कितनों का खाया, कितनों की मिट्टी पलीद की, कितनों को जेल भिजवाया—भगवान न करे, ऐसे कुकरम किये; पर वही गेंदालाल सुख की गद्दी पर दिन-रात औंधा-आड़ा होता रहता है। यहां न किसी का लेना न देना, न किसी की बुराई में रत्ती भर साझी होना, पर रंगी (पत्नी) क्या गई सिर पर आसमान फट पड़ा; दुख-दलिद्दर में जो घिसट रहा हूँ कि कभी सुख का नाम नहीं, आराम का पता नहीं ! तकदीर अपनी-अपनी और क्या ? बुढ़ापे के आठ दिन बचे हैं, किसी न किसी दिन इनकी भी मौत होगी ही, आज नहीं तो कल !'

हां, तो वह इसी तरह की जिन्दगी की दुःख-भरी बातों में उलझ रहा होगा। सहसा सड़क के मोड़ पर वह तंबोली की दुकान के सामने रुककर कान की मोड़ में दबाई हुई बीड़ी निकाल कर सुलगाने लगा। नारियल का जलता रस्सा बीड़ी के सिरे से लगाकर, उसको जलाकर सूनेपन में उसे साथिन बना लिया। मनुष्य भी कितना सहयोग-प्रिय जीव है ! समाज और उसके व्यक्तियों का दुराव मनुष्य में विचार-चक्र उत्पन्न करता है। इसी चक्र में जी बहलाते हुए बरसों की उम्र चुटकी में काट सकने की सामर्थ्य मनुष्य का मन पैदा करता है। कोई घण्टों किताब के पन्नों में बिना किसी के संग-सहयोग के तन्मय हुआ रहता है और किसी को तो कलम के साथ साथ चलते-चलते न जाने कब कोसों-लम्बी जीवन-यात्रा कहां खतम हो जाती है, पता तक नहीं चलता। लेकिन इसी रामलाल को देखो। दिन के दिन किसी स्कूल के आगे धूल फांकता हुआ खोमचा लिये बीड़ी के धुएं में बेसुध पड़ा रहता है। तब न किसी का व्यवहार खटकता है, न किसी का अभाव ! पर जब उस गैर-जिम्मेदार बेटे की हरकतें ताजी होकर उसके दिल को नोचने लगती हैं, तब वह रुआं-सा हो जाता है—कुएं में गिर कर मरे हुये बेटे की याद में ! ऐसे समय वह सोचता है—'लल्लू होता तो क्या मुझे इस निठल्ले की गुलामी करनी पड़ती ?' पर यह तो पितृ-स्वभाव है कि बूढ़ा बाप अपने जीवित पुत्रों से मृत सन्तानों को अधिक योग्य समझता रहे ! रामलाल का भी वही हाल था—जैसे मरी भैंस का दूध गाढ़ा। लल्लू की एक-एक स्मृति उसे विचलित करती थी। वह भी जोर से बीड़ी का कश खींच कर लापरवाही से धुएं का गुब्बारा आसमान की ओर छोड़कर जैसे सारा दुःख पी जाता था !

रंगी के साथ लड़-झगड़ कर उसने जवानी काटी थी। जुए की ऐसी बुरी लत पड़ी थी कि रंगी के तमाम गहने एक के बाद एक हाथ से निकल गये और आये दिन धेले पैसे के लिये खाऊं-खाऊं मची रहने लगी। उसके इस ढंग ने रंगी की हया-शर्म तो मिटा ही दी थी—वह भी बेशरम हो गई। बात-बात पर वह रामलाल को ताने देती थी। उससे लड़ पड़ती थी। किसी भी दलील और चाल पर उसे राजी न होते देखकर रामलाल चिढ़ जाता था। अथवा गाली-गलौज के बाद मार-पीट पर उतर आता था। पर अब वही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रंगी उसके लिये पूजा की देवी थी। उसकी मृत्यु के बाद एक बार भी उसके हृदय में रंगी की बुराई सिर नहीं उठा सकी। रंगी के प्रति किये गए अपने ही व्यवहारों का स्मरण उसे अब जलाता रहता है। बीते दिनों की याद में वह झुलसता जाता है। इधर आने वाला दिन बहू-बेटे का छल बनकर अलग खाने लगता है। फिर भी घुन लगे खम्भे की तरह वह जिन्दगी की इमारत में खड़ा है— स्थिर, चुप, बिना हलचल के! किन्तु इस तरह के काठ के खंभे जिन्दगी का भार कब तक सह सकेंगे? न जाने कब धोखे की घण्टी बजे और बिना किसी चू-च्चपड़ के ये खंभे अपनी मौन असमर्थता जाहिर कर दें और बैठ जायं तथा देखते ही देखते जीवन की इमारत अर्रा कर गिर पड़े। खैर, जो भी हो, होली में सुलगती लकड़ी की तरह वह भी चारों ओर से सुलग रहा है।

जीवन जल रहा है और उसकी लपटों में वह जल-भुन कर काला स्याह पड़ गया है। उसके खोमचे में तेजाब की बोतलें रहती थीं और उनमें लोहे का एक लम्बा तार डूबा रहता था। उससे वह विशेष शौकीन लड़कों के लिये नये ढंग का चूरन तैयार करता था। उस बोतल के द्रव की एक-दो बूंदें वह चूरन में छोड़ता था, जिससे उसमें हल्की-सी आग की लपट उठा करती जिसे वह धीरे से बुझाकर चूरन को वहीं कागज पर मसल देता था। यही चूरन जलाने की क्रिया थी। लड़कों में कुछ पुराने लड़के इस तरह के जले हुए चूरन को अधिक पसन्द करते थे। यह जला चूरन स्वाद में जरा चरपरा और दस्तावर भी होता था। लड़कों के लिये चूरन जलाने की यह क्रिया एक मनोरंजक दृश्य थी; अतः जिसको भी मालूम होता, वह जले हुए चूरन की ही मांग करता, ताकि रामलाल का चूरन में उठने वाली तेजाब की लपट को अंगुली से दबा कर मसलना देखने को मिले। पर अब उसी रामलाल के जीवन की लपट दुख के तेजाब की बूंदें पाकर इस तरह भड़क उठती है कि वह कोशिश करने पर भी उसे नहीं बुझा सकता। कहीं ऐसा न हो कि यह लपट ही उसे बुझा दे!

अब मैं धीरे धीरे उसके पीछे चला जा रहा हूँ। रामलाल गन्दी बस्ती की धूल भरी गलियां पार कर रहा है। कहीं बस्ती के नल पर मर्दानी औरतें कलसी भर पानी के लिए आकाश-पाताल एक कर रहीं हैं। किसी घर में दुमदार आदमी बीवी की फटकारों के शिकार हो रहे हैं। कहीं बहादुर मर्द घरवाली की पीठ-पूजा करने में मशगूल हैं। कहीं भी स्नेह और सुख का नाम नहीं और 'शांति' शब्द तो इस बस्ती में मानों कोई अर्थ ही नहीं रखता।

रामलाल जरा दायें मुड़कर नाली के किनारे वाले देसी खपरैलों के ठिंगने मकान में घुस गया। जाते ही उसके बेटे ने स्वागत किया—

"आओ, अब आरती उतारता हूँ। अभी क्यों, बारह बजे आना था रात के! तुम से हजार बार कहा कि दिन डूबते अपने घर आकर बैठो। यहां नौकर बैठे हैं तुम्हारे रात तक जागते रहें! रोज हजार-पांच सौ की पूंजी ही तो लेकर लौटते हो जैसे!"

रामलाल भी तुनक कर बोला—"अरे मेरी उमिर तो चूरन में खप गई। तू बड़ा धन्ना सेंठ बना बैठा है तो दस-पांच तो ला।" और वह खोमचा उतार कर घर के पिछवाड़े कुल्ला करने के लिये चला गया।

मैं भी जले हुए चूरन की तरह क्षार-युक्त, रूक्ष और कसैले रामलाल के जीवन-चित्रों को उलटता हुआ लौट रहा हूं एक उमंग लेकर—शायद करुणा से कुछ गीली।

★

समस्त परिवार के मनोरंजन
के लिये
मनोरंजन
खरीदिये और पढ़िये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदेशों में

भारतीय पहलवानों की जय-पताका

(श्री रतनलाल बंसल)

भारतीय शौर्य के प्रतीक विश्व-विजयी पहलवान गामा का नाम और उसके जगद् विख्यात प्रतिद्वन्द्वी जेविस्को के साथ हुई उसकी कुश्ती का हाल और परिणाम तो लगभग सभी जानते हैं; किन्तु गामा के अतिरिक्त उन अनेकानेक भारतीय पहलवानों के शौर्य की गाथा अभी तक बिल्कुल अन्धेरे ही में है, जिन्होंने शारीरिक शक्ति के मद से उन्मत्त अनेकों विदेशी पहलवानों को पछाड़ कर गामा की ही भांति विदेशों में भारत का मस्तक ऊंचा किया है। इन पहलवानों को जैसी प्रतिकूल परिस्थितियों से संघर्ष करना पड़ा और उन्होंने एक पराधीन देश के निवासी होकर भी जिस साहस के साथ विदेशों में जाकर अपनी तथा अपने देश की कीर्ति का झण्डा लहराया, उससे प्रतीत होता है कि वे कितने अधिक आत्म-विश्वासी और पुरुषार्थी थे और हमने अभी तक उनकी उपेक्षा करके कितना बड़ा अपराध किया है।

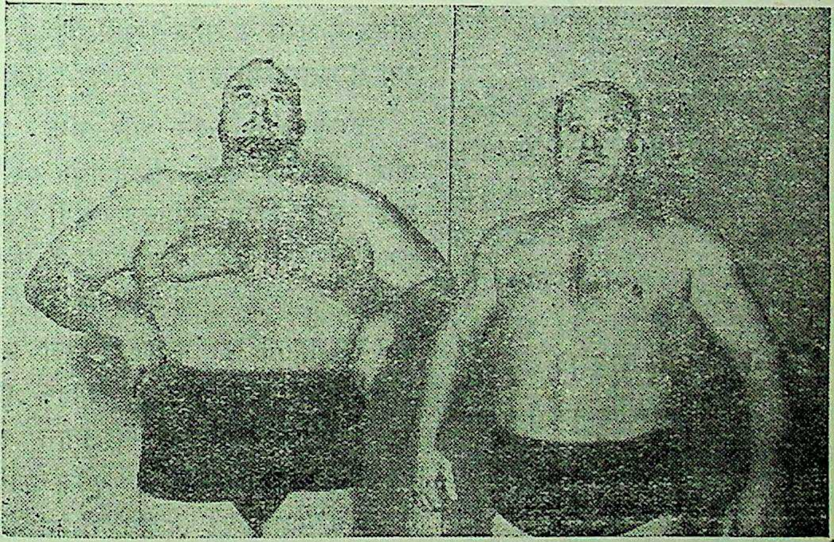

अन्तर्राष्ट्रीय कुश्ती का प्रथम भारतीय विजेता—करीमबख्श

इन पहलवानों को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिये यदि हम उनका स्मरण करने बैठें, तो आधुनिक युग के इतिहास की सूची में सबसे पहिला नाम एक २१ वर्षीय नौजवान करीमबख्श पहरे वाले का आता है।

करीमबख्श अन्तर्राष्ट्रीय कुश्ती में भाग लेने वाला पहिला भारतीय पहलवान था। उस समय नियम यह था कि चैम्पियन की उपाधि प्राप्त करने के इच्छुक पहलवान संसार के विभिन्न देशों में भ्रमण करते थे और वहां के पहलवानों से कुश्ती लड़कर अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित किया करते थे। इसी नियम के अनुसार सन् १८९२ में एक विख्यात अंग्रेज पहलवान टामकैनन भारत भी आया। टामकैनन से शायद किसी ने यह कह दिया था कि कुश्ती लड़कर धन कमाने के लिये सबसे अच्छा क्षेत्र भारतवर्ष में है, जहां विजयी पहलवानों को सोने चांदी के आभूषण, मूल्यवान वस्त्र और बड़ी-बड़ी रकमें पारितोषक रूप में मिल जाना साधारण-सी बात है। इन बातों से प्रभावित होकर टामकैनन एक साथी को लेकर भारत आ पहुँचा और उसने यहां के पहलवानों को खुली चुनौती दी। पहिले कैनन की कुछ कुश्तियां पटियाला में हुईं, जिनमें किसी प्रमुख भारतीय पहलवान ने भाग नहीं लिया, इसलिये वे कुछ अधिक महत्व भी प्राप्त न कर सकीं। अन्त में, कई नगरों में घूमता हुआ कैनन जब कलकत्ता पहुँचा, तो कूचबिहार के तत्कालीन महाराज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर नृपेन्द्रनारायण भूप ने उस समय के सुप्रसिद्ध पहलवान बूटा को बुलवाया और कैनन का मुकाबिला करने को कहा। बूटा उस समय तक काफी वृद्ध हो चुका था, अतः उसने अपने २१ वर्षीय शिष्य करीम-बख्श पहरे वाले को कैनन के मुकाबिले में भेजा। एक मंजे हुए और अनुभवी विदेशी पहलवान के सन्मुख एक नवयुवक को भेजने से अधिकांश व्यक्ति परिणाम के सम्बन्ध में कुछ अधिक आशावादी नहीं थे; किन्तु करीम ने तो कैनन को इतनी आसानी से जमीन दिखा दी मानों कैनन करीम के मुकाबिले में पासंग भी न हो। इस प्रकार पहिली ही अन्तर्राष्ट्रीय कुश्ती में भारत के एक २१ वर्षीय नवयुवक ने एक विश्वविख्यात मंजे हुए विदेशी पहलवान को चारों खाने चित्त करके यह दिखा दिया कि सदियों से पद-दलित रहने पर भी भारत में कितना ओज, कितनी शक्ति है!

इसके पश्चात् कैनन अपना-सा मुंह लेकर विलायत लौट गया। वहां पर उसने भारतीय पहलवानों पर प्राप्त की हुई अपनी विजय के बीसियों काल्पनिक विवरण अखबारों में लिखे, किन्तु करीमबख्श के मुकाबिले में प्राप्त हुई हार के सम्बन्ध में कभी एक शब्द भी नहीं लिखा।

शक्ति-पुंज गंगा और भूटन

करीम के साथ होने वाली उपरोक्त कुश्ती यद्यपि एक अंग्रेज पहलवान के मुकाबिले में होने से अन्त-र्राष्ट्रीय महत्व रखती थी, किन्तु भारत में ही होने से उसे कुछ अधिक ख्याति नहीं मिल सकी। इसके पश्चात् सन् १८६६ में स्व० पं० मोतीलाल नेहरू भारत के एक दूसरे प्रसिद्ध पहलवान गुलाम को लेकर पेरिस पहुँचे। गुलाम निश्चित रूप से अपने समय का भारत का सर्वश्रेष्ठ पहलवान था, किन्तु दुर्भाग्यवश पेरिस के दंगल में उसका मुकाबिला टर्की के एक असाधारण पहलवान अहमद मद्राली के साथ हो गया। इस कुश्ती का कोई स्पष्ट निर्णय नहीं हो सका—कुछ लोगों ने उसे बराबर का बताया और कुछ ने गुलाम को पराजित करार दिया। किन्तु इसके पश्चात् शीघ्र ही पंजाब के दो पहलवानों—गंगा और भूटन ने इंगलैंड पहुँचकर गुलाम की इस आंशिक पराजय के दाग को भी सदैव के लिये धो डाला।

गंगा ब्राह्मण और भूटनसिंह पंजाब के दो सुप्रसिद्ध पहलवान थे, जो कुश्तियों द्वारा धन कमाने के उद्देश्य से सन् १६०७ के आसपास इंगलैण्ड जा पहुँचे। वहां पहुँच कर इन दोनों भारतीय पहलवानों ने ऐसे-ऐसे नामी-गिरामी विदेशी पहलवानों को पछाड़ा कि समस्त यूरोप में उनके नाम की धाक बैठ गई। इनके इस विजयाभियान का महत्व यह जान कर और भी बढ़ जाता है कि जब ये इंगलैण्ड पहुँचे, उस समय तक ये जवानी को पार कर चुके थे—भूटन तो चवा-लीस वर्ष से भी अधिक आयु का था।

भूटन और गंगा लगभग १ वर्ष तक इंगलैण्ड में रहकर यश तथा ख्याति प्राप्ति करते रहे। उस समय के एक सुप्रसिद्ध अंग्रेज कलाकार श्रीयुत शा डेस-माण्ड ने भूटन के शक्ति-सम्पन्न शरीर की बड़ी उदा-रता से प्रशंसा की है।

इंगलैण्ड से भूटन और गंगा आस्ट्रेलिया गये और वहां भी अनेक पहलवानों पर उन्होंने विजय प्राप्त की। किन्तु सुप्रसिद्ध रूसी पहलवान जार्जज हेकनशिमट ने अपना जो विवरण लिखा है, उससे प्रतीत होता है कि उसके मुकाबिले में इन दोनों भार-तीय पहलवानों को पराजित होना पड़ा। किन्तु यह कोई अनहोनी बात नहीं थी, क्योंकि एक चढ़ते हुए पट्ठे के सन्मुख किसी वृद्ध पहलवान का हार जाना स्वाभाविक ही है। फिर भी भूटन को जमीन दिखाने में हेकेनशिमट को पूरे पचास मिनट लग गये। यहां यह उल्लेख कर देना आवश्यक जान पड़ता है कि हेकेनशिमट विश्वविजयी पहलवानों की श्रेणी का पहलवान समझा जाता था।

हेकेनशिमट से हार खाने के पश्चात् भी भूटन ने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के आस्ट्रेलियन पहलवान क्लेरे-न्सबेवर को बड़ी आसानी से पराजित करके एक बार पुनः विदेशी पहलवानों का मान मर्दन कर दिया।

विलायत में गामा का आतंक

गंगा और भूटन के पश्चात् एक धनी बंगाली सज्जन सन् १६०६ के लगभग भारतीय पहलवानों का एक पूरा दल लेकर इंगलैण्ड जा पहुँचे। इसी दल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का एक पहलवान गामा भी था।

पहिले इंगलैंड के पहलवानों ने भारतीय पहलवानों के इस दल को पूर्ण उपेक्षा की दृष्टि से देखा, किन्तु जब गामा ने अमेरिका के सुप्रसिद्ध पहलवान बेन्जामिन टालर को एक बार पांच मिनट में और दूसरी बार सात मिनट में जमीन दिखाई, तो समस्त पश्चिमीय जगत् में तहलका-सा मच गया और किसी ऐसे पश्चिमीय पहलवान की खोज होने लगी, जो इस हार का बदला ले सके।

इसके लिये सबसे पहिले लोगों ने भूटन को हराने वाले हेकेनश्मिट को जा घेरा, जो उस समय इंगलैंड में ही था; किन्तु हेकेनश्मिट ने भारतीय पहलवानों के सन्मुख आने से स्पष्टतः इन्कार कर दिया। इस पर जब इंगलैंड के पत्र हेकेनश्मिट पर गालियों की बौछार करने लगे, तो वह उन सबको अंगूठा दिखाकर चुपचाप पेरिस खिसक गया। इसी बीच यूरोप का तत्कालीन चेम्पियन जानलेम गामा के मुकाबिले के लिये लाया गया, पर उसे गामा के छोटे भाई इमामबख्श ने ही जमीन दिखादी। अन्त में स्टैलिनक्लास जेसविको गामा के मुकाबिले में आया, जिसे गामा ने पटक दिया; किन्तु उस समय उसे चित्त न कर सका। फिर भी इस कुश्ती से पश्चिमीय पहलवान गामा के नाम से इतने अधिक आतंकित हो गये कि उन्होंने भारतीय पहलवानों के सन्मुख आने से ही इन्कार कर दिया, जिसके फलस्वरूप गामा और उसके दल को समय से पूर्व ही भारत लौट आना पड़ा।

गामा की प्रतिमूर्ति—अहमदबख्श

गामा की पश्चिम-विजय के पश्चात् सुप्रसिद्ध शक्ति प्रदर्शक प्रो० राममूर्ति भारतीय पहलवानों का एक दूसरा दल लेकर इंगलैंड पहुँचे, जिसमें अहमदबख्श, गुलाम मुहीउद्दीन वगैरह सोलह पहलवान थे।

जैसे ही यह दल इंगलैंड पहुँचा, वैसे ही इंगलैंड के एक प्रसिद्ध पहलवान गनर म्वायर ने अपने देश के पहलवानों को यह चेतावनी दी कि वे भारतीय पहलवानों के मुकाबिले में आने की भूल न करें। किन्तु गामा से मिली पराजय की चोट अभी तक इंगलैंड के पहलवानों को बेचैन बनाए हुए था और वे किसी भी प्रकार उस पराजय का बदला लेने को आतुर हो रहे थे।

इसी भावना से इङ्गलैंड के एक सुप्रसिद्ध धनपति लार्ड लान्सडेल ने अहमदबख्श से लड़ने के लिये सुप्रसिद्ध पहलवान डेरायज को तय्यार कर लिया। डेरायज का पूरा नाम मारिस डेरायज था और वह स्विटजरलैंड का निवासी था। उस समय वह संसार में चौथे नम्बर का पहलवान समझा जाता था और उसका शरीर इतना सुन्दर तथा सुडौल था कि बहुधा बड़े बड़े चित्रकार अपने चित्रों के लिये उससे माडल का काम लेते थे और इसके लिये उसे काफी बड़ी-बड़ी रकमें भेंट करते थे।

ऐसे सुप्रसिद्ध पहलवान ने जब अहमदबख्श से लड़ने की स्वीकृति दे दी, तो इङ्गलैंड की जनता हर्षोन्मत्त हो उठी और वहीं के पत्र-पत्रिकाओं ने डेरायज की प्रशंसा के पुल बांधने शुरू कर दिये। स्वयं डेरायज भी इसमें पीछे न रहा और उसने एक बार तो यहां तक दर्पोक्ति कर डाली कि अहमदबख्श मेरे सामने गोद के बच्चे जैसा है। किन्तु जब एक संवाददाता अहमदबख्श से इसका उत्तर लेने गया तो उसने कहा, "तुम्हारे ब्वाय स्काउटों का सिद्धान्त है कि तय्यार रहो। मैं भी सिर्फ यही कहता हूँ कि मैं तय्यार हूँ।" किन्तु इतना कहते-कहते वह क्रोध से दांत पीसने लगा।

निश्चित तिथि पर सहस्रों दर्शकों के मध्य डेरायज और अहमदबख्श मंच पर आये। पश्चिम के नियम के अनुसार अन्तिम निर्णय तीन कुश्तियों में होना था और इस कुश्ती के लिये 'जैसे चाहो वैसे पकड़ो' का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया था।

मंच पर आते ही दोनों पहलवानों ने एक दूसरे को देखा और फिर जब पहिली ही चपेट में अहमदबख्श ने डेरायज को चारों खाने चित्त कर दिया, तो दर्शकों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

इसके पश्चात् दूसरी पकड़ हुई और इसमें भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहमदबख्श ने बात की बात में डेरायज को जमीन दिखादी। अब तीसरी पकड़ होना व्यर्थ था। डेरायज ने तुरन्त आगे बढ़कर अहमदबख्श से हाथ मिलाया। और फिर उसने अखबारों में अहमदबख्श की उतनी ही प्रशंसा की जितनी कुश्ती से पूर्व बुराई की थी।

किन्तु इङ्गलैंड के लोग अब भी अहमदबख्श को किसी प्रकार नीचा दिखाने के प्रयत्न में लगे रहे। बड़ी बड़ी कोशिशों के बाद वे फिर एक स्विस पहलवान अमिन्ड शापिर्लो को घेर लाये और उसकी शक्ति-सम्पन्नता के गुण गाने आरम्भ कर दिये। लेकिन कुश्ती के दिन अहमदबख्श जब उसे पल भर में गिरा कर उस पर बैठ गया, तो वह जोरों से चीखने लगा और कहने लगा कि अहमदबख्श मेरी पसलियां तोड़े डालता है। लगभग साढ़े चार मिनट की कुश्ती के पश्चात् अमिन्ड अपने ड्रेसिंग रूम में भाग गया और घायल होने का बहाना करके कुश्ती लड़ने से इन्कार कर दिया। लेकिन डाक्टरों ने जब उसकी परीक्षा की तो मालूम हुआ कि उसके शरीर पर एक खरोंच भी नहीं आई है।

कुश्ती के पश्चात् गामा की ही भांति अहमदबख्श को भी इङ्गलैंड में प्रतिद्वन्द्वी मिलना असम्भव होगया और उसे विवश होकर भारत वापस आ जाना पड़ा। सम्भवतः अहमदबख्श अभी जीवित है और कहीं गुमनामी में अपनी वृद्धावस्था व्यतीत कर रहा है।

पहलवानी-कला के कुछ विशेषज्ञों की सम्मति में अहमदबख्श गामा के समान ही शक्तिशाली है, किन्तु इसका निर्णय कभी नहीं हो सका, क्योंकि अहमदबख्श ने गामा का गुरु-भाई होने के कारण कभी उससे लड़ना स्वीकार नहीं किया और वह गामा की ख्याति तथा गौरव से ही सन्तुष्ट है।

इन पहलवानों के अतिरिक्त लाहौर का गुलाम मुहीउद्दीन (जो गामा से पराजित न होता, तो भारत का सर्वश्रेष्ठ पहलवान होता) काला परताब, धग्गरा तथा टीला इत्यादि अनेक ऐसे पहलवान हैं जिन्होंने विदेशों में अनेक कुश्तियां जीती हैं। इनमें गुलाम मुहीउद्दीन ने तो मारिस जेम्बियर नामक एक ग्रीस-रोमन कुश्ती के चैम्पियन को केवल पन्द्रह मिनट में हरा कर एक नया रिकार्ड ही कायम कर दिया। इसके पश्चात् गुलाम अमेरिका चला गया और वहीं उसने शिकागो के सुप्रसिद्ध पहलवान फ्रैंकगाश को कई बार मैदान में उतरने के लिये ललकारा, किन्तु फ्रैंकगाश ने कभी उसकी चुनौती मंजूर नहीं की।

दुर्भाग्य से हमारे देश के पहलवानों और उनके कार्यों का कोई क्रमबद्ध इतिहास नहीं है, अन्यथा इसी प्रकार की कुछ और घटनाएं भी इस लेख में दी जा सकती थीं। आवश्यकता तो इस बात की है कि इन पहलवानों की सम्पूर्ण जीवनियां प्रकाशित की जायें और उनको अन्य प्रकार से भी सार्वजनिक सम्मान दिया जाय, जिससे देश के युवक-समाज में इस क्षेत्र के प्रति रुचि उत्पन्न हो और उन पहलवानों को, जो आज विकास के पथ में हैं, समुचित प्रोत्साहन मिल सके।

★

'मनोरंजन'

का

मार्च १९४८ का अंक

होली-अंक

होगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक व्यंग्य-चित्र

"अब मैं कहां जाऊं?"

श्री राजाराम शास्त्री

रात का तीसरा पहर था। मुसाफिरों से ठसाठस भरी गाड़ी फर्राटे भरती स्टेशन पर आ पहुँची। भीड़ में हलचल पैदा हुई। उतरने और चढ़ने वालों में होड़ लगी। कहीं बच्चों का शोर और कहीं कुसमय गरमा-गरम पूरी की पुकार—मानों दिन रात लोगों को खाने के सिवा और कोई काम ही नहीं। इस भीड़ की कुछ परवाह न कर गाड़ी ने चलने के लिये सीटी दी और सीटी की आवाज के साथ ही सुनाई दिया, "थोड़ा स्थान दे दें, बड़ी कृपा होगी।" यह किसी स्त्री का स्वर था।

डब्बे के अन्दर से एक ने कहा, "यहां कोई स्थान नहीं है, आगे जाइये।"

"गाड़ी चलने वाली है"—उसने विनय के साथ प्रार्थना की।

मैंने खिड़की से झांक कर गैस के प्रकाश में सुन्दर साड़ी पहने एक रमणी को खड़े देखा और उसने भी एक दृष्टि मुझ पर डाली और विनय से कहा, "जगह दिला दें, गाड़ी चलने वाली है, नहीं तो रह जाऊंगी!"

मैं ने तुरन्त उसे दरवाजे से चढ़ा लिया। गाड़ी चल दी।

"जनाने डब्बे में क्यों नहीं गईं, यहां भीड़ में कष्ट पाओगी," तन्द्रा भरी दृष्टि डाल कर एक आदमी ने कहा।

मेरे पास बैठते हुए उस रमणी ने मेरी ओर तनिक कृतज्ञता भरी दृष्टि से देखा, और तब जरा तन कर बोली—

"क्यों जी, क्या स्त्रियों को यहां बैठने का अधिकार नहीं है? क्या अब भी स्त्रियों को आपने उन्नीसवीं सदी की ही समझ रखा है? आजाद हिन्द फौज में लक्ष्मी बाई की वीरता देख कर भी क्या आपको विश्वास नहीं हुआ कि स्त्रियां हर एक क्षेत्र में अब पुरुषों से आगे बढ़ रही हैं? तो फिर भला हम जनाने डब्बे में ही क्यों जाएं?"

मैं ने भी प्रशंसात्मक भाव से गर्दन हिलाई और कहा, "क्यों नहीं, जब स्त्रियां भी मनुष्यों के कन्धे से कन्धा मिला कर हर क्षेत्र में आगे बढ़ रही हैं, तो क्यों न उनको बढ़ने दिया जाए।"

"मैं तो समझती हूँ कि भारत की स्त्रियां ही जब बराबर काम करने लगेंगी और पुरुषों के समान ही वीर बनेंगी तो देश स्वतन्त्र रह सकेगा। तो फिर हमें आपके साथ बैठने में क्या डर है?"

× × ×

"तुम्हें शरम नहीं आई इस डब्बे में बैठते!" अकस्मात् यह शब्द सुन कर मैं चौंक पड़ा। न जाने स्टेशन कब आ गया। टिकट क्लेक्टर खड़ा कह रहा था—"इसे खाली करो, यह औरतों का डब्बा है। तुम्हें शरम नहीं आई इस डब्बे में बैठते?"

"हां जी," रमणी ने कहा, "भला इन मर्दों का इस डब्बे में क्या काम? और फिर देखो तो कैसे अड़े बैठे हैं कि किसी स्त्री को तो चढ़ने भी नहीं देते!"

फिर क्या था, लोग उतरने लगे। स्त्री ने फब्ती कसी, "क्यों जी, पुरुषों का यहां क्या काम? वे पुरुषों के डब्बे में क्यों नहीं बैठते?"

"जी मैं तो बैठा रहूं," एक ग्रामीण बोला, "मेरे साथ तो जनाना है।"

"नहीं, इसमें स्त्रियों के सिवा कोई न रह सकेगा," स्त्री ने मुस्कराते हुए विजयोल्लास से कहा।

सब उतर पड़े और साथ ही उस ग्रामीण के साथ की स्त्रियां भी। वे भला रात के समय अकेली वहां क्यों बैठतीं। और तब सुनाई पड़ा — "अब मैं कहां जाऊं?"

यह डब्बे में अकेली बैठी घबराई हुई उस रमणी की आवाज थी। इन शब्दों के साथ ही मुसाफिरों से ठसाठस भरा रेलवे कम्पार्टमेन्ट खाली हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विजय-पुस्तक भण्डार की सामयिक पुस्तकें

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति लिखित

स्वतन्त्र भारत की रूप रेखा

इस पुस्तक में लेखक ने भारत एक और अखण्ड रहेगा, भारतीय विधान का आधार भारतीय संस्कृति पर होगा, इत्यादि विषयों का प्रतिपादन किया है। मूल्य १॥) रुपया।

जीवन में विजय प्राप्त करने के लिये
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति लिखित

'जीवन संग्राम'

का

संशोधित दूसरा संस्करण पढ़िये। इस पुस्तक में जीवन का सन्देश और विजय ललकार एक ही साथ हैं पुस्तक हिन्दी भाषियों के लिये मनन और संग्रह के योग्य हैं। मूल्य १) डाक व्यय।-)

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति की

'जीवन की झांकियां'

प्रथम खण्ड—दिल्ली के वे स्मरणीय बीस दिन, मूल्य ॥)
द्वितीय खण्ड—मैं चिकित्सा के चक्रव्यूह से कैसे निकला ? मूल्य ॥)
दोनों खण्ड एक साथ लेने पर मूल्य ।॥)

सामाजिक उपन्यास

सरला की भाभी

[ले०—श्री पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति]

इस उपन्यास की अधिकाधिक मांग होने के कारण पुस्तक प्रायः समाप्त होने को है। आप अपनी कापियें अभी से मंगा लें, अन्यथा इसके पुनः मुद्रण तक आपको प्रतीक्षा करनी होगी।

मूल्य २)

हिन्दू संगठन हौआ नहीं है

अपितु

जनता के उद्‌बोधन का माग है।

इसलिये

हिन्दू-संगठन

[लेखक—स्वामी श्रद्धानन्द संन्यासी]

पुस्तक अवश्य पढ़ें। आज भी हिन्दुओं को मोहनिद्रा से जगाने की आवश्यकता बनी हुई है, भारत में बसने वाली प्रमुख जाति का शक्ति सम्पन्न होना राष्ट्र की शक्ति को बढ़ाने के लिये नितान्त आवश्यक है। इसी उद्देश्य से पुस्तक प्रकाशित की जा रही है। मूल्य २)।

पं० मदनमोहन मालवीय

[श्री रामगोविन्द मिश्र]

महामना मालवीय जी का क्रमबद्ध जीवन-वृत्तान्त। उनके मन का और विचारों का सजीव चित्रण। मूल्य १॥) डाक व्यय।=)

नेता जी सुभाषचन्द्र बोस

नेता जी जन्मकाल से सन् १९४५ तक, आजाद हिन्द सरकार की स्थापना, आजाद हिन्द फौज का संचालन आदि समस्त कार्यों का विवरण। मूल्य १) डाक व्यय।=)

पण्डित जवाहरलाल नेहरू

[श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति]

जवाहरलाल क्या हैं ? वे कैसे बने ? वे क्या चाहते हैं और क्या करते हैं ? इन प्रश्नों का उत्तर इस पुस्तक में आपको मिलेगा।

मूल्य १) डाक व्यय।=)

प्राप्ति स्थान—विजय पुस्तक भण्डार, श्रद्धानंद बाजार, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

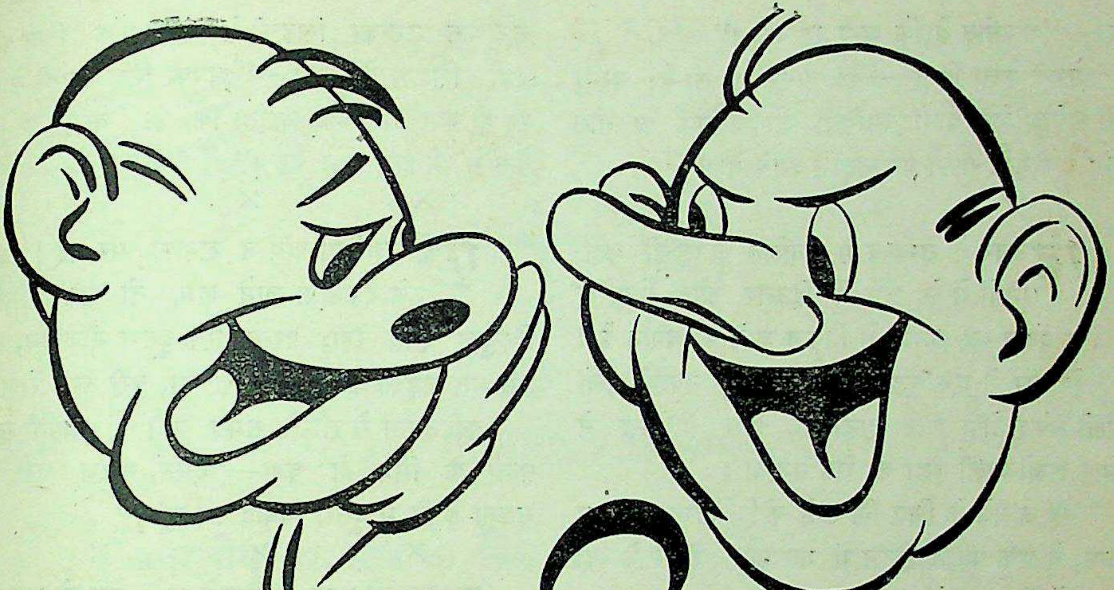

हास परिहास

बस में बहुत भीड़ थी और उसमें कुछ स्त्रियां भी खड़ी थीं। मोहन ने खड़े खड़े देखा कि जिस सीट के पास स्त्रियां खड़ीं हैं, उस पर सुरेन्द्र आंखें बन्द किये आराम से बैठा है। उसने सुरेन्द्र को झंझोड़ कर पूछा—"अरे, क्या सो रहे हो?"

सुरेन्द्र—"नहीं तो। दर-असल बात यह है कि जब बस में भीड़ अधिक हो तो मैं प्रायः आंखें बन्द कर लेता हूं—स्त्रियों का खड़ा होना मुझसे देखा नहीं जाता!"

× × ×

मुसाफिर — बाबू जी, आज गाड़ी कब तक आयेगी?

स्टेशन मास्टर — (मुसाफिर से) कुछ न पूछो, आज गाड़ी बहुत लेट है।

इतने में गाड़ी आती दिखाई दी।

मुसाफिर ने कहा—यह लीजिये, गाड़ी तो आगई।

स्टेशन मास्टर — बेवकूफ, यह तो कल की है; आज की गाड़ी का अभी पता किसे है!

× × ×

"मैं ने सुना है कि तुम मेरे बारे में इधर-उधर कुछ कहते फिर रहे हो।"

"मैं तुम्हारे बारे में कुछ कहता फिर रहा हूँ? यह तुम्हारा भ्रम है। मैं ने तुम्हारे सम्बन्ध में किसी से कभी कुछ नहीं कहा!"

"नहीं, मैं ने निश्चित रूप से सुना है कि तुम मेरे सम्बन्ध में लोगों से कुछ कहते फिर रहे हो!"

"मैं कहता हूं, यह तुम्हारा भ्रम है। अपने मित्रों के सम्बन्ध में मैं तभी कुछ कहता हूँ, जब मुझे उनकी प्रशंसा करनी हो। विश्वास करो, मैं ने तुम्हारे सम्बन्ध में किसी से कुछ नहीं कहा!"

× × ×

स्टेशन से अन्तिम गाड़ी चलने वाली थी। तीन व्यक्ति दौड़े हुए आये। ज्योंही वे प्लैटफार्म पर पहुंचे, गाड़ी चल पड़ी। वे गाड़ी के साथ-साथ दौड़े। गार्ड तथा कुलियों ने उनमें से दो को जैसे तैसे धकेल कर गार्ड वाले डब्बे में चढ़ा दिया। गाड़ी की गति इतनी देर में काफी तेज हो चुकी थी। तीसरा व्यक्ति नहीं चढ़ सका। वह गाड़ी को जाते हुए देख कर दुखी हो रहा था।

एक कुली ने उससे समवेदना प्रकट करते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा—"अफसोस है कि आप रह गये !"

उसने उत्तर दिया—"हां, अफसोस तो है; परन्तु मेरी अपेक्षा मेरे दोनों साथियों को अधिक अफसोस होगा। वे मुझे गाड़ी पर चढ़ाने आये थे !"

× × ×

हिटलर के सम्बन्ध में प्रचलित बहुत-सी कहानियों में से एक में हिटलर और गोयरिङ्ग के भेस बदल कर जर्मनी से निकल जाने का वर्णन है।

हिटलर ने एक वृद्ध पुरुष की भांति नकली बालों वाली सफेद टोपी और दाढ़ी ली, और गोयरिङ्ग ने लाल बालों वाली वृद्धा का भेस बनाया।

यह जांचने के लिए कि उन्हें कोई पहचान तो न लेगा, वे एक प्रसिद्ध होटल में गए और बीअर के दो गिलासों की आज्ञा दी।

जब हिटलर ने बिल चुकाया तो होटल की नौकरानी ने कहा, "धन्यवाद, फ्यूहरर !"

गोयरिङ्ग के कहने पर कि लड़की ने वे शब्द केवल शिष्टता एवं नम्रता के नाते कहे थे, वे पुनः होटल में गए और शराब मांगी।

इस बार गोयरिङ्ग ने बिल चुकाया और लड़की ने कहा, "धन्यवाद, रेश मारशल !"

विस्मित और चकित होकर गोयरिङ्ग ने लड़की को बुलाया और पूछा, "आखिर तुमने हमको पहचाना कैसे ?"

"मैं गोयबिल्ज हूं !" लड़की ने धीरे से कहा।

× × ×

रमेश जब सैकण्ड क्लास के डब्बे में चढ़ा तो उसने देखा कि अकेले एक मुसाफिर ने सारा डब्बा घेर रखा है—एक सीट पर तो वह स्वयं लेटा है और शेष सीटों पर अपना सामान फैला रखा है। रमेश ने भी आखिर कहीं बैठना था। एक सूटकेस की ओर संकेत करते हुए उसने पहले मुसाफिर से कहा—"यदि आप कहें तो इस सूटकेस को उधर रख दूं।"

पहला मुसाफिर बोला—"यह सूटकेस मेरा नहीं, मेरे एक मित्र का है, वह अभी आता होगा।"

रमेश चुप हो गया। इतने में गाड़ी चल पड़ी और कोई तीसरा आदमी डब्बे में नहीं चढ़ा। रमेश ने वह सूट केस उठाकर खिड़की से बाहर फैंक दिया और बड़ी शिष्टता से कहा—"आपका मित्र गाड़ी से तो रह ही गया; मैं नहीं चाहता कि उस बेचारे को सूट केस से भी हाथ धोने पड़ें !"

× × ×

एक विवाहिता अंग्रेज लड़की मर गई। जब उसे दफनाया जाने लगा तो उसका पति बिल्कुल शांत रहा; परन्तु एक दूसरा नौजवान, जो उस मृत लड़की का मित्र प्रसिद्ध था, बुरी तरह रोया।

कब्रिस्ताना से लौटते समय पति ने अपनी मृत पत्नी के मित्र से कहा—"दोस्त, धीरज धरो; हो सकता है कि मैं दूसरा विवाह कर लूं !"

× × ×

शाम को समुद्र के किनारे खड़े हुए दो आदमी आपस में झगड़ रहे थे। एक कह रहा था कि पश्चिम में सूर्य डूब रहा है और दूसरे का कहना था कि नहीं, यह पूर्णिमा का चांद निकल रहा है।

अन्त में एक तीसरे आदमी को रोक कर उन्होंने उससे पूछा—"क्यों जी, यह सामने पश्चिम में चांद है या सूरज ?"

वह बहुत देर तक आकाश की ओर देखता रहा और फिर बोला—"क्षमा कीजिये, मैं ठीक से नहीं कह सकता, क्योंकि मैं इस नगर में नया नया आया हूँ !"

× × ×

सिपाही ने अपनी स्त्री को मोर्चे से पत्र लिखा—'मैं तोपखाने से हटकर पैदल फौज में आ गया हूँ, तुम्हें अब किसी प्रकार का भय नहीं होना चाहिये।'

स्त्री ने उत्तर में लिखा—'मुझे भय क्यों हो ? पैदल फौज में तुम हो, न कि मैं !'

× × ×

"रुपया, रुपया, रुपया, चौबीसों घण्टे मेरी स्त्री मुझ से रुपया ही मांगती रहती है !"

"भई, आखिर वह उस रुपये का करती क्या है ?"

"मुझे क्या पता ! मैंने अभी तक मैंने उसे एक पाई भी नहीं दी !"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'पृथ्वी थियेटर्स' कृत

'प ठा न'

श्री महावीर अधिकारी

भारतीय रंग-मंच के लिये एक ऐतिहासिक सीमा-चिह्न

हिन्दी-रंगमंच के जिस सीमा-चिह्न का जिक्र हम करना चाहते हैं, वह है भूतपूर्व फ़िल्म अभिनेता श्री पृथ्वीराज का नवीनतम नाटक 'पठान'। इसके पूर्व भी आप दो नाटक तैयार कर चुके हैं—'शकुन्तला' और 'दीवार'। इन दोनों नाटकों की ख्याति भी अनति-काल में हिन्दुस्तान के कोने-कोने में फैल गई थी।

कौन कल्पना कर सकता था कि रजत-पट पर अभिनय करने वाला यह आदर्शवादी युवक भारतीय रंगमंच के लिए इतना बड़ा शोध-कार्य कर सकेगा। सुना है कि निर्देशक प्रवर श्री शान्ताराम जिस समय राजकमल कला मन्दिर के लिए 'शकुन्तला' के पात्र खोज रहे थे, तो पृथ्वीराज को दुष्यन्त की भूमिका में स्वयं के चुने जाने की आशा थी, क्योंकि उनका दावा था कि इतने महान् ऐतिहासिक पात्र को केवल मैं ही सफलता-पूर्वक अभिनीत कर सकता हूं। परन्तु उन्हें चुना नहीं गया। शान्ताराम को यह दिखाने के लिए कि वे दुष्यन्त के रूप में कितना सफल अभिनय कर सकते हैं, उन्होंने बम्बई में 'पृथ्वी थियेटर्स' का निर्माण किया था। उनका साहस सफल हुआ और फिर तो 'पृथ्वी थियेटर्स' का काम उत्तरोत्तर प्रशंसित होने लगा। 'शकुन्तला' के बाद 'दीवार' और उसके बाद 'पठान' आज बम्बई में खेला जा रहा है।

'पठान' नाटक का गठन—उसके लेखक का नाम प्रकट नहीं हो पाया—ऐसा है जो केवल एक ही सेट पर थोड़े से परिवर्तनों के साथ पूरा का पूरा अभिनीत हो जाता है। हिन्दी और संस्कृत के नाटकों में स्वगत-भाषण का जो स्थायी दोष चलता था, वह इस नाटक में नहीं है। नाटक में करुण, वीर, श्रृङ्गार और हास्य चारों रसों का कथानक के अनुरूप ही बड़ी भारी सफलता से परिपाक हुआ है। कथानक में जिस पठान के जीवन को गौरवान्वित करने का प्रयत्न किया गया है, वह समस्त पठान-जाति का प्रतीक है और पठान के जीवन का सूक्ष्मातिसूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत करता है।

ध्वनि

इस नाटक के प्रस्तुत करने में ध्वनि को अत्यन्त वैज्ञानिक रूप से बांध लिया गया है। सीटें और ध्वनि-प्रक्षेपक-क्रम बिलकुल सिनेमा के ढंग पर रखा गया है। इसलिए पहिले की तरह दर्शकों के कानों तक पात्रों को अपना वार्तालाप पहुँचाने के लिए हाथ फटकार कर चीखने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इन पंक्तियों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक को बंगाली थियेटर और उसमें भी प्रख्यात कलाकार अहिन चौधरी का अभिनय देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। किन्तु तथाकथित पुराना 'स्टेजीपन' उसमें भी रहा है। 'स्टेजीपन' से हमारा अभिप्राय पार्सी थियेटरों के पात्रों की उस अभिनय-शैली से है जिसमें गले को औषधियों के बल पर दमदार बनाया जाता था। 'पठान' को देखकर आप को यह नहीं प्रतीत होगा कि आप कोई नाटक देख रहे हैं। आपको लगेगा कि आप एक पठान परिवार के निकट बैठे उसका अध्ययन कर रहे हैं। इस नाटक को देख कर पहिली बार हमें अनुभव हुआ कि रजत-पट रंगमंच के सम्मुख निर्जीव और अयथार्थ है। यद्यपि रजत-पट के संचालकों और समर्थकों के पास विपुल धन-राशि है और वह श्रेष्ठ से श्रेष्ठ और जटिल से जटिल वातावरण पैदा कर सकने में समर्थ हो सके हैं; किन्तु इधर यदि रंगमंच पर भी दृश्यावली का वैविध्य प्रस्तुत किया जा सके तो बड़ी भारी सफलता प्राप्त हो सकती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पश्चिमी देशों में चक्रितमंचों (रिवाल्विंग-स्टेज) की सहायता से बड़ी द्रुतगति से दृश्य बदल सकने में लोग समर्थ हो सके हैं।

मेक-अप

कई दृष्टियों से पृथ्वीराज का 'पठान' हिन्दी के मंच-निर्माताओं, अभिनेताओं और नाटककारों के लिए एक आरम्भिक और नवीन आदर्श उपस्थित करता है। अभिनेताओं का मेक-अप अत्यन्त सरल और स्वाभाविक था। वार्तालाप में स्वाभाविकता आ जाने से समस्त नाटक का वातावरण ही बदल गया और यह इस नाटक, नाटककार और शैली की बड़ा भारी सफलता है। नाटक के प्रभाव और मानवीयता के सम्बन्ध में इतने संक्षेप में हम जिक्र न करके केवल प्रशंसा ही कर सकेंगे, किन्तु इतना तो साधिकार कह सकते हैं कि 'पृथ्वी थियेटर्स' ने हिन्दी के अथवा भारतीय रंगमंच के लिए ऐसा सीमा-चिह्न स्थापित किया है जिसका महत्व ऐतिहासिक होकर रहेगा। इस शैली और शैलीकार को हिन्दी के साहित्यकों और प्रेमियों का पूर्ण सहयोग, सहायता और सम्मान प्राप्त होना चाहिए। यह कहते हमें संकोच नहीं होता कि यदि हम उन्हें कुछ देंगे तो प्रतिदान में इतना पाएँगे भी कि जिसे पाकर हम मृतप्राय भारतीय रंनमंच को पुनः जीवित कर सकेंगे और भारत के नाटक-साहित्य के सृजन में पुनः एक क्रान्ति ला सकेंगे।

★

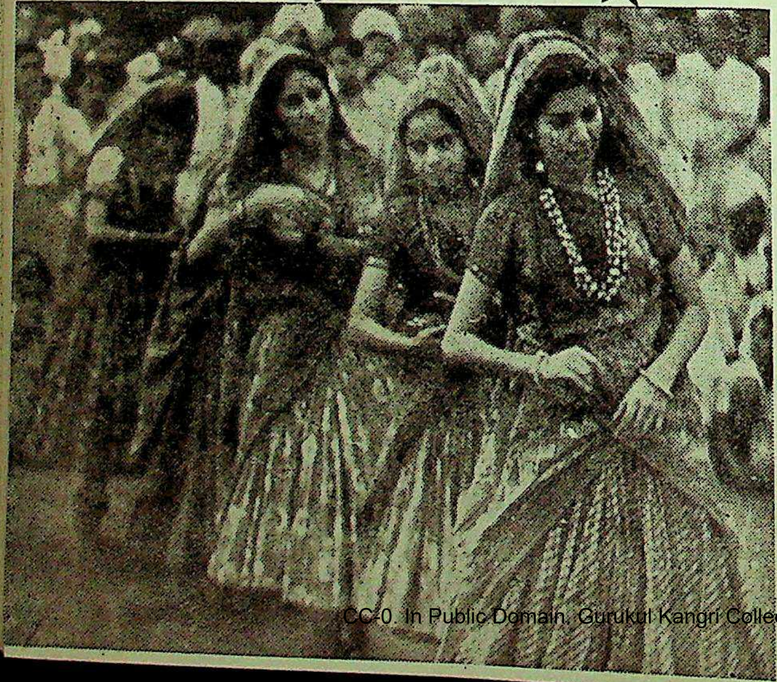

नगर निवासियों की अपेक्षा ग्रामीणों का कला-प्रेम नैसर्गिक है। कोई भी उत्सव या त्योहार आने पर ग्रामीण स्त्री-पुरुषों के पांव नृत्य के लिए अपने आप थिरक उठते हैं—न उन्हें बनाव-सिंगार की आवश्यकता है और न बिजली से जगमगाते रंगमंच की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

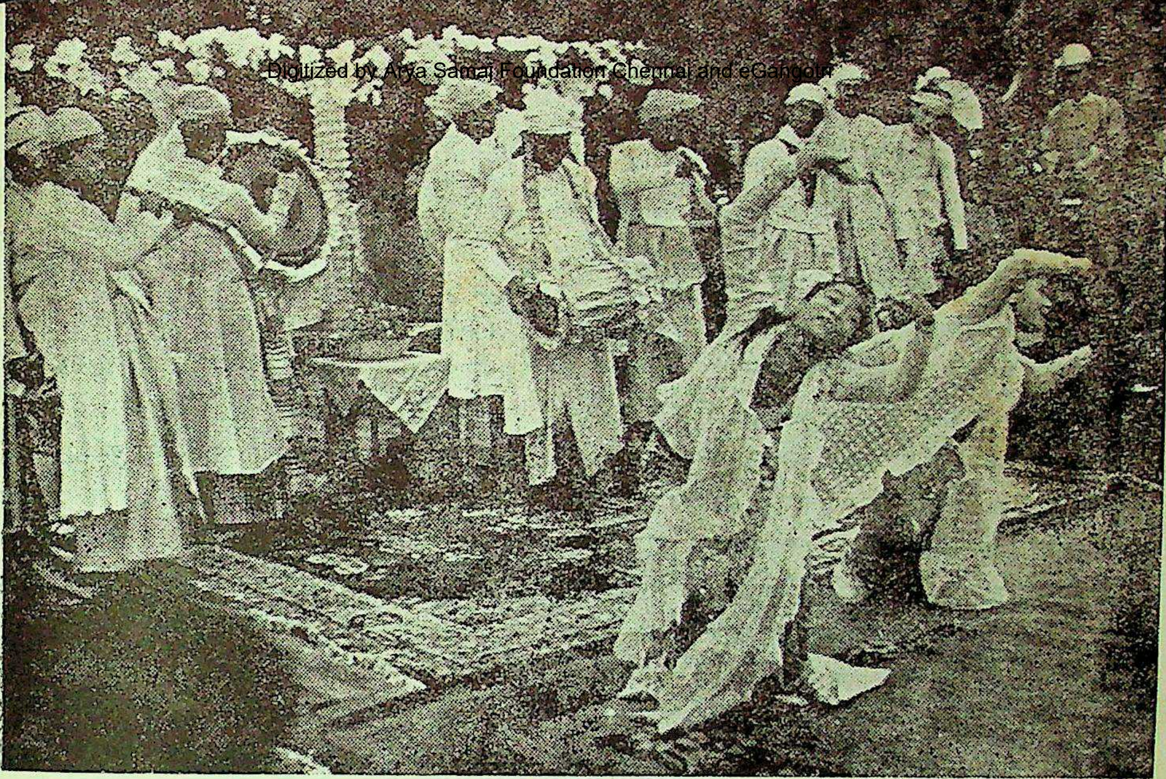

४ जनवरी को नई दिल्ली स्थित बर्मी दूतावास में बर्मा की स्वाधीनता का समारोह बड़ी धूमधाम से मनाया गया। इस ऐतिहासिक अवसर पर बर्मा के प्रसिद्ध नृत्यकार और गायक श्री पो० सीन ने अपने दल के २५ कलाकारों के साथ अपने नृत्य-कौशल का सुंदर प्रदर्शन किया।

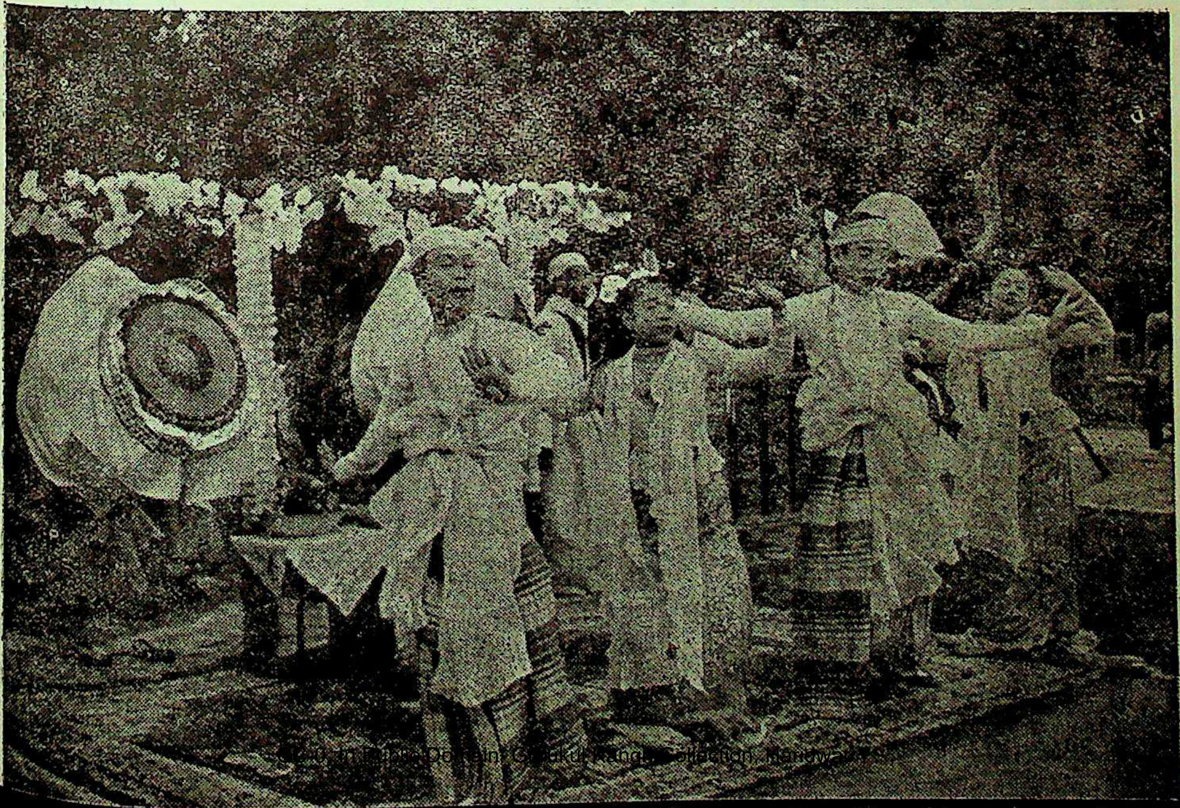

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलन

भारत में कभी-कभी ही ऐसे चित्र बनते हैं जो दूसरे निर्माताओं के लिये आदर्श सिद्ध हों। बॉम्बे टाकीज कृत 'मिलन' की गणना ऐसे ही थोड़े से इने-गिने चित्रों में की जा सकती है। बहुत पहले इसी संस्था ने 'बंधन' और 'कंगन' बनाकर भारतीय फिल्म-कला में एक नई मनोरंजन-प्रधान शैली का सूत्रपात किया था। अब 'मिलन' बनाकर उसने फिर से भारतीय फिल्मोद्योग के सामने एक ऐसी नई शैली रखी है जो सुरुचिपूर्ण तो है ही, कला की दृष्टि से भी बहुत ऊंचे स्तर की है। इसमें न तो मनोरंजन-प्रधान चित्रों जैसे सस्ते नाच-गाने हैं और न बेकार की तड़क भड़क है। भारतीय जनता की बिगड़ी हुई रुचि को 'मिलन' के ढंग के चित्र निश्चय सुधार सकते हैं।

'मिलन' की सब से बड़ी विशेषता और आकर्षण है इसकी कहानी जो भारत-गौरव कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ टाकुर के विश्व-विख्यात उपन्यास 'नौका डूबी' से ली गई है। भारतीय फिल्मोद्योग में कदाचित् यह पहला मौका है जबकि किसी प्रसिद्ध भारतीय लेखक की रचना का फिल्म-रूपान्तर तैयार करते समय ईमानदारी बरती गई है (स्व० मुंशी प्रेमचन्द के उपन्यासों की फिल्म-कम्पनियों द्वारा जो दुर्गति हो चुकी है, उसे आसानी से भुलाया नहीं जा सकता।) और उपन्यास की आत्मा अक्षुण्ण रहने दी गई है। शायद यह इस लिये हो कि इस चित्र के निर्माता, निर्देशक, पटकथा-लेखक और अधिकांश कलाकार सभी बंगाली हैं और उन्होंने रविबाबू द्वारा प्रतिपादित विषय को तथा कहानी की अन्तरात्मा को समझने में भूल नहीं की।

यह चित्र भारतीय फिल्मोद्योग के सामने एक और नया सुझाव भी रखता है और वह यह कि विदेशी चित्रों के कथानकों को चुराने की बजाये, भारतीय लेखकों की उत्कृष्ट रचनाओं को ही ईमानदारी से फिल्माया जाना न केवल राष्ट्रीय दृष्टि से गौरव की बात होगी, बल्कि हमारे चित्रों के [illegible] को ऊंचा करने में भी सहायता मिलेगी।

कवीन्द्र रवीन्द्र कृत 'नौका डूबी' उपन्यास से कौन पढ़ा-लिखा भारतीय अपरिचित होगा, अतः यहां 'मिलन' की कहानी दोहराने की आवश्यकता नहीं।

चित्र का निर्देशन भारत के यशस्वी निर्देशक श्री नितीनबोस ने किया है और चित्र की सफलता का बहुत कुछ श्रेय उन्हीं को है। कलाकारों में से रंजना, पहाड़ी सन्याल और दिलीप कुमार का अभिनय प्रशंसनीय है। रंजना को कदाचित पहली बार प्रमुख भूमिका में काम करने का सुअवसर मिला है और इसमें उसने आशातीत योग्यता प्रदर्शित की है। पहाड़ी सान्याल ने खलनायक की भूमिका को बड़ी सफलता से निभाया है।

गीत आरजू लखनवी और संतोषी ने लिखे हैं और आरजू लखनवी ही बाजी मार गये हैं। संवादों में उर्दू का बाहुल्य बहुत खटकता है और मैं समझता हूं कि इस चित्र का यही एक दोष है। श्री अनिल विश्वास का संगीत-निर्देशन चित्र के अनुरूप ही सुन्दर हुआ है।

चित्र

× मिलन

सारांश यह है कि चित्र, भाषा दोष को छोड़कर, प्रत्येक दृष्टि से उचकोटि का है और दर्शनीय है।

जीवन-यात्रा

राजकमल कला मंदिर कृत 'जीवन यात्रा' प्रगतिशील विचारों से ओत-प्रोत एवं मनोरंजन प्रधान एक सुन्दर सामाजिक चित्र है जिसमें अस्वाभाविक वर्ग भेदों, सामाजिक दम्भों व विकृत कायदे-कानूनों पर नैसर्गिक प्रेम-भावना तथा चिरंतन मानवीय सत्यों की विजय अत्यंत व्यंग्यात्मक तथा कलात्मक ढंग से प्रदर्शित की गई है। अत्यन्त प्रगतिशील विषय के प्रतिपादन और चित्रण में कुछ पुरानापन (?) व प्रदर्शनात्मकता आ जाने से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा कहानी में एक साथ अनेक समस्याओं व कई एक अस्वाभाविक घटनाओं के समावेश से इसका व्यंग्य पैना न होकर कुंठित-सा हो गया है और चित्र में अभीप्सित सुस्पष्टता व प्रभावोत्पादकता नहीं आ पाई। यदि इसके निर्माता व निर्देशक संतुलन व एक-लक्षिता का कुछ अधिक ध्यान रखते तो यह चित्र निश्चित रूप से प्रथम श्रेणी का बनता और राजकमल-कला मन्दिर, निर्माता शांताराम व निर्देशक विनायक के नाम को और भी चार चांद लगाता। अस्तु।

चित्र की कहानी संक्षेप में यों है—

एक बहुत बड़े सेठ की इकलौती लड़की कालिंदी अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध एक निर्धन से विवाह कर लेती है। उनके हां लड़का उत्पन्न होता है। कालिंदी का बाप उसके पति को मार-पीट कर घर से निकाल देता है और सामाजिक कलंक से बचने के लिये बच्चे को मुरली-काका नामक एक ड्राइवर के हाथ एक मोटी रकम देकर सौंप देता है। अपने माता-पिता के नाम पते से पूर्णतः अनभिज्ञ बच्चा बड़ा होकर मुरली-काका की ही 'विश्वेश्वर-मोटर-सर्विस' में क्लीनर बन जाता है— राजा के नाम से।

लोक

× जीवन यात्रा

एक दिन विश्वेश्वर-मोटर-सर्विस की एक बस यात्रियों को लेकर काशी की ओर प्रस्थान करती है। यात्रियों में मुसीबतों की मारी दुखिया कालिंदी भी है। मार्ग में राजा क्लीनर और यात्रियों में से एक आधुनिक विचारों की पढ़ी लिखी स्वच्छन्द लड़की सुनंदा एक दूसरे के प्रति आसक्त होते हैं। उधर कालिंदी राजा को पहचान लेती है और अपने खोये हुए पुत्र के प्रति उसकी ममता जागती है। आंधी-वर्षा का सामना करती हुए बस काशी की ओर बढ़ती जाती है कि एक स्थान पर विश्वास नामक डाकू अपने दल के साथ उस पर आक्रमण करता है और सब यात्रियों को बन्दी बना लेता है। यह विश्वास डाकू कालिंदी का पति और राजा का पिता था जिसने अमीरों को लूटने और गरीबों की रक्षा करने का संकल्प कर रखा था। लम्बे घटना-क्रम के पश्चात् पति-पत्नी व पुत्र का पुनर्मिलन होता है और राजा का सुनंदा से विवाह।

कहानी का वह भाग जिसका विकास बस में होता है, बहुत ही सुन्दर है तथा नवीनता व सामयिकता लिये है। कहानी लेखक ने बस के अन्दर ढोंगी पण्डित, सूदखोर सेठ, वेश्या, तथाकथित उच्चवर्ग की एक महिला, उसकी तितली-सी आधुनिक ढंग की लड़की, एक किताबी कीड़े, झूठे डाक्टर, निडर और साहसी क्लीनर और शराबी ड्राइवर के रूप में मानो भारत की चालीस करोड़ जनता के विचारों और प्रवृत्तियों के प्रतिनिधियों को इकट्ठा करके एक अत्यन्त पैने व्यंग्य-चित्र की सृष्टि की है। परन्तु आगे चलकर कहानी अत्यन्त दकियानूसी और साधारण कोटि की रह जाती है—विचार और प्रेरणा की दृष्टि से एक दम पचास वर्ष पुरानी! काशी के मार्ग में आजकल किसी ऐसे प्रदेश की कल्पना करना जहां अंग्रेजी चित्रों के 'रोबिन हुड' जैसे डाकू का राज्य हो, कठिन है। और फिर पहाड़ की अत्यन्त ऊंची चोटी से गिरकर भी किसी मनुष्य का जीवित रहना नितांत अस्वाभाविक है।

दीवान शरर के संवादा बहुत ही सजीव और पैने हैं, परन्तु गीत साधारण कोटि के हैं। अभिनेताओं में से डाकू की भूमिका में पेंढारकर और राजा की भूमिका में याकूब का काम अच्छा है। नयनतारा यद्यपि नई है, परन्तु उसका अभिनय उसके उज्ज्वल भविष्य का सूचक है।

या

को अर्द्ध-चन्द्र अथवा मोर-पंखों के के मूल में सजाकर अनायास ही अपनी सूझ तथा सुरुचि का परिचय देती हैं। तो सारे भारत में इस प्रसाधन का

'जीवन यात्रा' में नयनतारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलन

भारत में कभी-कभी ही ऐसे चित्र
दूसरे निर्माताओं के लिये आ
बॉम्बे टाकीज कृत 'मिलन' की गणना
से इने-गिने चित्रों में की जा सकती है। व
संस्था ने 'बंधन' और 'कंगन' बनाकर भ
कला में एक नई मनोरंजन-प्रधान शैली
किया था। अब 'मिलन' बनाकर उसने
तीय फिल्मोद्योग के सामने एक ऐसी
है जो सुरुचिपूर्ण तो है ही, कला की दृष्टि
... इसमें न तो मनोरंज

अद्भुत चित्रावलि

चूजे प्रायः अपने भाई बहिनों को मार डालते हैं, इसलिये अमरीका में मुर्गियां पालने वाले चूजों की आंखों पर प्लास्टिक की ऐनक सी लगा देते हैं जिससे उन्हें धरती पर पड़े खाद्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखाई देता।

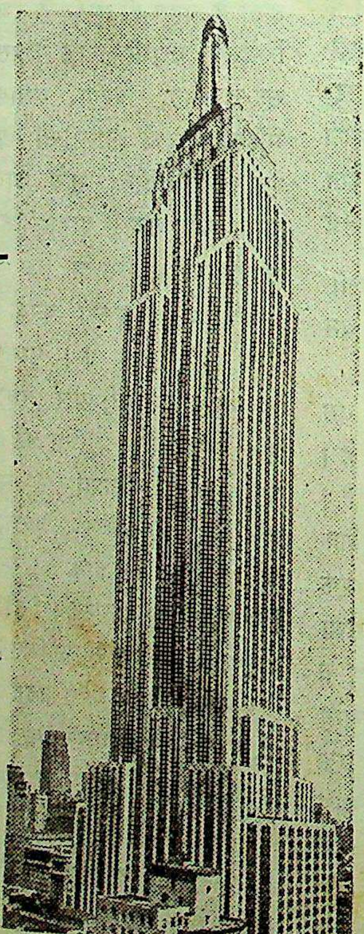

अमरीका के न्यूयार्क नगर में बनी हुई संसार की सब से ऊंची इमारत—'एम्पायर स्टेट बिल्डिंग'। इस इमारत में ६५०१ खिड़कियां हैं जिन्हें सात मजदूर चौदह दिनों में साफ कर पाते हैं।

संसार भर में सबसे अधिक अपराध संभवतः अमरीका में होते हैं। १९४७ के प्रथम छः महीनों में वहां ३१६१ हत्यायें, २३५५० डकैतियें, ६४४६३ मोटरों व साइकलों की चोरियें और ३०३१०६ आम चोरियें हुईं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सलोनी दुनिया

फूल और केश-शृंगार

कुमारी शैलबाला

स्त्री में जब पहले-पहल शृंगार की प्रवृत्ति जागी होगी तो उसने निश्चय ही सर्वप्रथम वन उपवन के फूलों से अपना शृंगार किया होगा — मानों विधाता ने फूलों को इसी अभिप्राय से बनाया हो। आगे चलकर जब सोने-चांदी व मणि-रत्नों के आभूषणों का आविष्कार हुआ, तब भी नारी ने —क्या रानी, क्या दासी —पुष्प-प्रसाधन को नहीं छोड़ा और आज जब कम से कम आभूषण पहनने की प्रवृत्ति बल पकड़ती जा रही है, भारतीय नारी ने फूलों को तिलांजलि नहीं दी —और नहीं तो, केशों के शृंगार के लिये अब भी इनका प्रयोग होता है और यही अधिक उपयुक्त है।

इस दिशा में दक्षिण-भारत, गुजरात और बंगाल की स्त्रियों की रुचि — जो प्रायः सीधी मांग निकालती हैं—सराहनीय है। दक्षिण भारत की शायद ही कोई स्त्री हो जो नागिन सी बल खाती चोटी के मूल में या अन्त में कोई न कोई–अधिकांशतः गुलाब का—फूल न खोंसती हो। बंगाल में विभिन्न आकार-प्रकारों के जूड़े को अत्यन्त आकर्षक ढंग से फूलों से सजाया जाता है। उधर गुजराती रमणी फूलों व कलियों को अर्द्ध-चन्द्र अथवा मोर-पंखों के आकार में वेणी के मूल में सजाकर अनायास ही अपनी उत्कृष्ट कलात्मक सूझ तथा सुरुचि का परिचय देती है।

खैर, अब तो सारे भारत में इस प्रसाधन का रिवाज हो गया है और इस सम्बन्ध में यहां एक-दो सुझाव अप्रासंगिक न होंगे।

'मनोरंजन' की पाठिकाओं से प्रार्थना है कि वे शृंगार-प्रसाधन सम्बंधी अपने अनुभव तथा सुझाव हमें भेजें; हम उन्हें इन पृष्ठों में स्थान देंगे। साथ में यदि वे चित्र भेज सकें तो और भी उत्तम होगा। उपयोगी लेखों, टिप्पणियों तथा चित्रों पर पारिश्रमिक दिया जायेगा। —सम्पादक

फूलों का रंग ऐसा होना चाहिये जो साड़ी अथवा दुपट्टे की वर्ण-योजना से मेल खाता हो। दिन में गुलाब अथवा गेंदे जैसे बड़े और विविध रंगों के फूल अच्छे लगते हैं और रात के समय श्वेत रंग के छोटे फूल अथवा कलियां अच्छी लगती हैं और इन्हें यथासम्भव माला के रूप में पिरोकर या अर्द्ध-चन्द्राकार गूंथ कर पहनना चाहिये। फूलों अथवा कलियों के साथ छोटी २ हरी पत्तियों को भी कलात्मक ढंग से सजाया जा सकता है। स्मरण रहे कि पुष्प-प्रसाधन सीधी मांग के साथ ही अधिक फबता है। आजकल दो चोटियों का भी रिवाज है। दोनों चोटियों के मूल में कानों के पास यदि एक-एक गुलाब का फूल खोंस लिया जाये तो रूप-लावण्य को चार चांद लग जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय नारी

(सावित्री निगम 'व्रजांगना')

इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब मानव अहेरी युग से निकलकर सभ्यता के प्रांगण में उतरा, तो प्रथम बार जिसने राज्याधिकार और नेतृत्व-सम्मान प्राप्त किया, वह नारी ही थी। किन्तु शीघ्र ही अपनी सबल बाहुओं पर गर्व करने वाले नर ने उससे यह अधिकार हथिया लिया।

नारी ने इतनी सुगमता से किस प्रकार अपने समस्त अधिकारों को ठुकरा कर, देव मन्दिर की अधिष्ठात्री के उच्च मंच से उतरकर संकीर्ण-से घर के कोने की दासी बनना स्वीकार किया होगा, यह बात विचार करने योग्य है। सम्भव है, उसे कोई प्रलोभन दिये गये हों या उसने अपनी सहज बुद्धि, प्रणय-प्रेरणा अथवा वात्सल्य रंजित भावनाओं के कारण पुरुष से संघर्ष करना उचित न समझा हो अथवा पुरुष ने उसकी सब भावनाओं को दुर्बलता का रूप देकर यह तर्क रक्खा होगा कि 'तुम कोमलांगी हो; इसलिए न तो नेतृत्व कर सकती हो, न जीवन के लिएसंघर्ष।' और नारी के आत्म-निवेदन तथा युद्ध विषयक उदासीनता को नारी की अकर्मण्यता तथा दुर्बलता का प्रतीक बताकर उसे अधिकारों के प्रति बिल्कुल उदासीन बना दिया गया होगा।

वैदिक काल की 'सहचरी' 'सहधर्मिणी' 'भार्या' अधिक दिन तक अपना यह सम्मान भी सुरक्षित न रख पायी। रीति कालीन युग में पुरुष की भोग-लिप्सा और विलासिता ने उसे रमणी, कामिनी और प्रेयसी का रूप देकर केवल विलास की एक 'सामग्री', ऐश्वर्य की एक 'गुड़िया' बना दिया।

अपनी विषम परिस्थितियों से ऊबकर नारी ने अवश्य ही विद्रोह की भावनाओं को प्रश्रय दिया होता, यदि नीति-कुशल पुरुष ने उसके उठते हुए अविश्वासों, असन्तोषों और सन्देहों का अन्त करने के लिए उसे धार्मिकता, अंधविश्वास, स्वर्ग और परलोक-महिमा का काढ़ा पिला कर उसकी मेधावी शक्ति, बुद्धि एवं तर्क को निष्प्राण न बना दिया होता। किन्तु इस प्रकार विपद्-ग्रस्ता नारी के पास अपनी समस्त शक्तियों को धर्म के चरणों में अर्पण कर तन, मन, धन से परलोक बनाने, पति की सेवा में जुट जाने के अतिरिक्त कोई उपाय ही न रह गया।

राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों ने उसकी अवस्था में परिवर्तन करते-करते उसको जिस अधोगति पर पहुँचा दिया है, उसका वर्णन करना कठिन है।

परन्तु आज भारतीय नारी ने अपने इस युगान्तर-दीर्घ अभिशाप को कि वह अबला, कोमलांगी तथा अकर्मण्या है, उतार दिया है। राष्ट्र के स्वातन्त्र्य आंदोलन की कर्म-भूमि में उतरकर, पुरुषों के कन्धे से कन्धा मिला कर अपने अद्वितीय पराक्रम द्वारा उसने यह प्रमाणित कर दिया है कि उसका 'शक्ति' नाम सार्थक है।

नारी की शक्ति, कार्य-परायणता और कर्तव्य-निष्ठा का लोहा मानने पर भी, इस क्रांति-युग का बुद्धिजीवी मानव, जो हर समय उदारता और प्रगतिवाद का डंका बजाया करता है, राष्ट्र के अर्धांग 'नारीवर्ग' को 'समान-अधिकार' देने को प्रस्तुत नहीं है।

उस उच्च आसन पर, जिस पर वह युगों से अकेला ही आसीन है, चढ़कर केवल एक कोने पर ही नारी को आसीन होते देख उसका हृदय भय व प्रतिहिंसा से कांप-सा उठता है। नारी की अतुल शक्ति, जागृत अवस्था तथा चेतना युक्त व्यक्तित्व देख इतना तो साहस नहीं कर पाता कि वह उसे वहां से धकेल दे। किन्तु अपने शरर में चारों ओर लिपटे रुढ़िनागों को जब-जब वह छुड़ाना चाहती है तो वे भरसक विरोध करते हैं। यदि व्यथा-आतुरा अपने आत्म-बल के सहारे किसी प्रकार एक-आध रूढ़ि-सर्प नोचकर फैंक देती है तो नर मन ही मन क्रोधित होकर धीरे-धीरे उपहास, उपेक्षा और अवहेलना द्वारा सामाजिक बहिष्कार करके, उसकी मानसिक शान्ति छीन लेता है जिससे उसका जीवन भार हो जाता है और कभी कभी विकास-पथ पर बढ़ते हुए नारी के कदमों की पूर्ण गति रुद्ध कर देता है। उस समय क्षण भर रुककर सशंकित हृदय से वह सोचती है—क्या सचमुच उसके प्रयास की जड़ में पुरुष-कथित उच्छृंखलता के विष-बीज तो नहीं हैं?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री चुन्नी लाल अरोड़ा

[बैठने का कमरा जिसका एक दरवाजा दूर रसोई में और दूसरा शयन-कक्ष में खुलता है। पति महोदय हास्य-रस के लेखक हैं। जब पर्दा उठता है तो पति महोदय कुछ लिखने में व्यस्त दिखाई देते हैं। श्रीमती जी दबे पांव कमरे में प्रवेश करती हैं और कुर्सी के पीछे खड़े होकर पति के लेख को पढ़ती हैं]

पत्नी—(एकाएक गुस्से से) यह क्या लिख रहे हो ?

पति—(चौंक कर पीछे मुड़ कर देखता है और फिर सहम कर) कुछ नहीं, एक लेख लिख रहा हूं।

पत्नी — मैंने सब पढ़ लिया है, जनाब, जैसे लेख आप लिखते हैं! तुम जितना चाहो मेरा मजाक उड़ा लो, जितना चाहो मुझे बदनाम कर लो और अगर इस तरह भी जी न भरे तो अखबारों में मेरे फोटो छपाओ, फोटो !

पति—(डरते हुए) अरे भई, जरा धीरे बोलो, माता जी रसोई में···

पत्नी—मैं अभी जाकर उन्हें यह लेख दिखाती हूँ।

पति—क्या पागलपने की बात करती हो ! कौन कम्बख्त तुम्हारी बुराई लिख रहा था, बताओ तो ! मैं तो एक पत्रिका के लिये लेख लिख रहा था। सम्पादक का पत्र भी आया हुआ था, मैंने सोचा, लाओ खाली समय है, लिख डालूं। मगर तुम पता नहीं, क्या समझ बैठीं·······

पत्नी—(मुंह बिचका कर) क्या समझ बैठी ! अजी यह उससे कहना जो पढ़ी हुई न हो। तुम ही तो लिख रहे थे न कि मुझे जब गुस्सा आता है तब तुम्हें बड़ा मजा आता है। तुम ही ने तो लिखा है कि मैं तुम्हें बैंगन खाने पर जोर देती हूं, खीर खाने के लिये कहती हूँ, जैसे तुम मेरे दबैल हो ! और लिखो, अभी लिखा ही क्या है ! लिखो—मैं खाने को जहर देती हूँ, जहर ! मैं तो सदा तुम्हारा विरोध करती हूँ। मैं अभी पिता जी को लिखूंगी कि मुझे शीघ्र से शीघ्र घर बुला लें। न बाबा, ऐसे मर्द का क्या भरोसा, कल को कह देगा कि मेरी बीवी ने मुझे जहर खिला दिया—मैं दुश्मन जो ठहरी !

पति—मैं कब कहता हूँ तुम दुश्मन हो ?

पत्नी—अच्छा, अभी तुम्हारा जी नहीं भरा, और कोसो, और लिखो। मुझे भी कसम है जो मैं बीच में बोलूं। मैं तो अभी पिता जी को पत्र लिखती हूँ।

माता जी — (दूर रसोई से) अरे लल्लू, क्या बात है ? क्यों बिचारी को तंग कर रहा है ?

पत्नी—देखिये माता जी········

पति—(हाथ जोड़कर) अरे बाबा, अब बख्शो भी। मैं तो हास्य-रस का एक लेख लिख रहा था·····

पत्नी—हां जी ! तुम्हारा तो लेख हो गया, चाहे दूसरों की इज्जत चली जाय ! तुम जानते नहीं, मैं हवलदार की बेटी हूँ।

पति—अरे बाबा, सब जानता हुआ भी भूल गया; अब तो माफ करो ! तुम्हें हवलदार की बेटी क्या, कहो तो गवर्नर जनरल की बेटी कहा करूं; लेकिन अब तो बख्शो !

पत्नी -(जरा नर्म होकर) सच कहते हो, अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो कभी नहीं लिखोगे मेरे बारे में ?

पति—सच कहता हूं, देवी जी, बिल्कुल सच !

पत्नी—तब ऐसे नहीं ! इस लेख के दण्ड स्वरूप तुम्हें एक साड़ी भी देनी पड़ेगी। बोलो, मंजूर है ?

पति—मंजूर है, देवी जी, मंजूर है। लेकिन अब तो जाओ।

पत्नी—लो जाती हूं। (जाती है, परन्तु फिर लौट आती है। मुस्कराकर) एक बात बतलाओगे ? सच-सच बतलाना—

पति—क्या ?

पत्नी—क्या वाकई तुम मुझ से दबते हो ?

पति—क्या अब भी परीक्षा ले रही हो ? मैं तो वैसे ही बहुत दण्ड पा चुका हूँ।

पत्नी—अजी नहीं, तुम्हें बतलाना ही पड़ेगा ! मेरी कसम बतलाइये ना···

पति—सच कहूं, तुम जैसे देवियों से तो हर एक को दबना पड़ता है ! देखा नहीं, कैसी चटपट साड़ी की हां करा ली !

पत्नी—सच ! (मुस्कराती, हंसी बिखेरती कमरे से बाहर चली जाती है। पति महोदय मंत्र-मुग्ध-से उसकी ओर देखते रह जाते हैं।)

पर्दा गिरता है

★

दिल्ली में हुए ओलिम्पिक टूर्नामेंट में कुमारी संतोष कोहली ने नेजा फेंक कर प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया।

स्त्रियों का देश

बाली-द्वीप दुनिया में सबसे निराली जगह है। वहां स्त्रियों का राज्य है। वहां स्त्रियों के हाथ में ही सब अधिकार रहते हैं। वे ही अपने पतियों का भरण पोषण करती हैं, खेतों को जोतती-बोती हैं और छोटी-छोटी दूकानों में बैठकर सौदा बेचती हैं। बाली-द्वीप की स्त्रियां खेतों में हल चलाती हैं, कमर तक गहरे पानी में बैठकर बीज बोती हैं और फिर फसल काटती हैं। साठ-सत्तर फुट ऊंचे नारियल के पेड़ पर वे निर्भय चढ़ जाती हैं और भुजाली की सहायता से फल काटकर नीचे गिरा देती हैं। स्त्रियां ही वहां बाजार में माल बेचती हैं और वे ही सौदा करती हैं। बाजार में माल ले जाना और फिर वहां से वापस लाना भी उन्हीं के जिम्मे रहता है।

वहां पुरुष बड़े निकम्मे कहे जाते हैं। सिर्फ पिता बनने की आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही वे रखे जाते हैं। जुआ खेलने के सिवा उनको और कोई काम नहीं रहता।

बाली की औरतें कमर तक एकदम निर्वस्त्र रहती हैं, उनका वक्ष हमेशा खुला रहता है। उनकी पोशाक भी संसार के अन्यान्य देशों की स्त्रियों से भिन्न होती है। वे कमर में धोती बांधती हैं, जो एड़ियों तक लटकती रहती है। वे पान की बड़ी शौकीन होती हैं और बड़े से बड़ा बोझा सिर पर ढोकर ले जाती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

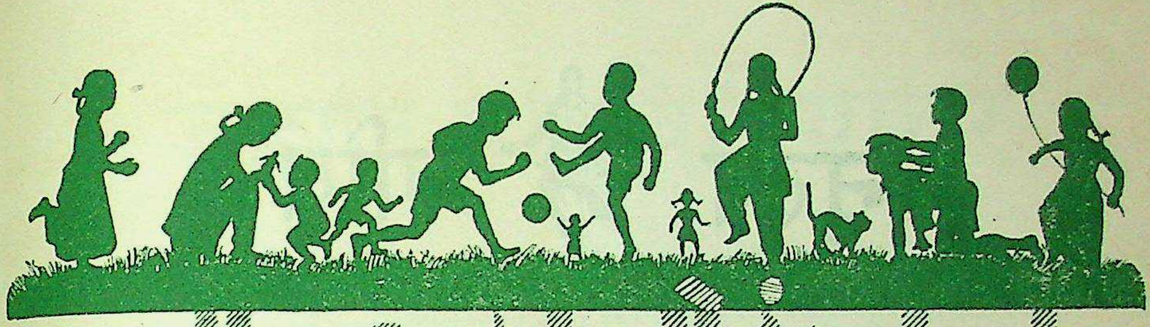

बाल मनोरंजन

मुन्ना

श्री 'अशोक' बी. ए.

फूलों-सा कोमल होता है,
होता है आंखों का तारा।
शीतल होता है चन्दा-सा,
वहा प्रेम की मीठी धारा।

उजियाला फैला-फैलाकर—
घर को है आलोकित करता।
बिना तेल-बाती के घर में—
दीपक-सा है जलता रहता।

मां के जीवन की ममता है,
घर भर का है वही खिलौना।
हँस कर, रो कर भर देता है—
जब तब घर का कोना-कोना।

घर की शोभा, घर की माया,
घर की है सुन्दर फुलवारी,
जिसकी लीला देख-देख कर—
होते हैं मोहित नर-नारी!

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नृत्य गीत

श्री चिरंजीत

(सर्दी की एक सुहावनी सुबह। सुनहरी धूप। बाहर खुले मैदान में लड़के-लड़कियां नाच-गा रहे हैं।)

सब — उजली उजली धूप खिली है,
धूप खिली है,
आओ, नाचें गायें !

लड़के — आसमान ऊपर है नीला,
लड़कियां — नीचे धरती का रँग पीला,
सब — बीच ओस की मोती-लड़ियां—
मोती-लड़ियां —
वृक्षों पर मुसकायें !
आओ, नाचें गायें !

लड़के — रात शीत से ठिठुरी दुनिया,
एक लड़की — ठिठुरी मेरी नन्ही गुड़िया,
सब — सर्दी की यह धूप सुहानी—
धूप सुहानी—
आई, सब सुख पायें !
आओ, नाचें गायें !

लड़कियां — सर्दी से डर भागी कोयल,
लड़के — भाग गया है मोरों का दल,
लड़कियां — लल्लू तुम सब मोर बनो रे !
मोर बनो रे !
हम कोयल बन जायें !
आओ, नाचें गायें !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी

जहाज पर चिड़ियाघर

"...और सभी जानवरों ने स्वाधीनता का आंदोलन छेड़ दिया जिसके नेता थे भालूजी महाराज"

मैं एक जहाज पर इंजीनियर के रूप में काम करता हूँ। एक बार हमारा जहाज पश्चिमी आस्ट्रेलिया के एक नगर के लिये लन्दन के चिड़ियाघर से चुने हुए कुछ जंगली जानवरों को लेकर जा रहा था।

दो भालू, एक अजगर, एक पहाड़ी तेंदुआ, दो अत्यन्त भयंकर दिखाई देने वाले बाघ, कुछ बन्दर, कुछ बिज्जू, लवा, बटेर और कुछ अन्य शिकारी चिड़ियां—इन सब से लदा हुआ हमारा जहाज एक अच्छा खासा चलता फिरता चिड़ियाघर मालूम पड़ता था। जहाज पर का हरेक जानवर कीमती था और हमें उन सब को सुरक्षित पहुँचा देना था।

चलने से पूर्व जहाज के कप्तान तथा प्रधान अफसर ने इस बात की शिकायत की कि जानवरों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पिंजरे बहुत कमजोर हैं। किन्तु हमें यह आश्वासन दिलाया गया कि मार्ग में किसी प्रकार की कोई दुर्घटना नहीं होगी। किन्तु बाद की घटनाओं ने सिद्ध कर दिया कि हमारा भय ठीक था।

जब जहाज समुद्र को चीरता हुआ आगे बढ़ा जा रहा था, तो एक दिन आधी रात के समय कुछ बिज्जू अपने पिंजरों में से किसी तरह निकल कर लवा, बटेरों आदि के पिंजरों में जा घुसे और जरा-सी देर में उन सब को साफ कर गये।

जहाज के कप्तान को जब यह समाचार मिला तो उसने जितने भी आदमी उस समय आवश्यक कार्य नहीं कर रहे थे, वे सब बिज्जू पकड़ने पर लगा दिये।

बड़ा-सा बांस लेकर एक बूढ़ा जहाजी एक बिज्जू को उसके छिपने की जगह से निकालने की कोशिश कर रहा था। अचानक बिज्जू अपनी छिपने की जगह से निकल कर झपटा और उसके चेहरे को झंझोड़ता हुआ एक दूसरी जगह में जा छिपा। बूढ़ा जहाजी डर के मारे पीला पड़ गया। इसके बाद उसने बिज्जू को पकड़ने की कोशिश नहीं की।

जब हिन्द-महासागर में हमारा जहाज पहुँचा तो एकाएक गर्मी बहुत बढ़ गई। कहां तो इंग्लैंड की सर्दी और कहां हिन्द महासागर की गर्मी। दोनों भालू उस गर्मी को सहन नहीं कर सके। हमारा तो अनुभव था कि उस गर्मी के कारण वे चुपचाप पड़ रहेंगे। पर हुआ इसके विरुद्ध। उन्होंने जोर-जोर से गुर्राना और अपने पिंजरों के सीखचों को झंझोड़ना शुरू कर दिया। आखिर दोनों भालू पिंजरों को तोड़कर स्वतन्त्र हो गये।

रात के कोई आठ बजे होंगे। पहरेवाला आदमी जहाज के पिछले हिस्से में गया तो दोनों 'महाशयों' को उसने डेक पर चहल-कदमी करते देखा और वह डर कर वहां से भागा।

लेकिन भालू ने अचानक अपना इरादा बदल दिया। वह एकाएक ठहर गया और चारों ओर उसने नजर डाली। आखिर वह पहरेवाले की आंखों में आंखें डाल कर देखने लगा। दोनों एक दूसरे को घूर रहे थे। आखिर भालू ने लौट जाने का निश्चय किया। बड़ी शान के साथ लौटकर वह अपने साथी से जा मिला।

जहाज का छोटा कप्तान कॉफी पीने में लगा हुआ था। वह यह देखकर सन्न रह गया कि एक भालू पहरे वाले के पीछे-पीछे 'ब्रिज' की सीढ़ी पर चढ़ने की कोशिश कर रहा है।

इसी बीच में खतरे की घण्टी बजा दी गई थी और जहाज के लगभग सभी आदमी 'डेक' पर आ चुके थे। हरेक किसी न किसी जगह से इस भयानक तमाशे को देख रहा था। हम में से हरेक समझता था कि अगर हमें अपनी रक्षा करनी है तो जैसे-तैसे दोनों शैतानों को पकड़कर पिंजरे में बन्द कर देना ही होगा।

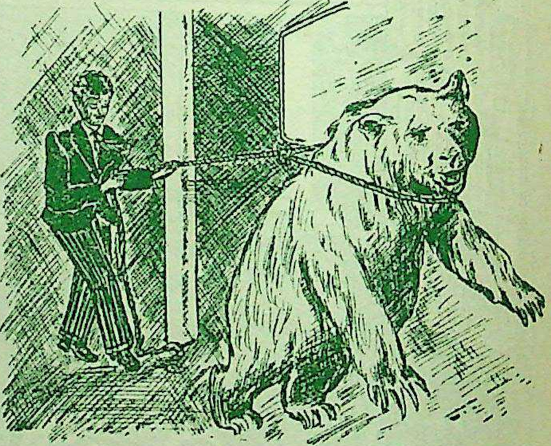

एकाएक हमने देखा कि दोनों भालुओं में से एक को एक नई शैतानी सूझी। बड़े आराम के साथ वह बाघों के पिंजरों की तरफ चला और उनके दरवाजों को उखाड़ने की कोशिश करने लगा और अन्त में उन्हें स्वतन्त्र करने में सफल हो गया।

भालुओं की कृपा से बाघों को जो स्वतन्त्रता मिली थी, वे उसका उपयोग करने में पीछे नहीं रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाज के प्रधान अफ़सर को किसी आवश्यक काम से 'डेक' के उस भाग के निकट जाना पड़ा जहां कि बाघ घूम रहे थे। बड़ी सावधानी के साथ वह उस ओर को बढ़ा। अचानक उनमें से एक बाघ ने पीछे की ओर मुड़कर उसकी ओर घूरना शुरू कर दिया — मानों वह उस अफ़सर पर झपटने वाला ही हो।

इतने में छोटा कप्तान उधर आ निकला। सारी घटना को समझने में उसे देर नहीं लगी। घबराकर उसने अपनी रिवाल्वर निकाल ली और गोली चला दी। किन्तु, सौभाग्य से या दुर्भाग्य से, निशाना ठीक नहीं लगा। बाघ उठकर खड़ा हो गया और शान के साथ दूसरी ओर को चला गया जैसे कुछ हुआ ही न हो।

जो जानवर छूट गये थे उन्होंने दूसरों के पिंजरों को भी तोड़ना शुरू किया। देखते-देखते कुछ बन्दर भी छूट गये और उन्होंने जहाज पर इधर से उधर कूद फांद शुरू कर दी।

बाघों को पकड़ने में तो हमें कोई खास कठिनाई नहीं पड़ी। जहाज के प्रधान अफ़सर को एक तरकीब सूझ गई। बाघों के कटघरों को जब जहाज के बढ़इयों ने खास तौर से मजबूत कर दिया तो उनमें कच्चे मांस के दो रसदार टुकड़े रख दिये गए। मांस के लोथड़ों की सुगन्धि से आकर्षित होकर बाघ उन कटघरों में जा बैठे, मानो वे साधारण भेड़ें हों। तुरन्त कटघरे के दरवाजे बन्द कर दिए गए।

भालू हमारे इस काम को बड़ी दिलचस्पी के साथ देख रहे थे। इधर हमारे बढ़इयों ने डेक के आर-पार उनके लिए एक ऊंचा जंगला बनाकर तय्यार कर दिया था। एक-एक करके उन भागे हुए जानवरों को हमने घेर कर बन्द कर दिया। एक भालू भी हमारे बाड़े में बन्द हो गया। वैसे तो दूसरे को भी हमने करीब-करीब घेर ही लिया था, लेकिन ऐन मौके पर वह कूद कर साफ निकल गया। कुछ देर

(शेष पृष्ठ ५६ पर)

बाल-पहेली नं० ४

२० फरवरी १९४८ तक सही उत्तर आने पर 'मनोरंजन' एक वर्ष के लिये मुफ्त

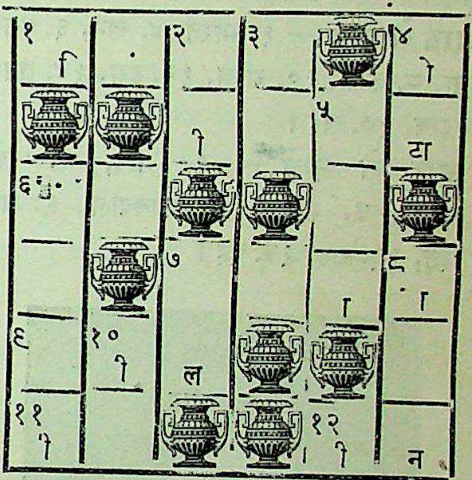

दायें से बायें

१. इस महीने के ३१ दिन होते हैं। ५. यदि चिड़िया का पंख ऐसा हो तो वह उड़ नहीं सकती। ६. यह देवता, राजा अथवा नेता की मनाई जाती है। ७. 'नजराना' के उलट-पुलट अक्षर। ९. मुकदमा इसकी सहायता से लड़ा जाता है। ११. इसके अन्तिम अक्षर को यदि बदल दिया जाये तो एक जंगली जानवर का नाम बन जाता है। १२. इसे बजाने से खड़ खड़ की आवाज पैदा होती है।

ऊपर से नीचे

२. जो चीज छोटी न हो। ३. कभी-कभी ऐसी चीज भी काम आ जाती है। ४. ऐसे भाई को पीटना चाहिये। ५. "मुझे हरेक काम ..... पड़ता है, यह नहीं कि तुम अपने आप करो।" ६. इस महीने की २६ तारीख का हमारे लिये बड़ा महत्व है। ७. यह स्वच्छ होना चाहिये। ८. भारत को युद्ध का उपहार। १०. इसे रास्ते में नहीं फेंकना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाल-पहेली नं० ३ का पुरस्कार

जनवरी १९४८ के 'मनोरंजन' में प्रकाशित 'बाल-पहेली नं० ३' का सही उत्तर **मोहनलाल अग्रवाल, षष्ठ वर्ग, विक्रम विद्यालय, सदर बाजार, झांसी** ने भेजा है। उसे एक वर्ष के लिये 'मनोरंजन' मुफ्त मिलता रहेगा। सही उत्तर निम्नलिखित है—

दायें से बायें — १. भारत, ४. खन, ६. पसटन ७. दवा, ८. कोरा, १०. रहित, १२. हरा, १४. तवाद, १६. रहस्य, १७. लह।

ऊपर से नीचे — १. भाप, २. रसद, ३. तटवार, ५. नगारा, ८. कोतवाल, ९. शहर, ११. हित, १३. राह, १५. दह।

श्री सुरेन्द्र पुराणीक

जिन्होंने पिछले महीने 'बाल-पहेली नं० २' का सही उत्तर भेजकर पुरस्कार प्राप्त किया था। इन की आयु ११ वर्ष ४ मास की है और ये चौथी कक्षा में पढ़ते हैं। इनका पता है —

श्री सुरेन्द्र पुराणीक
हाटकेश्वर भवन
देवास (सीनियर)

पहेली का उत्तर भेजने का पता—

व्यवस्थापक 'मनोरंजन', श्रद्धानन्द बाजार, दिल्ली।

पहेली के नियम

१. उत्तर के साथ चार आने के टिकट आने चाहियें।
२. केवल १४ वर्ष की आयु तक के लड़के-लड़कियां ही इस प्रतियोगिता में भाग ले सकते हैं। आयु के सम्बन्ध में माता-पिता अथवा स्कूल के अध्यापक का प्रमाण-पत्र भी उत्तर के साथ आना चाहिये।
३. उत्तर 'मनोरंजन' में छपे खाके को काट कर और भर कर भेजना चाहिए। किसी और कागज पर अलग से भेजे गये उत्तर पर विचार नहीं किया जायेगा। एक व्यक्ति एक से अधिक पूर्तियां भी भेज सकता है।
४. खानों को स्याही से सुस्पष्ट लिखे अक्षरों से भरना चाहिये। कटे-छंटे या पैंसिल आदि से लिखे अक्षरों को सही नहीं माना जायेगा।
५. उत्तर २० फरवरी १९४८ को शाम तक 'मनोरंजन' कार्यालय में पहुँच जाना चाहिये।
६. सम्पादक का निर्णय अन्तिम होगा।

(पृष्ठ ५५ का शेष)

के बाद उसकी गर्दन में मैंने अपना फंदा फेंका; मगर इस बार तो मेरी ही जान पर आ बनी। उसने मुझे इतने जोर से झटका देकर घसीटा कि मुझे रस्सा छोड़ते ही बना।

परन्तु एक बार असफल हो जाने से मैंने हिम्मत नहीं हारी। दुबारा उसे अपने रस्से में पकड़ने का मैंने यत्न किया। महाशय ऐसे खड़े थे जैसे मैं कैमरा लेकर उनकी फोटो उतारने जा रहा हूं। ध्यान उसका मेरी ही तरफ था। मौका पाकर मैंने अपना रस्सा उसकी ओर फेंका। इस बार हमारे मित्र ने भागने की कोशिश नहीं की। अगले ही क्षण उसको पता लग गया कि वह बुरी तरह जकड़ा जा चुका है। बढ़इयों ने उसके चारों ओर एक मजबूत कटघरा खड़ा कर दिया।

जब उन्हें खास तौर पर मजबूत बने हुए कटघरे में डाल दिया गया, तब सारे जहाजियों ने सन्तोष की सांस ली।

कुछ घण्टों के बाद हमारा जहाज आस्ट्रेलिया के तट पर जा लगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन्दाबाद! जिन्दाबाद!!

(पृष्ठ ४ का शेष)

ठठाकर हंस पड़ा। उसकी वह हंसी अपनी पैशाची लहरें अभी उन वृक्षों की छाया में पूर्णतया विस्तृत न कर पाई थी कि एक राइफिल की 'ठायं' से उसके कानों के पर्दे हिल गये। स्त्रियां कांप उठीं और भय से वृक्ष के तने के निकट हो गईं। उनका हृदय वेग से धड़कने लगा।

क्या और कबाइली आ गये? अब इन नर-पिशाचों के हाथों उनकी क्या दशा होगी? इस जीवन से तो मौत ही भली!

मंसूर ने अपनी राइफिल कन्धे पर रखी।

"खबरदार, जो भागीं। बस इसी पेड़ के नीचे··· खबरदार। रमजान, रज्जाक!"

साथियों को पुकारता हुआ वह चार पग सड़क की दिशा में बढ़ गया।

रहती जाकर रज्जाक की संगीन पर खड़ी हो गई, माला और फाता उसकी बगल में। निस्सन्देह ये कबाइली हैं! यदि भारतीय सैनिक होते तो रज्जाक अवश्य अपनी बन्दूक लेने दौड़ा आता।

तभी पहाड़ फिर गूंज उठे 'ठायं···।'

उन्हें अनुभव हुआ कि मंसूर अपने सम्मुख कुछ देखकर ठिठक गया है। वह वायु में से जैसे कुछ सूंघने का प्रयत्न कर रहा है।

माला ने मंसूर की ओर से दृष्टि हटाकर रहती से पूछा—"क्या हिन्द की फौज आ गई? यह रज्जाक कहां गया?"

"जहां सब को जाना है," रहती ने कठिनता से उत्तर दिया। माला ने देखा कि उसके दांत अधरों में आधे धंस गये हैं।

"क्या बात है, रहती?"

रहती बोली नहीं।

शारदा ने सूचना दी—"रहती, तेरी कलाइयों से रक्त बह रहा है।"

रहती ने दांत और जोर से भींचे।

उन्हें अनुभव हुआ कि रहती अपनी कलाइयों को संगीन की धार पर घिस रही है।

तीन चार रगड़ के पश्चात् रहती बंधन-मुक्त हो गई। मंसूर ने पीछे फिर कर देखा और पाया कि वे चारों नारियां वैसी ही विवश उस पुराने चिनार के वृक्ष से चिपकी भयभीत खड़ी हैं।

उसने अपने से सौ गज दूर पड़े रज्जाक के शरीर को देखा। नहीं, वह वहां नहीं जायगा। वहां मौत है। क्या ये हिन्द के सिपाही हैं? हमारी लारी क्यों नहीं आई? रमजान का क्या हुआ? यह दूसरी गोली किसके लिये थी?

भय उसके हृदय को जमा गया। वह पीछे लौट पड़ा। खुले मैदान में जाकर वह मौत के मुख में पैर नहीं देगा।

रहती ने अपने लहू-लुहान हाथों से राइफिल को पीठ के पीछे पकड़ लिया और मंसूर को अपनी ओर आते देखा।

मंसूर ने वृक्ष का चक्कर लगाया। पाया कि बंदिनियां सुरक्षित हैं, और उनके निकट के वृक्ष की ओट लेकर खड़ा हो गया। उसकी दृष्टि रज्जाक के शरीर की ओर लगी थी। वह वहां किसी के आगमन की आशा कर रहा था। उसकी उंगली साथी के बध का प्रतिशोध लेने के लिये आतुर थी। हमारा लारी क्यों नहीं आया?

रहती कई मिनट तक एकटक उसे निहारती रही और राइफिल पर अपनी पकड़ कसती गई। फिर यकायक दोनों हाथों से उसे सम्भाल मंसूर पर झपट पड़ी। मंसूर ने उसकी पद-चाप जिस समय सुनी, उस समय वह उसके अत्यन्त निकट पहुँच चुकी थी। उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्काल घूमकर फायर किया। पर रहती को गोली की चिंता न थी। उसने मंसूर के सिर पर राइफिल का कुन्दा घुमाकर मारा।

मंसूर इस आघात के लिये तैयार न था। वह नीचे गिर पड़ा। राइफिल पर उसकी पकड़ ढीली हो गई। रहती ने ठोकर मार कर उसे उससे दूर सरका दिया।

"खबरदार! अगर उठने की कोशिश की तो राइफिल सीने में भोंक दूंगी।"

उसने संगीन की नोक मंसूर की छाती पर रखदी।

मंसूर ने उठने की चेष्टा की। रहती ने अपने रक्त से लथपथ हाथों से कुन्दे का दूसरा प्रहार उसके शरीर पर किया। मंसूर कुछ क्षण के लिये शांत हो गया। रहती ने झपटकर अपनी तीनों साथिनों के बन्धन अपनी संगीन से काट दिये।

चारों स्वतन्त्र हो गईं और उस नृशंस लुटेरे के होश में आने की राह देखने लगीं।

"अगर और कबाइली आ गये तो क्या होगा, रहती?"

"घबरा नहीं, होगा वही जो अल्लाह को मंजूर है। अब हमारे पास दो राइफिलें हैं और साठ कारतूस—"

"लेकिन अकेली तुम्हीं तो राइफिल चला सकती हो हम में से!"

"मैं जब तुमसे कहती थी कि राइफल चलाना सीख लो, शायद कभी काम आ जाये, तब तुम्हीं ने कहा था कि ये नाजुक हाथ राइफिलों के लिये नहीं बने हैं। याद करो।"

"रहती, उन दिनों की याद मत दिलाओ!"

उन्होंने देखा कि मंसूर होश में आ रहा है। मंसूर ने नेत्र खोले तो पाया कि दो संगीनें उसकी ओर तनी हैं। उसने उन सुकुमारियों की ओर निहारा। देखा कि प्रत्येक के नयनों में अंगार दहक रहे हैं।

उसकी दृष्टि आकर रहती पर ठहर गई — "अल्लाह के लिये!" उसने अपने हाथ ऊंचे उठाये।

"हाथ नीचे करो," संगीन उसकी ओर बढ़ाते हुए रहती ने कहा। "खान, तुमने रामदास को मारा है। वह हमारे गांव का नेता था। मेरा बहुत प्यारा भाई था। उसने मुझे गोद में खिलाया था। तब मैं जरा-सी बच्ची थी। तुम्हें याद है कि जब तुमने उसकी बहादुर छाती में संगीन भोंकी थी तो वह कह रहा था—

हिन्दू मुसलिम सिख इत्तिहाद

जिन्दाबाद, जिन्दाबाद!

और तुमने कहा था कि यह नापाक नारा बन्द करो। पर उसने तुम्हारा शैतानी हुक्म नहीं माना और तुमने वह संगीन," उसने माला के हाथ की संगीन की ओर संकेत किया, "उसके कलेजे के पार कर दी। लाओ, माला, वह संगीन मुझे दो। खान, मैं तुमसे अपने भाई के खून का बदला लूंगी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने खान की आंखों में देखा। वे भय से भरी हुई थीं। उसे लग रहा था कि ये चारों साक्षात् मृत्यु की मूर्तियां उसे घेर कर खड़ी हैं।

"पर, मरने से पहिले तुम्हें वही पाक नारा लगाना होगा, जिसे तुमने नापाक कहा था। मरते वक्त तुम्हें अपनी ज़बान को पाक करना होगा। बोलो, हिन्दू मुसलिम सिख इत्तिहाद···"

मंसूर नहीं बोला।

"बोलो!"

"तुम मुसलमान औरत हो, यह नारा कुफ्र है।"

"बोलो!" रहती ने चीखकर कहा, "नहीं तो···"

उसने संगीन की नोक उसकी छाती से छुवादी। "बोलो, अपनी ज़बान आखिरी वक्त में पाक करो। बोलो—हिन्दू मुसलिम सिख इत्तिहाद···"

तभी शारदा की दृष्टि खड्ड के दूसरे ओर सामने की पहाड़ी पर पड़ी। हथियारों से लैस आठ भारतीय सैनिक अपने शत्रु का दिल दहलाने वाले कदम उठाते चले आ रहे थे। चारों के हर्ष की कोई सीमा न रही। रहती ने अभिनन्दन किया—

"हिन्दोस्तान जिन्दाबाद! हिन्दोस्तान जिन्दाबाद!!"

और उनके हर्ष का ठिकाना न रहा जब उन्होंने खड्ड के दूसरी ओर से अपने अभिनन्दन का उत्तर सुना, "काश्मीर जिन्दाबाद, काश्मीर जिन्दाबाद।" इसी बीच में फाता ने मंसूर की ओर देखा। पाया कि उसके ओठ भी हिल रहे हैं और उनसे निकल रहा है—"जिन्दाबाद! जिन्दाबाद!"

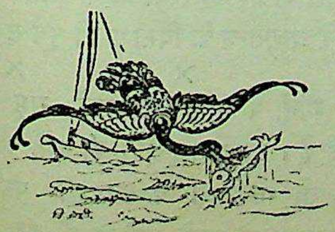

आवश्यक सूचना

इस अंक में अन्यत्र (पृष्ठ ३६ पर) 'मनोरंजन' के **होली अंक** की घोषणा प्रकाशित हुई है। यह घोषणा गांधीजी की हत्या का समाचार प्राप्त होने से बहुत पहले छप गई थी। अब विश्व व्यापी दुःख व शोक की वेला में हम होली के अवसर पर हास-परिहासपूर्ण अंक प्रकाशित करना उचित नहीं समझते। अतः 'मनोरंजन' का आगामी अंक **होली अंक** न होकर सामान्य अंक ही होगा जिसमें गांधी जीवन व गांधी दर्शन सम्बन्धी विशेष पाठ्य सामग्री का समावेश होगा।

सम्पादक
मनोरंजन

मनोरंजन-कैलण्डर

फरवरी मास के अंत तक 'मनोरंजन' के ग्राहक बनने वालों को सन् १९४८ का सचित्र 'मनोरंजन-कैलण्डर' मुफ्त भेजा जायेगा।

व्यवस्थापक
मनोरंजन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय

युग-पुरुष की हत्या

'मनोरंजन' का यह अङ्क उस समय प्रकाशित हो रहा है जबकि समस्त भारत का—नहीं, समस्त संसार का वातावरण आंसुओं व सिसकियों, आहों व कराहों से व्याप्त हो रहा है—राष्ट्र-पिता के शोक में !

३० जनवरी की अभागी संध्या की रक्तरंजित कालिमा ने फैल कर काल-रात्रि का रूप धारण कर लिया है और शिशु-यात्री अपना नया खोजा हुआ अभीप्सित पथ खोकर भटक रहा है। मूर्ख ने अपने हाथ का दीपक स्वयं आप ही बुझा दिया !

उसकी इस मूर्खता पर दुर्दैव दूर खड़ा हंस रहा है, अट्टहास कर रहा है !

× × ×

प्रेम, शांति और अहिंसा के अवतार महात्मा गांधी की एक हिंसक युवक के हाथों नीचतापूर्ण हत्या भारतीय इतिहास में अभूतपूर्व है। पागल हत्यारे ने अपने इस घृणित कृत्य से भारत की नौजवानी को ही नहीं, बल्कि समस्त हिन्दू जाति को सदा के लिये कलंकित कर दिया है। भारत को विदेशी साम्राज्य के जुए से मुक्त कराने वाले, दीन-दुखियों के सहायक व विश्व के महानतम पुरुष को मार कर उस नराधम ने हिन्दू जाति की कृतघ्नता व नैतिक पतन का सबूत दिया है। रक्तरंजित हाथों के साथ क्या अब हम संसार में सिर ऊंचा करके चल सकेंगे ? पश्चिम को शांति और नैतिकता का उपदेश दे सकेंगे ? क्या एक व्यक्ति का पाप सारी जाति के लिये अभिशाप सिद्ध न होगा ?

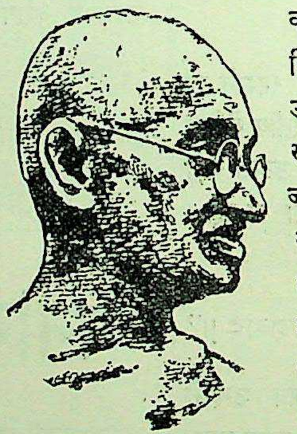

× × ×

सैद्धांतिक मतभेद अथवा नीतिगत विरोध पिता-पुत्र में होता है—हो सकता है, परन्तु इसका यह मत-

गांधी जी के महाप्रयाण के शोक में 'फुलझड़ियों' का स्तम्भ रोक लिया गया है। —सम्पादक

लब नहीं कि पुत्र उठकर पिता को गोली से उड़ा दे। दलगत स्वार्थों के लिये भी इस प्रकार हिंसावृत्ति का आश्रय लेना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं ठहराया जा सकता। इस प्रकार के अनाचार से पीड़ित होकर हमारा स्वराज्य का शिशु अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सकता।

राष्ट्रपिता की हत्या के लिये हाथ उठाते समय उस नराधम ने कम से कम इस कुकर्म के राष्ट्रीय व जातीय दुष्परिणामों पर तो दृष्टिपात किया होता जो आज हमारे सामने उपस्थित हो रहे हैं। जबकि भारतीय संघ की सीमाओं पर शत्रु दनदना रहे हैं, जबकि हमारे नाश के लिए विदेशों में षडयन्त्र रचे जा रहे हैं, इस हत्याकाण्ड के कारण हमारे यहां गृह-कलह का सूत्रपात हो गया है—संगठित होने की बजाये हिन्दू राष्ट्र दो विरोधी दलों में बंट गया है। क्या हम आपसी कलह में अपनी शक्ति का अपव्यय कर देंगे ?

हम समझते हैं कि सरकार को अब पूरी शक्ति से राज-दण्ड का प्रयोग करना चाहिये। प्रतिक्रियावादी शक्तियों को बढ़ने देकर, उनकी उपेक्षा करके वह बहुत बड़ा खतरा मोल लेगी। यह स्थिति हमारे अस्तित्व, हमारी संस्कृति, हमारे प्रजातन्त्र के विनाश की पूर्व-सूचना है।

× × ×

महात्मा गांधी के निधन से हमारे राष्ट्र की बहुत बड़ी क्षति हुई है। इस महान् क्षति की पूर्ति अब यदि हम करना चाहें, तो गांधी जी के आदर्शों पर चलकर, उनके अधूरे काम को आगे बढ़ाकर ही कर सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशित हुआ !

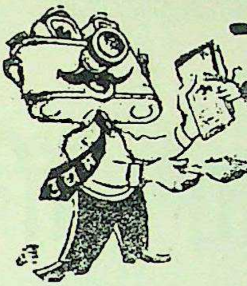

उद्यम

फोटोग्राफी विशेषांक

प्रकाशित हुआ !

× उत्तम व्यंग्यचित्र × फोटो मुलाकातें

इस अङ्क में, उत्कृष्ट छाया चित्रकार श्री यशवन्तराव पुरव की मुलाकातें, सुप्रसिद्ध व्हनगार्ड स्टुडियो का परिचय, फोटोग्राफी सोसाइटी आफ इण्डिया व अन्य संस्थाओं की जानकारी पढ़िये। साथ ही केमरे का चुनाव, फोटो लेना, डेवलपिंग, फिक्सिंग, प्रिंटिंग, माऊंटिंग आदि सम्बन्धी विस्तारपूर्ण सचित्र जानकारी सरल भाषा में दी गई है।

रेलवे स्टालों व सभी एजेण्टों के पास उद्यम के अङ्क मिलते हैं। मांग की अधिकता है। अतः आज ही उद्यम का वार्षिक चन्दा ७ रु० भेजकर फोटोग्राफी विशेषांक व खेती, उद्योगधन्धे, मितव्ययिता आरोग्य आदि विषयों की जानकारी देने वाला उद्यम मासिक मंगाइये।

उद्यम मासिक, धर्मपेठ, नागपुर।

स्वास्थ्य में चमकते हुये बालों के लिये

"सुरैया"
नमुना प्राडक्शन्स कृत
"दो-दिल"

कोमलता से सुगंधित किया गया वेस्लीन ब्ल्यू सील **पोमेड** बालों की रक्षा करता है, उन्हें स्वस्थ और चमकीला रखता है। प्रतिदिन थोड़ा प्रयोग में लाइये।

वेसलीन ब्ल्यू सील पोमेड पर ही ज़ोर दीजिये।

सभी दूकानों पर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दि कोमिल्ला बैंकिंग कारपोरेशन लि०

(स्थापित—१९१४)

रजिस्टर्ड आफिस—क्लाइव घाट स्ट्रीट कलकत्ता।

बैंक हर प्रकार का बैंक सम्बन्धी कार्य करता है

शाखायें समस्त भारत में

विदेशी एजेण्ट—

लन्दन—वेस्टमिन्स्टर बैंक लिमिटेड।
अमरीका—बैंकर्स ट्रस्ट कम्पनी आफ न्यूयार्क।
आस्ट्रेलिया—नेशनल बैंक आफ आस्ट्रेलिया लिमिटेड।
कनाडा—बैंक आफ मांट्रियल।

बी० के० दत्त
डिप्टी मैनेजिंग डायरेक्टर

एन० सी० दत्त
मैनेजिंग डायरेक्टर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सलफेरिक एसिड

बनस्पती

नाइट्रिक एसिड

हाइड्रोक्लोरिक एसिड

क्लोरो सल्फानिक एसिड

अलमुनिया फेरिक

ब्लूज

टर्की रेड आयल

सुपरफास्फेट्स और मिश्रित खाद

पक्का सफेद व गुलाबी

साबुन व क्रिमिनाशक

यह पूर्वपरीक्षित ऊँचे पैमाने के रसायन बजार भाव पर खरीदिये

ऊँचे पैमाने का उत्पादन करने के लिये ऊँचे ही रसायन की जरूरत है। डी० सी० एम० केमिकल वर्क्स आधुनिक तरीकों से बनाये हुये उच्च कोटि के रसायन सस्ते दामों पर बेचते हैं। उचित रसायनों के लिये डी० सी० एम० से बात करिये।

डी.सी.एम
केमिकल वर्क्स
पो. बो. नं० २२१ नजफगढ़ रोड दिल्ली

पूर्वपरीक्षित ऊँचे पैमाने के रसायन-निर्माता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नान की गरिमा ३

ग्रंथि बंधित स्नान

आर्य संस्कृति एवम् पातित धर्म की प्रबल प्रतीक भारतीय महिलायें जन्मान्तर में भी अपने वर्त्तमान पति प्राप्ति की कामना से सहस्त्रों की संख्या में विशेष कर पर्व के दिन तीर्थ स्थानों में इस बीसवीं सदी में भी ग्रन्थि बंधित स्नान करती दखाई पड़ती हैं। इस प्रकार का स्नान उनके वांछित फल प्राप्ति में कहां तक सहायक होता है, यह तो उनके विश्वास का विषय है, पर स्नान का महत्ता सर्वथा निर्विवाद है और विशेषकर जब स्नान "प्रीफेक्ट साबुन" से किया जाता है, जो शरीर को न केवल स्वच्छ एवम् शान्त बनाता है वरन अपनी स्निग्ध सुवास में त्वचा के प्रफुल्लित तथा स्नान के बाद भी सुवासित रखता है।

प्रीफेक्ट

टॉयलेट सोप

विशुद्ध वनस्पति तेलों से निर्मित

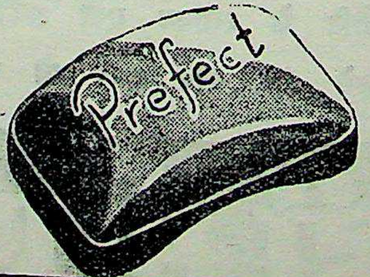

मोदी सोप वर्क्स, मोदीनगर, यू॰पी॰

स्थानीय डिपो—मेसर्स मोदी इण्डस्ट्रीज डिपो, दरयागंज दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारी माल
ढोने के लिये

डनलप
जायण्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
DK 301

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री श्रद्धानन्द पब्लिकेशन्स लिमिटेड

आज इस प्रकाशन संस्था के तत्वावधान में

★ दैनिक वीर अर्जुन
★ सचित्र वीर अर्जुन साप्ताहिक
★ मनोरंजन मासिक
★ विजय पुस्तक भण्डार
★ अर्जुन प्रेस

संचालित हो रहे हैं। यह प्रकाशन संस्था सुदृढ़ आर्थिक स्थिति की है।

अधिकृत पूंजी ५,००,००० **प्रस्तुत पूंजी २,००,०००**

गत वर्षों में इस संस्था की ओर से अपने भागीदारों को अब तक इस प्रकार लाभ बांटा जा चुका है

सन् १९४४	१० प्रतिशत
सन् १९४५	१० प्रतिशत
सन् १९४६	१५ प्रतिशत

१९४७ में कम्पनी ने अपने भागीदारों को १० प्रतिशत लाभ देने का निश्चय किया है !

आप जानते हैं ?

* इस कम्पनी के सभी भागीदार मध्यम वर्ग के हैं और इसका संचालन उन्हीं लोगों द्वारा होता है।
* 'वीर अर्जुन' वर्ग के पत्रों की सम्पूर्ण शक्तियां अब तक राष्ट्र की आवाज को सफल बनाने में लगी रही हैं।

आप भी इस संस्था के भागीदार बन सकते हैं।
और

* इस प्रकाशन संस्था के संचालक वर्ग में सम्मिलित हो सकते हैं।
* राष्ट्र की आवाज को सबल बनाने के लिए इन पत्रों को और अधिक मजबूत बना सकते हैं।
* अपने धन को सुरक्षित स्थान में लगा कर निश्चिन्त हो सकते हैं।
* आप स्थिर आय प्राप्त कर सकते हैं।

इस संस्था का प्रत्येक शेयर दस रुपये का है। आप भागीदार बनने के लिये आज ही आवेदन-पत्र की मांग कीजिये।

श्री श्रद्धानन्द पब्लिकेशन्स लिमिटेड,
श्रद्धानन्द बाजार, दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

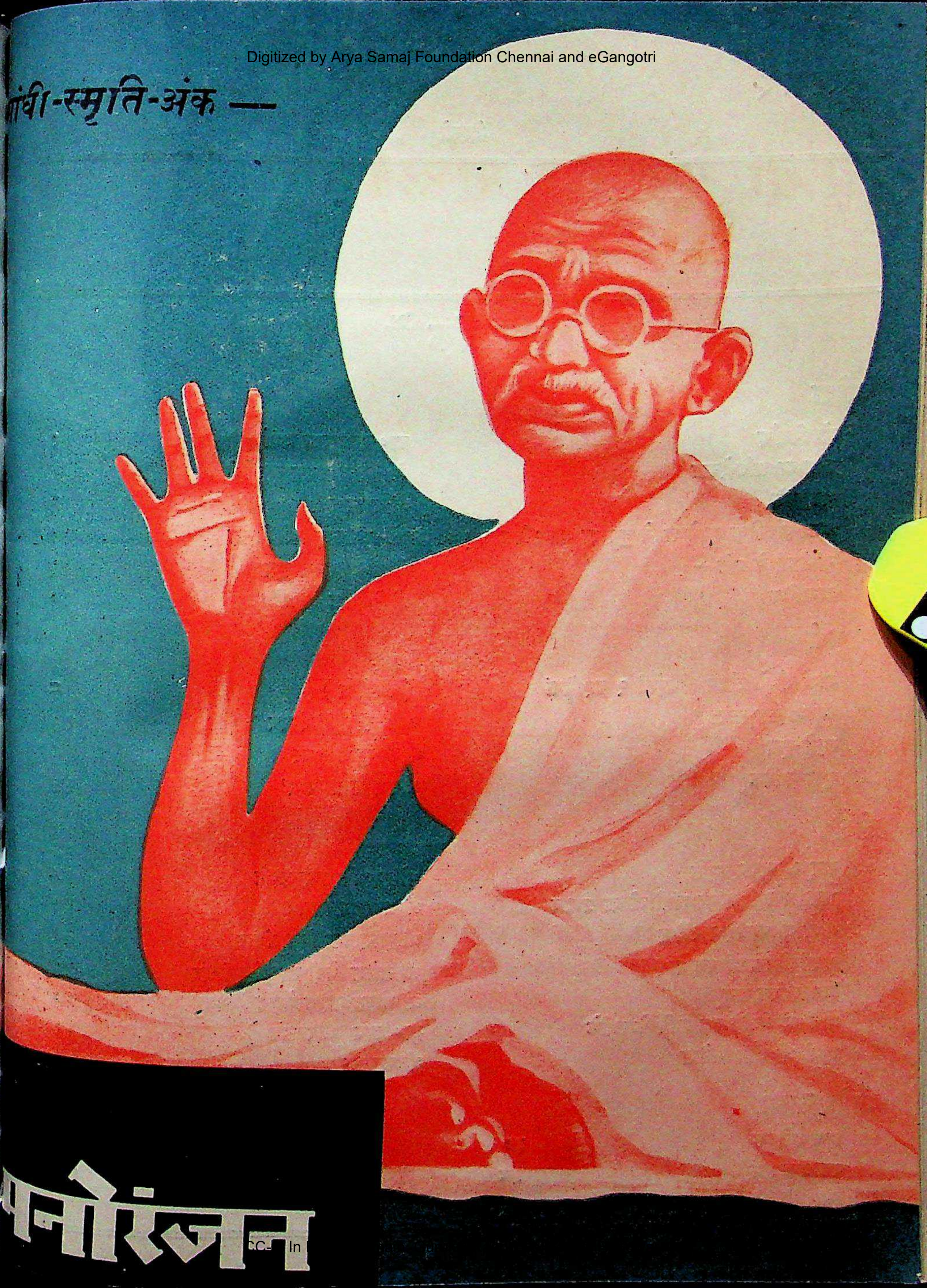

CC- In

वर्ष १ | **मनोरंजन** | मार्च
संख्या ६ | | १९४८
दिल्ली

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

सम्पादक
श्री चिरंजीत

इस अंक में

कविता

दीप-निर्वाण	डा० रामकुमार वर्मा	१
क्षमा का अधि-देवता	पं० श्री नारायण चतुर्वेदी	२
श्रद्धांजलि	श्री बच्चन	३
आज खो दिया हमने अपने युग का भाग्य-विधाता !	सुश्री सुमित्राकुमारी सिनहा	११
गांधी जी के प्रति—	श्री मैथिलीशरण गुप्त	१६
अभागिन	श्री चिरंजीत	१७

कहानी

गांधी जी के जीवन की छोटी २ कहानियां	(संकलित)	८
'मैं भी कलाकार हूँ'	श्री दिलीपकुमार राय	१३
स्मृति-पूजा	श्री विष्णु प्रभाकर	१८
बूढ़ा नाविक	श्रीराम शर्मा 'राम'	२९

लेख

बापू की पावन स्मृति	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	४
भारतीय साहित्य पर गांधी जी का प्रभाव	श्री प्रभाकर माचवे	२१
गांधी जी का दिव्य संदेश	श्री कृष्णचन्द्र विद्यालंकार	२५
काली मिरच की कहानी	श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार	३३
विनोद-प्रिय बापू	श्री गोवर्द्धनदास मेहता	३७
गांधी जी के विश्राम-प्राप्ति के तरीके	डा० ज्ञान श्रीवास्तव	४१
गांधी जी और सिनेमा	श्री कलाधर	५३

विशेष स्तम्भ

हास-परिहास	३७	सलोनी दुनिया	४५
नव प्रकाशन	५८	बाल-मनोरंजन	६१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मूल्य आठ आने

वार्षिक मूल्य ५॥)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीप-निर्वाण

श्री रामकुमार वर्मा

आज कैसी ज्योति है
इस दीप के निर्वाण में !
कालिमामय मरण भी है
खो गया इस प्राण में !

सत्य का आलोक भर कर स्नेह का प्रिय दीप जो था,
दूर रह कर भी अंधेरे में सदैव समीप जो था,
इस तरह युग युग जला
वह देश के निर्माण में।
आज कैसी ज्योति है
इस दीप के निर्वाण में !

जब कि सदियों से भरी परतन्त्रता की रात बीती।
प्राण-दीपक बुझ गया जब भाग्य-लिपि की घात जीती।
देवता था वह, बना
मानव हमारे त्राण में।
आज कैसी ज्योति है
इस दीप के निर्वाण में !

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षमा का अधि-देवता

पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी

आज गिरि का शृङ्ग टूटा,
आज भारत-भाग्य फूटा !
विश्व के आकाश का—
सब से बड़ा नक्षत्र टूटा !

सिहर उट्ठी हैं शिरायें,
रुक गई है रक्त की गति,
नयन दृष्टि-विहीन से हैं,
क्षुब्ध मानस की हुई मति ।

बुद्ध था, करुणा-द्रवित स्वर
कह रहा था, अरे मानव !
क्रोध को अक्रोध से तू जीत,
बन मत भीत, दानव !

कृष्ण के स्वर गूंजते थे—
कर्म कर निष्काम रे नर !
दुःख-सुख का ध्यान मत कर।
व्याध ने छोड़ा प्रखर शर;

क्षमा के अधि-देवता ने
बधिक के भी हाथ जोड़े,
प्रज्ञ-स्थित वैष्णव परम ने
'राम' कह कर प्राण छोड़े ।

शोक-आकुल उरों का वह
एक ही विश्राम स्थल था,
दलित पीड़ित मानवों का
एक ही आधार बल था ।

राष्ट्र ही अपना नहीं यह,
किन्तु, मानव जाति सारी—
मुक्ति पायेगी वरे यदि
भक्ति चरणों की तुम्हारी !

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रद्धांजलि!

उसने अपना सिद्धान्त न बदला मात्र लेश,
पलटा शासन, कट गई कौम, बंट गया देश,
वह एक शिला थी निष्ठा की ऐसी अविकल
सातों सागर
का बल जिसको
दहला न सका।

छा गया क्षितिज तक अंधक अंधड़-अंधकार,
नक्षत्र, चांद, सूरज ने भी ली मान हार,
वह दीप-शिखा थी एक ऊर्ध्व ऐसी अविचल
उंचास पवन
का वेग जिसे
बिठला न सका।

पापों की ऐसी चली धार दुर्दम, दुर्धर,
हो गए मलिन निर्मल से निर्मल नद-निर्झर,
वह शुद्ध क्षीर का ऐसा था सुस्थिर सीकर
जिसको कांजी
का सिन्धु कभी
बिलगा न सका।

★

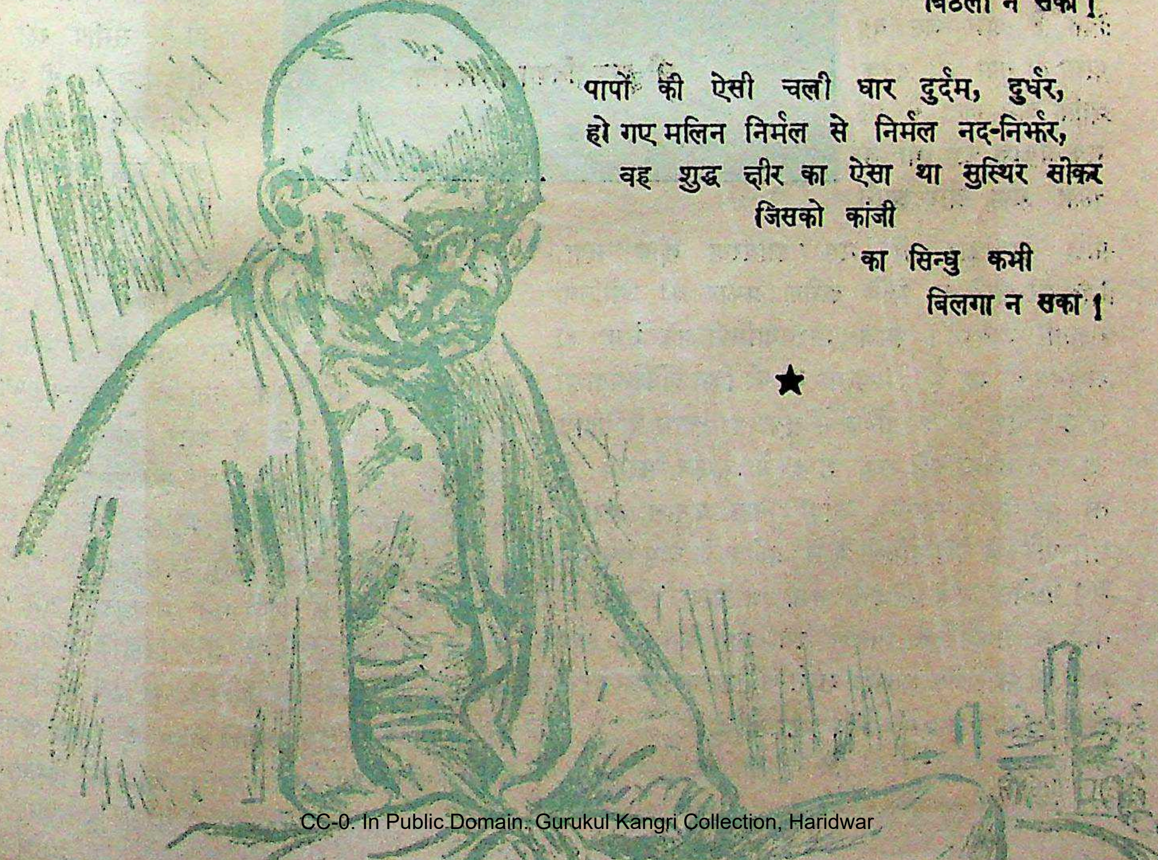

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

★ ★ ★ बापू की पावन स्मृति ★ ★ ★

महात्मा गांधी का वर्तमान भारत और भारतवासियों के जीवन में क्या स्थान था, उसका अनुभव अब हो रहा है, जब महात्मा जी का भौतिक शरीर पृथ्वी पर से प्रयाण कर गया। ऐसा प्रतीत होता है मानों धड़ से सिर अलग हो गया हो। तलवार से कटा धड़ नाच रहा है, परन्तु चेतना जाती रही। भारत के आकाश में और उसके हजारों — शायद लाखों — देशवासियों के हृदयों में सर्वथा शून्य-सा रह गया है। किस क्रम और किन कारणों से गांधी जी उस ऊंचे पद तक पहुँचे, इन विषयों का विवेचन करना केवल अपनी नासमझी का परिचय देना है। कम-से-कम वह पिष्टपेषण तो है ही। जब तक सूर्य आकाश में रहा, तब तक हम कहते हैं कि दिन है और जब वह अस्त हो गया तो हरेक व्यक्ति जान लेता है कि एक प्रकाश-पुञ्ज था जो चला गया और अपने पीछे अन्धकार का एक आवरण छोड़ गया, जिसे दूर करने के लिये अनेक प्रकार की ज्योतियां जलायी जायेंगी। आज भारतवासियों को ऐसा ही अनुभव हो रहा है। महात्मा जी की जिन विशेषताओं ने उन्हें देश के अन्तरिक्ष में सूर्य का स्थान दे दिया था, उन सबका यदि एक शब्द में वर्णन करना हो तो वह शब्द था — 'बापू'। गत पचास वर्षों में धीरे-धीरे वे देशवासियों में से प्रत्येक के बापू बन गये थे। 'प्रत्येक' में सभी धर्म, सभी श्रेणियां और सभी तरह के राजनैतिक विचार आ जाते हैं। जो लोग गांधी जी से अनेक मतभेद रखते थे, उनके हृदय में भी गांधी जी बापू रूप में तो विद्यमान ही थे।

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

× × ×

बापू के सम्बन्ध में मेरे संस्मरण बहुत बिखरे हुए हैं। वे लगभग ३० वर्षों में फैले हुए हैं। उनकी विशेषता यह है कि हरेक संस्मरण छोटा है। मुझे कभी देर तक महात्मा जी के पास रहने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। मेरी और विशेष रूप से मेरी पत्नी की वर्षों से यह इच्छा रही कि अन्य झंझटों से छुट्टी पाकर कुछ समय तक महात्मा जी के समीप रहें। परन्तु दुर्भाग्यवश ऐसा समय न मिल सका। इस तरह भौतिक सामीप्य अधिक न होने पर भी मैं मानसिक दृष्टि से तो गत तीस वर्षों में निरन्तर बापू के सम्पर्क में ही रहा हूं। देश के राजनैतिक कार्यकर्त्ता की हैसियत से, पत्रकर्त्ता की हैसियत से और व्यक्तिगत हैसियत से भी मैं इस दीर्घ समय में निरन्तर महात्मा जी के समीप रहा हूं। बीच बीच में जो भौतिक सान्निध्य होता रहता था, उसके कुछ संस्मरण मैं यहां लिखता हूँ।

मुझे बापू के प्रथम दर्शन अचानक हो गये। सम्भवतः यह घटना १९१५ की है। इससे पूर्व साउथ अफ्रीका के भारतवासियों के नेता मि० गांधी का नाम बरसों तक सुना था, समाचार-पत्रों में उनके अनेक चित्र देखे थे और उनके सम्बन्ध में बहुत कुछ पढ़ा था। कुछ वर्ष पूर्व उनके आश्रम के विद्यार्थी, जिनमें देवदास जी भी थे, गुरुकुल आकर कुछ समय तक रहे थे। जैसे किसी दूसरे लोक के निवासी देवताओं के लिये मन में आदर और भक्ति भावना बन जाती है, वैसी मेरे दिल में भी बनी हुई थी। और जैसे प्रत्येक परोक्ष व्यक्ति का यहां तक कि ईश्वर का भी काल्पनिक चित्र हमारे हृदय में खिंच जाता है, वैसा गांधी जी का चित्र भी मेरे मन में खिंचा हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। जहां तक मुझे याद है, वसन्त का मौसम था और प्रातःकाल सूर्योदय का समय था। मैं उन दिनों गुरुकुल कांगड़ी में उपाध्याय था। गंगा-तट पर पिताजी (स्वामी श्रद्धानन्द जी) का जो निवास-स्थान था, वहां से मैं विद्यालय की ओर जा रहा था। गुरुकुल कांगड़ी में महाविद्यालय-भवन के सामने सींबल का एक बड़ा पेड़ था, जिसके नीचे एक विशाल चबूतरा बना हुआ था। मैं उसके पास से गुजर रहा था कि सामने से एक नाटे कद के दुबले-पतले सज्जन को आते देखा। उस सज्जन का वेष साधारण गुजराती

व्यापारी का-सा था। भेद केवल इतना था कि पांव नंगे थे और चाल विशेष रूप से तेज थी। मेरा तब तक उधर ध्यान नहीं गया, जब तक बिल्कुल पास पहुंच कर उस सज्जन ने मुझ से यह नहीं पूछा — "महात्मा जी का निवास-स्थान कहां है?" तब तक

'महात्मा' — यह विशेषण पिता जी के साथ लगता था, गांधी जी के साथ नहीं। प्रश्न का उत्तर देने के लिये मैंने वक्ता की ओर दृष्टि उठाई और हाथ से गंगा-तट की ओर इशारा करते हुए कहा — "उस बंगले में रहते हैं।" इतना सुनकर वह सज्जन तीव्र गति से आगे बढ़ गये, पर मैं वहीं खड़ा कुछ सोचता रहा। सोचने की बात यह थी कि चेहरा कुछ परिचित-सा प्रतीत हुआ। परन्तु यह याद न आया कि किसका चेहरा है और कब देखा है। कुछ क्षणों के उपरान्त ध्यान में यह बात बिजली की भांति चमक गयी कि यह चेहरा दक्षिण अफ्रीका वाले गांधी जी का है और उसे मैंने चित्रों में देखा है। तब तो मैंने लौटकर उधर देखा जिधर गांधी जी गये थे, क्योंकि अब मेरे मन में यह पश्चात्ताप हो रहा था कि मैंने एक पूज्य पुरुष का चरण-स्पर्श क्यों नहीं किया। परन्तु अब क्या हो सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। अब तो गांधी जी तीव्र गति से मुझसे बहुत दूर जा चुके थे। वे पिता जी के बंगले के अन्दर चले गये और मैं सामने आयी विभूति को न पहिचान सकने के कारण कुछ खिन्न-सा होकर आगे चला गया।

इसके पश्चात् सार्वजनिक-जीवन में समय-समय पर निरन्तर महात्मा जी के दर्शनों का अवसर मिलता रहा। मैंने १९१६ से लेकर १९३६ तक के कांग्रेस के प्रायः सभी वृहद् अधिवेशन देखे हैं। इनमें से तीन-चार अधिवेशनों को छोड़कर सब में प्रतिनिधि की हैसियत से ही सम्मिलित होता रहा। बारह वर्ष तक निरन्तर दिल्ली की ओर से ऑल इण्डिया कांग्रेस कमेटी का सदस्य रहा। उसके शायद ही किसी अधिवेशन में अनुपस्थित रहा हूं। इन बीस वर्षों का कांग्रेस का और भारत का राजनैतिक इतिहास गांधी जी के प्रभाव और यश के विस्तार का इतिहास है। मैंने राजनीति के और मनुष्य-प्रकृति के एक विद्यार्थी की आंखों से महात्मा जी की इस विजय-यात्रा के हरेक चरण को बड़े ध्यान से देखा और अनुभव किया है। अधिवेशनों में जो छोटी-छोटी घटनायें होती थीं, वे मेरे हृदय पर ऐसे अङ्कित हैं, जैसे आज ही लिखी गई हों। उन बीसियों घटनाओं में से केवल एक घटना मैं यहां देता हूं। यह घटना कलकत्ते के नेशनल कन्वेंशन के समय की है। मैं उस अधिवेशन में भी सम्मिलित हुआ था। कन्वेंशन के सभापति पं० मोतीलाल नेहरू थे। कन्वेंशन ने जो प्रस्ताव स्वीकार किया था, उसमें भारत का लक्ष्य औपनिवेशिक स्वराज्य को माना गया था। जब वह प्रस्ताव ऑल इण्डिया कांग्रेस कमेटी में स्वीकृति के लिये उपस्थित हुआ, तब युवक-दल के दो नेताओं की ओर से उस पर यह संशोधन उपस्थित करने की सूचना दी गयी कि कांग्रेस का ध्येय भारत को पूर्ण रूप से स्वाधीन बनाना है। युवक-दल के वे दोनों नेता पं० जवाहरलाल नेहरू और श्री सुभाषचन्द्र बोस थे। यों महात्मा जी उन दिनों कांग्रेस से अलग होकर साबरमती आश्रम में विश्राम कर रहे थे, परन्तु जब संकट देखकर पं० मोतीलाल जी ने अपने मित्र और गुरु को पुकारा, तब द्रौपदी की पुकार से खिंचे हुए संकट-मोचन मोहन की तरह मोहनदास कर्मचन्द गांधी ठीक समय पर आ पहुँचे और ध्येय-सम्बन्धी प्रस्ताव उपस्थित करने लगे।

महात्मा जी ने प्रस्ताव को उपस्थित करने के समय जो भाषण किया, वह उन सब गुणों का परिचायक था, जिन्होंने उन्हें भारत की राजनीति पर पचीस साल तक प्रभुत्व करने का अधिकार दिया था। प्रारम्भ में उन्होंने औपनिवेशिक स्वराज्य का अर्थ समझाया, फिर उसके गुण बतलाये और उसके पश्चात् संशोधन की चर्चा की। वह चर्चा इतनी संशोधन की नहीं थी, जितनी उसके प्रस्तावक की थी। महात्मा जी के कथन का सारांश कुछ इस प्रकार था—

"जवाहरलाल कहता है कि मुझे डोमिनियन स्टेटस पसन्द नहीं, मैं तो पूरी आजादी चाहता हूँ। वह चाहेगा भी क्यों नहीं? वह तो आजादी का दीवाना है। उसके पिता भी तो आजादी के दीवाने हैं न! वह तो अपने दीवानेपन में सूख गया है। कमला बीमार है, उसकी उसे चिंता नहीं। आप रोगी है, इसकी भी परवाह नहीं करता; देश की चिन्ता में घुला जाता है" — इत्यादि।

जब महात्मा जी यहां तक पहुँचे तो लोगों ने देखा कि पं० जवाहरलाल नेहरू अपने स्थान से उठकर सिर झुकाये हुए पण्डाल से बाहर चले गये। नास्तिक दर्शकों ने उस समय कहा — "बुड्ढे ने तारीफ करके जवाहरलाल को मार डाला!"

यह सम्मति ठीक ही निकली। महात्मा जी के भाषण के बाद जब संशोधन के उपस्थित करने का समय आया, तब जवाहरलाल जी की तलाश हुई; पर वे कहीं न मिले। लोगों ने समझा संशोधन मर गया, परन्तु नहीं। बंगाल के प्रतिनिधियों में से अकस्मात् आवाज आयी—"I beg to propose the amendment, Sir" ("महोदय, मैं इस संशोधन को उपस्थित करता हूँ")। लोगों ने उधर देखा तो हरे रंग की खादी की टोपी और सफेद धोती-कुर्ता पहने सुभाष बाबू खड़े थे।

CC-0. Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन अनेक पावन स्मृतियों को सुनाने का प्रलोभन संवरण करके जो इस समय मेरे दिमाग में आ रही हैं, मैं केवल महात्मा जी के अंतिम दर्शन की बात सुनाता हूँ। जब महात्मा जी अन्तिम बार जेल से मुक्त होकर जुहू में विश्राम करने के लिये गये, तब मैंने संकल्प किया कि परिवार सहित जुहू जाकर महात्मा जी के दर्शन करूं। जुहू में महात्मा जी ने लम्बा मौन-व्रत धारण किया था। जाने से पहिले महात्मा जी की अनुमति ले लेना आवश्यक समझ कर मैंने उन्हें एक पत्र लिखा। महात्मा जी का जो अपने हाथ का लिखा उत्तर आया, उसकी प्रतिच्छवि मैं नीचे उद्धृत करता हूँ:

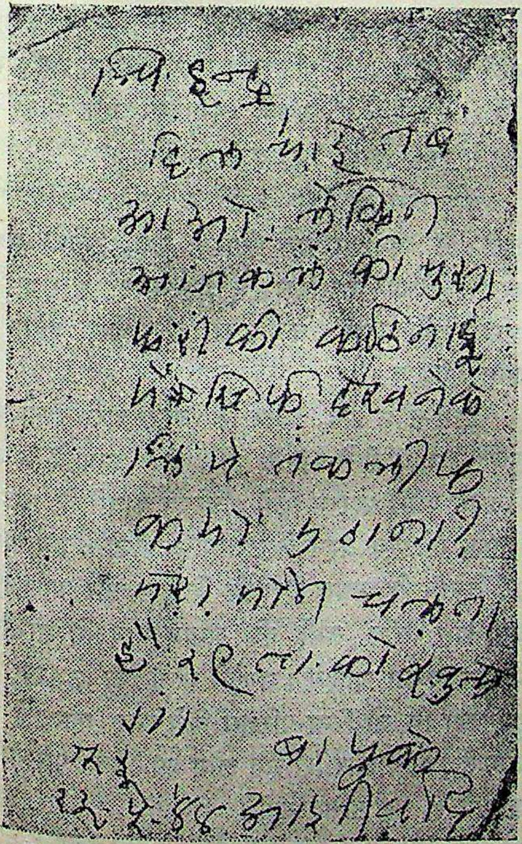
चि० इन्द्र
दिल चाहे तब
आओ. लेकिन
आजकल की मुसा
फरी की कठिनाई
में सिर्फ देखने के
लिये तकलीफ
क्यों उठाना?
मेरा मौन चलता
है; २६ ता० को खुलेगा।
जुहू बापू के
२३-५-४४ आशीर्वाद

पत्र की प्रतिलिपि

चि० इन्द्र,

दिल चाहे तब आओ; लेकिन आजकल की मुसाफरी की कठिनाई में सिर्फ देखने के लिये तकलीफ क्यों उठाना? मेरा मौन चलता है; २६ ता० को खुलेगा।

जुहू **बापू के**
२३-५-४४ **आशीर्वाद**

यह उन निजू पत्रों का एक नमूना है जिनकी प्रत्येक पंक्ति सूत्र बनकर देशवासियों के हृदयों को बांध लेती थी। वे चाहे विचारों में महात्मा जी से कितना ही मतभेद रखते हों, उनके हृदय बापू को 'बापू' मानने के लिये लाचार हो जाते थे —

स पिता पितरस्तेषां केवलं जन्महेतवः।

पत्र छोटा-सा है। परन्तु उसमें इतनी ममता भरी हुई है, जितनी पूरी पुस्तक में भी नहीं हो सकती। चिन्ता हमारी असुविधा की है, अपनी असुविधा की नहीं। बापू का आशीर्वाद खुले बन्दों मिलता था, उसमें न कोई कंजूसी थी और न मांगने की जरूरत। वह बादल की तरह हरेक पर बरसता था। तभी तो महात्मा जी देश भर के 'बापू' बन सके।

दर्शनों के लिये महात्मा जी की अनुमति मिल गयी, किन्तु मेरे भाग्य में अनुमति से लाभ उठाना नहीं लिखा था। मैं स्वयं बहुत लम्बी बीमारी में फंस गया, और जुहू न जा सका। मुझे परिवार सहित अन्तिम दर्शन करने का अवसर तब मिला जब महात्मा जी वाइसराय से मिलने के लिये दिल्ली आये, और दीर्घ-काल तक भंगी बस्ती में ठहरे। तब प्रातःकाल के महात्मा जी के भ्रमण के समय मैंने परिवार सहित आश्रम में उपस्थित होकर प्रणाम किया। तब भी मैं रोग के कारण बहुत निर्बल था। देखकर बापू ने पूछा—"बहुत निर्बल हो गये हो। क्या बात है?"

मैंने उत्तर दिया—"बहुत बीमार रहा हूँ।"

बापू ने पूछा—"अब कैसा है?"

मैंने कहा—"अब अच्छा हूँ।"

(शेष पृष्ठ ५७ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधी जी के जीवन की—

ये छोटी-छोटी कहानियां

गांधीजी महामानव थे। उनकी महानता का कुछ परिचय तो संसार ने उनके जीवन-काल में ही पा लिया था; परन्तु बहुत कुछ अभी पाना है। उनके आदर्श जीवन से सम्बन्धित बहुत से ऐसे अप्रकाशित प्रसंग हैं जो उनके बहुमुखी तथा अलौकिक व्यक्तित्व पर प्रचुर प्रकाश डालते हैं और साथ ही सर्वसाधारण के सामने ऐहिक जीवनचर्या तथा लोक व्यवहार का एक अनुकरणीय मार्ग उपस्थित करते हैं।

गांधी जी ने प्रायः सभी प्रकार के लोगों के घरों में आतिथ्य स्वीकार किया था। प्रायः ऐसा होता था कि उस अर्धनग्न संत को कभी हरिजन बस्ती में और कभी सजाओं, जमींदारों और लखपतियों के महलों में ठहरना होता था। पर गांधीजी कहीं भी क्यों न रहें, उनकी अपनी प्रवृत्ति सब जगह एक जैसी ही रहती थी। जिनके यहां वे ठहरते, वहां कई बार वे अपनी बात ऐसे सुन्दर ढंग से कह देते थे कि वह हृदय के अन्दर तक पैठ ही जाती थी, और साधारणतया अप्रिय होने पर भी विनोद के आवरण में छिपी होने से मधुर जान पड़ती थी।

ऐसी ही एक बार की घटना है। गांधीजी अपने बंगाल के दौरे में एक जमींदार के अतिथि बने। मकान अच्छा-खासा महल था और छोटे से छोटे आदेश के पालन के लिए भी नौकर तैयार रहते थे। जमींदार उन्हें रोबीले और कठोर स्वर में आदेश देता था।

सायंकालीन प्रार्थना बुर्जी पर होती थी। ये प्रार्थनाएं भी दरबार सरीखी होती थीं, जिनमें लोग गांधीजी के दर्शन के लिये एकत्र होते थे।

उस दिन प्रार्थना में स्त्रियों और बच्चों की बड़ी भीड़ थी। जब सब बैठ गये तो गांधीजी अपने गृहपति के साथ आये और दीवार के साथ लगकर बैठ गये।

यह गांधीजी का नियम था कि प्रार्थना से पहले बत्तियां बुझा दी जाती थीं; अतः वे धीरे से बोले— "बत्तियां बुझा दी जायं।"

बिजली की बत्ती का स्विच उस स्थान के लगभग ऊपर ही था जहां गृहपति जमींदार दरी पर रोब के साथ बैठा हुआ था। पर क्या गांधीजी के अनुरोध को पूरा करने के लिये वह स्वयं उठा? इतना बड़ा जमींदार! कैसे हो सकता है? उसने स्वभावतः एक नौकर को जोर से हुकम किया, "ए, बत्ती बुझा दो।"

और तभी गांधीजी फुर्ती से उठे, और इससे पहले कि जमींदार कुछ समझ सके, उन्होंने लपक कर स्विच ऊपर कर दिया; बत्ती बुझ गई और प्रार्थना प्रारम्भ हुई। इस घटना की ओर कुछ लोगों का ध्यान भी गया।

प्रार्थना के बाद, जैसा कि बहुत बार होता था, लोगों ने गांधीजी से कांग्रेस के कार्य इत्यादि के बारे में प्रश्न पूछने प्रारम्भ किये। चरखा कातने के सम्बन्ध में पूछे गये एक प्रश्न के उत्तर में गांधीजी ने इस विषय पर विस्तार से भाषण दिया कि शिक्षित और अशिक्षित, धनी और गरीब सभी को समान भाव से शारीरिक परिश्रम करना चाहिये। उन्होंने गीता का उद्धरण देते हुए कहा कि जो बिना परिश्रम किये अन्न खाता है वह चोर है। धनी और शिक्षित लोग शारीरिक परिश्रम से कतराते हैं, यह उचित नहीं।

और भी बहुत से प्रश्नोत्तर हुए। जब लोगों की भीड़ वापस लौटने लगी तो किसी की असावधानी से एक मेज उलट गई और उस पर रखा चीनी का एक पात्र भी भूमि पर गिर कर चूर-चूर हो गया।

लोगों ने आश्चर्य से देखा कि जमींदार पहला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति था जो फुर्ती से लपक कर टूटे हुए टुकड़ों को इकट्ठा करने लगा। जब दो नौकर पहुँचे तो अपने मालिक को स्वयं टुकड़े चुनते देख कर वे आश्चर्य से जड़-से हो रहे।

गांधीजी जा चुके थे और वे अपने इस चमत्कार को न देख सके।

[२]

गांधीजी में जीवन को वास्तविक दृष्टि से परखने की कितनी अन्तर्दृष्टि थी, यह नीचे लिखी घटना से कुछ स्पष्ट हो जायगा।

आत्म-हत्या को साधारणतया घोर पाप समझा जाता है। धारणा यह है कि मनुष्य का जीवन एक अमूल्य देन है; अतः चाहे यह अपनी भी हो, इसे नष्ट करने का अधिकार किसी को नहीं है। परन्तु गांधीजी का मन्तव्य था कि ऐसा भी क्षण आ सकता है कि जब आत्म-हत्या एक अनिवार्य कर्त्तव्य बन जाती है।

एक बार गांधीजी के एक आश्रमवासी को यह बात समझ में आई कि उसने भीषण पाप किया है। उसकी आत्म-ग्लानि इतनी बढ़ी कि उसे बुखार हो गया। यद्यपि वह सामान्यतः शांत व भीरु स्वभाव का व्यक्ति था, पर उसकी प्रकृति कुछ अपस्मार की-सी थी।

गांधीजी का आश्रमवासी होकर मैंने ऐसा पाप किया—यह ग्लानि यहां तक बढ़ी कि उसने आत्म-हत्या का निश्चय कर लिया और इस विषय में एक पत्र अपनी पत्नी के नाम लिखकर ऐसे स्थान पर रख दिया, जहां वह उसकी दृष्टि में अवश्य आ जाये और स्वयं सोने चला गया।

पत्नी ने पत्र देखा और पढ़ा। उसकी धारणा थी कि उसका पति 'मूर्ख' है, पर सच्ची भारतीय नारी की भांति उसने यह विचार कभी व्यक्त नहीं किया था। यह पत्र पढ़कर वह डर गई और दौड़ कर गांधीजी के पास पहुँची।

गांधीजी ने उस पश्चात्तापी 'पापी' को बुलवा भेजा। वह आया; अपनी पाप-कथा करुणोत्पादक ढंग से गांधी जी को सुनाई और अन्त में कहा—"मेरा जीवन अब जीने योग्य नहीं रहा। मैं इसे समाप्त कर देना चाहता हूँ।"

गांधीजी उस व्यक्ति को पहिचानते थे; बोले—"पाप तो तुमने किया है। परन्तु अपने आपको मारते क्यों हो? जीवित रहो और अपना सुधार करने का प्रयत्न करो।"

"नहीं नहीं, बापू, मैं अपने आपको दण्ड देना चाहता हूं। मुझे अपने आपको समाप्त कर ही डालना चाहिये। अब मेरे सुधार की कोई आशा नहीं है।" वह अपने हठ पर दृढ़ रहा।

गांधी जी के साथ और दो-चार मित्रों ने उसे सान्त्वना देना प्रारम्भ किया, पर उसका निश्चय दृढ़तर होता गया।

गांधी जी क्षण भर रुके, फिर बोले—"अच्छा, इस समय अपने कमरे में जाओ और विचार करो। मेरा विश्वास है कि तुम्हें अपना जीवन नष्ट नहीं करना चाहिए। मैं तुम्हारे सामने जीवन-सुधार का रचनात्मक कार्यक्रम रखने को तैयार हूँ। पर गम्भीर विचार के बाद भी यदि तुम्हारा निर्णय न बदले तो कल मेरे पास आना मैं फिर सोच देखूंगा।"

"नहीं बापू, मुझे मर जाने की ही अनुमति दीजिये।"

"अच्छा, इस समय जाओ। तुम मुझे पहिचानते ही हो। अपना मार्ग चुनने में तुम पूर्ण रूप से स्वतंत्र हो।"

वह तथा अन्य लोग भी चले गये। गांधीजी ने उसकी भयभीत पत्नी को सान्त्वना देते हुए कहा—"घबराओ नहीं। वह आत्म-हत्या कर ही नहीं सकता। बल्कि अच्छा हो कि तुम आज रात यहीं सो जाओ, जिससे रात भर वह शांति-पूर्वक विचार कर सके।"

रात बीती और वह व्यक्ति फिर गांधीजी के सामने पेश किया गया। गांधीजी थोड़ा हंसे; बोले—"अच्छा, तुम अभी तक हो। आओ, बैठो।"

बाद में इस व्यक्ति ने अपना जीवन सुधार लिया और अब वह श्रेष्ठ जीवन व्यतीत कर रहा है।

गांधी जी समझते थे कि यह व्यक्ति आत्म-हत्या नहीं कर सकता और साथ ही उत्तेजित इतना हो चुका है कि इसे मना सकना कठिन है। मनाने का प्रयत्न करने से शायद उसका आत्म-हत्या का निश्चय क्रियान्वित ही हो जाता, परन्तु शान्त छोड़ देने से उसका मन शीघ्र ही स्वाभाविक स्थिति में आ गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[३]

उस समय गांधी जी काफी प्रसिद्ध हो चुके थे, परन्तु स्थिति ऐसी नहीं हुई थी कि प्रत्येक यात्रा में उनके साथ लाव-लश्कर चला करता, जैसा कि बाद में हो गया था। तो जैसा बहुतों के साथ घटता है, वही हुआ। गाड़ी आई, भीड़ बहुत थी; बड़ी मुश्किल से जैसे-तैसे सामान को ठेल-ठालकर गांधी जी डब्बे में चढ़े।

डब्बे में बैठने की जगह हो भी सकती थी, परन्तु बहुत से बाहुबलोपजीवी उस में पैर फैलाकर लेटे हुए थे। जब गांधी जी ने उनमें से एक को उठकर बैठने के लिये कहा तो उसने सीधा तर्क पेश किया—"तो तू डब्बे में घुसा ही क्यों था? पहले नहीं दीखता था कि यहां बैठने की जगह नहीं है। बाहर होते हैं तो कहते हैं खड़े-खड़े चले जायंगे, अन्दर आ जाते हैं तो कहते हैं उठकर बैठ जाओ!"

खैर, गांधी जी खड़े रहे। उन्होंने भी कुछ आग्रह नहीं किया।

यात्रा लम्बी थी; किसी यात्री ने पूछा—"आप कहां तक जायंगे?"

"बम्बई जा रहा हूँ।"

"क्या काम है?" "कहां रहते हैं?" आदि प्रश्नों पर से होती हुई जिज्ञासा "आपका शुभ नाम?" पर आ पहुँची।

"मोहनदास गांधी।"

"गांधी?" तब तो हल्ला पड़ गया। बैठने के लिये कई स्थान खाली हो गये। गांधी जी बैठ गये।

गांधी जी की जगह यदि कोई और होता तो हमारा विश्वास है कि लेटे हुए लोगों को उठाने के वाद-विवाद में "तू समझता क्या है? जानता नहीं मैं कौन हूँ?" की वाक्यावली अवश्य प्रयुक्त होती।

परन्तु वह गांधी जी थे!

[४]

गांधी जी की क्षमाशीलता की घटनाएं अनेक हैं। कहा जाता है कि उन्होंने प्रार्थना-सभा में बम फेंकने का प्रयत्न करने वाले मदनलाल को भी क्षमा कर दिया था। परन्तु यह घटना तो हाल ही की है। जब वे बहुत बड़े नहीं थे, तब भी वे ऐसे ही क्षमाशील थे। दक्षिण अफ्रीका में ट्रांसवाल ने भारतीयों ने रजिस्ट्रेशन के प्रश्न पर सत्याग्रह किया। इस रजिस्ट्रेशन के अनुसार प्रत्येक भारतीय को एक प्रमाण-पत्र दिया जाना था। कुछ गिरफ्तारियों के बाद गांधी जी ने गोरों से समझौता कर लिया। इस पर गांधी जी के ही बहुत से अनुयायी उन पर बहुत बिगड़े।

पठान मीर आलम गांधी जी का मुवक्किल था। उसे गांधी के इस समझौते पर बड़ा क्रोध आया और जब गांधी जी रजिस्ट्रेशन के दफ्तर की ओर जा रहे थे, तभी उसने और उसके कुछ साथियों ने गांधी जी पर आक्रमण किया और उन्हें बुरी तरह मारा। पर पुलिस मौके पर पहुँच गई और अपराधी रंगे हाथ गिरफ्तार कर लिये गये।

बेहोशी समाप्त होने पर जब गांधी जी को अस्पताल में बताया गया कि अपराधी पकड़ लिये गये हैं, तो उन्होंने सरकारी वकील को चिट्ठी लिखी कि मैं नहीं चाहता कि अपराधियों के विरुद्ध कोई कार्यवाही की जाय। इस पर सब अपराधी छोड़ दिये गये।

परन्तु जोहान्सबर्ग के गोरों ने कहा—अपराध तो खुली सड़क पर हुआ है। अतः ऐसे सार्वजनिक अपराध पर अपराधियों को दण्ड मिलना ही चाहिये।

इस पर मीर आलम और उसके साथी फिर पकड़े गये और तीन मास की कड़ी कैद हुई।

गांधी जी तब तक भी अस्पताल में थे। उन्होंने एक वक्तव्य दिया और कहा — "मेरा अब भी मीर आलम के प्रति द्वेषभाव नहीं है। वह नहीं जानता था कि वह क्या कर रहा है।"

साथ ही उन्होंने भारतीयों से रजिस्ट्रेशन कराने और प्रमाण-पत्र लेने की भी अपील की।

गांधी जी में क्षमाशीलता का यह भाव बाद में एकाएक नहीं बन गया, बल्कि प्रारम्भ से ही उनके हृदय में विद्यमान था। बाद में तो उसका अलौकिक ऊंचाई तक विकास भर हुआ था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज खो दिया हमने अपने युग का भाग्य-विधाता !

सुश्री सुमित्रा कुमारी सिनहा

हाय ! अहिंसा-मूर्ति आज हिंसा के हाथों टूटी,
भारत की वह निधि अमूल्य यों गई अचानक लूटी !

आज हिमालय से आंसू की बूंदें बरस रही हैं,
आज हिन्द के धूलि-कणों से आहें निकल रही हैं।

विश्व-सिन्धु में ज्वार उठा है, वज्र गिर पड़ा हम पर,
कोटि-कोटि कण्ठों से फूटे आज विकल क्रन्दन-स्वर।

आज पूर्व का सूर्य अस्त हो गया अमा की निशि में,
पीड़ा और दुःख की लहरें भरीं आज दिशि-दिशि में।

धरती का उर फटा, गगन के मुख पर कालिख छाई,
यमुना-तट पर पवन बिलखती शीश पटकती आई।

जली चिता, बुझ गई विश्व की ज्योति, तिमिर घन छाया,
हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई सब ने अश्रु बहाया।

अग्नि-तेज का जिसकी वाणी ने संचार किया था,
जड़ता को चेतन का जिसने नव संसार दिया था।

कंकालों में जीवन-अमृत भरने वाला बापू !
शान्ति प्रेम से स्वतन्त्रता को वरने वाला बापू !

आज खो दिया हमने अपने युग का भाग्य-विधाता,
मानव-मुक्ति-दूत वह गांधी नवयुग का निर्माता।

किरणें भी जिसके प्रकाश से होती थीं आलोकित,
जिसको छूकर धरा-धूलि भी हो जाती थी सुरभित।

जीव-ब्रह्म का भेद रहित वह द्रष्टा था सन्यासी,
ऊर्ध्व-शिखा या होम-हुताशन की बलि का अभ्यासी,

बुद्ध महाजातक, ईसा, सुकरात महात्मा था वह,
कोटि-कोटि जन का प्यारा, ईश्वर विश्वात्मा था वह !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके प्राणों की छवि लेकर अब तो ज्योति जगा लो !
बिलख रही है मानवता, पशुता से उसे बचा लो !

रख न सके स्वर्गिक-विभूति को मर्त्य-लोक के प्राणी,
स्वर्ग-लोक में बुला ले गई उसे सुरों की वाणी।

किन्तु अमर है, अमर आज क्या, युग-युग तक वह मोहन !
युग युग करते जायेंगे उस आत्मा का आवाहन !

उसकी अमर आत्मा भू पर अब भी मध्य हमारे—
हमें ज्योति देगी, धो-धो कर जग के कल्मष सारे।

युगयुग तक गति देंगे ऋषि की आत्मा के पावन स्वर,
सत्य-बेलि को सींच दिया जिसने शोणित-कण देकर।

शांति-एकता-रथ को सारथि खींच गया जग पथ पर,
आज हमें उसको पहुँचाना है पूरी मंजिल पर।

उसकी हृद-वीणा से निकलीं मधुर प्रेम-गुंजारें,
आज विश्व के कण-कण में बह उठीं प्रेम की धारें।

मरुथल में भी जिसकी अमृत-वाणी-निर्झर फूटे,
पा उसका आलोक, विश्व अब तमस-पाश से छूटे !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मैं भी कलाकार हूँ!'

श्री दिलीपकुमार राय

श्री दिलीपकुमार राय बंगाल के सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ हैं। प्रस्तुत लेख में उन्होंने गांधी जी के साथ हुई अपनी एक भेंट का विवरण दिया है। इस विवरण से गांधीजी के कला सम्बन्धी विचारों पर काफी अच्छा प्रकाश पड़ता है।

तानपूरा लिये हुए जब मैंने गांधीजी के कमरे में प्रवेश किया तो उस समय पश्चिम में डूबता हुआ सूर्य गांधीजी की चारपाई के पादतल में लम्बाकार सिंदूरी किरणें बिखेर कर मानों उनके चरणों में अपनी अन्तिम श्रद्धांजलि अर्पित कर रहा था। कमरे में गांधी जी के अलावा कुमारी नायडू, महादेव देसाई और दो अन्य सज्जन बैठे हुए थे। कुछ क्षणों के बाद मैंने पहिले हिन्दी के एक भक्त-कवि का एक भक्ति-भाव-पूर्ण भजन गाया, उसके बाद मीरा का प्रसिद्ध भजन 'चाकर राखो जी।'

गांधीजी के सौम्य नेत्र चमक उठे और उन्होंने मुझे उज्ज्वल स्मिति प्रदान की। गांधीजी को वह भजन निश्चय ही पसन्द आया था और मैं गद्‌गद् हो उठा।

"मीरा के भजन सदा सुन्दर होते हैं!" वे बोले।

"मेरा खयाल है आप मीरा के भजन बहुधा सुनते रहते हैं," मैंने जिज्ञासा की।

"अरे! मुझे तो उसके बहुत से भजन याद हैं। मैं अपने आश्रम-वासियों से सदा उसके भजन सुनना पसन्द करता हूं। वे कितने मार्मिक, सत्य और कवित्व-पूर्ण हैं!"

गांधीजी के ये शब्द सुनकर मैं पुनः गद्‌गद् हो उठा, क्योंकि रहस्यवादी कवियों में से मीरा और कबीर ही मुझे अधिक प्रिय हैं।

गांधीजी ने अपनी बात आगे बढ़ाते हुए कहा—"मीरा के गीतों में जरा भी बनावट नहीं है, इसलिये तो वे प्रभावोत्पादक हैं। मीरा गाती थी, क्योंकि वह बिना गाये रह नहीं सकती थी—और ये गीत तो निर्झर की भांति सीधे उसके हृदय से फूट पड़े थे। और कवियों की भांति उसने ख्याति अथवा वाहवाही प्राप्त करने के लिये इनकी रचना नहीं की थी। यही इनके अमरत्व का रहस्य है।"

गांधी जी के यह शब्द सुनकर मैं प्रसन्न हो गया, क्योंकि रहस्यवादी कवियों में से मीरा और कबीर मेरे बड़े प्रिय कवि हैं।

"मैं अनुभव करता हूँ," मैंने प्रोत्साहन पाकर कहा, "कि हमारा सुन्दर संगीत स्कूलों और कालिजों में बुरी तरह से उपेक्षित हो रहा है।"

"दुर्भाग्यवश ऐसा ही है," गांधीजी ने सहमति प्रगट की। "हमारे लिये अभी भी समय है कि हम सजग होकर इधर ध्यान दें। हमारे लिये यह बड़ी दुर्घटना होगी, यदि हमारा सुन्दर संगीत केवल लोकोपेक्षा और बेकद्री के कारण खत्म हो जाता है। मैंने सदा ऐसा कहा है।"

महादेव देसाई ने गांधीजी की बात की पुष्टि की।

"मुझे आपके ये विचार जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई," मैंने कहा—"मैं स्पष्ट रूप से स्वीकार करूं कि आज से पहले मेरी यह धारणा थी कि आपके तपोमय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कठोर जीवन में कला को कोई स्थान प्राप्त नहीं। सच तो यह है कि मैंने आपकी कल्पना एक ऐसे कठोर और शुष्क संत के रूप में कर रखी थी जो संगीत के विरुद्ध है!"

"संगीत के विरुद्ध—और मैं?" गांधीजी आश्चर्यान्वित होकर बोले, गोया कि उन्हें मेरे कथन से कुछ दुःख पहुंचा हो। मैं अचकचाया। वे फिर बोले — "इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं यदि तुमने मेरे बारे में ऐसी कल्पना की। मेरे बारे में ऐसी अनेकों भ्रान्तियां फैली हुई हैं और ये भ्रान्तियां इतनी जोर पकड़ गयी हैं कि इन्हें फैलाने वालों को रोकना मेरे लिये असम्भव हो गया है। यह चीज यहां तक बढ़ गई है कि जब मैं अपने मित्रों से कहता हूँ कि मैं भी एक कलाकार हूँ तो वे हंस देते हैं। वे इसे एक बढ़िया मजाक समझते हैं।" इतना कह कर गांधीजी एक बच्चे के समान खिल-खिलाकर हंस पड़े।

"महात्मा जी, मुझे यह सुन कर बड़ा हर्ष हुआ," मैंने गांधीजी की हंसी में साथ देते हुए कहा, "किन्तु क्या आपका तपस्वी-जीवन इन सब लोक-व्यापी भ्रान्तियों के लिये जिम्मेवार नहीं है? आप जनता को दोषी नहीं मानेंगे यदि वह तपश्चर्या का कला के साथ सामंजस्य न देख पाये।"

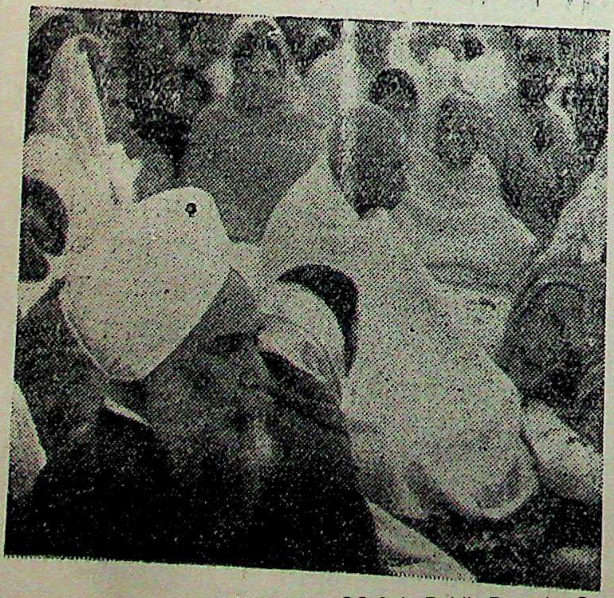

गांधी जी प्रार्थना-सभा में

"किन्तु मेरा विश्वास तो यह है कि तपश्चर्या-जीवन में सबसे बड़ी कला है। कला क्या है? सादगी में सौंदर्य। और तपश्चर्या? कृत्रिमताओं और अंध-विश्वासों से विहीन दैनिक जीवन में सरल सुन्दरता की उच्चतम अभिव्यक्ति। इसीलिये मैं कहता हूँ कि सच्चा तपस्वी कला की न केवल साधना करता है, वरन् वह कलामय जीवन व्यतीत करता है।" कुछ उत्साहित से होकर उन्होंने अपनी बात को आगे बढ़ाया—

"और यह सोचना कि मैं संगीत सरीखी कला का विरोधी हूँ, क्योंकि मैं कठोर और तपोमय जीवन के पक्ष में हूँ, मेरे साथ बहुत बड़ा अन्याय है। मैं जो संगीत के बिना भारत के धार्मिक-जीवन की उन्नति की कल्पना ही नहीं कर सकता — उसके बारे में यह धारणा! हद हो गई!"

"लेकिन, लोगों की यह धारणा बनी कैसे कि आप संगीत विरोधी हैं?" मैंने पूछा।

गांधीजी बोले — "मैं समझता हूँ, इसके कुछेक कारण जरूर हैं। एक तो यह कि आजकल जो चीजें 'कला' कही जा रही हैं, उन्हें मैं अधिक महत्व देने में असमर्थ हूँ। दूसरे शब्दों में मेरे कला-सम्बन्धी मूलमान औरों से भिन्न हैं। उदाहरणार्थ, मैं उसे ऊंचे दर्जे की कला नहीं मानता जिसका आनन्द लेने के लिये टेकनीक का गहरा ज्ञान आवश्यक हो। मेरी दृष्टि में प्रकृति के सौन्दर्य की भांति ऊंची कला भी वही है जो सर्वसाधारण की समझ में आ जाये। आप चाहे कुछ भी समझें, कम से कम मैं तो बाल की खाल निकालने की योग्यता को कलात्मक-मूल्यांकन की कसौटी नहीं मान सकता। सच्ची कला और उसकी सच्ची पहचान का बाहरी दिखावे और मिथ्याभिमान से दूर का भी वास्ता नहीं। प्रकृति की भाषा की तरह कला का रूप और उसकी अभिव्यक्ति दोनों ही सीधे-सादे होने चाहियें।"

"किन्तु मुझे मालूम हुआ है कि आप अपने कमरे की दीवारों पर चित्र टांगने के विरुद्ध हैं,"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

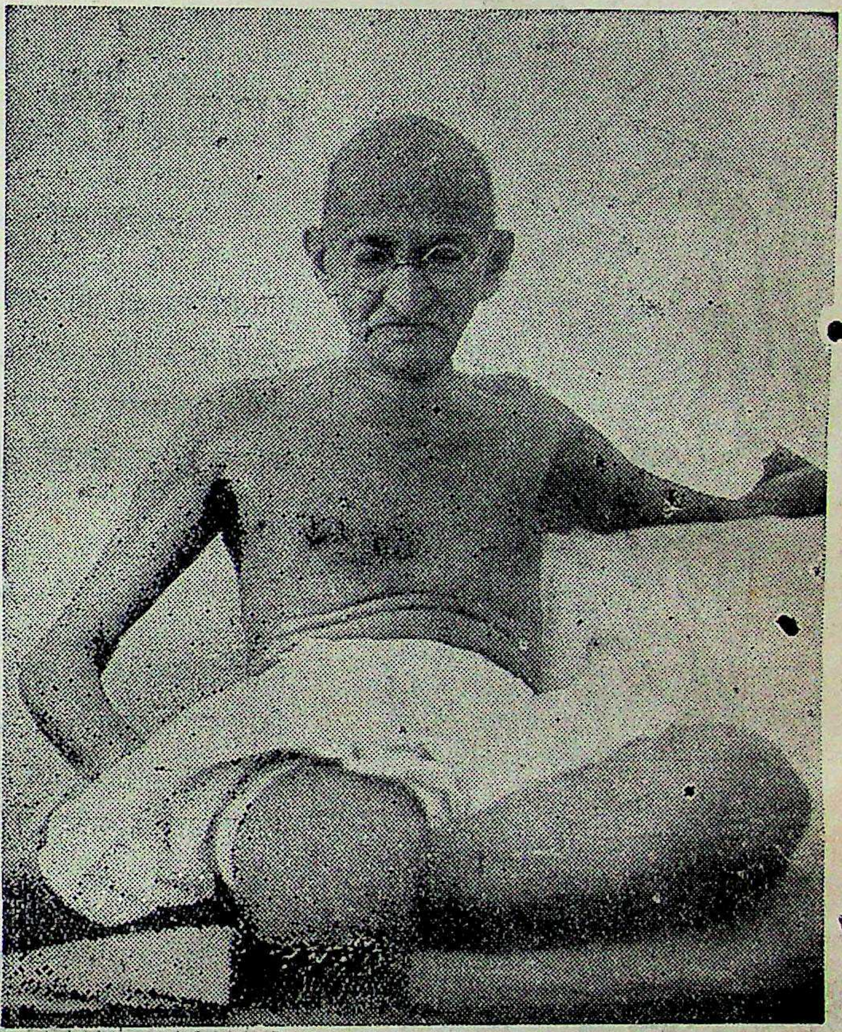

मैंने कहा।

"हां, यह दूसरी चीज है जिस पर मेरे मित्र आपत्ति प्रगट करते हैं और इसे कला के प्रति मेरी उपेक्षा का दूसरा चिह्न समझते हैं। परन्तु मैं कहता हूँ कि दीवारें हमारी पनाह के लिये हैं, वे क्यों चित्रों और तस्वीरों से लादी जायं?"

"किन्तु यदि और लोग दीवारों पर तस्वीरें लगाना चाहें?"

"लगायें, मुझे उससे क्या? यह उनका अपना मामला है। यदि तस्वीरें लगाने से उन्हें खुशी होती है तो जितनी जी चाहे तस्वीरें लगायें। परन्तु मैं अपनी प्रेरणा के लिये उनकी आवश्यकता नहीं अनुभव करता। मेरे लिए तो प्रकृति ही पर्याप्त है।"

वे कहते गये—"क्या मैंने भला अथकित रूप से तारकमय आकाश की अचरज भरी रहस्यात्मकता को नहीं देखा है? क्या अपनी सौंदर्य-पिपासा की तृप्ति के लिये मेरे सम्मुख वन, नदी, समुद्र, पर्वत, खेत तथा घाटियां नहीं हैं? क्या तारों से जड़े हुए नीले आकाश, भव्य सागर, सौम्य पर्वतावलि से अधिक सुन्दर व आनन्ददायक किसी और चित्र की कल्पना की जा सकती है? क्या किसी भी चित्रकार के पास उषा जैसा सिंदूरी रंग और सांझ की वेला जैसा सुनहरी रंग होगा? नहीं, दोस्त, प्रेरणा के लिये प्रकृति के अतिरिक्त मुझे और किसी भी चीज की जरूरत नहीं है। उसने मुझे आज तक कभी निराश नहीं किया। वह मुझ में रहस्य भावना भर देती है, मुझे पागल बना देती है, आनन्द-विभोर कर देती है! मुझे मानव की इन बचकाना रंग-योजनाओं का क्या करना है? परमात्मा की कला के आगे भला मानवीय कला की क्या हस्ती है। अच्छा, दिलीप, तुम ही बताओ, जो आनन्द यह प्रकृति—सर्वशक्तिमती कलाकार प्रकृति—प्रदान कर सकती है, वह भला मानवीय कला द्वारा उपलब्ध हो सकता है?"

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधी जी के प्रति—

राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त

सन्त महात्मा हो तुम जग के, बापू हो हम दीनों के,
दलितों के अभीष्ट वरदाता, आश्रय हो गतिहीनों के!
आर्य अजातशत्रुता की उस परम्परा के स्वतप्रमाण,
सदय बन्धु तुम विरोधियों के, निर्दय सुजन अधीनों के!

(सम्वत् १९९२ वि०)

★

व्यक्त तुम्हारा बाह्य हमारे वर्त्तमान का अन्तर्भाग,
किन्तु हमारे अन्तरंग में उठा अतीत हमारा जाग!
बापू, व्यग्र भविष्य हमारा मिले तुम्हारा सुमन-पराग,
भारत माता के मन्दिर में संग्रह रहे तुम्हारा त्याग!

(सम्वत् १९९३ वि०

★

अरे राम! कैसे हम झेलें अपनी लज्जा उसका शोक,
गया हमारे ही पापों से अपना राष्ट्र-पिता परलोक!

(माघ कृष्ण ५ सम्वत् २००४ वि०)

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभागिन *

[श्री चिरंजीत]

आज सुहागिन मधु-ऋतु सहसा बनी अभागिन नारी रे !

रुद्ध आंसुओं से पिक-वाणी, देह-लता है कुम्हलाई,
दग्ध अधर-दल, बिखरे कुन्तल, उर-कलिका है मुरझाई,
प्रथम बार यह विश्व विजयिनी क्रूर नियति से हारी रे !
आज सुहागिन मधु-ऋतु सहसा बनी अभागिन नारी रे !

चंदन-चर्चित अग्नि-मार्ग से ज्योतिर्धर वह चला गया,
छू न सकी यह वरद चरण वे, हृदय लाज से छला गया,
हरितांचल में राख चिता की, सुलग रही चिनगारी रे !
आज सुहागिन मधु-ऋतु सहसा बनी अभागिन नारी रे !

धू धू मांग सिंदूरी जलती बुझी चिता के आगे रे !
अश्रु धार में डूब रहे कजरारे नयन अभागे रे !
किन बिगड़ी घड़ियों में आई यह प्रियतम की प्यारी रे !
आज सुहागिन मधु-ऋतु सहसा बनी अभागिन नारी रे !

तीस जनवरी की वह संध्या ! दो दो सूरज अस्त हुए,
अस्ताचल की दृढ़ छाती से अब तक शोणित-धार चुए,
और शाप-सी अब तक छाई वह संध्या हत्यारी रे !
आज सुहागिन मधु ऋतु सहसा बनी अभागिन नारी रे !

नई नवेली द्वार खड़ी है, कौन करे अगवानी रे !
कैसे इसे सुनायें अपने घर की दुखद कहानी रे !
उसकी क्या, अपनी छाती में हमने गोली मारी रे !
आज सुहागिन मधु ऋतु सहसा बनी अभागिन नारी रे !

हरित-पल्लवित यौवन वाली अचल-सुहागिन बनी रहे !
'मर कर भी वह शाश्वत जीवित,' शोकाकुल जग यही कहे;
द्वैत मिटा, मिल एक हुए फिर प्रकृति पुरुष द्युतिधारी रे !
आज अभागिन मधु-ऋतु सहसा बनी सुहागिन नारी रे !

* महात्मा गांधी के निधन के पश्चात् आई प्रथम वसंत पंचमी के अवसर पर लिखी गई ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी

स्मृति-पूजा

श्री विष्णु 'प्रभाकर'

यद्यपि उसके चारों ओर जो करुण क्रन्दन था वह अब शान्त हो चुका है, तो भी उसका हृदय सन्तप्त है। वह अब भी सुबक-सुबक कर रोने लगता है, जिस तरह तीस जनवरी की भयानक रात में रोया था। उसे अच्छी तरह याद है, उस कोटि-कोटि मानव-समुदाय ने—जो छः सात घण्टे से उद्विग्न, पर शान्त स्वर में उस महामानव की चर्चा करता हुआ राज-मार्ग के दोनों ओर खड़ा था—जैसे ही उस महायात्रा के उस महायान को देखा तो अनेक नारियां अर्द्ध-विक्षिप्त की तरह सिर धुनने लगीं—"हाय! हत्यारे तूने क्या किया? नाश पीटे तेरा नाश हो! तूने इन्हें मार कर क्या लिया? हाय, तेरे हाथ क्यों नहीं टूट गये! तू गल क्यों नहीं गया........"

"रोना बन्द करो!" एक युवती ने पुकार कर कहा। पर उसके सजल नयन स्वयं उसे धोखा दे रहे थे। नारी-वर्ग ने उसे देख कर भी अनदेखा कर दिया। तभी अपार जन-समूह का कण्ठ-स्वर उठा—"जय, महात्मा गांधी की जय!"

युवती फुसफुसाई—"जय, महात्मा गांधी की जय!"

नारी-वर्ग का चीत्कार भी सहसा धीमा पड़ गया, पर उनका कण्ठ-स्वर जयनाद में योग नहीं दे सका। मनोज ने एक बार उन्हें देखा, फिर देखा उस महायान को। आंसू जो अबाध गति से बह रहे थे सहसा रुक गये। उसने भीष्म-प्रयत्न से अपने मन को सान्त्वना दी और पीछे-पीछे चलने लगा। उसकी दृष्टि उस अपार जन-समूह से ऊपर उठ कर अश्वारोही और उनकी पताकाओं के बीच में से होकर बराबर उसी महायान पर अटकी हुई थी। उसने अपने साथी से कहा—"यही मानव है जिसने समूचे जगत को विस्मय में डाल दिया था, जिसने महानाश की बेला में शांति और स्नेह की सुमधुर वाणी गुंजारित की थी।"

उच्छ्वसित साथी ने धीरे से कहा—"हां दोस्त, यही वह चिर एकाकी है जिसके लिए आज शेष जगत नतमस्तक है। लेकिन—" उसने एक क्षण रुक कर कहा—"लेकिन उसकी हत्या क्यों हुई? क्यों इस अजात शत्रु को शत्रु के हाथों प्राण देने पड़े? क्यों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस अहिंसक को हिंसा का शिकार होना पड़ा ?"

मनोज ने उसी तरह जवाब दिया—"यह इसकी हत्या नहीं है, मित्र !"

"फिर ?"

"यह हिंसा और शत्रुता की शक्तियों की हत्या है। जीवन ने इस महामानव को शक्ति दी थी; मृत्यु ने इसे सफलता भी दी है। इसकी मृत्यु ने संसार को स्पष्ट बता दिया है कि हिंसा की पाशविक शक्ति कितनी घृणित है। इसकी मृत्यु मानों इसके जीवन रूपी सूत्र की व्याख्या है—प्रकाश की तरह स्पष्ट और शिशु की तरह सरल !"

और कुछ क्षण उस तुमुल नाद में खो जाने के बाद उसने फिर कहा—"परन्तु दुनिया की चाल बड़ी अनोखी है। वह इसकी स्मृति-रक्षा के नाम पर एक दिन इसे बिल्कुल भुला देगी।"

अपने इसी प्रश्न को आगे बढ़ाते हुए अगले दिन उसने अपनी पत्नी सुमित्रा से कहा—"देखो सुमित्रा, जिस महामानव को संसार पूजता है, वह क्या रक्त मांस का बना हुआ था ?"

सुमित्रा अचकचाई—"जी फिर···?"

"सुमित्रा, रक्त-मास से तो सभी बनते हैं—मैं भी हूँ, तुम भी हो और वह भी है, जिसने उस महामानव के सागर से भी अथाह वक्षस्थल पर गोली मारी थी। नहीं, सुमित्रा नहीं, पार्थिव शरीर को महामानव नहीं कहते। वह तो उन मान्यताओं, कार्यों और सफलताओं का लघुतम समापवर्त्य है, जिनके लिये पार्थिव शरीर जिया और मरा।"

सुमित्रा ने आह भर कर कहा—"जी हां, वे अपने कार्यों के कारण ही महामानव बने हैं।"

"और उन्हीं कार्यों को दुनिया भूल जाने को आतुर है। वह उनकी मूर्ति की पूजा करेगी, उनके वाक्यों को स्तूपों पर अंकित करवा कर सदा-सदा के लिये अमर कर देगी; पर उनका आदेश नहीं मानेगी। वह विद्यापीठ में बैठकर उनके सिद्धान्तों पर वाद-विवाद करेगी, पर उन पर आचरण नहीं करेगी। जैसे आज हमने अपने आप को शब्दों के पीछे छिपा लिया है, उसी तरह उनके आदेशों को हम मूर्ति-पूजा के आवरण से ढंक देंगे·····!"

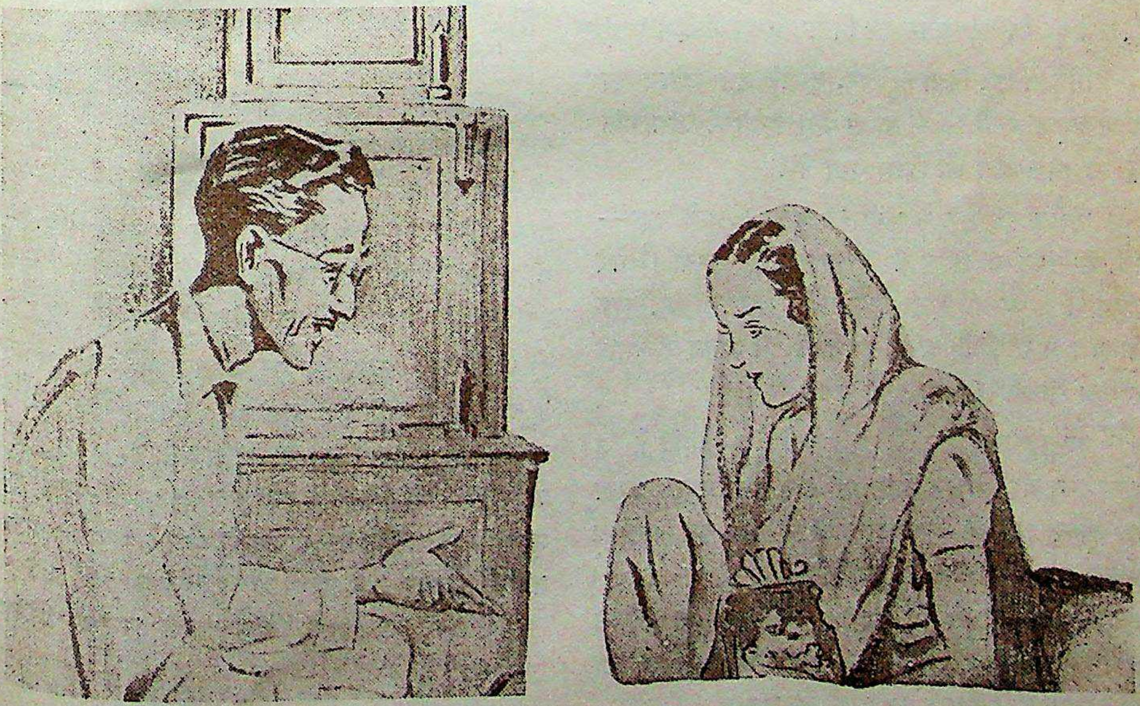

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुमित्रा एकाएक पूछ बैठी—"तो क्या, जिनकी हम पूजा करते हैं उन्हें प्यार नहीं करते ?"

"बिल्कुल नहीं"—मनोज ने शीघ्रता से कहा—"प्यार करते तो क्या वे इस प्रकार मरते ?" कहते-कहते मनोज का गला भर आया; पर उसने आंसुओं को रोकने की चेष्टा की। सुमित्रा ने उन आंसुओं को देखा, पर सान्त्वना देने के स्थान पर स्वयं विचलित हो उठी। भर्राये गले से उसने कहा—"उन्हें मार कर किसी ने क्या लिया !"

मनोज ने कुछ उत्तर नहीं दिया। कई क्षण तक कुछ कह सकने में असमर्थ वे मौन बैठे रहे, पर इन क्षणों में विचारों का एक तुमुल प्रवाह उन्हें झकझोरता रहा। मनोज जानता है कि उसके साथी उसे आदर्शवादी, स्वप्नदर्शी और इसी प्रकार न जाने क्या-क्या कहते हैं। कहते हैं, वस्तु-जगत के बारे में मनोज का ज्ञान अधूरा है। वे मानते हैं कि मनोज का मन्थन हृदय के अधिक समीप है; इस लिए सत्य से अधिक दूर है। सत्य बुद्धि के समीप है, हृदय से दूर है। मनोज ने एक दिन इस निर्णय का उत्तर दिया था-' मैं नहीं जानता सत्य हृदय से कितनी दूर है, पर जीवन का निवास हृदय में है।"

मित्र ने तर्क किया—"पर, तुम्हारे उस जीवन का संचालन तो मस्तिष्क ही करता है। हृदय में मात्र गति है; मस्तिष्क गति को दिशा देता है।"

मनोज इस तर्क से प्रभावित हुआ। उसने कहा—"मैं मस्तिष्क की शक्ति से इन्कार नहीं करता। मेरे हृदय में जो मन्थन होता है उसकी डोरी तो मस्तिष्क के हाथ में रहती है; अंतर इतना है, मैं जीवन के समीप रह कर सोचता हूँ और आप उससे दूर।"

पर यह तर्क-जाल है। इसका न आदि है न अन्त, न यह किसी समस्या का कोई हल प्रस्तुत करता है, बल्कि मन को दुखी करता है। मनोज इस बात को अच्छी तरह समझता है, इसीलिये तर्क से बचता है। इस दुर्दमनीय घटना के बाद तो वह और भी विनम्र तथा अन्तर्मुखी हो उठा है। इसीलिए रात को जब सुमित्रा काम से निबट कर लौटी तो मनोज ने पूछा—"सुमित्रा ! तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूं ?"

सुमित्रा अचानक यह प्रश्न सुन कर अचकचाई, बोली—"क्या...?"

"मैं पूछता था, मैं क्या करूं ?"

"किस बारे में, जी ?"

फिर जैसे सब कुछ समझ कर वह मुस्कराई, बोली—"अच्छा, आप उस बारे में सोच रहे हैं......"

"जी हां।"

सुमित्रा बैठ गई और फिर गम्भीर स्वर में बोली—"मुझे तो ऐसा लगता है कि हमें वे ही काम करने चाहियें जिनके लिये हम गांधीजी की प्रशंसा करते हैं।"

"निस्सन्देह !" मनोज ने गद्गद् होकर कहा—"सुमित्रा, तुमने कितनी बे-लाग बात कही है। तुम बड़ी समझदार हो !"

सुमित्रा मुस्कराई—"मेरी समझ तो आप ही हैं।"

मनोज हंस पड़ा—"तभी तो मैं सोच रहा था, मुझे कुछ भी क्यों नहीं सूझता ! सूझता कैसे ? समझ तो सब तुम्हारे पास चली गई थी।"

"सूझता तो है।"

"क्या ?"

"रोना !"

मनोज हंस पड़ा और सुमित्रा भी; पर देखते तो दोनों के नयन सजल हो आये थे। हर्ष यदि खिलता है तो पिघलता भी है। पिघलना उसकी सघनता का प्रमाण है। पर कुछ भी हो, मनोज को राह मिल गई थी। वह अज्ञानी था, यह बात नहीं थी; पर न जाने क्यों वह चाहता था राह का इंगित सुमित्रा की ओर से हो। जैसे उसे लगता था इस अनुष्ठान में जो यजमान है वह मनोज नहीं है, वह तो सुमित्रा है—सुमित्रा अर्थात् नारी। नारी वह जो गृहलक्ष्मी है, जो सृष्टि है, जो मूलतत्व है। मनोज जो पुरुष है, वह तो मात्र उस मूलतत्व की प्रतीति का साधन है, जैसे प्रकाश जो मूल-तत्व है, उसका भान कराने वाला अन्धकार है।

मनोज बोला—"सुमित्रा ! तुम उनकी प्रशंसा क्यों करती हो ?"

"मैं ? सुमित्रा अचकचाई।

(शेष पृष्ठ ४६ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय साहित्य पर गान्धी जी का प्रभाव

श्री प्रभाकर माचवे

मैं गांधी जी के निकट सम्पर्क में आने का सौभाग्य सन् '३६ से सन् '४२ तक पा चुका हूं। गांधी जी का सेवाग्राम-आश्रम वाला परिवार मेरा आत्मीय है। इतनी निकटता से सम्भव नहीं कि एक दूर का 'पर्स्पेक्टिव' गांधी और साहित्य प्रभाव के विषय में मैं ले सकूं—जोकि गांधी जैसे अनासक्ति के प्रचारक के सम्बन्ध में तो और भी अधिक आवश्यक है। आश्रम में रहते समय 'हरिजन' के कुछ हिन्दी अनुवादों में भी मैंने हाथ बटाया था; परन्तु मेरा गांधी जी के प्रति मुख्य आकर्षण एक राजनीतिज्ञ के नाते नहीं; बल्कि एक महामानव, एक विचारक के नाते विशेष था। आज जो थोड़े से पत्र गांधी जी के मेरे पास हैं—और जिन्हें मैं एक अमूल्य सम्पत्ति मानता हूं— उनमें भी ईश्वर, अहिंसा, अनासक्ति, यन्त्रों का उपयोग, शहरों का भविष्य ऐसे ही विषयों पर चर्चा अधिक है। परन्तु मैं फिर व्यक्तिगत बात करने लगा। मैं कोशिश करूंगा, इस लेख में कि मैं अनासक्त भाव से गांधी जी के भारतीय साहित्य पर पड़े प्रलम्बित और शुभ प्रभावों की संक्षेप में यहां चर्चा करूं।

मैं अपने ही उद्धरण से आरम्भ करता हूँ। सन् '३९ में मराठी मासिक 'संजीवनी' (बम्बई) में 'साहित्य-प्रवाह' नामक एक स्तम्भ मैं नियमित रूप से 'विद्यार्थी' छद्म नाम से लिखता था। बाद में नवम्बर १९४० से पांच-छः महीनों तक आगरे से निकलने वाले सत्येन्द्र जी के मासिक 'साधना' में हिंदी में 'साहित्य-प्रवाह' उसी छद्म नाम से मैंने लिखना शुरू किया था। उसकी कतरनें मेरे पास से खो गयीं। उसमें का प्रारम्भिक एक पृष्ठ मिल गया; वह यों है :

"आजकल महात्मा गांधी विश्व के कुतूहल हो रहे हैं। इस क्षीणकाय बुड्ढे ने वह मस्तिष्क और हृदय पाया है कि जीवन का प्रत्येक अंग-अंग उनकी विचार-धारा से आप्लावित हो उठा है। जहां तक हिंदी-साहित्य का सम्बंध है, गांधी जी की विचारधारा ने उसे खूब बल प्रदान किया है। केवल प्रेमचन्द, रामनरेश त्रिपाठी, रामनाथ 'सुमन', सियारामशरण गुप्त, जैनेन्द्र-कुमार, किशोरलाल मश्रूवाला, काका कालेलकर आदि सुविख्यात लेखकों के नाम गिनाने से ही हम गांधी-नीति समर्थक साहित्य का विचार कर लेते हैं, यह सोचना गलत है। यहां हम गांधी-नीति के मूल-सिद्धान्तों ने साहित्य की गतिविधि में क्या-क्या वैचारिक आन्दोलन उठाये हैं, उनकी इष्टानिष्टता का विचार करेंगे।

सत्य के आग्रह से साहित्य में कल्पना-जीवी साहित्य जहां निष्प्रभ होने लगा, छायावाद की 'छायामय' धूमिल अस्पष्टता जहां नजर आने लगी, वहीं यथार्थ-वाद की ओर लेखकों की प्रवृत्ति बढ़ी, जिसे हिन्दी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधकचरे आलोचक 'नौन, तेल, लकड़ी के उपन्यास' या 'कबाड़ी की दुकान' कहकर, प्रेमचन्द के समाज-चित्रण को टालने की कोशिश करते हैं, और जिस गुण के कारण ही डिकेन्स के उपन्यास और कई रूसी उपन्यास अमर रहेंगे, वही जीवन का यथातथ्य चित्रण गांधी द्वारा दुहराये गये सत्य— और केवल सत्य के आग्रह के प्रभाव से हिन्दी में विशेष रूप से होने लगा है, ऐसा मेरा विश्वास है।

मगर सत्य भी नग्न और अप्रिय नहीं, शिव और सुन्दर सत्य; इसी से कहा कि सत्य भी प्रेम के साथ, अहिंसा के साथ दिया जाय। यहां आकर हिन्दी के लेखकों में से उपरोल्लेखित या और कई उदाहरण छोड़ दें, तो सब साहित्यकारों में अहिंसा के लिये आवश्यक सहिष्णुता और आत्मिक बल उस मात्रा में विद्यमान कहां था? परिमाणतः आज देख ही रहे हैं कि हिन्दी-साहित्य में एक प्रकार का बाजार-सा लग गया है। प्रत्येक लेखक अपनी-अपनी धुन में मस्त है। एक-एक लेखक का एक-एक पत्र है। अपनी-अपनी डफली अपना-अपना राग! मगर ये नौ कनौजिये, दस चूल्हे लेकर क्या सचमुच युग-धर्म को निबाह सकेंगे?

साहित्य के शिव-पक्ष पर अत्यधिक आग्रह का सम्बन्ध गांधी के ब्रह्मचर्य पर सर्वाधिक जोर देने से है। साहित्य में पूर्ण-पावनता (प्युरिटॉनिज्म) का जो डंका पीटा जाता है, उसकी एक अवश्यम्भावी प्रतिक्रिया भी स्वाभाविक रूप से हिन्दी में हुई। और हिन्दी साहित्य में छायावाद, सत्यवादिता की प्रतिक्रिया में, स्वप्न द्वारा अपनी वासनाओं के उत्तोलनीकरण (सब्लिमेशन) में खो-सा गया।"

इस प्रकार गांधी जी के सिद्धान्त और उनके साहित्य पर प्रभावों की तालिका सी बनायी जाय तो—

१. सत्य— एक ओर कल्पनाश्रित भावुकता को देश-निकाला और उसकी प्रतिक्रिया में कठोर यथार्थवाद की सृष्टि। दूसरी ओर 'आदर्शवाद' और 'आत्मा की आवाज' पर जोर देने से रहस्यवाद और विज्ञानविरोधी-अबुद्धिवाद की ओर साहित्यकारों का झुकाव।

२. अहिंसा—सहिष्णुता, प्रेम, परस्पर औदार्य का साहित्य में प्रवेश और उसके अतिरेक में अश्रु-पूजक साहित्य या वेदनावाद का बोल-बाला, आत्म-निपीड़क वृत्तियों का निरूपण।

३. ब्रह्मचर्य—काम-वासना का उत्तोलीकरण (सब्लिमेशन) और 'कायानैकट्यहीन प्रेम' का अत्यधिक निरूपण। छायावदी, अशरीरी प्रतीकों और संकेतों का प्रयोग। इसके अतिरेक में मनोविकृतियों के प्रश्रय की सम्भावना। कला का नीति-नियम से अनिच्छा से विवाह।

४. अपरिग्रह—शैली में सहजता, घरेलूपन। भाषा में ग्रामीणता तथा साधारणीकरण। निरलंकार अतिसरलीकरण।

५. सर्वधर्मसमता—'कला कला के लिए' की व्यर्थता तथा कला 'जीवन के लिए' अथवा 'मानवता के लिए' इस सिद्धान्त का पोषण। 'मानव मानव एक समान' की भावना का उद्गम। साहित्य की संकीर्ण साम्प्रदायिकता से ऊपर उठकर समाजवाद की ओर, युग-धर्म की ओर प्रगति।

अब एक एक कर भारतीय भाषाओं के साहित्य में देखें तो गांधीवादी विचारधारा के कौन से प्रमुख सेवक हुए और उन्होंने भारतीय साहित्य को क्या-क्या विशेषताएं प्रदान कीं। भारतीय भाषाओं के साहित्यों में सर्वाधिक प्रभाव गुजराती पर और अंग्रेजी में लिखने वाले भारतीय लेखकों पर (राजाराव, कमलादेवी, भारती साराभाई आदि) प्रवासी विदेशी लेखकों पर पड़ा है। बंगला पर सब से कम, क्योंकि यद्यपि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'गांधी मा', 'राजेर शिष्य, केउ बा धनी केउ बा निःस्व' कविता लिखी थी; फिर भी सत्येन्द्रनाथ दत्त आदि को छोड़ दें तो अन्य सभी लेखकों ने आतंकवादी या बंगला जनसंस्कृति की परस्परा से ही प्रेरणा अधिक पाई थी। बंगला साहित्य पर गांधी जी के सिद्धान्तों का प्रभाव बहुत कम पड़ा। वैसे शरच्चन्द्र की नारी गांधी जी के अहिंसक आत्म-बलिदान पंथ वाली होती थी—इसी से उसने इतनी जनप्रियता पाई, यह बात भिन्न है। तमिल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

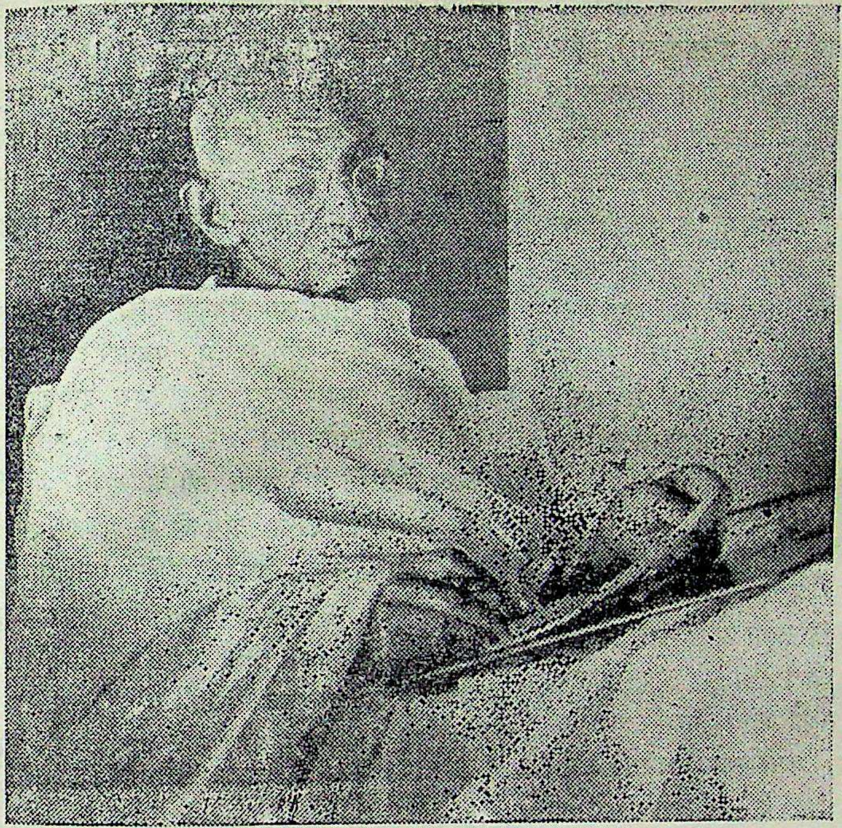

शंकर जोशी, सुन्दरम् आदि सभी गांधी-दीक्षा से न केवल विषय, वस्तु-विवेचन, परन्तु व्यक्तीकरण की शैली में भी गांधी जी से प्रभावित हैं।

परन्तु यहां मुख्यतः हम हिन्दी साहित्य को लें। हमारे सहृदय आलोचक मित्र श्री शान्ति प्रिय द्विवेदी ने अनेक लेखों में हिंदी के आधुनिक युग को 'गांधी-रवीन्द्र-युग' कहा है। वह एक से अधिक अर्थों में सार्थक है। नीचे मैं हिंदी के कुछ प्रमुख लेखकों के नाम दे रहा हूँ, जिन्होंने साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में गांधीजी

तेलुगु, कन्नड़ पर गांधी-विचारधारा का प्रभाव बहुत अधिक पड़ा है। उनके श्रेष्ठतम लेखक भारती, राजाजी, अश्वत्थनारायणराव, का० श्रीनिवासाचार्य, जागीरदार, वेन्द्रे आदि पर गांधी-दर्शन का प्रभाव स्पष्ट है। महाराष्ट्र के साहित्य पर गांधी का प्रभाव सबसे पहले कम पड़ा; परन्तु सन्' ४२ के बाद गांधी जी का प्रभाव मराठी साहित्य पर बहुत अधिक पड़ा। विनोबा, काका कालेलकर, दादा धर्माधिकारी, मामा वरेरकर, आचार्य भागवत, साने गुरुजी, वि० सं० खांडेकर, आचार्य जावडेकर आदि लेखकों के नाम स्वयमेव प्रख्यात हैं। परन्तु ललित-साहित्य पर उतना स्पष्ट प्रभाव नहीं दिखाई देता; विचार-साहित्य पर प्रभाव अधिक है। गुजराती के तो प्रायः सभी लेखक उनसे प्रभावित हैं: क. मा. मुन्शी ने अपने 'गुजरात एण्ड इट्स लिटरेचर' में गांधी जी को युग-निर्माता ठीक ही कहा है। मुन्शी-दम्पति, रामनारायण पाठक, धूमकेतु, झवेरचन्द मेघाणी, उमा-

से विचार-प्रेरणा ग्रहण की है। ब्रैकेट में उनकी प्रमुख गांधी विषयक कृतियों का भी नामोल्लेख है। इस तालिका से आप यह कदापि न समझें कि यही सूची सम्पूर्ण है या अन्तिम है; इस समय मैं इस मनस्थिति में नहीं कि कुछ खोज या टटोल कर पाऊं; जो कुछ स्मृति पर जोर देकर याद आ गया, वह लिख रहा हूँ; दो-चार रचनाएं गांधी-विरोधी भी इसमें उल्लेखित हैं।

कविताः मैथिलीशरण जी गुप्त (भारत भारती, किसान, विश्ववेदना, काबा और कर्बला, अजित); सियारामशरण गुप्त (बापू, उन्मुक्त, नहुष, नोआखाली में, आत्मोत्सर्ग, अनाथ); पंत (युगवाणी और ग्राम्या की कुछ कविताएं); महादेवी वर्मा (कुछ स्फुट गीत); 'एक भारतीय आत्मा' (हिमकिरीटिनी); बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' (कुंकुम); सुभद्राकुमारी चौहान (मुकुल); रामधारीसिंह 'दिनकर' (हुंकार; 'बापू' हाल में विशाल भारत में छपी रचना); सोहन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाल द्विवेदी (भैरवी आदि अनेक ग्रन्थ; विशेषत: गांधी अभिनन्दन ग्रन्थ); सुधीन्द्र (प्रलयवीणा); शिवमङ्गलसिंह 'सुमन' (प्रतीक ४ में छपी कविता—युगसारथि गांधी!); भवानीप्रसाद मिश्र, प्रफुल्लचन्द्र पट्टनायक, शिवसिंह, निरंकार 'सेवक' आदि की कई कविताएं। मेरे अप्रकाशित काव्य 'युग की आत्मा' के कुछ अंश 'विश्ववाणी' के प्रथम वर्ष के अंकों में; कुछ साप्ताहिक 'विचार' में और साप्ताहिक 'संघर्ष' के स्वतन्त्रता दिवस विशेषांक १९४० में 'मार्क्स और गांधी' नामक लम्बी कविता— दो सौ पंक्तियों की; 'वीणा' में 'गांधी और रवीन्द्रनाथ' आदि छपे हैं। ठाकुरप्रसादसिंह का 'महामानव' गांधी जी पर रचित काव्य है।

गद्य : कहानी-उपन्यासकारों में प्रेमचन्द, सुदर्शन, कौशिक, जैनेन्द्रकुमार, उग्र, ऋषभचरण जैन, सियारामशरण गुप्त आदि ने गांधी-तत्वों और गांधी प्रणीत राष्ट्रीय आंदोलन का अपने कथानकों में उपयोग कर लिया है। जीवनी, निबंध तथा अन्य गम्भीर गद्य के क्षेत्र में मश्रूवाला, विनोबा, कालेलकर, धर्माधिकारी आदि 'सर्वोदय', 'जीवन साहित्य' के विशेष लेखकों के अलावा रामनाथ 'सुमन,' रामनरेश त्रिपाठी, बनारसीदास चतुर्वेदी, डा० राजेंद्रप्रसाद, हरिभाऊ उपाध्याय आदि कई लेखक हैं। यों तो यह तालिका बहुत बढ़ाई जा सकती है। ऐसा शायद ही हिन्दी का राष्ट्रीय विचारों वाला कोई लेखक होगा जिसने गांधी जी की रचनायें न पढ़ी हों या उन से प्रभावित न हुआ हो, या उनके सम्बन्ध में कुछ न लिखा हो! दैनिकों-साप्ताहिकों के सह-संपादकों से लगाकर हिन्दी साहित्य सम्मेलन के बड़े बड़े दिग्गज कर्णधारों तक सब ने गांधी विचारधारा से कुछ न कुछ ग्रहण अवश्य किया था। यद्यपि सांप्रदायवादी, समाजवादी, उग्रवादी, साम्यवादी आदि कुछ लेखकों की नीति गांधी विरोधी लेखन करने की रही। यशपाल की 'गांधीवाद की शव-परीक्षा' इसी कोटि की रचना है; यद्यपि उसमें असंयत विरोध नहीं है। 'वैज्ञानिक भौतिकवाद' में 'गांधी धारा बेट्टा जावें' की सीमा तक लिख जाने वाले राहुल ने हाल में 'बुद्ध और गांधी' पर बहुत अच्छी श्रद्धांजलि दी है। यों विरोधी लेखकों की तालिका अब देने से क्या लाभ?

गांधी स्वयं एक साहित्यकार थे। वे अपने को पत्रकार मानते थे। सन् '४५ में बम्बई के समुद्र-तट स्थित बिड़ला-भवन से शिमला जा रहे थे। पत्रकारों ने उन्हें घेर लिया। उस समय मैं वहां पर था। 'हिंदू' के संवाददाता ने पूछा—'बापू, आपको पत्रकारों के लिये क्या कहना है? क्या आप आशावादी हैं?' बापू ने अपनी सरल स्वभाववाली चिरपरिचित मुस्कान के साथ कहा—'मैं स्वयम् पत्रकार हूँ। और मैंने आशा करनी कब छोड़ी है?' 'यंग इण्डिया' और 'हरिजन' (जिसके सन् ४२ में १३ भाषाओं में संस्करण निकलते थे) गांधी जी के अभी भी जीवित स्मारक हैं। हिंगोरानी ने अंग्रेजी में 'विद्यार्थियों को', 'स्त्रियों को,' 'युद्ध विषयक', 'हिन्दू मुसलमानों को' गांधी जी के उपदेश संगृहीत किये हैं। अनुवाद शीघ्रातिशीघ्र हिंदी में सस्ते दामों में प्रकाशित होने चाहियें। जीवन विषयक ऐसी कोई बात नहीं थी, जिसे उन्होंने नहीं छुआ, और उसे अपनी प्रतिभा से, भौतिक दृष्टिकोण से छूकर कुन्दन न बना दिया। बर्नार्ड शॉ, रोम्या रोलां, अप्टन सिंक्लेअर, म्यूरीयल-लिस्टर, पर्लबक जैसे विश्व-ख्याति के चिंतक और साहित्यकार उन से जो प्रभावित हुए, वे व्यर्थ ही नहीं!

गांधी जी ने न केवल गुजराती गद्य को, परन्तु हिन्दी-मराठी आदि सभी भाषाओं को एक अनुपम गद्य शैली दी है। उसे अंग्रेजी का एक शब्द 'बिब्लिकल' बराबर व्यक्त करता है। उनकी वह शैली औपनिषदिक है। उसमें सरलता, सुसूत्रता, दृष्टान्त तथा अन्योक्तियों से भरी हुई संकेत प्रियता, तर्क की सौकरात्य पद्धति और ऋजु प्रसन्नता है। उसे पढ़कर जान पड़ता है कि जैसे हम गंगोत्री के उद्गम-स्थल पर पहुंच गये; जैसे सहस्रधारा में हम नहाये हों; जैसे किसी 'सोनार किरण' ने हमारे व्यक्तित्व के हिम-जड़ित कणों को सहसा पिघला दिया। तेरह वर्ष पूर्व गुजराती त्रैमासिक 'कौमुदी' में श्री मुनिकुमार भट्ट ने 'गांधी जी की गद्य सेवा' नामक एक अध्ययन-पूर्ण और बहुत

(शेष पृष्ठ ४३ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधीजी का दिव्य संदेश—

? हम उसे समझ भी पाये ?

लेखक
श्री कृष्णचन्द्र विद्यालंकार

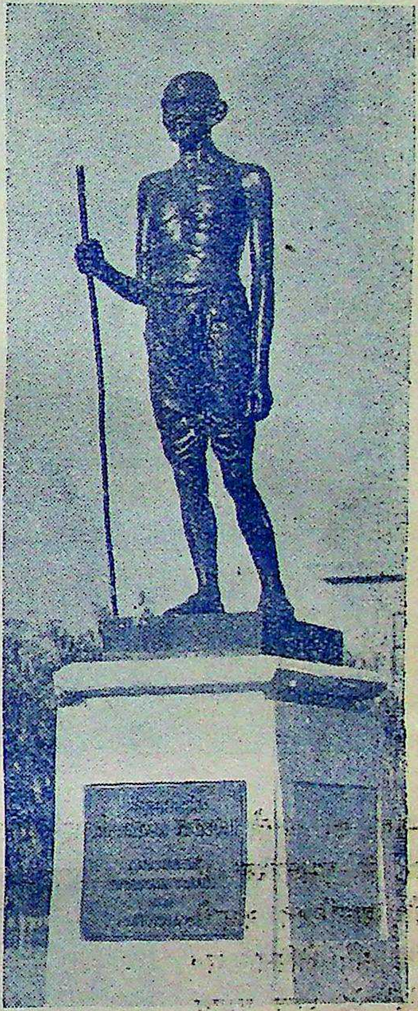

महात्मा गांधी राजनैतिक नेता के रूप में सार्वजनिक जीवन में प्रविष्ट हुए। उन्होंने भारतीयों को राजनैतिक और सामाजिक अधिकारों के लिए जाग्रत किया, निश्चेतन जनता में चैतन्य का संचार किया। विशाल भारत सोया हुआ था, उसे स्वातंत्र्य के शंखनाद से उन्होंने प्रबुद्ध करके संग्राम के लिए खड़ा कर दिया और इसके बाद उन्होंने कई संग्रामों में नेतृत्व किया। ये संग्राम समस्त संसार के इतिहास में अपनी उपमा नहीं रखते। इन युद्धों में शत्रु पर कोई चोट नहीं करनी थी, स्वयं चोट खानी थी, लाठी और गोली का शिकार बनना था या जेल जाना था। भारतीय स्वयं मुग्ध थे। संसार चकित होकर यह युद्ध देख रहा था। किसी को विश्वास न होता था कि हम जर्मनी को परास्त करने वाले, समस्त संसार में सब से अधिक शक्ति-संपन्न ब्रिटेन से कैसे लोहा लेंगे। परन्तु हमारे महान् नेता को अपने नेतृत्व और अपने साधनों की कार्यक्षमता पर अगाध विश्वास था। समस्त संसार ने अत्यन्त चकित होकर देखा कि १५ अगस्त १९४७ को भारत स्वतन्त्र हो गया है। म० गांधी राजनैतिक क्षेत्र में सफल हो गये, उनका भारत को स्वतन्त्र रूप में देखने का स्वप्न पूर्ण हो गया। हमने उस दिन राष्ट्रदेव तथा राष्ट्रपिता कह कर उनका अभिनन्दन किया।

× × ×

लेकिन म० गांधी को हम केवल राजनैतिक नेता के ही रूप में देख रहे थे। उसके विराट् रूप का दर्शन हमने नहीं किया था और न शायद अब तक कर सके हैं। वे जो संदेश भारत के द्वारा मानव-जाति को देना चाहते थे, उसकी हम कल्पना भी न कर पाये। हम ने गांधीजी की अहिंसा और सत्य को केवल नीति और साधन के रूप में अपनाया, जबकि गांधीजी के निकट उसका महत्व लक्ष्य से कम न था। वे एक असत्य भाषण करके स्वराज्य प्राप्त करने को भी तैयार न थे और इधर हम राजनीति में छल-छिद्र को न्याय्य समझते थे। हमारा सार्वजनिक जीवन कलुषित था, कांग्रेस कमेटियों तक के चुनाव में हम कमीनी से कमीनी हरकत करके अपने नेतृत्व तथा अपने व्यक्तिगत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभाव को बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील थे।

हम में कमजोरियां थीं और अनगिनत कमजोरियां थीं; लेकिन म० गांधी के पुण्य प्रभाव, तपोबल तथा कुशल नेतृत्व के कारण हम विजयी हुए और १५ अगस्त को भारत स्वतन्त्र हो गया। हम अपनी सफलता पर फूले न समाये।

× × ×

म० गांधी जैसी विभूतियां सदियों बाद आती हैं। राजनैतिक नेता प्रायः प्रत्येक देश में होते रहते हैं, बड़े-बड़े कुशल सेनापतियों के भी नाम हम पढ़ते रहते हैं, सामाजिक सुधारकों के भी दर्शन समय-समय पर होते रहे हैं, विचारकों और दार्शनिकों की कृतियां भी प्रत्येक युग में जनता को मिलती रही हैं और साहित्यकारों एवं लेखकों के दर्शन भी प्रायः प्रत्येक देश में होते रहते हैं। इन सब का एक साथ समन्वय म० गांधी में था। वे राजनैतिक नेता, कुशल सेनापति, समाज-सुधारक, विचारक, दार्शनिक, साहित्यिक सब कुछ एक साथ थे। परन्तु म० गांधी इन सब से ऊपर भी थे। वे एक नवीन संदेश संसार को देना चाहते थे; उनका एक नया दृष्टिकोण था। समस्त संसार अत्यंत वेग के साथ जिस दिशा की ओर प्रवाहित हो रहा था, उस मार्ग में वे एक दृढ़ अविचल चट्टान की भांति आकर खड़े हो गये। एशिया की संस्कृति पराजित हो चुकी थी। यूरोप अपने आडम्बरपूर्ण अमित साधनों और झंझावात तथा भूकम्प जैसी प्रचण्ड शक्ति के साथ और उससे भी बढ़कर चकाचौंध करने वाली चमक व दीप्ति के साथ समस्त विश्व पर छा गया था। उसकी दृष्टि अन्तर्मुखी न थी। वह इस संसार को नग्न सत्य के रूप में देखने को उत्सुक था, जहां प्रकृति

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल विध्वंस का अट्टहास करती हैं। उसने प्रकृति से लोहा लेने का दृढ़ संकल्प किया और उसमें वह विजयी हो गया। अग्नि, वायु, जल और विद्युत् या आकाश—सभी तत्वों पर उसने विजय पा ली। इसका प्रभाव शेष जगत् पर पड़ना स्वाभाविक था; एशिया पराभूत हो गया। यूरोपियन संस्कृति अत्यन्त गौरव, प्रतिष्ठा और समारोह के साथ सारे संसार में व्याप्त हो गई। सभी देश उसी दिशा में प्रवाहित होने लगे।

हम ऊपर कह आये हैं कि म० गांधी जैसी विभूतियां सदियों बाद आती हैं। उनकी तीक्ष्ण व सूक्ष्म दृष्टि को यूरोपियन संस्कृति की आडम्बरमयता और चकाचौंध भ्रान्त न कर सकी। समस्त आडम्बरों और प्रपंचों को भेद कर गहराई तक जाने वाली उनकी प्रतिभा ने देखा कि यूरोप प्रकृति पर विजय पाने का गर्व कर रहा है, लेकिन अपने वास्तविक शत्रु द्वारा स्वयं परास्त है, उसके आगे उसने घुटने टेक दिये हैं। इसका कारण भी उन्होंने पहचान लिया। यूरोप की दृष्टि बहिर्मुखी थी। उसने प्रकृति पर विजय पा ली थी। उसकी दृष्टि अन्तर्मुखी न थी, इसलिए मन और उसकी वासना पर विजय पाने का उसे ध्यान ही न रहा और इसी कारण वह उससे परास्त हो गया। परमाणु की प्रचण्ड शक्ति पाकर भी वह पराजित था। उसका संकट तीव्र से तीव्रतर होता गया। इसीलिए गांधीजी उस प्रवाह के मार्ग में दृढ़ चट्टान की तरह आकर अविचलरूपेण खड़े हो गये और अपनी नम्र, परन्तु ओजस्विनी वाणी में उन्होंने मानव जाति को आदेश दिया — "लौटो, यह मार्ग विध्वंस का है, कल्याण का नहीं!"

× × ×

गांधीजी की अन्तर्भेदिनी दृष्टि का ही परिणाम यह था कि वे राजनैतिक स्वतन्त्रता जैसी भौतिक वस्तु की प्राप्ति के लिए अहिंसा और सत्य—सदाचार या आत्मबल पर जोर देते थे। उनके निकट अहिंसा कभी साधन नहीं रही, वह उनके निकट अन्तिम लक्ष्य थी, क्योंकि वह उनके आन्तरिक शत्रु पर विजय पाती थी। पशुबल के प्रयोग से पशुबल की वृद्धि होती है, हिंसा से उत्तरोत्तर हिंसा की वृद्धि होती है, यह परिणाम था उनके दर्शन, चिन्तन और मनन का। आज का संसार और उसकी उलझनभरी समस्याएं इसी परिणाम का पोषण कर रही हैं। इसीलिए उन्होंने भारत को और उसके रूप में मानव जाति को दूसरा मार्ग बताया। यह दूसरा मार्ग ग्रहण का नहीं था, अपरिग्रह का था। यह मार्ग आडम्बरपूर्ण जीवन का नहीं था, सादगी का था। यह मार्ग शोषण का नहीं था, सेवा और त्याग का था। यह मार्ग बड़े बड़े वैज्ञानिक आविष्कारों का नहीं था, आन्तरिक सत्य के आविष्कार का था। यह मार्ग केवल भौतिक प्रकृति पर विजय पाने का नहीं था, मानसिक प्रकृति और उसकी भावनाओं पर विजय पाने का था। यह मार्ग क्षात्रबल या धनबल का नहीं था, ब्रह्मबल और आत्मबल का था।

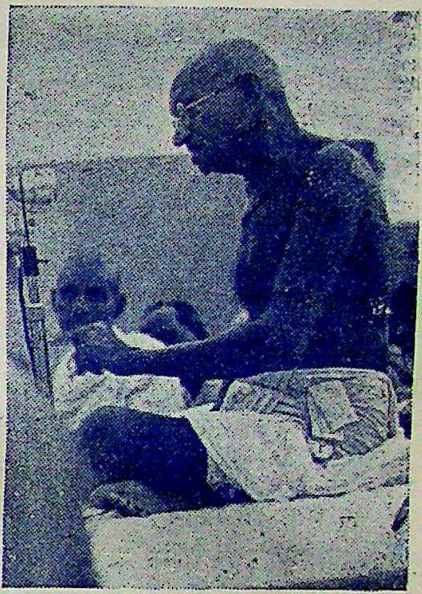

× × ×

गांधीजी की इस शिक्षा के भौतिक रूप थे चरखा, ग्रामोद्योग, पंचायतें, अस्पृश्यता-निवारण, अत्यन्त स्वल्प वेतन पर निर्वाह और अहिंसात्मक सत्याग्रह आदि। हमारे लिए चरखा केवल विदेशी आर्थिक और राजनैतिक पराधीनता से मुक्ति का एक साधनमात्र था, परन्तु गांधीजी के निकट यह राम तक पहुँचने का अमोघ साधन था; क्योंकि चरखा त्याग और परिश्रम के साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ आर्थिक जगत् में होने वाले समस्त शोषण को मूलतः नष्ट करने का प्रतीक भी था। वे उस प्रलोभन को ही नष्ट कर देना चाहते थे, जिसके वशवर्ती होकर राजनैतिक या आर्थिक साम्राज्यवाद की ओर मनुष्य का मन बहने लगता है। यही कारण था कि वे भारी मशीनों के विरोधी थे और इसी कारण उन्हें भारत के समस्त कल कारखानों और रेलगाड़ियों के समुद्र में फेंक देने से भी तनिक दुःख न होता। वे मशीनरी को इस कारण भी ना पसन्द करते थे कि उससे आत्मा का—व्यक्ति का स्वतन्त्र अस्तित्व नष्ट हो जाता है, वह भी मशीन का एक निर्जीव पुरजा बन जाता है। आत्मा का यह हनन उस महान् आत्मा को सहन कैसे होता? लाखों करोड़ों रुपये से भी अधिक मूल्यवान वे मानव को समझते थे। अस्पृश्यता-निवारण भी उनके निकट मोक्ष का साधन था। मानव द्वारा मानव की अवहेलना उनके निकट आत्मा का अपमान था, घोर पाप था। वाइसराय-भवन मेहतरों को दे देने में उन्हें किसी तरह की भी दुविधा न थी। उनकी दृष्टि में मानव मानव में कोई अन्तर न था।

× × ×

साम्यवाद और गांधीवाद दोनों वर्ग-हीन समाज का निर्माण चाहते हैं, किन्तु दोनों में एक अन्तर है। साम्यवाद समानता का केवल भौतिक रूप लेता है। वह राज्य को सर्वोपरि मानता है (भले ही वह राज्य जनता का हो) लेकिन वही राज्य व्यक्ति के अधिकारों को निश्शेष कर देता है—वह उसके आधीन होकर एक पुरजा बन जाता है। गांधी जी राज्य का विकेन्द्रीकरण चाहते थे, ताकि पुरुष अधिक से अधिक स्वातन्त्र्य का भोग करे। स्टालिन का बोलशेविज्म हो या हिटलर का नाजीवाद, वहां व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य का स्थान नहीं है, इसके विपरीत, गांधीजी विरोधियों के प्रति और अधिक उदारता का समर्थन करते हैं। गांधी कांग्रेस पर हावी न हो जाय, इसीलिए वे कांग्रेस की चवन्नी-सदस्यता तक छोड़ देते हैं। स्टालिन के यहां आत्मा का नहीं, शरीर का महत्व है। गांधीजी आत्मा को सर्वोच्च समझते हैं। एक का दृष्टिकोण भौतिक है, दूसरे का आध्यात्मिक। इसी कारण गांधीजी सम्पन्नवर्ग को स्वयं त्याग करने का उपदेश देते रहे। सरकारी मन्त्री भी ५००) रुपये अधिक वेतन न लें, यह उनका आग्रह था। स्टालिन यह सब काम दण्ड द्वारा कराना चाहता है।

× × ×

आज गांधी जी चले गये। उनका उत्तराधिकारी भारत है—हम करोड़ों भारतीय उनके उत्तराधिकारी हैं। प्रश्न यह है कि क्या हम उनके संदेश को हृदयंगम कर पाये हैं? क्या हम उनके दृष्टिकोण को अपना पाये हैं? क्या यूरोपियन चकाचौंध की चमक में हमारी आंखें चुंधिया नहीं गई हैं? क्या हम अंग्रेजी पढ़े-लिखे स्वतन्त्र बुद्धि से अपनी त्यागमय संस्कृति को अपनाने के लिए तैयार हैं? क्या मार्क्स और स्टालिन, ट्रूमैन और चर्चिल या एटली अथवा परमाणु-युग के भौतिकवाद से ऊपर उठकर अन्तर्मुखी दृष्टि से सब समस्याओं का चिन्तन हम कर सकते हैं? क्या हम आज सर्वात्मना चरखे को—दूसरे शब्दों में ग्रामोद्योगों को बड़ी मशीनरी के बदले अपनाने को तैयार हैं? क्या हम अपनी राजनीति, अपने शासन-चक्र और आर्थिक चक्र तथा समाज व्यवस्था को यूरोपियन छाप से मुक्त करने के लिए कटिबद्ध हैं?

ये कुछ प्रश्न हैं, जिन पर आज भारत को—गांधी जी के नाम पर गर्व करने वाले भारत को—अथवा अपने को उनका अनुयायी मानने वाले भारतीयों को गम्भीरता के साथ विचार करना है। यदि इन प्रश्नों का उत्तर सन्तोषजनक निकलता है, तो म० गांधी अमर हैं। और यदि दुर्भाग्य से हम इन का उत्तर संतोषपूर्वक नहीं दे सकते, तो हम से बढ़कर अयोग्य कोई व्यक्ति नहीं कि ईसा व बुद्ध के समान विश्वविभूति को पाकर भी हम कुछ सीख न पाये। देखना यह है कि आज के भारतीय राष्ट्रदेव म० गांधी का केवल भौतिक स्मारक ही खड़ा करते हैं अथवा उनकी आत्मा और सन्देश को चिरस्थायी रखने का भी कोई प्रयत्न करते हैं? यही भारत की परीक्षा का समय है। क्या इसमें हम उत्तीर्ण होंगे?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी

बूढ़ा नाविक

श्री राम शर्मा 'राम'

सर्दी से ठिठुरती सुकुमार बालिका ने नाविक के पास आकर कहा—'मुझे जूही कहते हैं, बाबा !'

जीवन की सांध्यवेला में बैठे हुए वृद्ध नाविक ने अपने पतवार रख दिये। बालिका की बात सुन एकाएक उसके मुंदे हुए और थके हुए नेत्र खुल गये। आल्हाद और सुख उसके जीवन में नहीं था, परन्तु उस क्षण मानों कोटि-कोटि आत्म-सुख और आत्म-चेतना की धारायें उसके हृदय में बह गयीं। प्रसन्नता और उद्वेग के साथ उसकी दृष्टि बालिका के कोमल और सलोने मुंह पर फैल गई।

'देखते हो न वह पेड़'—बालिका ने अपना हाथ उधर को उठाकर कहा—'वहीं पर मेरी मां पड़ी है। वह चलते-चलते थक गई है। उस पार जाने के लिये·····'

'उस पार जाने के लिए इन्तजार में है तेरी मां !', नाविक ने न जाने कितने थकित और उदास स्वर को —लेकर कहा। वह बोला —'आ, चल ! चल !'

नाविक साथ हो लिया। उस समय ठण्ड इतनी पड़ रही थी कि नाविक की नाक से पानी की धार छूट रही थी। मुंह में दांत तो थे नहीं; और उसकी श्वेत बढ़ी हुई दाढ़ी कांप-कांप जाती थी। हाथ और पैरों की अंगुलियां सुन्न हो रही थीं। उसने पेड़ के नीचे जाकर देखा कि एक युवा नारी गठरी बनी पड़ी है और उसकी सांस तीव्र वेग से चल रही है।

पास जाते ही नाविक ने कहा—'देवि !'

'मेरी बेटी !' नारी विह्वल कण्ठ से चिल्ला उठी। जाह्नवी के कछारों जैसी रिस-रिस कर मिल जाती हुई माटी सदृश उस नारी की काया, जिस पर से यौवन और सौन्दर्य की आभा मानो असमय ही संसार-सागर में विलीन हो गई थी। व्यथा, वेदना और पीड़ाओं की एक गठरी ही वह अपने सिर पर उठाये वहां आ पड़ी थी।

पल भर में वृद्ध नाविक ने यह सब देखा और वह अपने आप ही उस नारी की ओर झुक गया।

एक बार फिर कठिनाई से अपने नेत्रों को खोल उस नारी ने कहा—'बाबा, यह मेरी बच्ची ''जूही''

बाबा ने कहा—'तुम पार जाओगी ?'

'हां, मैं पार जाऊंगी—उस पार !' उसने इतना कहा और एक एंठन-सी ले, वृद्ध के देखते-देखते अपना सांस तोड़ दिया। जूही रो पड़ी। जीवन में पहिली बार उस वृद्ध ने अपने अन्तःप्रदेश के जाने कितने गहरे दुलार, ममता और लाड़-प्यार को लेकर उस जूही को अपनी छाती से लगा लिया और कहा—'मेरी बच्ची ''जूही !'

छटपटाते हुए; सिसकते हुए जूही ने कहा —'बाबा, मेरी मां !'

'हां, वह पार ही गयी है, बेटी ! वह चली गयी,' कहते हुए बाबा ने जूही को अपनी छाती से लगा लिया।

जूही को ले जाकर उसने अपनी झोंपड़ी में बैठा दिया। बाद में उसकी मां को जाह्नवी की तीव्र धारा में बहा दिया गया। जूही वृद्ध नाविक की झोंपड़ी में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रह गयी—वर्तमान के साथ अपने भविष्य का निर्माण करने के लिए !

वह अनाथ थी—मातृहीना और पितृहीना !

यों हवा का एक झोंका आया और वृद्ध नाविक का जीवन वर्त्तमान के पंखों पर बैठकर इस प्रकार उड़ चला, कि मानो वही उसका लक्ष्य था—उसका भविष्य था। उस वृद्ध नाविक ने अपने उस जीवन और उस नौका से सम्बन्ध-विच्छेद करने की बात अनेकों बार सोची थी; पर अब जूही क्या उसे मिल गयी; मानो जीवन के साथ उसका मन भी बदल गया। दुर्बल शरीर में पुरुषार्थ का झोंका आ गया। उसने मरने की कल्पना छोड़ दी और जीवन पाने की इच्छा करने लगा। पहिले वह दिन में एक-दो बार ही नौका ले जाया करता था; परन्तु अब क्या मजाल कि मुसाफिर का संकेत पाकर वह नौका न ले जाये। अब उसने किराया भी बढ़ा दिया था।

आरम्भ में उसने चेष्टा की कि जूही के ग्राम आदि का पता लग जाये, पर अन्त में उसने अपनी इस इच्छा को छोड़ दिया और स्वयं ही उस बालिका का एक मात्र संरक्षक तथा अभिभावक बन गया।

स्वयं जूही को भी न तो अपने ग्राम का पता था, न सगे-सम्बन्धियों का। जाने कितनी दूर से उस गंगा-तट पर आकर मां ने उससे एकाएक अपना सम्बन्ध छोड़ दिया था। वह कई दिन तक रेल में चली, फिर पैदल, और यहां तक आने में भी उसने दो दिन और दो रातों का सफर तय किया था।

वह नन्ही बालिका—पांच वर्ष की जूही !

लेकिन जूही जितनी सुन्दर थी, उतनी ही चंचल भी थी। नाविक के कुछ ऐसे मुसाफिर थे कि जो नित्य ही कई बार नदी के इस पार उस पार आते और कई बार जाते थे। प्रायः वे सभी जूही को नाविक की धेवती मानते थे और अनेक बार नाविक ने कह दिया था कि वह मातृहीना है और उसी पर आश्रित है। अतएव वे मुसाफिर बालिका जूही को कभी पैसा देते, कभी कुछ, कभी कुछ।

इस प्रकार समय बह रहा था। उसके साथ ही धीरे धीरे जूही का बालापन भी बीत रहा था। उस पर यौवन का उभार आ रहा था। सुगन्धमयी जूही की कली-सी जूही जब मन्द-मन्द मुसकाती, हँसती और अंगड़ाई भरकर गंगा की लहरों की ओर अपनी मादक आंखों में कोई रहस्य लिये हुए देखती, तो लगता मानो वह शरीर के अंग-अंग से अनोखी और अभूतपूर्व गन्ध बिखेर रही है। जब-जब वृद्ध नाविक यह देखता, तो बरबस उसका मानस कोलाहल से पूर्ण हो जाता—हर्ष से गद्‌गद्। किन्तु तदन्तर ही जब जब उसे ध्यान आता कि जूही का स्थान उसकी झोंपड़ी नहीं, कहीं और है, तो वह उदास हो जाता। उसे लगता कि उसने जीवन भर में पहली बार अब जो एक सुखद और निर्मल स्वप्न देखा है; वह अब टूट जायगा।

यही कारण था कि कभी-कभी वह अपने आप में सिहर उठता। उसके मानस में इतना मोह और ममता का अतुल भाव सन्निहित है, इससे पूर्व उसे इसका भला पता ही क्या था! वह तो जीवन भर जड़ रहा — जैसे पत्थर। न किसी से मिला, न कहीं टिका। अपने ऐसे एकाकी और नीरस जीवन में उसने जिस त्यागमयी भावना का पाठ लिया, भले ही उसमें उसे सुख मिला; परन्तु वही सुख एक दिन—किसी एक दिन भी—छिन जाता देख, उस वृद्ध का मन तड़प-तड़प उठता। काश, उसकी छाती के नीचे कोई ऐसा स्थान होता जहां वह उस जूही को—अपनी बिटिया को छिपा पाता! किन्तु, हाय, वह इतना समर्थ कहां! जैसे तैसे वह इस दुःख और शोक भरी दुनिया में अपने लम्बे जीवन के शेष क्षणों को भी बिता सकता था; पर उसके सिर के ऊपर जिस नियति का जाला पूरा जा रहा था, भला वह उसे किस प्रकार तोड़ सकता था! नाविक मौन था। कभी-कभी वह अपने आप में ही इतना अशांत हो उठता कि बरबस रो पड़ता। वह जब अविरल बहती हुई आंखों को गंगा के निर्मल जल पर पसार देता, तो लगता कि हां, वह सचमुच अनाथ ही है, एकाकी ही है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दिन बाजार जाकर वह अपनी बिटिया के लिए बहुत से वस्त्राभूषण खरीद लाया। जब उसकी जूही बिटिया ने उन सब को धारण किया, तो छूटते ही नाविक के मन ने कहा—'अब मेरी बिटिया का विवाह होना चाहिए, साथी मिलना चाहिये इस जूही को……'

उसके इस निश्चय का एक कारण था। जूही ने जब साज-शृंगार करके अपने बाबा की ओर देखना चाहा तो वह पहिला अवसर था कि उसकी आंखों से बाबा की ओर नहीं देखा जा सका। उसका लज्जारुण मुख झुक गया। इतना देख, बाबा झोंपड़ी से बाहर चला गया। गंगा के एक ऊंचे पठार पर जाकर वह बैठ गया और सोचने लगा — 'हां, ऐसा ही तो सन्नाटा है मेरे जीवन में—यहां भी सन्नाटा!'

उस समय संध्या आ गई थी। गंगा की धवल-उज्ज्वल लहरें काली-काली-सी बनती जा रही थीं। वह सायं-सायं करके बह रही थी। चारों ओर शान्ति थी—मौत सरीखी शांति! वह सदा से ऐसी शांति का साधक रहा था, किन्तु आज वह जैसे उस शांति से डर रहा था। वह उस समय को तो नहीं पकड़ सकता था जब छोटी-सी जूही उसके प्राणों में आ मिली थी और उसकी हृदय-तन्त्री का तार बन गई थी, लेकिन यह स्पष्ट था कि वह वृद्ध अब इस बात के लिए अतिशय चिन्तित था कि ब्याह के बाद जब जूही जायेगी तो वह क्या करेगा—वह कैसे इस सन्नाटे में रह सकेगा, एकाकी!

—कि उसी समय वह एकाएक चौंक गया। उसने पीठ पीछे देखा तो जूही!

जूही ने कहा—'बाबा!'

'बेटी……'

'तुम यहां बैठे हो अकेले! चलो, उठो!'

बाबा ने जूही की ओर देखा—मानो उसने जूही से कुछ कह देना चाहा, कुछ समझना भी। परन्तु वह बोला नहीं,—नहीं बोल पाया। वह खड़ा हो गया। जब वह झोंपड़ी में पहुँचा तो उसकी शून्य और भारी आंखों को देख जूही ने फिर एकाएक उपालम्भ भरे स्वर में कहा — 'हां, मुझे क्यों नहीं बताते, क्या बात है, बाबा?'

प्रश्न सुनकर बाबा ने अपने सूखे और दुर्बल होठों से मुस्करा दिया। उसने उत्तर नहीं दिया।

जूही ने फिर कहा — 'तुम ऐसे आज थोड़े ही हो, बहुत दिन से हो। भला क्यों?……क्यों?'

'जूही, मुझे तेरे विवाह की चिन्ता है। तू सयानी हुई……पराये घर जाने योग्य……'

और तभी जूही ने देखा कि बाबा की आंखें तड़प गयीं। वे उसकी बढ़ी हुई श्वेत दाढ़ी में अपने अन्तर का छिपा हुआ अश्रु-जल झर-झर प्रवाहित करने लगीं। यह देख जूही ने अपना मुँह बाबा के कन्धे पर रख दिया और कहा — 'मेरे बाबा!'

बाबा ने अपने कांपते हुए हाथ को जूही के सिर पर रख दिया और दृष्टि को बाहर शून्य अन्तरिक्ष की ओर उठा दिया।

……

उसी समय जूही बोली — 'समय आयेगा तो सभी कुछ हो जायगा। किन्तु अभी तो मुझे यहीं रहना है — अपने बाबा के पास! मैं तुम्हें नहीं छोड़ूंगी, मैं कहीं नहीं जाऊंगी, बाबा!'

इतना सुनकर बाबा ने अपना मत नहीं दिया। वह मौन ही बना रहा।

लेकिन, उस वृद्ध नाविक के जो विशेष परिचित यात्री थे, वे नाविक की उन दिनों की कर्मण्यता, स्फूर्ति और चैतन्यता को देख कर सोचते—बूढ़े से जवान हो गया है यह नाविक! अब बुढ़ापे में आकर पैसे-पैसे पर जान देता है। पहिले यह उदार था, किसी से पैसा लेता, किसी को छोड़ देता। परन्तु अब तो पैसा गिन-गिन कर लेता है। वे लोग जब बूढ़े की इस चतुराई, कार्यशीलता और व्यावसायिकता को देखते, तो प्रायः कुढ कर कह देते — 'सठिया गया है यह बूढ़ा! लड़की के पीछे अपनी पिछली जिन्दगी को भूल गया है। देखो न, लड़की कैसी बनी-ठनी रहती है, जैसे रानी। हां, बूढ़े ने अपनी जीवन की समस्त कमाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को इस जूही पर वार दिया है।'

सदा की भांति जब एक और भोर आई तो नाविक अपने नियत समय पर नाव खोल कर मुसाफिरों को लाने ले जाने के लिए तत्पर नहीं हुआ—मानो उसका उत्साह और मन शिथिल हो गया हो। मुसाफिरों ने देखा कि नाविक का मुख पीला पड़ गया है, आंखें भीतर धंस गयी हैं, गालों पर पहिले से अधिक झुर्रियां उभर आई हैं।

कारण पूछा गया तो पता चला कि कल संध्या समय उसने जूही का विवाह कर दिया है। उसकी इच्छा थी कि ऐसा लड़का मिले जो उसी के पास रहे, परन्तु जब ऐसा नहीं मिला, तो उसने एक दूर रहने वाले योग्य और सुन्दर लड़के को पाकर विवाह कर दिया—दहेज में अपनी सारी जमा पूंजी देकर! आज प्रातः ही उसने जूही को विदा किया था।

यह सब कथा सुनाते हुए वह रो रहा था। वह बता रहा था—'अब मेरी झोंपड़ी सूनी है''मन सूना है''दुनिया सूनी है'.......

वे सुनने वाले भी तो आखिर गृहस्थी ही थे। वे सभी ममता और मोह को पहचानते थे। वे जानते थे कि नाविक ने अपने प्राणों के झूले पर झुलाकर जूही को पाला और बड़ा किया था। आज उसे विदा करके वह न रोये तो और कौन रोयेगा!

बाद में कई दिन तक नाविक अपनी नाव में नहीं आकर बैठा। सचमुच ही उसके जीवन का हर्ष सर्वथा लोप हो गया था। परिचित लोग उसकी दशा को देख केवल सहानुभूति ही प्रकट करके रह जाते। जब भी कोई नाविक के पास पहुँचता तो वह उससे जूही नाम यह पत्र लिखाता—'जूही बेटी, तू जल्दी लौट आ''एक बार और देख जा, अपने इस बाबा को। अब यह जीवित नहीं रहेगा तेरे बगैर, मेरी जूही बिटिया'.....'

किन्तु जूही नहीं आती थी—नहीं आ पाती थी। वह विवश थी। वह अपने पति को छोड़ नहीं सकती थी। वह युवा थी। यौवन की जिस धारा में एक बार प्रवाहित हुई, उससे भला किस प्रकार निकल सकती थी। वह अपने बाबा के पत्र पाती, पति को दिखाती और गहरी सांस लेकर कह देती—'मेरे बाबा!'

और फिर अपने उस युवा और सुन्दर पिया के कन्धे पर अपना मुंह रखकर कहती—'काश, बाबा समझ सकते कि मुझे भी अपना घर बसाना है!'

लेकिन जब लगातार पत्रों-पर-पत्र आने के बाद जूही एक बच्चे की मां बनकर अपने पति के साथ बाबा के यहां पहुँची, तो वह यह सुनकर तड़प गई कि उसके आने से दो मास पूर्व, पूर्णिमा के दिन शाम को सात बजे बाबा का देहावसान हो गया। जिस समय जूही को यह दुःखद समाचार सुनाया गया, उसी समय उसके मन में उठा—हाय, वही दिन और समय तो था, जब उसके मुन्ने का जन्म हुआ था, जरा भी अन्तर नहीं। अब दो मास का ही था उसका बच्चा।

जूही ने अपने बच्चे को छाती से चिपटाते हुए कहा—'मेरे बाबा!'

उसे लग रहा था मानो उसका बाबा उसके पास हो—बच्चे के रूप में। उसका रोम-रोम खिल गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बापू

—पन्त

जड़वाद जर्जरित जग में तुम अवतरित हुए आत्मा महान् !
यन्त्राभिभूत युग में करने मानव जीवन का परित्राण ।
बहु छाया-बिम्बों में खोया पाने व्यक्तित्व प्रकाशमान;
फिर रक्त-मांस प्रतिमाओं में फूंकने सत्य से अमर प्राण !

संसार छोड़ कर ग्रहण किया नर-जीवन का परमार्थ सार;
अपवाद बने मानवता के ध्रुव नियमों का करते प्रचार !
हो सार्वजनिकता जयी, अजित ! तुमने निजत्व निज दिया हार,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधी स्मारक योजनायें

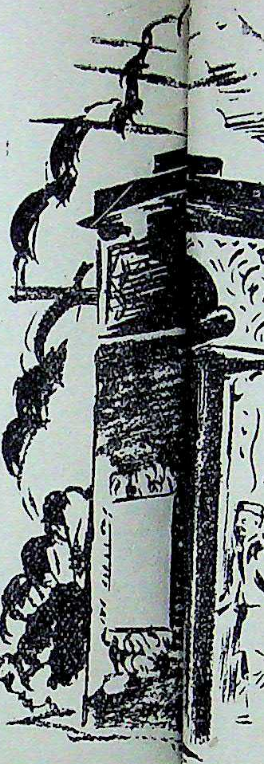

★

स्तम्भों, प्रतिमाओं, भवनों, अथवा समाधियों की अपेक्षा हृदयों की एकता का यह स्मारक ही सबसे अधिक गांधी जी की पावन स्मृति को चिर-स्थायी बना सकता है।

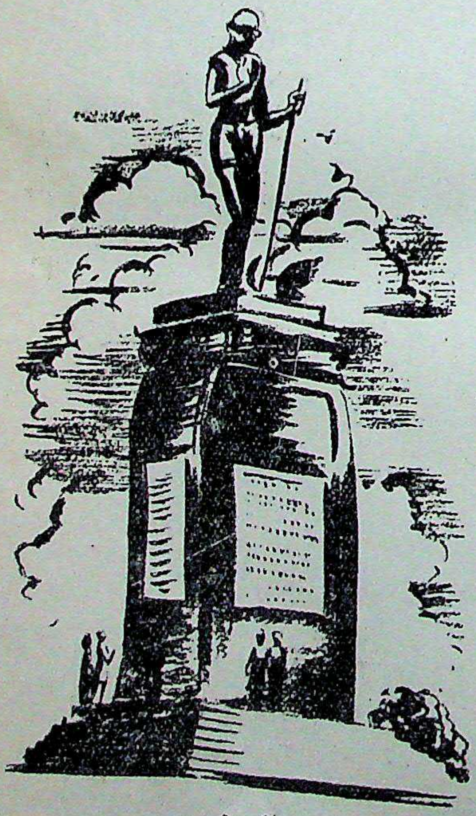

गांधी-मूर्ति

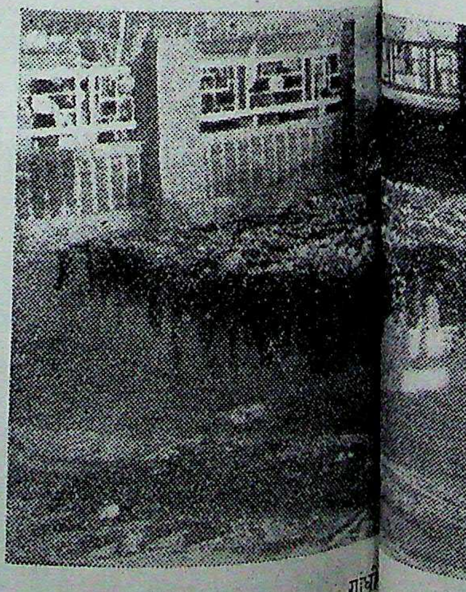

गांधी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

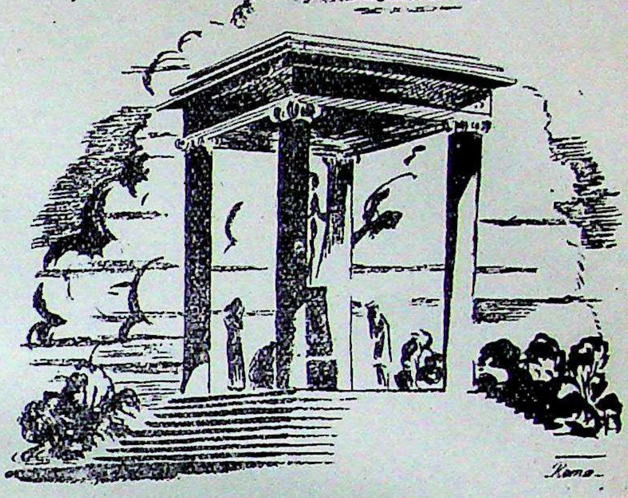

गांधी मन्दिर

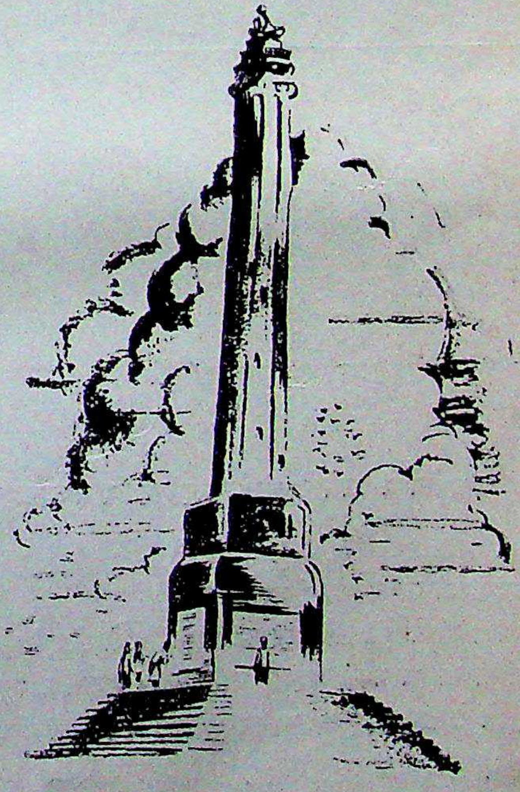

गांधी-स्तम्भ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्र की अनमोल निधियां

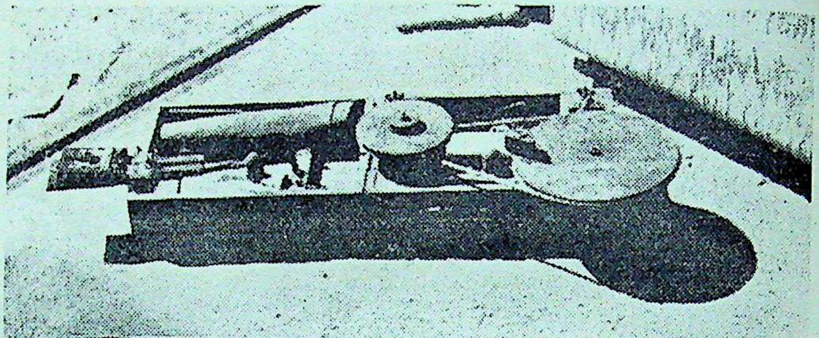

१

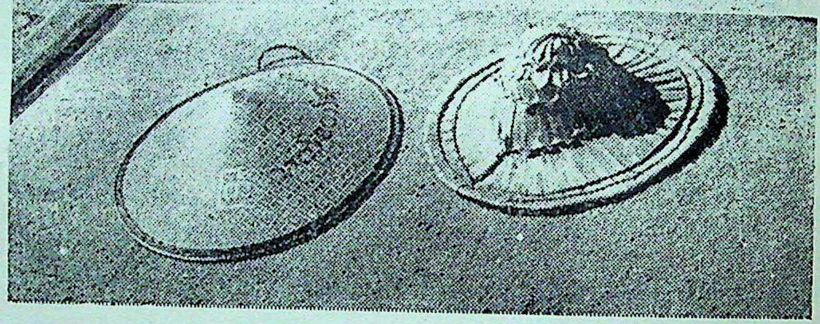

२

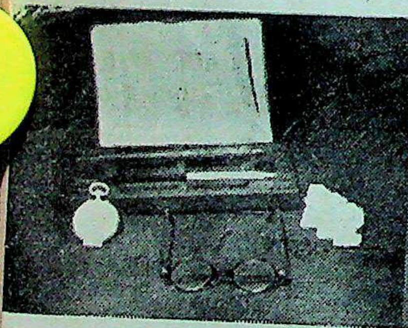

३

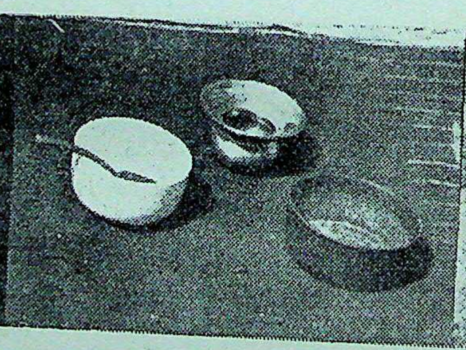

४

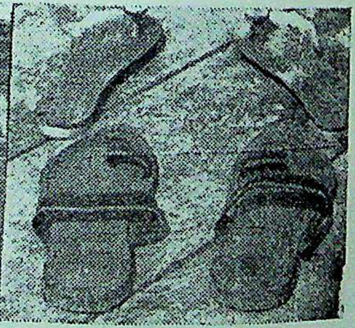

५

गांधी जी के दैनिक प्रयोग में आने वाली ये वस्तुयें पावन तथा अमूल्य स्मृति-चिन्हों के रूप में राष्ट्र के पास सुरक्षित रहेंगी।

१. गांधी जी का चरखा (यरवदा-चक्र)
२. गांधी जी के नैपाली और नोआखली वाले टोप जिन्हें वे धूप के समय प्रयोग में लाते थे।
३. गांधी जी की घड़ी, चश्मा, गीतों और भजनों की पुस्तक और तीन बन्दरों की मूर्ति वाला 'पेपर वेट' जिसे वे अपना 'गुरू' कहकर पुकारते थे। तीनों बन्दर तीन उपदेशों के प्रतीक हैं-(क) बुरी बात न कहो, (ख) बुरी बात न सुनो, (ग) बुरी बात न देखो।
४; भोजन के समय काम में आने वाले कटोरे और चमचे।
५. गांधी जी की पादुका और चप्पल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक रोचक ऐतिहासिक विवेचन

काली मिरच की कहानी

श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालङ्कार

काली मिरच, सोंठ और पिप्पली ये तीन चरपरी चीजें त्रिकटु के नाम से भारतीय चिकित्सा में बहुत विस्तृत रूप से उपयोग में आती हैं। काली-मिरच और पिप्पली के रंग और गुणों में बहुत समानता है। ये दोनों मसालों में एक दूसरे के स्थान पर भारत में तथा भारत से बाहर भी प्रयुक्त होती रही हैं। वनस्पति शास्त्र की दृष्टि से भी ये दोनों एक ही गण की दो जातियों के पौधे हैं। ये दोनों चीजें जब पहले-पहल विदेशों की मण्डियों में बिकने गईं तो लोगों ने समझा कि ये दोनों चीजें मिरच के दो भेद हैं, जिनमें से एक तो गोल है, और दूसरी लम्बी। लाल मिरच का ज्ञान उस समय तक संसार को नहीं हुआ था। काली मिरच केवल भारत में ही पैदा होती थी। यहां से पिप्पली और काली मिरच जिस-जिस देश को गईं, वहां के निवासियों ने संस्कृत के पिप्पली शब्द के आधार पर ही काली मिरच का नाम रख दिया। अरबी में इसे 'फिल्-फिल्' कहते हैं। पुरानी अरबी में क्योंकि 'प' होता ही नहीं था, इसलिए इस भाषा में पिप्पली का विकृत रूप फ़िल्-फ़िल् बन गया। मलाबार के प्रदेश में काली मिरच बहुत पैदा की जाती थी, इसलिए काली मिरच के नाम पर ही इस प्रदेश को ईरानी और अरब लोग 'बलाद-ए-फिल्-फ़िल्' कहने लगे थे। श्री लैस्सन (सन् १२७८) का मत कि है ग्रीक नाम 'पेपरी' और लैटिन नाम 'पाइपर' सीधे भारतीय शब्द पिप्पली से ही बने हैं। लैटिन में काली मिरच को 'पाइपर नाइग्रम' (नाइग्रम-काली) और पिप्पली को 'पाइपर लौंगम' (लौंगम-लम्बी) कहते हैं। समस्त संसार के वैज्ञानिकों ने अब ये दोनों नाम अपना लिये हैं।

भारत का आर्थिक इतिहास लिखने वाले विद्वानों ने काली मिरच की प्राचीनता उतनी सम्यक्तया नहीं दिखाई जितनी दूसरे मसालों की। मिश्र के स्मारकों पर खुदी हुई चीजों में काली मिरच है या नहीं, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। हिब्रू की पुस्तकों में यह अज्ञात है। गॉस्पेहस के 'पुदीना, सौंफ और सोये' में भी इसको कोई स्थान प्राप्त नहीं है। हेरोडोटेस ने इसके साथ किसी प्रकार की लोक-गाथा का सम्बन्ध नहीं दिखाया। थियोफ्रेस्टस चौथी शती ईस्वी पूर्व में इसे दवा के रूप में जानता था और डिओस्कोरोयडिस तो यह भी जानता था कि काली, सफेद और लम्बी मिरच (पिप्पली) में भेद है।

बौद्ध-साहित्य में हमें काली मिरच का उल्लेख मिलता है। महावग्ग (२६।१६।१) में इसे त्रिकटु के रूप में ज्वर और अजीर्ण में प्रयोग किया है। श्री लङ्का का राजा दुष्ट ग्रामणी (ई॰ पू॰ १०१-७७) कट्टर बौद्ध तथा संघ का भक्त था। उसने अपना यह नियम बना रखा था कि वह जिस वस्तु का उपयोग करेगा, पहले उसमें से कुछ हिस्सा संघ को दान करेगा। एक बार अनजाने में उसने संघ को बिना दान दिये मिरच का सेवन कर लिया। इस नियमोल्लंघन का प्रायश्चित्त करने के लिए उसने बौद्ध संघ के लिए एक नये विहार और चैत्य का निर्माण कराया। इसीलिए इस विहार का नाम 'मरिच वट्टी' विहार रखा गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजकल जैसे जहाज का परिमाण बताने के लिए हम कहते हैं कि यह जहाज इतने टन का है, उसी तरह पहले चीनी जहाजों की समाई को बताने के लिए यह कहा जाता था कि इसमें मिरच की इतनी टोकरियां आ जाती है। मार्को पोलो ने ऐसे चीनी जहाज बताये हैं जिनमें पांच हजार से छः हजार तक मिरच के टोकरे रखे जा सकते थे।

मेसर मार्को (सन् १२७१—१२९५) को चीन के चुंगी के एक उच्च राजकीय अधिकारी ने बताया था कि किन्से के शहर में प्रतिदिन खर्च होने वाली काली मिरच का परिमाण तेंतालीस 'भार' था। प्रत्येक भार २२३ पौण्ड के बराबर होता था।

इस पर टिप्पणी करते हुए कार्डियर ने सन् १९२९ में लिखा था कि चीनियों की मिरचें और इसी तरह के दूसरे मसाले खाने की अधिक आदत अब बदल गई है। विलियम्स (मिडिल किंगडम, जिल्द २, पृष्ठ ४६, ४०८) के अनुसार चीनी लोग आजकल बहुत कम मसाले इस्तेमाल करते हैं। काली मिरच को तो वे ज्वरहर के तौर पर फाएट के रूप में बरतते हैं, और वह भी कुछ साल पहले की। तुलना में ज्वरहर रूप में अब इसका प्रयोग बहुत कम हो गया है। इस पर मूल लिखते हैं कि मिरच को न केवल डाक्टरों ने ही उपेक्षित कर दिया है, बल्कि सामान्य जनता में भी यह उपेक्षित हो गई है। एक-दो महीने पहले शहर में एक खौमचे वाले के पास से गुजरते हुए मैंने एक लड़की को चिल्ला कर कहते हुए सुना, 'ठीक-ठीक बताओ कि तुमने इसमें मिरच तो नहीं डाली।' उस लड़की ने काली मिरच की ही अनुपस्थिति चाही हो, यह निश्चित नहीं कहा जा सकता। भारत में बहुत से ऐसे व्यक्ति हैं जो खौमचे वाले से खाने की चीज खरीदते समय उसमें लाल मिरच न होने का निश्चय कर लिया करते हैं। इसी तरह उस लड़की ने भी सम्भवतः लाल मिरच के लिए ही पूछा हो।

दक्षिणी चीन के एक पुराने बन्दरगाह जैतोन से काली मिरच का व्यापार बहुत होता था। मार्को पोलो (जिल्द २, पृष्ठ २३५) लिखता है कि यूरोप के ईसाई देशों में भेजे जाने के लिए सिकन्दरिया (मिश्र की बन्दरगाह) या दूसरी जगहों पर यदि मिरच का एक जहाज आता था तो जैतोन के बन्दरगाह में ऐसे सौ से भी अधिक जहाज आते थे; क्योंकि यह संसार की सब से बड़ी दो व्यापारिक बन्दरगाहों में से एक थी।

चीनी सम्राट् उस समय मिरच पर ४४ प्रतिशतक, अगरु काष्ठ, चन्दन और दूसरी अधिक जगह घेरने वाली चीजों पर ४० प्रतिशतक कर लेता था।

१५१५ में कोचीन से चीन के सम्बन्ध में लिखते हुए गिओवान्नी द एम्पोली कहता है — "इन भागों से जहाज वहां मसाले ले जाते हैं। चीन में सुमात्रा से प्रतिवर्ष साठ हजार कैण्टर (एक कैण्टर=१३० पौण्ड) मिरच जाती है और कोचीन तथा मलाबार से पन्द्रह या तीस हजार कैण्टर। एक कैण्टर की कीमत पन्द्रह से बीस दुकत तक थी। दुकत एक इटालियन सिक्का था जो सोने और चांदी दोनों का हुआ करता था। सोने का एक दुकत हमारे चार रुपये के बराबर और चांदी का दो रुपये के बराबर होता है।

काली मिरच के अतिरिक्त सौंठ (?), जावित्री, जायफल, सुगन्धित पदार्थ, अगरु, मखमल, युरोपियन सोने के तार, मूंगे, ऊन आदि भी चीन को जाते थे।'

१५१७ में गाहवानों ने फर्नाओ मेरेज के चीन में किये गये साहसों का उल्लेख करते हुए कहा था, 'उसने पेरूम में मिरच का एक जहाज लिया था, चीन में यह व्यापार की मुख्य वस्तु थी।' मार्सडन के 'सुमात्रा के इतिहास' से स्पष्ट है कि उन्नीसवीं सदी तक भी थोड़े-बहुत परिमाण में यह चीन को भेजी जाती रही थी। ईस्ट इण्डीज कम्पनी के सुमात्रा के बगीचों से औसत बारह सौ टन इसकी निर्यात होती थी। इसमें से अधिक परिमाण तो युरोप को जाता था और शेष चीन को चला जाता था।

मिश्र इसे जानता था, सम्भवतः टॉलेमीज के समुद्रीय व्यापार से प्राप्त करता था। सीरिया को यह फारस की खाड़ी से टायर को जाने वाले व्यापारिक काफलों से मिलती थी। एशिया माइनर, सीरिया और मिश्र को जीतने के बाद रोमवासी इसे प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने लगे थे और रोम इसके लिये बड़ी भारी मण्डी बन गया था। यह कल्पना युक्तिसंगत है कि बेबिलोनिया और फारस की खाड़ी में मसालों में कालीमिरच की मांग सामान्यतया अधिक थी, जैसे कि मिश्र में दालचीनी की अधिक मांग थी। डेरिपस के अधीन पर्शियन साम्राज्य के विस्तार के साथ इसकी मांग बहुत बढ़ गई थी। यह व्यापार समुद्र के रास्ते था, जमीन के रास्ते नहीं। यह भी कहा जा सकता है कि रोम में कालीमिरच की मांग पैदा होने से पहले चीन में इसकी स्थिर मांग थी और यही कारण था कि दूसरी सदी ईस्वी पूर्व में सम्भवतः इससे पहले भी मलाबार तट पर चीनी जहाज आया करते थे।

भारत और रोम के बीच मिरच व्यापार का मुख्य पदार्थ थी। पश्चिम की ओर जाने वाले औसत माली जहाजों में शायद तीन चौथाई कालीमिरच भरी होती थी। रोमन रसोई की अत्यधिक मंहगी चीजों में यह एक थी। प्लीनी ने इसका पन्द्रह डिनारी प्रतिपौण्ड मूल्य बताया है।

सेण्ट सिल्वेस्टर के अधीन गिरजे के सम्राट् कांस्टेण्टाइन द्वारा दिये गये उपहारों में मंहगे बरतन, सुगन्धित गोंदें, मसाले, लोबान, नड़, गूगल, बोल, दालचीनी, कपूर और मिरच थी।

इंग्लैण्ड में इसे सब मसालों से अधिक पसन्द किया जाता था। "पीर्स प्लौमैन" में एक पेटू भठियारन से पूछता है — 'तुम्हारे पास गरम मसाले हैं? कालीमिरच एक पौण्ड, लहसन और सौंफ भी है या नहीं?' जैसे इनके बिना वह उसके यहां खाना ही नहीं खायगा।

१६२३ में इंग्लैण्ड में दो लाख पौण्ड कालीमिरच गई थी। इसका $\frac{१}{१०}$ वां भाग उसने बारह महीनों के अन्दर ही निर्यात कर दिया था। १६२० में इंग्लैण्ड में कालीमिरच का भाव एक शिलिंग आठ पैंस प्रति पौण्ड था। व्यापारी लोग उन दिनों पूर्वीय देशों से ढाई पेंस की एक पौण्ड काली मिरच खरीदते थे। (कमर्शियल पॉलिसी ऑफ दि मुगल्स; डी. पन्त, १९३०, पृष्ठ २७५)। 'हिस्ट्री ऑफ एग्रिकल्चर ऐण्ड प्राइसेज इन इंग्लैण्ड' के लेखक का विचार है कि पुर्तगालियों द्वारा केप मार्ग तलाश करने से कुछ समय पहले एक पौण्ड मिरच का मूल्य दो शिलिंग था, जो एक बढ़ई की चार दिन की मजदूरी बनती थी।

टैवर्नीर ने देखा था कि मिरच मुख्यतया ट्रावनकोरीन और कालीकट में बेची जाती है और कुछ रत्नागिरी तट पर राजपुर से भी आती है। वह कहता है—'मलाबार के लोगों से जो डच मिरचें खरीदते हैं वे उन्हें सिक्के के रूप में कीमत नहीं देते, परन्तु रूई, अफीम आदि व्यापारिक चीजें बदले में दे देते हैं। यह मिरच वही है जो युरोप को निर्यात की जाती है। व्यापारिक चीजों के परिवर्त्तन में लेने पर वे सौ फी सदी मुनाफा ले लेते हैं।' टैवर्नीर ने पुर्तगालियों द्वारा कोचीन में रखे हुए एक बड़े भण्डार का भी जिक्र किया है जिसे 'कालीमिरच का घर' कहते थे।

ओडोरिक ने मिरचों की रक्षा करने वाले सांपों का भी वर्णन किया है। सर जॉन मैण्डेविल्ले के उल्लेखों में इस प्रकार की कथा और भी स्पष्ट है। 'अधिक गरमी और मिरचों के कारण उस देश में सांपों और दूसरे कीड़ों की बहुत-सी किस्में होती हैं और कुछ लोग कहते हैं कि जब हम मिरचें तोड़ने लगते हैं तो आग जला देते हैं जिससे सांप झुलसकर भाग जांय।' सर जॉन मैण्डेविल्ले कहते हैं कि 'यह बात गलत है। क्योंकि, यदि वे लताओं को जला दें तो मिरचें जल जायंगी और इससे उनके सब गुण नष्ट हो जायंगे, जैसे कि दूसरी चीजों के बारे में होता है। ऐसा करने से मिरच बोने वालों को ही बहुत हानि होगी और लगी हुई आग को वे कभी बुझा नहीं सकेंगे। लेकिन, सांपों से बचने के लिए वे अपने शरीर पर घोंघे और दूसरी चीजों के रस का लेप कर लेते हैं। सांप और दूसरे कीड़े इससे घृणा करते हैं और भाग जाते हैं।'

हीरे, जवाहरात और सोने जैसी बहुमूल्य चीजों की रक्षा करने के लिए नागदेवों की ख्याति बहुत सुनी जाती है। क्योंकि काली मिरच भी बहुत मूल्यवान् चीज हो गई थी, इसलिए लोकगाथाओं में इसके अधिष्ठातृ-देवता भी सांप मान लिये गये थे। वास्तव में यह बात सत्य नहीं है कि कालीमिरच की लताओं से सांप लिपटे रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विजय-पुस्तक भण्डार की सामयिक पुस्तकें

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति लिखित

स्वतन्त्र भारत की रूप रेखा

इस पुस्तक में लेखक ने भारत एक और अखण्ड रहेगा, भारतीय विधान का आधार भारतीय संस्कृति पर होगा, इत्यादि विषयों का प्रतिपादन किया है। मूल्य १॥) रुपया।

जीवन में विजय प्राप्त करने के लिये श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति लिखित

'जीवन संग्राम'

का

संशोधित दूसरा संस्करण पढ़िये। इस पुस्तक में जीवन का सन्देश और विजय ललकार एक ही साथ हैं पुस्तक हिन्दी भाषियों के लिये मनन और संग्रह के योग्य हैं। मूल्य १) डाक व्यय ।-)

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति की

'जीवन की झांकियां'

प्रथम खण्ड—दिल्ली के वे स्मरणीय बीस दिन, मूल्य ॥)

द्वितीय खण्ड—मैं चिकित्सा के चक्रव्यूह से कैसे निकला ? मूल्य ॥)

दोनों खण्ड एक साथ लेने पर मूल्य ।||)

सामाजिक उपन्यास

सरला की भाभी

[ले०—श्री पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति]

इस उपन्यास की अधिकाधिक मांग होने के कारण पुस्तक प्रायः समाप्त होने को है। आप अपनी कापियें अभी से मंगा लें, अन्यथा इसके पुनः मुद्रण तक आपको प्रतीक्षा करनी होगी।

मूल्य २)

हिन्दू संगठन हौआ नहीं है

अपितु

जनता के उद्बोधन का मार्ग है।

इसलिये

हिन्दू-संगठन

[लेखक—स्वामी श्रद्धानन्द संन्यासी]

पुस्तक अवश्य पढ़ें। आज भी हिन्दुओं को मोहनिद्रा से जगाने की आवश्यकता बनी हुई है, भारत में बसने वाली प्रमुख जाति का शक्ति सम्पन्न होना राष्ट्र की शक्ति को बढ़ाने के लिये नितान्त आवश्यक है। इसी उद्देश्य से पुस्तक प्रकाशित की जा रही है। मूल्य २)।

पं० मदनमोहन मालवीय

[श्री रामगोविन्द मिश्र]

महामना मालवीय जी का क्रमबद्ध जीवन-वृत्तान्त। उनके मन का और विचारों का सजीव चित्रण। मूल्य १॥) डाक व्यय ।=)

नेता जी सुभाषचन्द्र बोस

नेता जी जन्मकाल से सन् १९४५ तक, आजाद हिन्द सरकार की स्थापना, आजाद हिन्द फौज का संचालन आदि समस्त कार्यों का विवरण। मूल्य १) डाक व्यय ।=)

पण्डित जवाहरलाल नेहरू

[श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति]

जवाहरलाल क्या हैं ? वे कैसे बने ? वे क्या चाहते हैं और क्या करते हैं ? इन प्रश्नों का उत्तर इस पुस्तक में आपको मिलेगा।

मूल्य १।) डाक व्यय ।=)

प्राप्ति स्थान—विजय पुस्तक भण्डार, श्रद्धानंद बाजार, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

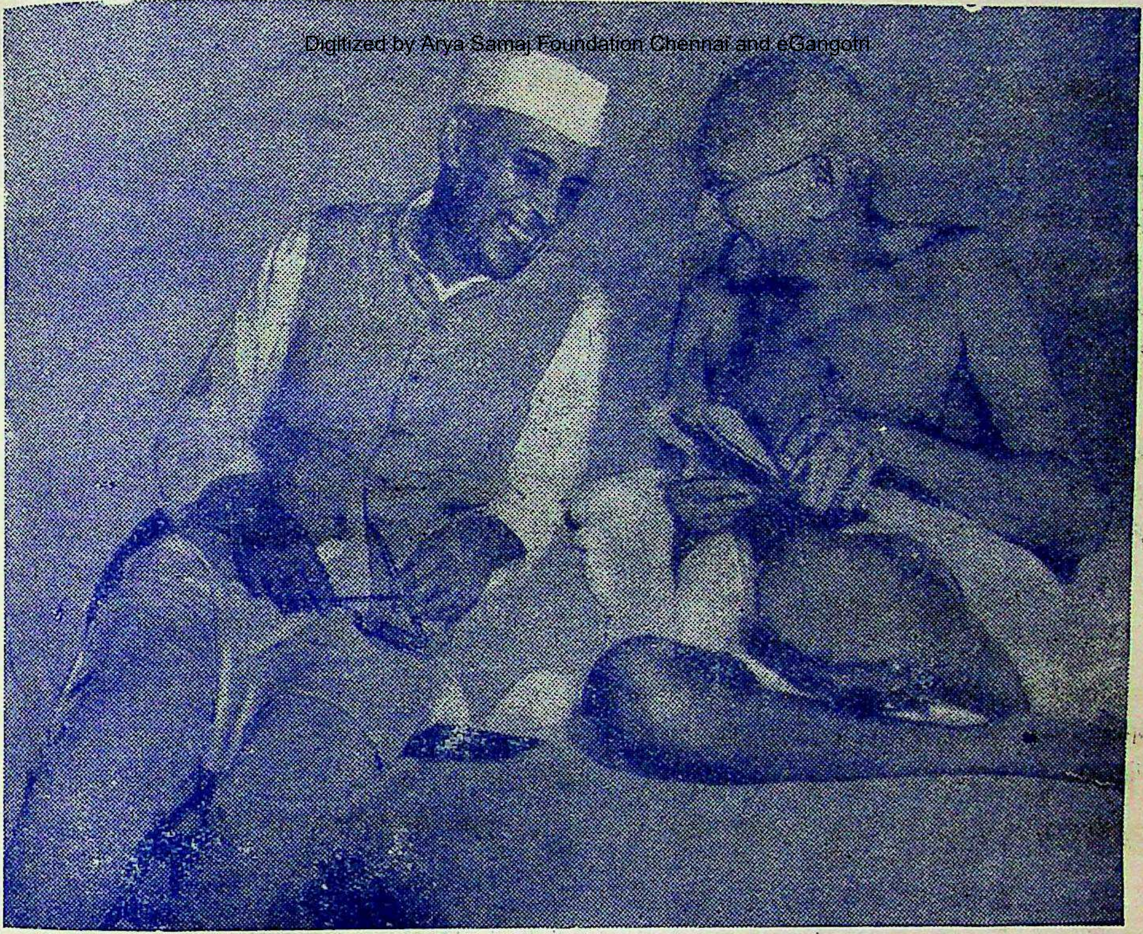

हास-परिहास

विनोद-प्रिय बापू

श्री गोवर्द्धन दास मेहता

महात्मा गांधी के जिस मुक्त-हास्य से विश्व ईर्षा करता था, वह अब अनंत में विलीन हो गया है। गांधी जी का स्वभाव इतना अधिक विनोद-प्रिय था कि वे मनहूस से मनहूस आदमी को भी हंसा सकते थे और स्वयं भी भारी से भारी दुःख-शोक में हंस लिया करते थे। आठों पहर जटिल समस्याओं में उलझे रहकर भी वे विनोद को नहीं छोड़ते थे। देश-विदेश से आये बड़े २ मुलाकातियों से, सहयोगियों से, मित्रों से—हर किसी से वे मजाक करने से न चूकते थे और दूसरों के मजाक का वे तुरन्त उत्तर देते थे। 'हाजिर जवाबी' में तो वे बेजोड़ थे।

ऐसे बापू के मनोविनोद के न जाने कितने अज्ञात अवसर होंगे, जिनका दुनिया को पता ही न हो और जो ज्ञात हैं, वे भी इतने अधिक हैं कि जिनका संकलन किया जाय तो एक काफी बड़ी पुस्तक तैयार हो सकती है। 'मनोरंजन' के पाठकों को उस मुक्त-हास्य के कुछ आनन्दमय क्षणों के यहां दर्शन कराये जाते हैं, जिनकी स्मृति ही अब शेष रह गई है:

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मुझे वे चिड़ियाघर में रख देंगे !'

लन्दन में गोलमेज-परिषद् के समय एक हिन्दू-विद्यार्थी अपनी अमरीकन धर्मपत्नी को साथ लेकर गांधी जी से मिलने आया। गांधीजी ने एक दृष्टि उसकी पत्नी पर डाली और युवक से प्रश्न किया — "क्या तुम अपनी धर्मपत्नी को भारत ले जाने का विचार रखते हो ?"

उसके स्वीकारात्मक उत्तर में कुछ घबराहट के चिन्ह स्पष्ट थे, परन्तु उसकी अमरीकन दुलहन निष्कपट उल्लास और उमंग से भरी थी। "महात्मा जी, आप अमेरिका कब आ रहे हैं ?" उसने पूछा।

"अभी नहीं,......"

"वहां तो आपके लिए सब पागल हो रहे हैं !"

महात्मा जी ने आंखें टिमकारते हुए कहा— "मेरे जानकार मित्रों का तो कहना है कि मुझे वहां वे चिड़ियाघर में रख देंगे !"

'बन्दरों को चक्रवर्ती राज्य का आशीर्वाद !'

एक बार कुछ मुलाकातियों ने गांधीजी से पूछा—"क्या हिन्दुस्तान की गरीबी बन्दरों के कारण नहीं है ?"

गांधी जी खिलखिला कर हंस पड़े और कहने लगे "हां" और इसके बाद भी वे कुछ देर तक हंसते रहे। बेचारे मुलाकाती कुछ घबरा से गये और कहने लगे, "श्रीमती नायडू ने हमें आपके विनोदी स्वभाव से आगाह कर दिया था।"

"मैं अभी उसी की एक बानगी आपको चखाने वाला था, पर मैंने अपने को रोक लिया।" थोड़ी देर और हंसने के बाद उन्होंने कहा— "अच्छा, आपको असल कहानी ही सुना दूं। हमारे देश में लोग अंग्रेजों को बन्दर कहते हैं। रावण की लड़ाई में बन्दरों ने रामचन्द्र जी की सहायता की थी। उसके बदले में उन्हें आशीर्वाद मिला था कि उन्हें चक्रवर्ती राज्य मिलेगा।"

'मैं चीनी लड़की से शादी करूंगा !'

अन्तर-एशियाई सम्मेलन में आये हुए तिब्बती प्रतिनिधि गांधी जी से भेंट करने जा पहुंचे। उन्होंने अनेक वस्तुएं गांधी जी को उपहार-स्वरूप दीं। इनमें बारीक दोपट्टियां भी थीं। इन दोपट्टियों के बारे में गांधीजी ने पूछा कि ये कहां बनी हैं ? उत्तर मिला—"चीन में।" गांधी जी ने पुनः प्रश्न किया—"अच्छा ! चीन में सिर्फ बुनी गई हैं या सूत भी वहीं कता है ?" उत्तर मिला— "सूत भी वहीं कता है।"

बापू ने झट व्यंग बाण छोड़ते हुए कहा—"चीन की वह कौन-सी लड़की है, जो इतना महीन सूत कातती है ? उसे ढूंढ लाओ। अब तो यद्यपि मेरी उम्र शादी करने की नहीं है, फिर भी इतना महीन कातने वाली लड़की से तो मैं शादी कर ही लूंगा ?" इस पर तिब्बती प्रतिनिधि हंसते-हंसते लोट-पोट हो गये।

'मन्दिर व दर्गाह दोनों पर !'

एक बार सरदार पटेल ने गांधी जी से पूछा—"लार्ड लिनलिथगो ने अपने भाषण की एक प्रति आपके पास पहले ही से भेज दी है, वह आपके सुझाव जानने के लिए है या कुछ रद्दोबदल के लिए ?"

"वह तो एक ऐसा मजेदार झूठ है कि जिसमें सुझावों या रद्दोबदल की जरूरत ही नहीं है—वह तो एकदम रद्द कर देने वाली चीज है," गांधीजी ने कहा। सरदार पटेल ने हंसते हुए कहा—"आप में तो देवताओं को खुश कर लेने का गुण है। आप वाइसराय के भाषण को भी भला कह देते हैं और उसी में आप जयप्रकाश और साम्यवादियों की भी कुछ अच्छी बातें बताते हैं।"

"हां हां" गांधी जी ने हंसते हुए कहा, "यही तो मेरी मां ने मुझे सिखाया है। वह मुझे हवेली में भी भेजती थी और शिवजी के मंदिर में। भी और आपको यह बात भी बहुत दिलचस्प जान पड़ेगी कि जब मेरा विवाह हुआ था तो हम पति-पत्नी हिन्दुओं के मंदिरों में भी भेजे गये थे और फ़कीर की दर्गाह पर भी।"

'तब तो तुम ब्रह्म को जानती हो !'

लन्दन में गोलमेज-परिषद् के समय मिस माड रायडन, एम० ए०, डी० डी० को गांधी जी को अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार में कुछ दूर ले जाने का सौभाग्य मिला था। मार्ग में उन्होंने उस महिला से पूछा—"तुम्हारे नाम के आगे यह डी० डी० क्या लगा है?" उसने उत्तर दिया — "ग्लासगो यूनिवर्सिटी ने मुझे सम्मानार्थ 'डाक्टर आफ डिवीनिटी' (ब्रह्म-विद्या की आचार्या) की उपाधि दी है।"

"अरे तब तो तुम 'ब्रह्म' के सम्बन्ध में सब कुछ जानती हो!"

'हिन्दी बोलिये और सीखिये!'

एक बार कलकत्ते की एक सभा में लोकमान्य तिलक ने अंग्रेजी में भाषण दिया। गांधी जी भी वहां उपस्थित थे। वे उठे और लोगों से पूछा — "जिन लोगों ने तिलक जी का भाषण समझा हो, वे अपना हाथ उठा दें।" थोड़े-से हाथ ही उठे। फिर गांधीजी ने पूछा — "जिन्होंने नहीं समझा हो, वे हाथ उठा दें।" बहुतों ने हाथ उठाये।

इस पर हाथ जोड़ कर गांधी जी ने लोकमान्य तिलक से कहा — "इस कारण ही आपको हिन्दी सीखने और बोलने की आवश्यकता है!"

कहा जाता है कि इस व्यंग का लोकमान्य तिलक पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि उन्होंने उसी सभा में दो मास में हिन्दी सीखने की प्रतिज्ञा की।

'सिर पर मिट्टी का ताज!'

जब जापान के प्रसिद्ध कवि योन नागूची गांधी जी से भेंट करने सन् १९३५ में सेवाग्राम गये तो देखा कि उनके सिर पर सूती कपड़े में कुछ लिपटा हुआ रखा है। योन नगूची ने पूछा कि यह क्या है? गांधी जी ने बताया कि यह गीली मिट्टी है, जोकि उनके डाक्टरों के कथनानुसार उनके जैसे खून के दबाव वाले रोगियों के लिए फायदेमन्द होती है।

फिर कुछ व्यंग और दार्शनिक मुस्कान के साथ गांधीजी बोले — "मैं हिन्दुस्तान की मिट्टी से पैदा हुआ हूँ और यही हिन्दुस्तान की मिट्टी मेरे सिर का ताज है!"

बापू का विराट रूप

'सार तो मैंने निकालकर रख लिया!'

महात्मा जी एक बार जब लन्दन जा रहे थे, तो रास्ते में एक अंग्रेज से उनका परिचय हो गया। यह अंग्रेज कुछ बदमिजाज था। बात बात पर गांधी जी को कुछ खरी-खोटी सुना जाया करता था। एक दिन उसने एक व्यंग-कविता लिखकर महात्मा जी के पास भेजी। महात्माजी ने उस कविता को बिना पढ़े ही रद्दी की टोकरी में डाल दिया और उसमें लगी पिन को डिबिया में रख लिया। इस पर उस अंग्रेज ने कहा, "गांधीजी, उसमें कुछ सार भी है, पढ़कर तो देखिये?" महात्मा जी ने हंसकर कहा, "सार तो मैंने निकाल कर डिबिया में रख लिया!" इस पर लोगों ने बड़े जोर का ठहाका लगाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दि कौमिल्ला बैंकिंग कारपोरेशन लि०

(स्थापित—१९१४)

रजिस्टर्ड आफिस—क्लाइव घाट स्ट्रीट कलकत्ता।

बैंक हर प्रकार का बैंक सम्बन्धी कार्य करता है

शाखायें समस्त भारत में

विदेशी एजेण्ट—

लन्दन—वेस्टमिन्स्टर बैंक लिमिटेड।
अमरीका—बैंकर्स ट्रस्ट कम्पनी आफ न्यूयार्क।
आस्ट्रेलिया—नेशनल बैंक आफ आस्ट्रेलिया लिमिटेड।
कनाडा—बैंक आफ मांट्रियल।

बी० के० दत्त
डिप्टी मैनेजिंग डायरेक्टर

एन० सी० दत्त
मैनेजिंग डायरेक्टर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधी जी के विश्राम-प्राप्ति के तरीके

डा० ज्ञान श्रीवास्तव

आप समझेंगे कि इस लेख के शीर्षक की कल्पना मैंने विख्यात जादूगर हाउदूनी की 'विश्राम-प्राप्ति' पुस्तिका से की है; क्योंकि गांधीजी भी तो प्रायः चमत्कारिक कार्य सम्पन्न करने के लिए प्रसिद्ध थे। और उपयुक्त भी होता यदि इन दोनों के चमत्कारों का तुलनात्मक विश्लेषण किया जाता। पर मैंने ऐसी कोई बात नहीं की है। मैंने जिस पुस्तिका के शीर्षक से इसकी प्रेरणा पायी है वह श्री यीट्स ब्राउन द्वारा लिखी 'इस्केप' पुस्तिका है। उसने लिखा है, 'हम सभी स्त्री, पुरुष और बच्चे 'इस्केप' (मन बहलाव) के इच्छुक होते हैं। जो कुछ भी हम करते हैं, वह किसी न किसी रूप में मन-बहलाव की इच्छा का प्रकट रूप ही होता है।" परन्तु मन-बहलाव से उसका अर्थ मदिरा-पान अथवा अन्य नशा लेने आदि जैसे सस्ते मन-बहलाव से न था। उसका अभिप्राय 'चर्चिल का प्रोटोरिया से पलायन' अथवा 'श्रीमती निद्सडेल द्वारा अपने पति की रक्षा' जैसे रोमांचक मन-बहलाव से भी न था; उसके मन-बहलाव में बृहत संसार के प्रति सद्भावना थी। कुछ ऐसे ही मन-बहलाव की चर्चा मैं भी यहां करने जा रहा हूँ, जिसमें कोरा शौर्य-प्रदर्शन अथवा रागरंग ही न होगा, वरन् थोड़ा आध्यात्मिक आनन्द भी होगा।

श्री यीट्स ब्राउन का कहना है कि जीव का मन-बहलाव हाड़-मांस के पंजर में प्रवेश करने और लौट आने में होता है। परन्तु उपनिषद् के अनुसार जीव सदा ही इस संसार की अवास्तविकता को त्याग कर वास्तविकता एवं सत्य की प्राप्ति को ही आनन्द मानता है—यही उसका मन बहलाव है और यही उसका लम्बी राह का विश्राम-केन्द्र है। गांधीजी इसी विचार के पोषक थे।

हम में से बहुत से लोग जब रोज एक ही काम करते ऊब जाते हैं अथवा शहर के शोर-गुल से घबड़ा जाते हैं, तो खेल-कूद द्वारा मन बहलाने का प्रयत्न करते हैं, अथवा जैसा कि लोग इंग्लैण्ड में प्रायः करते हैं, सप्ताहान्त में अपने ग्राम-निवासों में चले जाते हैं। परन्तु गांधीजी के मन बहलाव का तरीका सर्वसाधारण नहीं होता था। वे जोहान्सबर्ग में अपने कार्यालय के कार्य से विश्राम प्राप्त करने के लिए मीलों टहलने निकल जाया करते थे।

परन्तु ज्यों ज्यों दिन बीतते गये, उत्तरदायित्व बढ़ते जाने के कारण उनके विश्राम-प्राप्ति का यह मार्ग अवरुद्ध होता गया; अतएव उन्होंने दूसरे तरीके निकाले—वे थे ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह। ये दोनों तरीके उन्हें बारी-बारी से विश्राम प्राप्ति के नये रास्ते निकालने में सहायक हुए। उदाहरणतः 'अनशन' विश्राम अथवा शान्ति-प्राप्ति का एक ऐसा तरीका प्रमाणित हुआ जिससे कि अभिलषित जन का हृदय-परिवर्तन तो होता ही था, उन्हें भी मानसिक शान्ति प्राप्त होती थी।

प्रेम को वे हर व्याधि की औषधि मानते थे। प्रेम का कुछ लोग कभी-कभी दुर्बलता से अर्थ लगा लेते हैं। परन्तु उनका प्रेम अग्नि-पथ से तपकर निकलने वाला आत्म-शुद्धि का रत्न होता था, जिसके गुणों से कोई ही परिचित होता था। अनशन जहां कहीं भी, जब कभी भी उन्होंने किया, चाहे वह दक्षिणी अफ्रीका में हुआ हो अथवा १६१७ की पहली मजदूर-हड़ताल के अवसर पर साबरमती आश्रम में हुआ हो अथवा अहमदाबाद के १६१६ के साम्प्रदायिक दंगे के बाद ही किया हो, सदैव इसी भावना को लेकर किया—इस के द्वारा उन्हें शान्ति प्राप्त होती थी और उनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यथित हृदय भी थोड़ा विश्राम का अनुभव करता था।

सत्य और अहिंसा के अपने जीवन में गांधीजी ने कार्याधिक्य से बचने के और भी कितने ही मनोरंजक तरीके निकाले थे—इसमें जैसा कि मैंने अभी कहा है, अपरिग्रह का सिद्धान्त उनका विशेष रूप से सहायक रहा। वे सुभाष बाबू के यहां गये थे, मैं उनकी ओर से अतिथि-सत्कारक था। मैं जानता था बापू को फलों और मेवों से विशेष प्रेम है; अतएव मैंने उनकी मेज पर कलकत्ते में जितने प्रकार के भी फल अथवा मेवे प्राप्त हो सकते थे, लगाने आरम्भ किये। उन्हें स्नेह की इतनी भारी मात्रा कुछ अखरी और उन्होंने केवल पांच ही प्रकार के—कोई पांच वे पकाये गये हों अथवा कच्चे हों—भोजन ग्रहण करने का निश्चय कर लिया। उनका यह निश्चय उन्हें भविष्य के लिए भी बहुत लाभदायक प्रमाणित हुआ। अब न उन्हें इस समस्या को लेकर कभी डाक्टर की आवश्यकता पड़ी और न कभी खाने-पीने का किसी तरह का टंटा ही करना पड़ा।

इसी प्रकार बापू ने अपना मौन धारण भी आरंभ किया। यदि मैं गलती नहीं कर रहा हूँ, तो गांधी जी ने अपना पहला मौन-साधन १६२१ में बम्बई के साम्प्रदायिक दंगे के सिलसिले में किये गये अपने अनशन काल में किया था। उस समय उन्होंने वैसा केवल लोगों के व्यर्थ के प्रश्नों से बचने के लिए ही किया था। परन्तु आगे चलकर इस साधना में उन्होंने अद्भुत आध्यात्मिक शक्ति पाई, और वे प्रत्येक सोमवार को मौन रखने लगे।

गांधीजी के चिंता-मुक्त होने का एक और भी तरीका था—वह था, अपनी सारी योजनाओं को जन-साधारण के बीच प्रकट कर देना, जिससे कि कभी-कभी बेचारा गुप्तचर विभाग भी किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो जाता था। लोग अपनी चिंताओं से विश्राम पाने के लिए चीजों को छिपाते हैं, परन्तु वे तो और उन्हें यत्र-तत्र व्यक्त कर देते थे। उनके शान्ति-प्राप्ति का वह तरीका अनोखा ही था। अपनी गलतियों को सब के सामने स्वीकार कर लेने में उन्हें कितनी शान्ति नहीं मिलती थी!

फिर भी, दर्शनार्थियों की हर समय घूमते रहने वाली आंखों से वे थोड़ी देर के लिए एकान्त में विश्राम लेना चाहते थे, और इसका तरीका उन्होंने स्नानागार की शरण लेना निकाला था। वहां वे पूरे एक घण्टे तक अन्दर पड़े रहते थे, जिसमें कभी-कभी वे एक झपकी भी ले लेते थे, और कभी २ अपनी आवश्यक चिट्ठी-पत्री यहां कर लिया करते थे।

एक बार बारदोली से आये हुए कुछ दर्शनार्थियों ने गांधीजी से पूछा, 'अब तो स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई। क्या आप गुजरात वापस चलेंगे?' बापू ने तुरन्त ही उत्तर दिया, 'क्यों? गुजरात में क्या रखा है? दिल्ली में तो इस समय आग लगी हुई है, भारी कार्य की तो यहीं आवश्यकता है। मेरे लिए तो वही स्थान उपयुक्त है, जहां कार्य हो, जीवन से द्वन्द्व हो, कर्मक्षेत्र हो।'

यह है बापू का विश्राम-प्राप्ति का मार्ग, जो कि इतना सरल नहीं है। इस मार्ग में कठिन साधना है, और आवश्यकता है अथह धैर्य और साहस की। साधुओं और सन्यासियों की हिमालय-यात्रा के मार्ग को वे विश्राम-प्राप्ति का मार्ग नहीं मानते थे। वह उनके अपने सिद्धांतों के विरुद्ध था—उसमें उन्हें पराजय तथा कायरता की गंध आती थी। उनका मार्ग पराक्रमियों का मार्ग था। एक बार उन्होंने मुझे एक पत्र में लिखा था—

"वे सुखी हैं जो कि अग्नि में प्रवेश कर जाते हैं, दूर से देखने वाले तो उसकी लपट से ही भयभीत हो जाते हैं!"

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय साहित्य पर गांधी जी का प्रभाव

(पृष्ठ २४ का शेष)

सुन्दर निबंध लिखा था, जो इस समय मेरे पास है। गांधी जी की इस संयमवती और बलशाली शैली के कई सुन्दर उदाहरण उस लेख में हैं।

सबसे ताजा उदाहरण जो उनकी शैली के सर्वोत्तम गुणों को दरसाता है, और जो इस समय मुझे याद आ रहा है, वह 'अमारा बा' नामक वनमाला पारेख और सुशीला नायर द्वारा लिखी गई संस्मरणात्मक पुस्तक की छोटी-सी भूमिका है। इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद श्री काशीनाथ त्रिवेदी ने किया है। इधर की उनकी प्रार्थना-सभाओं और धर्म-प्रवचनों में उनकी वही निश्छल, पारदर्शक शैली स्पष्टतः झलकती है, जिसके बारे में लुईफिशर ने कहा था कि 'गांधी और अन्य राजनीतिज्ञों में सबसे बड़ा अन्तर यही है कि गांधी जो कुछ दिल में होता है, कह डालता है, कुछ भी छिपाता नहीं।'

गांधी जी की भाषा को देन एक अलग विषय होगा। यहां एक व्यक्तिगत संस्मरण देकर मैं समाप्त करना चाहता हूं। खादी विद्यालय के छात्रों को प्रमाण-पत्र वितरण का कार्यक्रम सन् '४२ के जून में वर्धा में अ० भा० चरखा संघ की सभा के साथ-साथ हुआ। उस समय वे बोलते-बोलते 'यूनीफार्म' शब्द पर अटक गये और पूछने लगे—'इसका हिन्दुस्तानी क्या है?' किसी ने सुझाया 'वर्दी', किसी ने 'गणवेश', किसी ने 'राष्ट्रीय पोशाक'; परन्तु उन्हें इनमें से कोई जंचा नहीं। हिन्दू-मुस्लिम एकता के उनके प्यारे सपने के कारण वे 'हरिजन' में एक हिन्दुस्तानी-कोश निर्माण में लगे थे। कण्ट्रोल के लिए 'अंकुश' उन्होंने बड़ा अच्छा शब्द हमें दिया। इसी प्रकार कई शब्दों में उन्होंने नये अर्थ भर दिये। मेरे पत्रों के उत्तर देते समय वे कहते—'प्रभाकर के अक्षर मुझे बहुत पसन्द हैं।' औरों को मेरे पत्र दिखाते। अच्छे अक्षर लिख लेना वे एक बड़ी न्यामत मानते थे, क्योंकि खुद उनके अक्षर उतने अच्छे नहीं थे, जैसे वे चाहते थे।

अन्त में इमर्सन की परिभाषा 'To be great is to be misunderstood' सही हो कर रही और महात्मा हम में नहीं रहे। परन्तु उनके विचारों की छाया हमारे साहित्य, कला और अन्य सृजनात्मक कार्यों में सदा के लिए अवचेतन में बनी रहेगी, क्योंकि उनमें भारतीय संस्कृति के सर्वोत्तम अंश की परम्परित और परिवर्तित विशेषताएं विद्यमान हैं। गांधी जी पर कहां तक और क्या-क्या लिखा जाय, सब कुछ लिखने पर भी वह थोड़ा ही जान पड़ेगा; जैसे डी० एफ० कराका ने अपने 'आउट आफ डस्ट ही मेड अस मैन' में कहा है, आरम्भ में—'गांधी जी पर कुछ लिखना—कहना तीर्थयात्रा पर जाने के समान है!' योन नागूची ने गांधी जी पर जो एक नितान्त सुन्दर कविता कई वर्ष पूर्व अंग्रेजी में लिखी थी, उसके गद्य अनुवाद से यह कभी न समाप्त होने वाला शोक-लेख समाप्त करता हूँ :

"अपने सिर पर रखी हुई काली मिट्टी की पट्टी की ओर अंगुलि-निर्देश कर वे बोले—

'मैं इसी मिट्टी से जनमा हूँ—यही भारत की मिट्टी मेरे सिर पर है।' वह ताज के समान शोभित थी।

वह जीवन का करुण गायक, माता के, मिट्टी के इतने समीप!

दुनिया में इससे अधिक ज्वलन्त देशभक्त और कौन मिलेगा?"

★

समस्त परिवार के मनोरंजन के लिये

मनोरंजन

खरीदिये और पढ़िये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

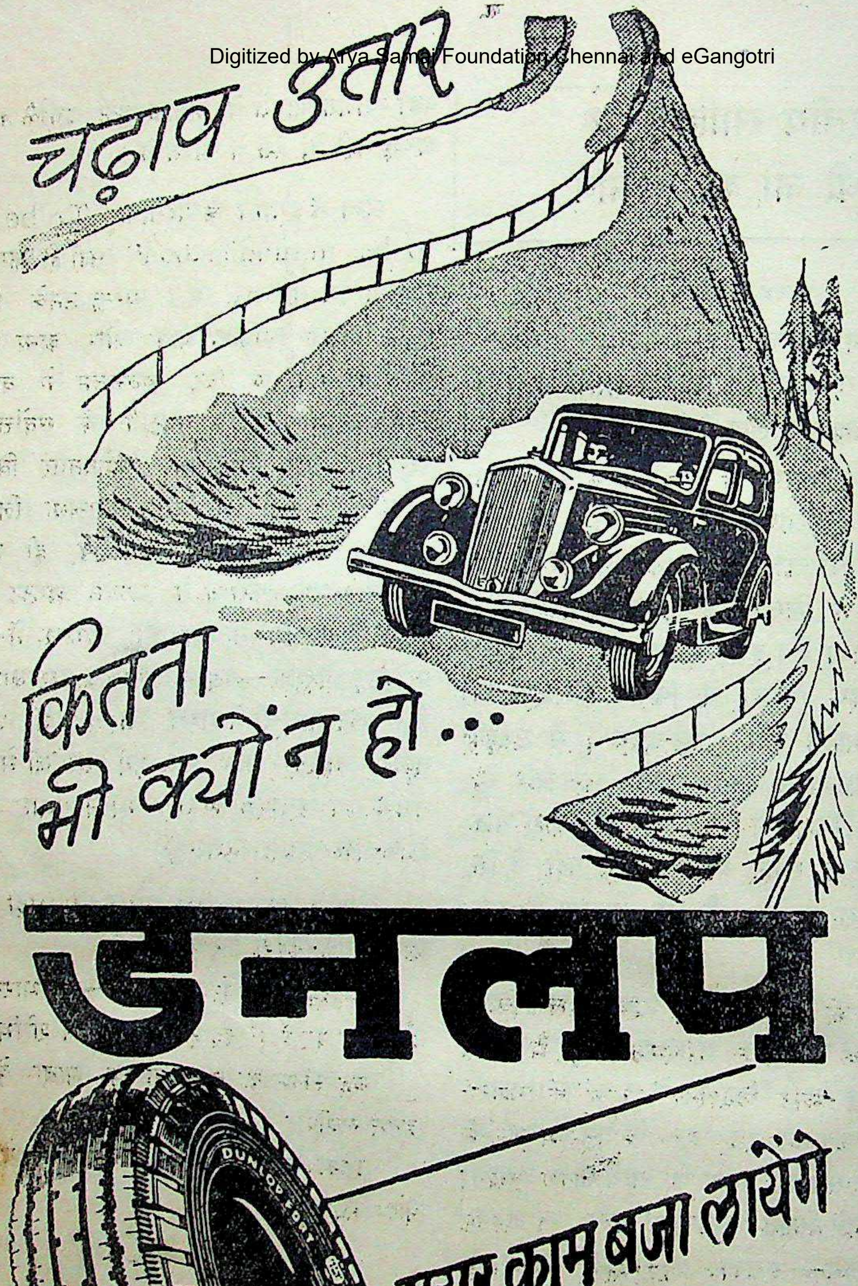

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्री-जाति के मसीहा—गांधीजी

(कुमारी नीलिमा एम० ए०)

गांधीजी ने भारतीय नारी का जितना उपकार किया है उतना शायद ही कभी किसी ने किया हो। वे स्त्री जाति के सही मानों में मसीहा थे, त्राता थे, उद्धारक थे। भारत में स्त्री सदियों से पद-दलित थी, पराधीन थी, उपेक्षित थी। गांधीजी ने नव-जागरण की वेला में उसे रूढ़ियों, सामाजिक अयोग्यताओं और अंध-विश्वासों के गर्त से निकाल कर समाज में पुरुष के समान गौरवान्वित-पद दिलाया। उस भारत में जहां कुछ वर्ष पहले स्त्री चहारदीवारी से बाहर पांव भी नहीं रख सकती थी, आज वह गवर्नर, राजदूत, मंत्री इत्यादि उच्च पदों पर आसीन है। यह सम्मान आज पश्चिम के तथाकथित प्रगतिशील देशों में भी स्त्री को प्राप्त नहीं है।

गांधीजी ने भारतीय नारी को समाज में समानता दिलाने का काम अद्भुत तरीके से किया। और सुधारकों की भांति बजाय व्यर्थ की बातें बनाने के उन्होंने स्त्रियों को अपने साथ लिया और उन्हें राजनैतिक आंदोलन में लाकर खड़ा कर दिया और जब वे अपने पतियों, भाइयों, पुत्रों के साथ-साथ सभाओं में आने लगीं, जलूसों में भाग लेने लगीं, देश की आजादी के नारे लगाने लगीं, विदेशी सरकार के कानूनों को भंग करने लगीं, लाठियों और गोलियों का सामना करने लगीं और जेलों में जाने लगीं तो वे अपने आप सामाजिक स्वाधीनता व समानता को प्राप्त कर चुकी थीं। इस तरह गांधीजी के नेतृत्व में भारतीय नारी ने संसार के सबसे बड़े राजनैतिक संघर्ष में भाग लिया और इससे पहले कि समाज के ठेकेदार नव-जागरण के इस आघात से संभल कर कुछ शोर मचा पाते, वह अपने बलिदानों और सेवाओं से समाज में अपने अधिकार प्राप्त कर चुकी थी और उसे पुनः घर की चहारदीवारी में कैद करना असंभव हो चुका था।

यह था गांधीजी का चमत्कार जो भारत के राजनैतिक संघर्ष से कम महत्वपूर्ण नहीं है।

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधी जी कहते थे....

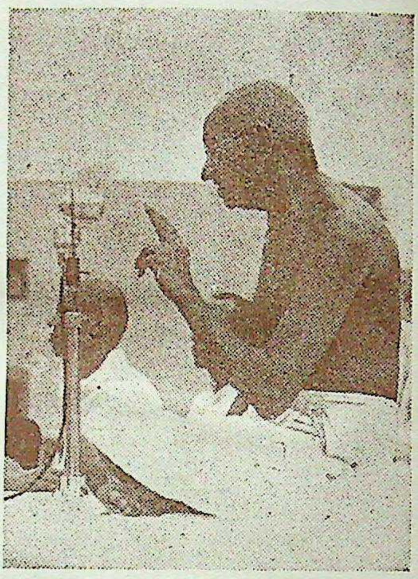

स्त्री और पुरुष समान हैं

अगर मैं औरत होता तो मैं कभी भी इस बात को बर्दाश्त न कर सकता कि आदमी औरत को अपना खिलौना समझे।

स्त्री और पुरुष में प्रकृतिगत भेद है। इससे दैनिक जीवन में उनके कर्तव्यों में भी भेद होता है। फिर भी दोनों में कोई ऊंचा या नीचा नहीं है, बल्कि ये दोनों समाज के समान महत्व के और प्रतिष्ठापात्र अंग हैं। वयःप्राप्त पुरुष जितनी स्वतन्त्रता का अधिकारी है उतनी ही स्वतंत्रता की अधिकारिणी स्त्री भी है।

अबला नहीं, सबला

स्त्री अबला नहीं है, बल्कि अपनी शक्ति को पहचाने तो पुरुष से भी अधिक सबला है। वह माता रूप में जिस बालक को गढ़ती है, और पत्नी होकर पति को जिस प्रकार चलाती है, बहुत करके पुरुष वैसे ही बनते हैं।

स्त्री जाति अपना बल और कार्य-क्षेत्र की दिशा ठीक-ठीक समझ ले तो वह कभी अपने आपको पुरुष की दुर्बल न मानेगी, और पुरुष का और उसकी प्रवृत्ति का अनुकरण करने का ही आदर्श अपने सामने न रखेगी। वह पुरुष को रिझाने और आकृष्ट करने के

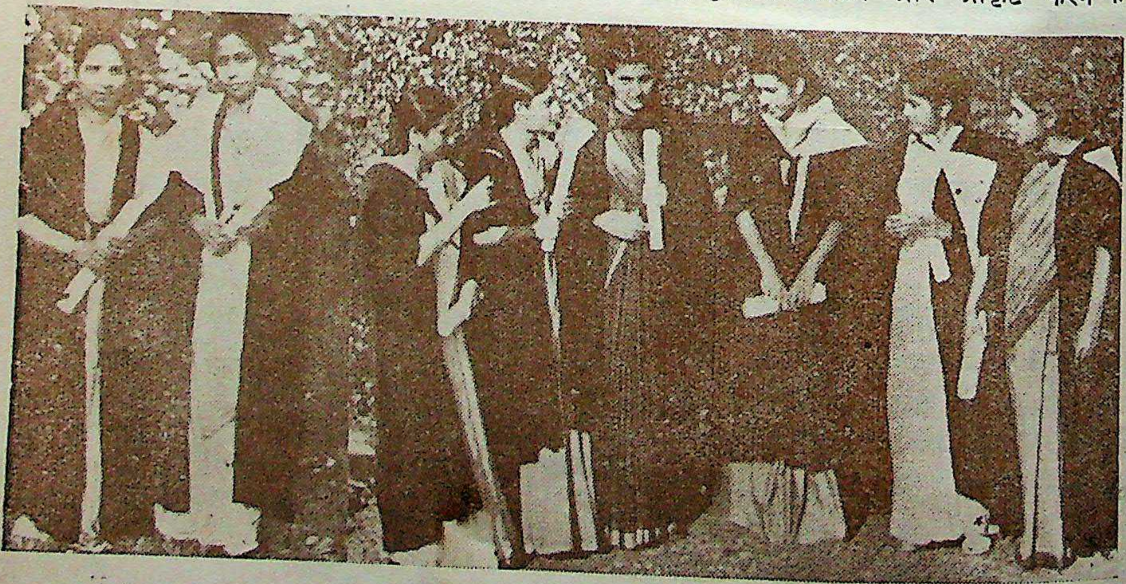

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पुरुषों के समान ही उच्चतम शिक्षा पाने वाली ये भारतीय स्त्रियां गांधीजी के उपकार को कभी नहीं भूलेंगी।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये अपने शरीर को न सजायेगी, बल्कि अपने हृदय के गुणों से ही सुशोभित होने का यत्न करेगी।

स्त्री जाति को सार्वजनिक कार्यों में पुरुष के बराबर ही हाथ बंटाना चाहिये। मद्यपान-निषेध, पतित स्त्रियों के उद्धार आदि कितने ही काम ऐसे हैं, जिन्हें स्त्री ही अधिक सफलतापूर्वक कर सकती है।

आदर्श पति-पत्नी

मेरे सामने तो पत्नीत्व का आदर्श सीता है और पतित्व का आदर्श राम। लेकिन सीता राम की दासी नहीं थी—यों तो दोनों एक दूसरे के दास थे, लेकिन वह भावना का प्रश्न है।

विधवा-विवाह

विधवाओं का स्वेच्छा से आजीवन विधवा-जीवन बिताना हिन्दुत्व का अमूल्य गुण रहा है। इसमें उच्च-कोटि का संयम छिपा हुआ है; किन्तु जबरदस्ती किसी

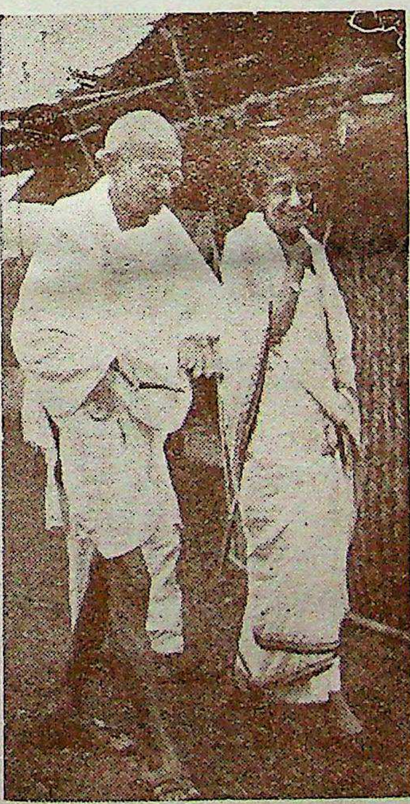

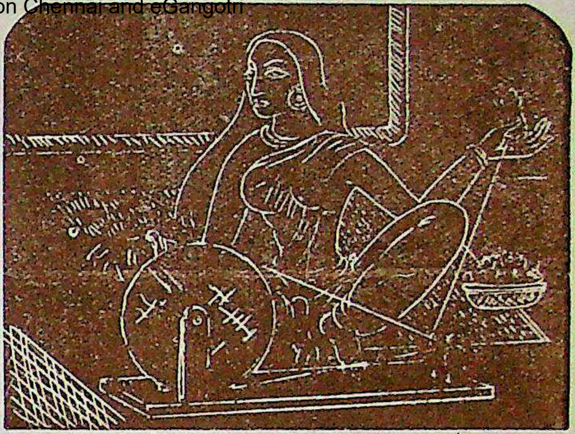

को विधवा-जीवन बिताने के लिये बाध्य करना समाज के लिये अभिशाप है। जिस भांति पुरुष विधुर जीवन बिताने के लिये बाध्य नहीं है, उसी प्रकार स्त्री को भी, विधवा हो जाने पर, पुनः विवाह करने का पूर्ण अधिकार है।

अहिंसा और नारी

अहिंसात्मक युद्ध का सब से बड़ा सौन्दर्य यह है कि इसमें नारी भी उतना ही महत्वपूर्ण भाग ले सकती है जितना कि पुरुष। सशस्त्र युद्ध में स्त्री को पीछे रह जाना पड़ता है। भारत के अहिंसात्मक आन्दोलन में स्त्री जितनी सफल हुई है, उतना पुरुष नहीं हो पाया। इसका कारण है, अहिंसा में हमारी सहन-शीलता की परीक्षा होती है और नारी से ज्यादा कष्ट-सहन और तपस्या की शक्ति और किस में है! मेरा पूर्ण विश्वास है कि अहिंसा का संदेश पूर्ण रूप से स्त्री ही दे सकती है।

चर्खा

चर्खा कात कर स्त्रियां स्वावलंबिनी बन सकती हैं और साथ ही स्वदेशी को प्रोत्साहन देकर राष्ट्र-हित कर सकती हैं।

स्त्री-शिक्षा

पुरुष की भांति स्त्री को भी शिक्षा का पूरा अधिकार है और पुरुष को जैसी शिक्षा की अनुकूलता हो वैसी स्त्री को भी होनी चाहिये। पुरुष की अपेक्षा स्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का दर्जा और अधिकार कम है, इस संस्कार को निर्मूल कर देना चाहिये।

पालन पोषण और शिक्षण में लड़के और लड़की में भेद करने वाले और लड़की के प्रति कम कर्तव्य-बुद्धि रखने वाले माता-पिता पाप करते हैं।

पर्दा और सतीत्व

मेरा तो यह विश्वास है कि पर्दा भारतीय संस्कृति की चीज नहीं। यह प्रथा तो हिन्दू जाति के पतन-काल में प्रारम्भ हुई। आत्मसम्मानी द्रौपदी और निष्कलंक

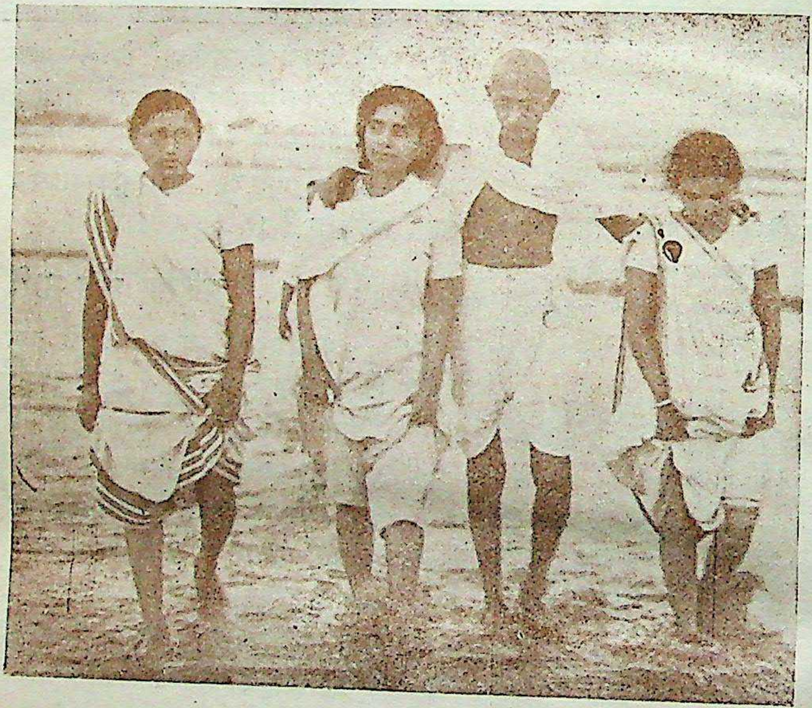

सीता के युग में हम पर्दे की कल्पना ही नहीं कर सकते यदि प्राचीन भारत में पर्दा होता तो गार्गी इस प्रकार का वाद-विवाद नहीं कर सकती थी।

पवित्रता केवल घर में ही तो फल-फूल नहीं सकती और आप किसी को दीवारों और घूंघटों में कैद कर उस पर सतीत्व लाद तो नहीं सकते। यह तो हृदय से ही विकसित हो सकता है। और अगर सतीत्व में कुछ स्थायित्व है तो उसे बाहरी परिस्थितियों में रखकर आत्मसम्मान भी तो चाहिये। वह सतीत्व क्या जो पुरुष की नजर पड़ते ही कुम्हला जाये!

आभूषण

स्त्रियों का आभूषणों के प्रति अनुराग बढ़ना घरों में कलह का कारण बनता है और पुरुषों को उनकी नैतिकता से गिराता है। ऐसी दशा में यदि कोई भी स्त्री आभूषण पहनती है तो वह अपने पति ही के कष्ट का कारण नहीं बनती, वरन् देश के भूखे-नंगों की रोटी और वस्त्र छीन कर महा पाप करती है।

आधुनिक लड़की

मुझे भय है कि एक आधुनिक लड़की कम से कम १२ प्रेमियों के साथ प्रेमिका का अभिनय करती है। उसे इस प्रकार की बात में आनन्द आता है। एक आधुनिक लड़की इसलिये पोशाक नहीं पहनती कि उसके शरीर की सर्दी, गर्मी, बरसात से रक्षा हो, बल्कि वह अपना प्रदर्शन करती है और युवकों का ध्यान आकर्षित करती है।

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्मृति-पूजा

(पृष्ठ २० का शेष)

"हां ।"

सुमित्रा कई क्षण शून्य में खोई रही, फिर बोली—"उन्होंने देश को आजाद कराया है ।"

"बस ।"

"नहीं, बस क्यों ? वे सब को प्यार करते थे । उन्होंने अछूतों को इन्सान बनाया । उन्होंने मुसलमानों के लिये प्राण तक दे दिये···"

'सो तो दिये ही हैं ।'

"मुझे तो बस यही सबसे प्यारा काम लगता है ।"

"सच !"

"जी हां"—सुमित्रा ने पति की आंखों में झांका और फिर मुस्करा दी । मनोज खुशी से भर उठा और उसने एकदम कहा — "तो क्या तुम अपने चौके में मुसलमान को खाना खिला सकती हो ?"

सुमित्रा सहसा जवाब नहीं दे सकी और उसे चुप देख कर मनोज अनजाने ही खीझ और ग्लानि से भरने लगा । क्षण बीते, धीरे से सुमित्रा ने कहा — "पिता जी·····"

"पिता जी !" मनोज ने चिनचिना कर कहा — "मैं पिताजी की बात नहीं पूछता, तुम्हारी पूछता हूँ ।"

सुमित्रा झिझकी नहीं, बोली—"आप सुनिये तो ! मैं कब मना करती हूँ; पर मैं पूछती थी क्या आपके पिता जी इस बात के लिये तैयार होंगे ?"

मनोज अब भी शान्त नहीं हुआ । खीझ कर उसने कहा — "पिता जी को मैं तुम से अधिक जानता हूँ, सुमित्रा ! बात उनकी नहीं थी, मुझे लगता है चोर तुम्हारे मन में भी है·····"

"अजी सुनिये तो" — सुमित्रा सहसा कातर हो उठी ।

"सुन लिया ! अगर चोर न होता तो तुम पिता जी की बात बीच में नहीं लाती । पिता जी का युग बीत गया, उनकी चिन्ता व्यर्थ है ।"

सुमित्रा की आंखें भर आईं बोली — "मैं कमजोर हूँ । जो बात अब तक नहीं की, उसे करते हिचकिचाहट होती है; पर मैं मना तो नहीं करती ।"

और फिर मनोज के पास आकर उसके कन्धे पर हाथ रख दिया, कहा—"आप नाराज हो गये ?"

मनोज तब तक अपनी गलती समझ गया था । भीगे-से स्वर में बोला—"सुमित्रा, कमजोर मैं भी हूँ । जो दूसरों की कमजोरी पर खीझता है वह सब से अधिक दुर्बल है । पर सुमित्रा, हमें ये बन्धन तोड़ने ही चाहियें, तोड़ने ही चाहियें । आज भी न तोड़ सके तो·····"

सुमित्रा ने स्नेह-सिक्त स्वर में कहा—"मैं सदा आपके साथ हूँ ।"

"मैं जानता हूँ," मनोज बोला—"पर·····"

आगे मन की बात मन में ही रह गई । न जाने सुमित्रा की आंखों में क्या था, उससे बोला नहीं गया और फिर वह आगे की सारी बातें सोच लेना चाहता था । वह विद्रोह के लिये भी प्रस्तुत था । वह जानता था अमर विद्रोह के कारण ही उस महामानव का मूल्य है । उसने जो सोचा, जो माना, वही किया । तब मैं भी जो कुछ मानता हूँ, वही करूंगा । बुद्धि और आचरण की एकरसता ही उस महामानव के जीवन का एक मात्र सन्देश है·········

अब उसकी रही सही दुर्बलता भी दूर हो गई और वह दृढ़ता से भर चला । उसे लगा जैसे समूचा देश उसी दृढ़ता से पूरित है । उसका सब दुःख, दैन्य और दारिद्र्य समाप्त हो चुका है । इस उत्साह और गर्व से भरने का एक और कारण था । कल उसे एक पत्र मिला था । किसी मुस्लिम-बन्धु ने उसे लिखा था :

'मैं उस महामानव के अवसान से बहुत ही विचलित हो उठा हूँ, मुझे कुछ नहीं सूझ रहा है । क्या शांति पाने के लिए आप के पास आ सकता हूँ ? इत्यादि ।'

पढ़ कर जैसे उसका हृदय उमड़ पड़ा । वह हर्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रौर गर्व से रोया, जैसे अन्तर का सारा कलुष धुल गया हो। कलुष धोने वाली मात्र यही घटना नहीं थी। उस महामानव की समाधि पर न जाने उसने ऐसे कितने दृश्य देखे थे; पर एक दृश्य उसकी आंखों में खुब कर रह गया है। सदा की तरह वह दूर एक कोने में बैठा हुआ वातावरण का अध्ययन कर रहा था। उसके पीछे सूर्य-पुत्री यमुना मन्थर गति से अपने शाश्वत मार्ग पर बढ़ी चली जा रही थी। दाहिनी ओर वह लोहे का पुल था जो अपने विशाल शरीर से यमुना के दोनों किनारों को एक कर रहा था। सामने वह मुगल वैभव के प्रतीक लालकिला और जामामस्जिद को देख सकता था, देखता रहता था। पर आज उसकी दृष्टि डा० अन्सारी की अनाथ कोठी पर जा अटकी। इसी कोठी के खुले बरामदे में उसने पहिली बार उस महामानव को देखा था। उसे सत्रह वर्ष पहिले की वह बात जैसे आज की-सी लगी, पर आज···· वह कांपा। उसकी दृष्टि पुष्पाच्छादित मौन समाधि पर जाकर अटक गई। यहीं पर उस महामानव का पार्थिव शरीर पवित्र अग्नि को लपटों को सौंप दिया गया था, मानों उठती हुई लपटों ने उन्हें शून्य को सौंपते हुए कहा-- जैसे तुम आये वैसे तुम चले जाओ!

वह फुसफुसाया--"जैसे तुम आये वैसे तुम चले जाओ!" वह मूर्च्छित-सा होने लगा कि तभी उसे लगा उसके पास ही कोई सुबक-सुबक कर रो रहा है। वह सिहरा। दृष्टि उठाकर शब्द के स्रोत की ओर देखा-- कोलाहल से दूर उसके पीछे एक युवक बैठा है। उसने अपना सिर, दोनों हाथ और दोनों पैर इस प्रकार एक दूसरे में समेट रखे हैं कि वह मात्र एक अनघड़ पिंड सा लगता है जो उच्छ्वासों और सुबकियों के कारण बार-बार हिल उठता है। मनोज वैसे ही करुणाद्र था, अब और भी पिघल उठा। पास आकर उसने क्षण भर उसे देखा। फिर चाहा उसे पुकारे, पर न जाने क्यों चुप ही रहा। क्षण आये और गये। वह भीगी दृष्टि से देखता रहा। आखिर युवक ने सिर उठाया, दृष्टि मिली जैसे धरती डोली--वह करुण-कातर दृष्टि, वह दयनीय रक्ताभा···युवक शीघ्रता से उठा कि मनोज ने देखा — वह मुसलमान है।

मुसलमान! मनोज और भी कांपा, पर किसी तरह उसने आगे बढ़कर पूछा — "तुम कौन हो, भाई?"

स्वर में सहानुभूति थी, स्नेह था। युवक ठिठका। उसकी आंखें गहरी लाल हो रहीं थीं और वह मसले हुए फूल की तरह निरीह लगता था। स्नेह पाकर उसका बांध फिर टूट गया। वह फूट-फूट कर रो उठा ···मनोज ने आगे बढ़कर उसे अपनी छाती से लगा लिया, लगाये रहा, बोला नहीं। चाहा सृष्टि यहीं रुक जावे, लेकिन गति का नाम सृष्टि है। मनोज ने प्यार से थपथपा कर कहा—"अब चुप करो!"

"········"

"सुनो तो!"

"·········"

"तुम इस महामानव के लिये रोते हो?"

अब वह युवक बोला—"जी नहीं, मैं तो अपने लिये रोता हूँ। हमने उनके साथ क्या किया और वे हमारे लिये शहीद हो गये।"

मनोज ने कहा — "वे अपने सिद्धांतों के लिये जिये और मरे और जो जीते जी न कर सके वह मृत्यु में कर गये। तुम और हम अगर उनके सन्देश को समझ सकें तो वह जहां भी होंगे हमें आशीर्वाद देंगे।"

युवक ने स्वीकृति में सिर हिलाया और आंसू पोंछ डाले, बोला -- "मैं उनकी बात मानने की पूरी-पूरी कोशिश करूंगा।"

"तो विश्वास रखो"—मनोज ने कहा — "तुम्हें कोई डर नहीं है। हम और तुम सब एक हैं और एक ही बने रहेंगे।"

"सच!" वह फुसफुसाया।

"सच"—मनोज ने धीरे से, पर दृढ़ता से कहा और फिर उसका हाथ अपने हाथ में लेकर बोला— "क्या तुम संध्या को मेरे घर आ सकोगे?"

"मैं?"

"हां, तुम।"

खुशी और अचरज से उसकी वाणी लड़खड़ा गई। आंखों में आंसू और ओठों पर मुस्कान लिये उसने स्वीकृति में सिर हिलाया। वह स्वीकृति भावना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से सराबोर थी, पर साथ ही वज्र की तरह दृढ़ भी थी। मनोज को लगा, अब वह ऊंचा और ऊंचा उठता जा रहा है—इतना कि नील गगन रंग-रहित होकर उसके चारों ओर फैल गया है।

घर आकर उसने सब बातें सुमित्रा से कहीं। उसे बहुत देर तक प्यार से समझाता रहा। सुमित्रा का अन्तर्मन अब भी डगमगा उठता था, पर उसे मनोज की बुद्धि पर विश्वास था और वह जानती थी कि उस महामानव के जीवन का सन्देश भी यही है। इसीलिये वह खुशी-खुशी काम में लग गई। मनोज बाहिर चला गया कि पत्र वाले मुस्लिम-बन्धु को बुला लावे। उसने जेब से पत्र निकाला और ध्यान से पता पढ़ा। यह वह रास्ता था जिस पर जाते हुये हिन्दू लोगों के प्राण सूखा करते थे, परन्तु आज जो भी उसे उस राह पर मिलता था, हाथ उठा कर विनम्रता से 'जय हिन्द' करता। एक बूढ़े आदमी ने उसे रोक कर कहा भी—"उनका इन्तकाल क्या हुआ, खुदा ने हमारा इम्तिहान लिया है; पर यकीन रखिये, मुसलमान अहसान फरामोश नहीं होगा।"

मनोज ने मुस्करा कर उचित जवाब दिया और आगे बढ़ गया। वह अब एक तंग गली के अन्त में आ गया था। यहीं पर रुक कर उसने अपने पत्र वाले बन्धु का नाम लेकर पुकारा। तब सामने के चौक में दो-चार दुकानें खुल रही थीं, पर रास्ते पर भीड़ नहीं थी। हां, बगल के मकान से हल्का-हल्का शोर आ रहा था। उसकी पुकार सुनकर जिस व्यक्ति ने किवाड़ खोले उसे सामने देख कर मनोज जैसे हक्का-बक्का रह गया। हठात् कांप कर उसने कहा—"तुम !"

युवक मुस्कराया—"हां, मैं हूँ।"

"पत्र तुमने लिखा था ?"

"जी हां"—और कहते-कहते युवक ने मनोज को अन्दर खींच लिया। फिर टूटकर गले से चिपक गया और फूट-फूट कर रोने लगा; इतना रोया कि अन्दर से किसी ने जोर से कुण्डी खटखटाई। मनोज ने अपने को सम्हाला और धीरे से कहा — "असलम, असलम, अब शान्त हो जाओ।" असलम ने नहीं सुना।

"असलम !"—मनोज ने उसे अपने से अलग करते हुये कहा—"सुनो तो।"

असलम ने रोते-रोते कहा—"मनोज ! तुम कितने अच्छे हो ! तुम आये हो..."

मनोज बोला — "आता क्यों न ? तुमने बुलाया जो था। पर मैं सपने में भी नहीं सोच सका था यह तुम होगे। तुमने अपना नाम क्यों नहीं लिखा ?"

"शायद तुम मुझ से नफरत करने लगे थे !"

"क्यों ?"

"क्योंकि मैं लीग में शामिल होगया था।"

"क्योंकि तुम लीग में शामिल होगये थे !" मनोज हंसा— 'तुमने मुझे हमेशा गलत समझा।"

"मैं मानता हूँ," असलम ने क्षमा के स्वर में कहा —"पर अब तुम उन बातों की याद न दिलाओ।"

मनोज चुप हो गया। दोनों चारपाई पर जा बैठे और शीघ्र ही बातों में घुल मिल गये। वे चार साल के बाद मिल रहे थे। वे जगत से परे अपनी व्यक्तिगत बातें करना चाहते थे, पर किसी न किसी तरह व्यक्ति की चर्चा जग की चर्चा में आ ही मिलती थी। सच तो यह, इस युग में व्यक्ति कहीं बचा ही नहीं है। है तो हिमालय की किसी गुफा में बैठा हुआ अवसर की टोह ले रहा है। इसीलिए बातें करते-करते मनोज बोल उठा—"एक बात तो बताओ ?"

"पूछो।"

"पाकिस्तान नहीं गये ?"

"गया था।"

"फिर।"

"फिर क्या ? वहीं जाकर तो मैंने उस बात को समझा। मैंने स्पष्ट देखा, पाकिस्तान हिन्दू-मुस्लिम समस्या का हल नहीं है। उसका हल तो बस वही इन्सानी समाज है जिसमें धर्म और मजहब के लिए कोई जगह नहीं है। तुम ने कहा था—'धर्म व्यक्ति की सम्पत्ति है, समाज की नहीं।' तुम्हारे ये शब्द मुझे सदा परेशान करते रहे हैं और तुम्हें वह दिन याद है जिस दिन तुम मेरे घर से प्यासे लौटे थे ! बेगम ने तुम्हें इसलिये पानी नहीं पिलाया था कि तुम हिन्दू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोज भीगी हंसी हंसा, बोला—"वह बेगम की मोहब्बत थी, असलम।"

"हां मनोज। बेगम सदा तुम्हारा आदर करती रही है। बुरे दिनों में एक सच्चे दोस्त की तरह तुम ने मेरी मदद की थी। वह उस बात को नहीं भूली। उसी आदर के कारण वह पानी पिला कर तुम्हारा धर्म नहीं बिगाड़ना चाहती थी। पर अब वह अक्सर कहा करती है — 'कहीं मनोज बाबू मिल जावें तो मैं उन्हें अपने हाथ से रोटी बनाकर खिलाऊंगी।' पर तुम्हारा पता नहीं लगा। तुमने भी वह शहर छोड़ दिया था। अचानक एक उर्दू के रिसाले में तुम्हारी कहानी पढ़ी...!

मनोज हठात् बोला — "कौन-सी?"

"दो सहेलियां! 'नया जमाना' में छपी थी। बेगम ने पढ़ा तो अश-अश कर उठी। कहने लगी मनोज का पता लगाओ। तुम्हारा पता आया ही था कि हमारा आका हमें छोड़ गया। जिस समय सारी दुनिया पागल हो रही थी, उस समय वही एक इन्सान होश में था और उसी को हमने मार डाला। उसे हमने मारा है, मनोज!"

मनोज ने सांस लेकर कहा — "तुमने और हमने दोनों ने और हम तुम दोनों ही उसे जिला सकते हैं।"

असलम कुछ जवाब दे कि तभी परदा हटा कर बेगम ने वहां प्रवेश किया। मनोज ने उन्हें पहली बार देखा — गौर वर्ण, मुख पर कुछ ऐसा तरल गाम्भीर्य है जो मन को पकड़ लेता है। नयन विनम्र हैं और मस्तक गर्वोन्नत। हाथ में पानी का गिलास है। उसी को आगे बढ़ाकर उसने मधुर वाणी में कहा— "उस दिन आपके पानी मांगने पर भी मैंने आपको प्यासा लौटा दिया था। जाते जाते आप कह गये थे — 'एक दिन बिना मांगे तुम्हारे घड़े का पानी मुझे मिलेगा।' आप जीत गये, आज वही दिन है।"

मनोज ने हाथ जोड़ कर बेगम को प्रणाम किया और फिर गिलास लेकर एक सांस में उसे पी गया। बोला — "जीत न मेरी है न आपकी। जीत उस महामानव की है। अब आप मेरे साथ चलें। सुमित्रा रसोई बनाये आपकी राह देखती बैठी होगी।"

अचरज से उन दोनों ने मनोज को देखा, देखते ही रह गये। मना करने का न साहस था और न वे चाहते ही थे।

★

गांधी जी द्वारा संचालित सत्याग्रह-संग्राम

दक्षिण अफ्रीका में

(१) ११ सितम्बर, १९०६—जोहान्सबर्ग में आरंभ। गांधी जी तथा दो सौ व्यक्तियों को सजा।

(२) ३० जनवरी १९०७ को स्मट्स से समझौता। १६ अगस्त, १९०८ जोहान्सबर्ग में स्मट्स की वादाखिलाफी के कारण पुनः सत्याग्रह, गोलीकाण्ड, गिरफ्तारियां आदि।

(३) २८ अक्तूबर, १९१३ न्यू कासेल से वोलक्रस्ट की यात्रा। २१ जनवरी १९१४ को स्मट्स से पत्र-व्यवहार के बाद स्थगित। १९१४ जुलाई में भारतीयों की विजय।

भारत में

१९१५ वीरमगांव (गुजरात) में जकात के विरोध में, १९१६ में जकात हटी।

अप्रैल १९१७—चम्पारण (बिहार) में नीलहे गोरों के दमन के खिलाफ। ६ मास में शिकायतें दूर हुईं।

मई, १९१७—अहमदाबाद मजदूरों की हड़ताल के सम्बन्ध में।

मार्च १९१८—खेड़ा (गुजरात) लगान में छूट के लिए

६ अप्रैल १९१९ —रौलट एक्ट सत्याग्रह, १८ अगस्त १९१९ को स्थगित, प्रथम देशव्यापी आन्दोलन।

१ अगस्त १९२० —असहयोग आंदोलन जिसमें ३० हजार व्यक्तियों की जेल यात्रा — नवम्बर १९२२ में स्थगित-द्वितीय देशव्यापी आंदोलन।

१९२४, वैकोम त्रावणकोर में—हरिजनों के लिए।

अगस्त १९२७ — मद्रास में नील की मूर्त्ति हटाने के सम्बन्ध में

१२ फरवरी १९२७ — बारडोली (गुजरात) लगानबन्दी आन्दोलन

१२ मार्च १९३०—असहयोग आन्दोलन, तृतीय देशव्यापी आन्दोलन

मार्च १९३१ — सिरसी कर्नाटक में लगान में छूट के लिये

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

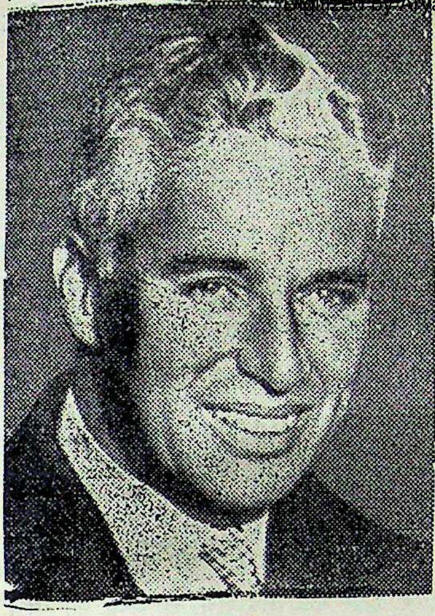

चार्ली चैप्लिन

गांधी जी और सिनेमा

श्री कलाधर

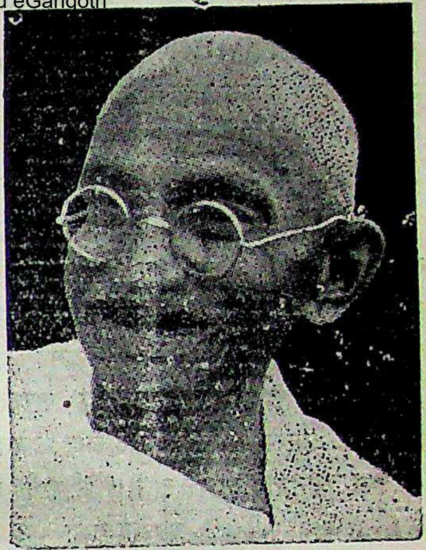

महात्मा गांधी

सिनेमा इस युग का सबसे आकर्षक, मनोरंजक तथा ज्ञान-वर्द्धक आविष्कार है। बूढ़े-बच्चे अमीर-गरीब, शिक्षित-अशिक्षित, साधारण-असाधारण — सभी लोग इसकी ओर आकर्षित हुए बिना नहीं रहते। परन्तु यह जानकर आश्चर्य होगा कि इस युग के सबसे बड़े मानव महात्मा गांधी को सिनेमा पसन्द नहीं था। अपने जीवन-काल में उन्होंने भारतीय-फिल्मों की, नैतिकता की दृष्टि से, कई बार कड़ी आलोचना की थी। एक बार उन्होंने कहा था — "चित्रों का एक मात्र उद्देश्य जनता में पवित्र भावनाओं का प्रचार करना ही होना चाहिये। परन्तु ऐसा नहीं होता। इसी लिये मैं कहता आया हूं कि आजकल के चित्र केवल भ्रष्टाचार फैला रहे हैं। वह कितने सौभाग्य का दिन होगा जब फिल्म-निर्माता शुद्ध और सुधारक चित्रों का निर्माण करना अपना कर्त्तव्य समझेंगे।"

जबकि गांधी जी फिल्मों की ओर से इतने उदासीन थे, भारत के प्रत्येक फिल्म-निर्माता की सबसे बड़ी महत्वाकांक्षा यही थी कि वह गांधी जी को अपनी फिल्म कम से कम एकबार दिखा सके। इस उद्देश्य से बाज फिल्म-निर्माता तो प्रोजेक्टर इत्यादि मशीनरी तक सेवाग्राम या गांधी जी के अन्य निवास-स्थानों पर ले जाने को तैयार थे। परन्तु उनकी फिल्में देखने की न तो गांधी जी को इच्छा थी और न ही उनके पास समय था।

अपने जीवन में उन्होंने केवल दो फिल्में देखी थीं और वे भी मित्रों के अत्यन्त आग्रह और सिफारिश पर। ये दो फिल्में थीं 'मिशन टू मास्को' और 'राम राज्य'। जैसा कि सर्वविदित है, 'मिशन टू मास्को' एक विदेशी फिल्म है और इसका सम्बन्ध द्वितीय महायुद्ध से है। गांधी जी को यह फिल्म दिखाने के लिये 'प्रोजेक्टर' उनके निवासस्थान पर ले जाया गया था। सुनते हैं कि गांधी जी ने इस में चित्रित चर्चिल और स्टालिन के सामरिक अभियान को अधिक उत्साह से नहीं देखा — अहिंसा व शान्ति के दिव्यदूत को हिंसा का कीर्तिगान भला कैसे अच्छा लगता! 'राम राज्य' फिल्म के गांधी जी ने कुछ अंश ही देखे थे और इसके भी बारे में उन्होंने अपना कोई स्पष्ट मत नहीं दिया था। इस तरह कोई भी फिल्म-निर्माता गांधी जी के नाम की पब्लिसिटी करके व्यावसायिक लाभ नहीं उठा सका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिल्मों की भांति ही गांधी जी फिल्म कलाकारों के भी अधिक सम्पर्क में नहीं आये थे। उन के जीवन-काल में सिनेमा संसार के सम्भवतः तीन प्रसिद्ध कलाकारों को ही उन से भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। एक तो था हालीवुड का विश्व-विख्यात हास्य-अभिनेता चार्ली चैपलिन, जो सन् १९३१ में गांधी जी से मिला था जब वे गोलमेज कान्फ्रेंस में भाग लेने के लिए इंग्लैण्ड गये थे। दूसरे दो कलाकार हमारे भारत के ही हैं—पृथ्वीराज कपूर और 'मीरा' फिल्म की प्रमुख अभिनेत्री व दक्षिण भारत की प्रसिद्ध गायिका श्रीमती शुभलक्ष्मी। श्रीमती शुभलक्ष्मी ने दिल्ली में गांधी जी की प्रार्थना-सभा में भजन गाये थे और गांधी जी ने उसके संगीत-कौशल और मधुर कण्ठ की बहुत प्रशंसा की थी।

गांधी जी से चार्ली-चैपलिन की भेंट का वृतांत बड़ा रोचक है। चार्ली-चैप्लिन ने जब गांधी जी से मिलने की इच्छा व्यक्त की तब गांधी जी ने पूछा—"ये सज्जन कौन हैं?" परन्तु जब उन्हें पता चला कि चार्ली-चैप्लिन एक साधारण व्यक्ति हैं, और साधारण जनों के लिए ही जीते हैं और खूब हास्य-निर्माण करके जनता के दुःख भुलाने का प्रयत्न कर आनन्द से उन्हें जिलाते हैं, तब गांधीजी ने झट-से उनसे डा० बरोल के घर पर भेंट का समय निश्चित कर लिया।

इतने बड़े कलाकार ने इतने बड़े राष्ट्र नेता से कौन-सा प्रश्न पूछा होगा? उसे गांधीजी के चरखे का पता था। उसने पूछा—"आप मशीनों के विरुद्ध क्यों हैं?"

गांधीजी को इस प्रश्न से बहुत आनन्द हुआ। छः महीने तक भारतीय किसान जैसे बेकार रहते हैं, इसका पूर्ण विवेचन उन्होंने किया।

चैप्लिन—"तो आपका विरोध केवल यन्त्र-मशीन के कपड़ों की मिलों के लिए ही है?"

गांधीजी—"निःसन्देह, कपड़ा और अन्न प्रत्येक देश को अपने ही देश से मिलना चाहिये। पहले हमारे यहां इसी प्रकार स्वयं पूर्ण उत्पादन होता था। आज भी होना चाहिये। इङ्गलैण्ड का उत्पादन बहुत अधिक है, परन्तु उसे दुनिया के बाजारों की ओर देखना पड़ता है। इसी लिये मैं कहता हूँ—ऐसा शोषण करने वाला इङ्गलैण्ड दुनिया के लिए भयकारक है। यदि भारत भी उसी मार्ग का अनुसरण करेगा तो दुनिया को उससे कितना भय लगेगा!"

"तो क्या,—यह केवल भारत व्यापी है? पर मान लीजिये कि यदि भारत को रूस की भांति स्वतन्त्रता मिली और बेकारों को और कुछ काम मिल कर यदि आर्थिक समता निर्मित हो सकी तो क्या फिर भी आप मशीनों का विरोध करेंगे; क्योंकि उससे मजदूरों को कम आराम मिलेगा न?"

"क्यों नहीं"—गांधीजी ने जोरों से कहा। गांधीजी ने इस विषय पर और कई विदेशियों से चर्चा की थी। किन्तु झट से विषय समझकर स्पष्ट रूप से बात बताने वाला यह पहला समझदार विदेशी उन्हें मिला। इसका कारण यह था कि चार्ली-चैप्लिन का मन दूषित नहीं था। उसकी दीन-दलितों के प्रति हार्दिक और सहज सहानुभूति थी।

चार्ली चैप्लिन गांधीजी के व्यक्तित्व और उनके सिद्धांतों से बहुत ही प्रभावित हुआ। इस भेंट के पश्चात् उसने जो फिल्में बनाईं—'माडर्न टाइम्ज' विशेषतया—उन पर गांधीवाद का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है।

भारतीय फिल्मों पर तो गांधी जी के व्यक्तित्व तथा सिद्धान्तों का प्रभाव उन के प्रथम असहयोग आन्दोलन से ही पड़ना आरम्भ हो गया था। पिछले बीस साल में विदेशी शासकों द्वारा लगाये गये अनेक प्रतिबन्धों के बावजूद भी अनेक भारतीय फिल्मों में अस्पृश्यता-निवारण, मद्यपान-निषेध, साम्प्रदायिक-एकता, अहिंसा, शान्ति और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता इत्यादि विषयों का समावेश हुआ। अब जब कि देश स्वतन्त्र हो चुका है, आशा है कि भारतीय फिल्म-निर्माता, गांधी जी के विचारों और सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार में अधिकाधिक सहायक होंगे और अपनी राष्ट्रीयता और देशभक्ति का परिचय देंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विजय पुस्तक भण्डार से उपलब्ध कथा-साहित्य

आपका चिर प्रतीक्षित उपन्यास

शाह आलम की आंखें

[ले०—श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति]

पुनः प्रकाशित हो गया

* इसका प्रथम संस्करण तीस वर्ष पूर्व छपा था, पर आज भी इसकी मांग ज्यों की त्यों है।
* इस उपन्यास की कथा का आधार ऐतिहासिक है जो कि सत्य है। इसलिये इसे पढ़ते समय वास्तविक घटनाचक्र सामने उपस्थित हो जाता है।
* उपन्यास की भाषा ओजपूर्ण है और कथानक बहुत ही रोचक है।
* पुस्तक की मांग बहुत अधिक है इसलिए अपनी कापी आज ही मंगा लें।

मूल्य केवल ३।) सवा तीन रुपये।

सामाजिक उपन्यास

सरला की भाभी

[ले०—श्री पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति]

इस उपन्यास की अधिकाधिक मांग होने के कारण पुस्तक प्रायः समाप्त होने की है। आप अपनी कापियें अभी से मंगा लें, अन्यथा इसके पुनः मुद्रण होने तक आपको परीक्षा करनी होगी। मूल्य २)

तिरंगा झण्डा

श्री विराज जी रचित तीन एकांकी नाटकों का संग्रह—स्वाधीन देश के झण्डे के लिए बलिदान की पुकार। मूल्य १) डाक व्यय ।-)

सम्राट् विक्रमादित्य (नाटक)

[लेखक—विराज]

उन दिनों की रोमांचकारी तथा सुखद स्मृतियां, जब कि भारत के समस्त पश्चिमोत्तर प्रदेश पर शकों और हूणों का बर्बर आतंक राज्य छाया हुआ था; देश के नगर नगर में द्रोही विश्वासघातक भरे हुए थे जो कि शत्रु के साथ मिलने को प्रतिक्षण तैयार रहते थे। तभी सम्राट् विक्रमादित्य की तलवार चमकी और देश पर गरुड़ध्वज लहराने लगा।

आधुनिक राजनीतिक वातावरण को लक्ष्य करके प्राचीन कथानक के आधार पर लिखे गये इस मनोरंजक नाटक की एक प्रति अपने पास सुरक्षित रख लें।

मूल्य १॥), डाक व्यय ।=)।

नया आलोक : नई छाया

[श्री विराज]

रामायण और महाभारत काल से लेकर आधुनिक काल तक की कहानियों का नये रूप में दर्शन।

मूल्य २) डाक व्यय पृथक्।

मैं भूल न सकूं

[सम्पादक—श्री जयन्त]

प्रसिद्ध साहित्यिकों की सच्ची कहानियों का संग्रह। एक बार पढ़कर भूलना कठिन।

मूल्य १) डाक व्यय ।-)

प्राप्ति स्थान—विजय पुस्तक भण्डार, श्रद्धानंद बाजार, दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नान की गरिमा ३

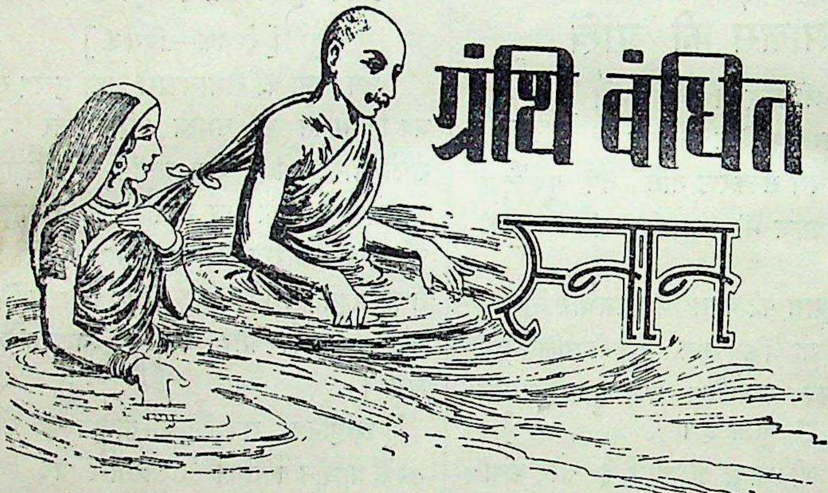

आर्य संस्कृति एवम् पातित धर्म की प्रबल प्रतीक भारतीय महिलाऐं जन्मान्तर में भी अपने वर्त्तमान पति प्राप्ति की कामना से सहस्रों की संख्या में विशेष कर पर्व के दिन तीर्थ स्थानों में इस बीसवीं सदी में भी ग्रन्थि बंधित स्नान करती दिखाई पड़ती हैं। इस प्रकार का स्नान उनके वांछित फल प्राप्ति में कहां तक सहायक होता है, यह तो उनके विश्वास का विषय है, पर स्नान का महत्ता सर्वथा निर्विवाद है और विशेषकर जब स्नान "प्रीफेक्ट साबुन" से किया जाता है, जो शरीर को न केवल स्वच्छ एवम् शान्त बनाता है वरन अपनी स्निग्ध सुवास में त्वचा के प्रफुल्लित तथा स्नान के बाद भी सुवासित रखता है।

प्रिफेक्ट

टॉयलेट सोप

विशुद्ध वनस्पति तेलों से निर्मित

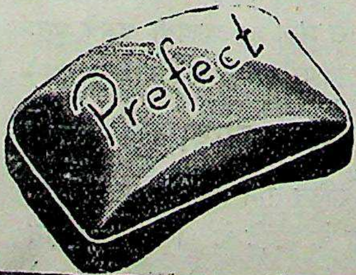

मोदी सोप वर्क्स, मोदीनगर, यू॰ पी॰

स्थानीय डिपो—मेसर्स मोदी इण्डस्ट्रीज डिपो, दरयागंज दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बापू की पावन स्मृति

(पृष्ठ ७ का शेष)

मेरी पत्नी की ओर देखकर बापू ने कहा—"इनको तो मैंने पहले देखा है।"

मैंने कहा—"ये आश्रम की भोजनशाला में अन्य देश-सेविकाओं के साथ परिचर्या के लिये प्रतिदिन आती हैं।"

इस पर सन्तोष-सूचक हंसी हंसते हुए बापू ने छोटी बच्ची सरोज के कन्धों की ओर हाथ बढ़ाया। उसने सलवार और कमीज के साथ एक दुपट्टा पंजाबी ढंग पर गले में डाल रखा था। दुपट्टे को छूकर हंसते हुए कहा—"यह फालतू चीज क्यों डाल रक्खी है?"

६ साल की लड़की के गले में दुपट्टा सचमुच फालतू ही था। इसके पश्चात् लड़कियों ने हस्ताक्षर लेने के लिये कापियें आगे बढ़ायीं। "हस्ताक्षर चाहियें, फ़ीस लाओ!" बापू ने खिलखिलाकर हंसते हुए कहा। हरिजन-कोष के लिये ५) प्रति हस्ताक्षर की फीस पहिले ही तैयार थी। बापू ने इशारा किया कि नोटबुक और फ़ीस सैक्रेटरी को दे दो, हस्ताक्षर हो जायेंगे। यह प्रक्रिया समाप्त होने पर महात्मा जी ने मुझे कहा—"इन्द्र, कुछ और बात करनी है क्या? करनी हो तो आ जाओ।"

महात्मा जी घूमने जा रहे थे। बात करने का यह उपाय था कि महात्मा जी मेरे कन्धों पर हाथ रख देते, मैं उनके साथ-साथ चलता और बातचीत करता। इससे अच्छा सुअवसर मुझे कहां मिल सकता था! चारों ओर हजारों लोगों की भीड़ थी। बहुत से कैमरा वाले भी वहां घूम रहे थे। दूसरे दिन के दैनिक पत्रों में महात्मा जी के साथ चित्र छपने का दुर्लभ अवसर भी दिखाई दे रहा था। परन्तु न जाने क्यों इस प्रकाशन की सम्भावना से मेरा मन घबरा गया और मैंने उन्हें उत्तर दिया—"बस, इस समय तो मैं प्रणाम करने के लिये ही उपस्थित हुआ था; बातचीत करने के लिये फिर आऊंगा।"

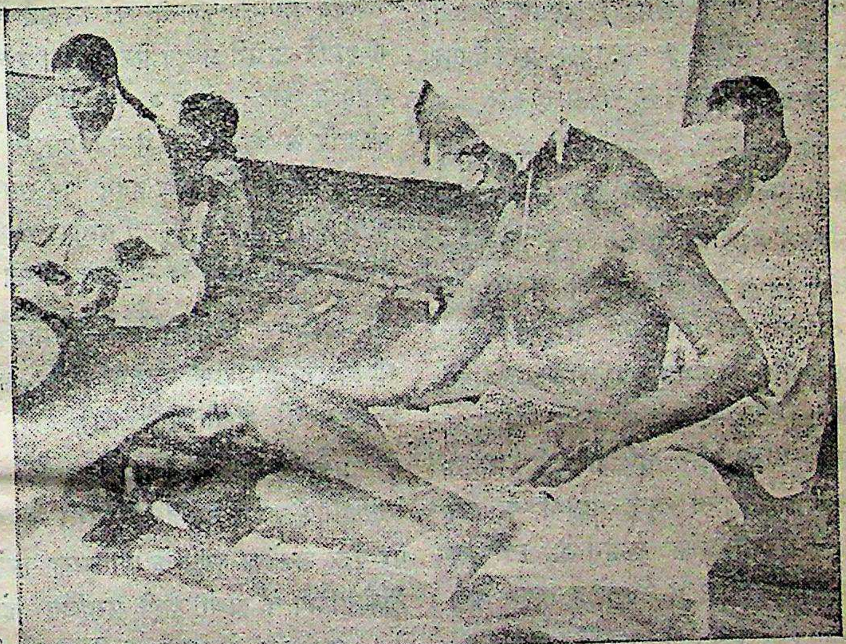

मैं प्रणाम करके अलग खड़ा हो गया और महात्मा जी भ्रमण के लिये आगे बढ़ गये। यही अन्तिम दर्शन थे। फिर वह 'फिर' न आ सकी, जिसकी मुझे आशा थी—दर्शनों का सुयोग ही न मिला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निशानियां — (कहानी-संग्रह) लेखक — श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'; प्रकाशक—नेशनल इन्फर्मेशन एएड पब्लिकेशन्स लि०, बम्बई; मूल्य २॥=)

सुप्रसिद्ध कहानीकार, उपन्यासकार, नाटककार व कवि श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का हिन्दी में यह तीसरा कहानी-संग्रह है। इस संग्रह की अपनी एक विशेषता यह है कि इसमें केवल प्रेम-कहानियां ही संकलित हैं जिनमें प्रेम—स्त्री-पुरुष का रागात्मक सम्बन्ध, हृदय का स्वाभाविक आकर्षण—विभिन्न रूपों और अवस्थाओं में चित्रित हुआ है। यह प्रेम कहीं अध्यात्म को छूता है और मानवहृदय की उदात्त वृत्तियों को जाग्रत करता है और कहीं काम-लिप्सा तथा वासना के रूप में सामने आता है। कहीं यह रूमान के स्वप्निल आकाश में साहसी पंछी की भांति उड़ता है और कहीं धरती की यथार्थता और कटुता में तिल-तिल जलता है, घुट-घुट कर मरता है। अधिकांश कहानियां दुःखांत हैं। सामाजिक बंधनों, रूढ़ियों, वर्जनाओं और वर्ग-जन्य विषमताओं के कारण प्रेम की कली खिलाने से पहले ही मुरझा जाती है। हृदय का सौदा हृदय से नहीं, बल्कि दौलत से होता है। इस दृष्टि से 'नासूर' न केवल इस संग्रह की सर्वश्रेष्ठ कहानी है, बल्कि हिन्दी साहित्य में भी बेजोड़ है। 'अश्क' जी एक सिद्धहस्त कहानीकार हैं। वे अपनी बात कहना जानते हैं। प्रतिभा के साथ-साथ उनमें कहानीकारोचित कारीगरी भी है। यही कारीगरी उनकी प्रत्येक कहानी को उत्कृष्ट कलाकृति के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत करती है। कुल मिलाकर इस संग्रह में छोटी-बड़ी १७ कहानियां हैं जिनमें टैकनीक की दृष्टि से 'अश्क' जी ने कई अछूते प्रयोग किये हैं। प्रत्येक कहानी पाठक के हृदय पर स्थायी प्रभाव छोड़ जाती है। आशा है, हिन्दी संसार 'अश्क' जी के इस नवीन कहानी-संग्रह का समुचित स्वागत करेगा।

सम्राट् विक्रमादित्य—(नाटक) लेखक—श्री विराज; प्रकाशक—पुस्तक संसार, कोल्हापुर हाउस, सब्जी मण्डी, दिल्ली; मूल्य १॥)

प्रस्तुत नाटक सामयिकता की छाप लिये एक ऐतिहासिक नाटक है जिसमें भारत के पश्चिमोत्तर भाग पर बर्बर शकों व हूणों के आक्रमण करने और सम्राट् विक्रमादित्य के हाथों उनके पराजित होने का वर्णन है। पृष्ठ-भूमि में भारत की तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक व राजनीतिक अवस्था को इस ढंग से चित्रित करने का प्रयत्न किया गया है कि उसमें आज की उन परिस्थितियों का साम्य-सा दिखाई दे जो विभाजन के बाद भारत में पैदा हुई हैं। वैसे तो प्रत्येक लेखक अथवा कवि की रचना पर सामयिक परिस्थितियों की प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से छाप पड़ती ही है, परन्तु

आलोचना के लिये प्रत्येक पुस्तक या पत्र-पत्रिका की दो प्रतियां आनी चाहियें। —सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस नाटक पर, लगता है कि यह छाप जैसे सोद्देश्य डाली गई हो। इसी नाटक में महाकवि कालिदास को एक विशेष 'रोल' दिया गया है—जन कवि का। वे अपनी ओजस्विनी वाणी (!) से गांव-गांव नगर-नगर जाकर जनता को आक्रांताओं के विरुद्ध लड़ने के लिये उभारते हैं। लेखक ने अपने 'मन्तव्य' में अपने इतिहास-ज्ञान को प्रामाणिक बताया है। खैर, इस नाटक की कई और भी विशेषतायें हैं। १३८ पृष्ठों का यह लम्बा नाटक अंकों में विभाजित न होकर केवल दृश्यों में ही समाप्त हुआ है। दृश्यों की संख्या है २२। संकलन-त्रय का अभाव होने से इसे 'एकांकी' कहना तो कठिन है। दूसरी विशेषता यह है कि इसमें कोई भी स्त्री पात्र नहीं है। तीसरी विशेषता यह है कि चूंकि लेखक संस्कृत का पण्डित है, इसलिये उसने अपने इस नाटक में संस्कृत के नाटकों की वाज उन बातों को भी अपनाया है जिनसे आजकल के और नाटककार अस्वाभाविक समझकर बचते हैं। सारांश यह है कि यह नाटक हर प्रकार से समस्या-नाटक है; इसलिये पठनीय भी है और संग्रहणीय भी।

मंजरी—(कहानी-मासिक) संपादक—श्री देवीदयाल चतुर्वेदी; प्रकाशक—इण्डियन प्रेस लि०, प्रयाग; मूल्य ६), एक प्रति ।।)।

हिंदी के कहानी-मासिकों की प्रतिदिन बढ़ती भीड़ में यह सर्वांग-सुन्दर, चित्रों से अलंकृत नया पत्र विशिष्टता लेकर अवतरित हुआ है। इसके पहले दो अङ्क हमारे सामने हैं जो सम्पादक की सुरुचि और श्रम के परिचायक हैं। कहानियां इस प्रकार के अन्य पत्रों की अपेक्षा निश्चय ही ऊंचे स्तर की तथा सुरुचिपूर्ण हैं। कथा-साहित्य सम्बन्धी गंभीर व आलोचनात्मक लेखों और टिप्पणियों, नवीन कथा-साहित्य की समीक्षा और लेखकों के परिचय के स्तम्भों ने पत्र की उपयोगिता को और भी बढ़ा दिया है। सम्पादक ने प्रति मास हिन्दी के साप्ताहिकों और मासिक पत्रों में प्रकाशित होने वाली कहानियों की निष्पक्ष समीक्षा देने का भी आश्वासन दिलाया है। काम तो कठिन है, परन्तु यदि लगन व निष्पक्षता के साथ हो पाये तो हिंदी में यह एक बिल्कुल नई चीज होगी। कथा-साहित्य की दृष्टि से इतना सुन्दर, मनोरंजक और उपयोगी पत्र निकालने के लिये सम्पादक और प्रकाशक वस्तुतः बधाई के पात्र हैं।

साप्ताहिक 'संगम' का श्राद्ध-अंक—सम्पादक श्री इलाचन्द्र जोशी।

अपने प्रकाशन-काल के छः सात महीनों में ही 'संगम' ने हिन्दी के साप्ताहिकों में प्रमुख स्थान बना लिया है। महात्मा गांधी की पुण्य-स्मृति में हाल ही में प्रकाशित इसके 'श्राद्ध-अंक' ने इसकी प्रमुखता व उत्कृष्टता को और भी उजागर किया है। गांधी जी के निधन पर प्रकाशित हुए अन्य पत्रों के विशेषांकों में, पाठ्य सामग्री के संकलन और संपादन की दृष्टि से निश्चय ही यह सर्वश्रेष्ठ है। औरों की तरह मात्र श्रद्धांजलियों से ही इसके पृष्ठ नहीं भरे गये हैं, बल्कि इनमें कुछ ठोस साहित्य भी है।

'उद्यम' का फोटोग्राफी-विशेषांक—फोटोग्राफी अब केवल शौक व मनोरंजन की ही वस्तु नहीं रही। विभिन्न विषयों के ज्ञान व शिक्षा के प्रचार-प्रसार में इसकी उपयोगिता दिनों-दिन बढ़ती जा रही है; अतः इसकी वैज्ञानिक जानकारी प्रत्येक पढ़े लिखे आदमी के लिये आवश्यक हो गई है। हमारे सहयोगी 'उद्यम' ने ऐसे उपयोगी विषय के सम्बन्ध में विशेषांक निकाल कर हिंदी संसार की बहुत बड़ी सेवा की है। इस अंक में फोटो लेना, डेवलपिंग, फिक्सिंग, प्रिंटिंग इत्यादि फोटोग्राफी सम्बन्धी सभी आवश्यक बातों की जानकारी विस्तारपूर्वक तथा चित्रों के साथ दी गई है। अन्त में पारिभाषिक शब्दों की तालिका दी गई है जिसने इस अंक की उपयोगिता को और भी बढ़ा दिया है। यह अंक वस्तुतः संग्रहणीय है।

—चिरंजीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गन्धक का तेज़ाब

औद्योगिक प्रयोग के लिये

डी० सी० एम० केमिकल वर्क्स गन्धक के तेजाब को (१.८४०) या ९५%, (१.७५०) या ८२% और ओलियम २०% के तरीकों से बनाते हैं। आवश्यकतानुसार यह खरीदा जा सकता है। भेजने से पूर्व इसकी अच्छी तरह जांच कर ली जाती है। ९५% तेजाब, विशेष रूप से निर्मित पीपों में भेजा जाता है।

अपनी जरूरतों के लिये लिखिये :—

निम्न वस्तुओं के भी निर्माता :—
शोरे का तेज़ाब, नमक का तेज़ाब, हरिन गंधिताम्ल, अलम्युनियम फेरिक, फिटकरी सफेद व लाल, साबुन व क्रिमानाशक, टर्की रेड आयल, हड्डी का खाद व मिश्रित खाद, सरेस,

डी.सी.एम
केमिकल वर्क्स
पो. बो. नं. २११ नजफगढ रोड दिल्ली

ऊँचे पैमाने के पूर्वपरिचित रसायन - निर्माता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधी जी जब बालक थे....

('भैया')

बच्चो ! गांधी जी की मृत्यु से तुम्हें भी बहुत दुःख हुआ होगा। दुःख होना ही था, गांधी जी सब के 'बापू' जो थे ! बच्चों से तो वे बहुत ही प्यार करते थे। वे तो गये, परन्तु उनका यश अमर है। नीचे प्यारे बापू के बचपन की प्यारी बातें दी गई हैं। इन्हें पढ़कर तुम शिक्षा ग्रहण करो और बापू की भांति महान बनने का प्रयत्न करो।

—सम्पादक

माता-पिता की सेवा का व्रत

एक बार गांधी जी 'श्रवण-पितृ-भक्ति' नाम का एक नाटक पढ़ा जिसमें श्रवणकुमार की अन्धे माता-पिता की सेवा का वर्णन था। कुछ दिनों बाद उन्होंने शीशे से तस्वीरें दिखाने वाले एक मदारी के बक्स में श्रवणकुमार का एक चित्र देखा। इस चित्र में वह अपने अंधे माता-पिता को कांवर (बहंगी) में बैठाकर तीर्थों की यात्रा कराने के लिये ले जा रहा था। इन दोनों चीजों का गांधी जी पर गहरा प्रभाव पड़ा और वे श्रवणकुमार की भांति ही माता पिता की सेवा करने लगे। स्कूल बन्द होते ही वे तुरन्त घर पहुँच जाते और अपने पिता की सेवा में जुट जाते। अपनी माता की हर एक आज्ञा का वे पालन करते, न कभी झूठ बोलते और न ही कभी छल-कपट करते।

सदा सच बोलने की प्रतिज्ञा

बचपन में एक बार उन्होंने सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र का नाटक देखा। इस नाटक का उनके मन पर इतना प्रभाव पड़ा कि उन्होंने भी राजा हरिश्चन्द्र की भांति सदा सच बोलने की प्रतिज्ञा की। इस प्रतिज्ञा को उन्होंने अन्तकाल तक निभाया और सारे संसार में सत्य और अहिंसा के देवता कहलाये।

गांधी जी स्कूल में

गांधी जी स्कूल में मन लगाकर पढ़ते थे, अपने अध्यापकों का सदा आदर करते थे और कभी झूठ नहीं बोलते थे। उन्हें अपने आचरण का बहुत ख्याल रहता था। वे नहीं चाहते थे कि उनसे कोई ऐसी बात हो जिससे अध्यापक उन्हें बुरा लड़का समझने लगे। एक बार स्कूल में उन्हें मार खानी पड़ी। वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत रोये। उन्हें मार खाने का दुःख न था, परन्तु इस बात का बहुत पछतावा हुआ कि मैं दण्ड के योग्य समझा गया। उनके स्कूल-जीवन की एक और भी घटना बड़ी शिक्षाप्रद है। एक बार शिक्षा-विभाग का एक इन्सपेक्टर स्कूल का निरीक्षण करने आया। उसने पहली कक्षा के विद्यार्थियों को पांच शब्द लिखवाये। उनमें एक शब्द था 'केटल' (KETTLE)। उसे गांधी जी ने गलत लिखा। स्कूल के मास्टर ने पास आकर अपने बूट की ठोकर से उन्हें यह इशारा किया कि आगे बैठे लड़के की स्लेट देखकर शब्द सही कर लो। परन्तु गांधी जी ने ऐसा नहीं किया। नकल करने को वे पाप समझते थे।

गांधी जी ने अपना अपराध स्वीकार किया

गांधी जी के बड़े भाई ने किसी से कर्ज ले रखा था। उस कर्ज को चुकाने के लिये गांधी जी ने थोड़ा-सा सोना चुराकर बेचा। बाद में अपने इस अपराध से वे बहुत दुखी हुए। अपने इस अपराध को वे अपने पिता से छिपाना नहीं चाहते थे। अतः उन्होंने एक चिट्ठी में अपना दोष स्वीकार किया और उसके लिये सजा चाही और साथ ही यह प्रतिज्ञा कि आगे मैं कभी ऐसा न करूंगा। यह चिट्ठी लिखकर उन्होंने

गांधी जी हरिजन फण्ड के लिये चन्दा ले रहे हैं

खुद ही कांपते हुए हाथों से अपने पिता को दी और उनके सामने बैठ गये। उनके पिता उन दिनों बीमार थे। चिट्ठी पढ़कर उन्होंने आंखें मूंद लीं। उनकी आंखों में आंसू आ गये। उन्होंने अपने सत्यवादी पुत्र को क्षमा कर दिया था। गांधी जी जीवन भर यह दृश्य न भूले। इस घटना से पहली बार उन्हें अहिंसा का ज्ञान हुआ।

बच्चों के प्यारे बापू

राम नाम की महिमा

गांधी जी बचपन में ही "राम-नाम" की महिमा जान गये थे। जब वे बालक थे तो उन्हें भूत-प्रेत का डर लगता था और समय कुसमय वे अंधेरे में जाने से डरते थे। जब इनकी एक रम्भा नाम की नौकरानी ने बताया कि राम-नाम का जाप करने से भूत भाग जाते हैं तब बालक गांधी ने राम-नाम को अपनाया। यही राम-नाम जीवन भर उनका मूलमंत्र रहा। मरते समय भी उन्होंने राम का ही नाम लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोती आज बहार !

आया, फूलों का त्योहार !

सर्दी बीती, बीती पतझर,
वासंती ऋतु आई मनहर,
पीली पीली सरसों फूली,
फूल उठा संसार !
आया, फूलों का त्योहार !

फूल खिले हैं लाल, सुनहले,
नीले, पीले और रुपहले,
इस धरती पर स्वर्गलोक ही—
हमने लिया उतार !
आया, फूलों का त्योहार !

रंग बिरंगी उड़ें तितलियां,
नन्हीं नन्हीं जैसे परियां।
काले काले भौंरे करते—
मधुर मधुर गुंजार !
आया, फूलों का त्योहार !

देश हुआ आजाद हमारा,
सुख-वैभव की बहती धारा,
आई है स्वाधीन देश में—
पहली आज बहार !
आया, फूलों का त्योहार !

लेकिन, दुख है, बापू प्यारा,
हमें छोड़कर स्वर्ग सिधारा,
हाय, शोक में हम सब के सँग—
रोती आज बहार !
आया, फूलों का त्योहार !

—चिरंजीत

बाल-पहेली नं० ५

२० मार्च १९४८ तक सही उत्तर आने पर 'मनोरंजन' एक वर्ष के लिये मुफ्त

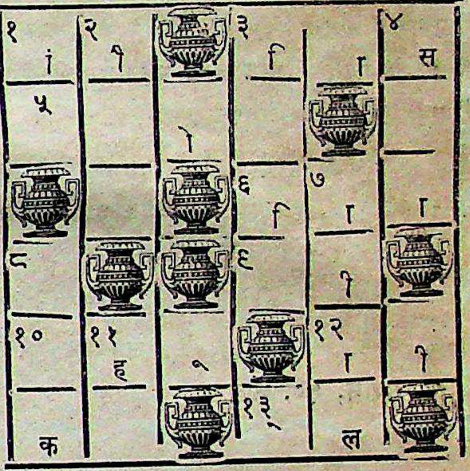

१. इनकी मृत्यु से सारे भारत में शोक छाया हुआ है। ३. जिसमें यह न हो, वह घर किस काम का। ५. 'सरोवर' के उलट-पुलट अक्षर। ६. ऐसे आदमी की चेष्टायें कभी २ बड़ी मनोरंजक होती हैं। ९. इसे उलटने से एक ऐसा शब्द बनता है जिसका अर्थ है — मग्न। १०. आज सारा भारत इसे प्यार करता है। १२. बची हुई वस्तु। १३. यह सब से तेज़ चलती है।

१. यहां के लोग खूब हृष्ट पुष्ट होते हैं। २. यह कभी नहीं खोना चाहिये। ३. हमेशा। ४. इसके आरंभ में 'स' की जगह 'प' जोड़ने से एक ऐसे काम का नाम बन जाता है जो बच्चों को मन लगाकर करना चाहिये। ७. एक खेल। ८. किसी वस्तु के बजने का मधुर स्वर। ११. किसान कभी कभी इसके लिये भी लड़ पड़ते हैं।

पहेली का उत्तर भेजने का पता—
व्यवस्थापक 'मनोरंजन,'
श्रद्धानन्द बाजार, दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाल-पहेली नं० ४ का पुरस्कार

फरवरी १९४८ के 'मनोरंजन' में प्रकाशित 'बाल-पहेली नं० ४' का सही उत्तर प्रेमवल्लभ सुन्दरियाल, ८ वीं कक्षा, हाई स्कूल कर्ण-प्रयाग (गढ़वाल) ने भेजा है। उसे एक वर्ष के लिये 'मनोरंजन' मुफ्त मिलता रहेगा। सही उत्तर निम्नलिखित है—

दायें से बायें — १. दिसंबर, ५. कटा, ६. जय, ७. जननारा, ६. वकील, ११. रील, १२. टीन।

ऊपर से नीचे — २. बड़ी, ३. रद्दी, ४. खोटा, ५. कहना, ६. जनवरी, ७. जल, ८. राशन, १०. कील।

मां-बेटा

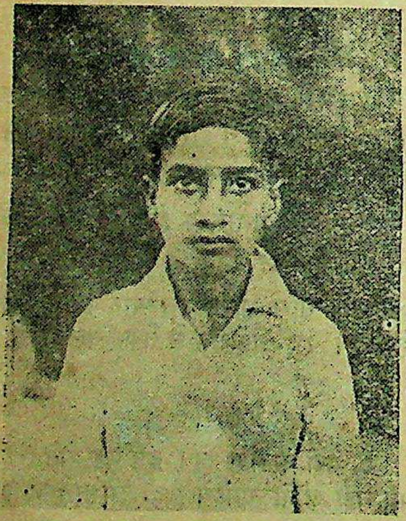

श्री मोहनलाल अग्रवाल

जिन्होंने पिछले महीने 'बाल-पहेली नं० ३' का सही उत्तर भेजकर पुरस्कार प्राप्त किया था। इनकी आयु १२ वर्ष की है और ये विक्रम विद्यालय, सदर बाजार, झांसी में षष्ठ वर्ग में पढ़ते हैं। यही इनका पता है। अपने विद्यालय के ये बड़े होनहार विद्यार्थी हैं।

पहेली के नियम

१. उत्तर के साथ चार आने के टिकट आने चाहियें।

२ केवल १४ वर्ष की आयु तक के लड़के लड़कियां ही इस प्रतियोगिता में भाग ले सकते हैं। आयु के सम्बन्ध में माता-पिता अथवा स्कूल के अध्यापक का प्रमाण-पत्र भी उत्तर के साथ आना चाहिये।

३. उत्तर 'मनोरंजन' में छपे खाके को काट कर और भर कर भेजना चाहिए। किसी और कागज पर अलग से भेजे गये उत्तर पर विचार नहीं किया जायेगा। एक व्यक्ति एक से अधिक पूर्तियां भी भेज सकता है।

४. खानों को स्याही से सुस्पष्ट लिखे अक्षरों से भरना चाहिये। कटे-छंटे या पेंसिल आदि से लिखे अक्षर को सही नहीं माना जायेगा।

५. उत्तर २० मार्च १९४८ को शाम तक 'मनोरंजन' कार्यालय में पहुंच जाना चाहिये।

६. सम्पादक का निर्णय अन्तिम होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar